प्रकाशक :

अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ

जोधपुर

शाखा कार्यालय

नेहरू गेट बाहर, ब्यावर (राजस्थान)

✆ : (01462) 251216, 257699, 250328

उत्तराध्ययन सूत्र

भाग १

(शुद्ध मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

आवरण सौजन्य

विद्या बाल मंडली सोसायटी, मेरठ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ साहित्य रत्न माला का १२५ वाँ रत्न

उत्तराध्ययन सूत्र

भाग-१

(अध्ययन १ से २०)

(शुद्ध मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

सम्पादक

नेमीचन्द बांठिया

पारसमल चण्डालिया

प्रकाशक

श्री अखिल भारतीय सुधर्म

जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर

शाखा-नेहरू गेट बाहर, ब्यावर-३०५९०१

(०१४६२) २५१२१६, २५७६९९ फेक्स नं. २५०३२८

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्य सहायक
उदारमना श्रीमान् गुप्त साधर्मी बन्धु

प्राप्ति स्थान

१. श्री अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, सिटी पुलिस, **जोधपुर** ☎ 2626145
२. शाखा-अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, नेहरू गेट बाहर, **ब्यावर** ☎ 251216
३. महाराष्ट्र शाखा-माणके कंपाउंड, दूसरी मंजिल आंबेड़कर पुतले के बाजू में, **मनमाड़**
४. श्री जशवन्तभाई शाह एदुन बिल्डिंग पहली धोबी तलावलेन पो० बॉ० नं० 2217, **बम्बई-2**
५. श्रीमान् हस्तीमल जी किशनलालजी जैन प्रीतम हाऊ० कॉ० सोसा० ब्लॉक नं० १० स्टेट बैंक के सामने, **मालेगांव (नासिक)** ☎ 252097
६. श्री एच. आर. डोशी जी-३६ बस्ती नारनौल अजमेरी गेट, **दिल्ली-६** ☎ 23233521
७. श्री अशोकजी एस. छाजेड़, १२१ महावीर क्लॉथ मार्केट, **अहमदाबाद** ☎ 5461234
८. श्री सुधर्म सेवा समिति भगवान् महावीर मार्ग, **बुलडाणा**
९. श्री श्रुतज्ञान स्वाध्याय समिति सांगानेरी गेट, **भीलवाड़ा** ☎ 236108
१०. श्री सुधर्म जैन आराधना भवन २४ ग्रीन पार्क कॉलोनी साउथ तुंकोगंज, **इन्दौर**
११. श्री विद्या प्रकाशन मन्दिर, ट्रांसपोर्ट नगर, **मेरठ** (उ. प्र.)
१२. श्री अमरचन्दजी छाजेड़, १०३ वाल टेक्स रोड़, **चैन्नई** ☎ 25357775
१३. श्री संतोषकुमार बोथरा वर्द्धमान स्वर्ण अलंकार ३६४, शांपिंग सेन्टर, **कोटा** ☎ 2360950

मूल्य : ४०-००

द्वितीय आवृत्ति
१०००

वीर संवत् २५३२
विक्रम संवत् २०६३
नवम्बर २००६

मुद्रक - स्वास्तिक प्रिन्टर्स प्रेम भवन हाथी भाटा, अजमेर ☎ 2423295

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तावना

जैन दर्शन एवं इसकी संस्कृति का मूल आधार सर्वज्ञ-सर्वदर्शी वीतराग प्रभु द्वारा प्ररूपित वाणी रूप आगम है। प्रभु अपने छद्मस्थ काल में प्रायः मौन रहते हैं। अपने तप संयम की उत्कृष्ट साधना के द्वारा जब वे अपने घाती कर्मों को क्षय कर केवलज्ञान, केवलदर्शन प्राप्त कर लेते हैं तब वे वाणी की वागरणा करते हैं। यानी पूर्णता प्राप्त होने के पश्चात् ही प्रभु उपदेश फरमाते हैं और उन की प्रथम देशना में ही चतुर्विध संघ की स्थापना हो जाती है। चूंकि तीर्थंकर प्रभु पूर्णता प्राप्त करने के पश्चात् ही वाणी की वागरणा करते हैं। अतएव उनके द्वारा फरमाई गई वाणी न तो पूर्वापर विरोधी होती है, न ही युक्ति बाधक। उसी उत्तम एवं श्रेष्ठ वाणी को जैन दर्शन में आप्तवाणी - आगम-शास्त्र-सूत्र कहा गया है। तीर्थंकर प्रभु अर्थ रूप में उपदेश फरमाते हैं जिसे महान् प्रज्ञा के धनी गणधर भगवन्त सूत्र रूप में गूंथित करते हैं। इसीलिए आगमों के लिए यह कहा गया है कि **"अत्थं भासइ अरहा सुत्तं गंथंति गणहरा निउणं"**। आगम साहित्य की प्रामाणिकता केवल गणधर कृत होने से ही नहीं, किन्तु इसके अर्थ के मूल प्ररूपक तीर्थंकर प्रभु की वीतरागता एवं सर्वज्ञता है। यही जैन दर्शन के आगम साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है। अन्य दर्शनों के साहित्य छद्मस्थ कथित होने से उनमें अनेक स्थानों पर पूर्वापर विरोध एवं अपूर्णता रही हुई है। साथ ही जिस सूक्ष्मता से जीवों के भेद-प्रभेद, जीव में पाये जाने वाले ज्ञान, अज्ञान, संज्ञा, लेश्या, योग, उपयोग आदि की व्याख्या एवं अजीव द्रव्यों के भेद-प्रभेद आदि का कथन इसमें मिलता है वैसा अन्यत्र नहीं मिल सकता। मिले भी कैसे? क्योंकि अन्य दर्शनों के प्रवर्तकों का ज्ञान तो सीमित होता है। जब कि जैन दर्शन के उपदेष्टा सर्वज्ञ सर्वदर्शी वीतराग प्रभु का ज्ञान अनन्त है। इस प्रकार जैनागम हर दृष्टि से भूतकाल में श्रेष्ठ था, वर्तमान में श्रेष्ठ है और भविष्य काल में भी श्रेष्ठ रहेगा। तीर्थंकर प्रभु जैसा अपने केवलज्ञान से जानते हैं और केवलदर्शन से देखते हैं, वैसा ही निरूपण करते हैं।

वर्तमान स्थानकवासी परम्परा बत्तीस आगमों को मान्य करती है। जिनमें द्वादशांगी की रचना, जिन्हें अंग सूत्र कहा जाता है, गणधर भगवन्त करते हैं। शेष आगमों की रचना स्थविर भगवन्तों द्वारा की जाती है। जो स्थविर भगवन्त सूत्र की रचना करते हैं, वे दस पूर्वी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथवा उससे अधिक के ज्ञाता होते हैं। इसलिए वे सूत्र और अर्थ की दृष्टि से अंग साहित्य के पारंगत होते हैं। अतएव वे जो भी रचना करते हैं, उसमें किंचित् मात्र भी विरोध नहीं होता। जो बात तीर्थंकर भगवन्त फरमाते हैं, उसको श्रुत केवली (स्थविर भगवन्त) भी उसी रूप में कह सकते हैं। दोनों में अन्तर इतना ही है कि केवली सम्पूर्ण तत्त्व को प्रत्यक्ष रूप से जानते हैं, जबकि श्रुत केवली अपने विशिष्ट क्षयोपशम एवं श्रुतज्ञान के द्वारा परोक्ष रूप से जानते हैं। उनके द्वारा रचित आगम साहित्य इसलिए भी प्रामाणिक होते हैं, क्योंकि वे नियमतः सम्यग्दृष्टि होते हैं। अतएव उनके द्वारा रचित आगम-ग्रन्थ को उतना ही प्रामाणिक माना जाता है, जितने गणधर कृत अंग सूत्र।

जो बत्तीस आगम हमारी स्थानकवासी परम्परा में मान्यता प्राप्त है। उनका वर्गीकरण समय-समय पर विभिन्न रूप में किया गया है। सर्वप्रथम इन्हें अंग प्रविष्ट और अंग बाह्य के रूप में प्रतिष्ठापित किया गया है। अंग प्रविष्ट श्रुत में उन आगमों को लिया गया है जिनका निर्यूहण गणधरों द्वारा सूत्र रूप में हुआ है अथवा गणधर भगवन्तों द्वारा जिज्ञासा प्रस्तुत करने पर जो तीर्थंकर प्रभु द्वारा समाधान फरमाया गया हो। अंग बाह्य श्रुत वह है जो स्थविर कृत हो अथवा गणधरों के जिज्ञासा प्रस्तुत किये बिना तीर्थंकर द्वारा प्रतिपादित हो। समवायांग और अनुयोगद्वार सूत्र में आगम साहित्य का केवल द्वादशांगी के रूप में निरूपण हुआ है। तीसरा वर्गीकरण विषय के हिसाब से चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग एवं धर्मकथानुयोग के रूप में हुआ है। इसके पश्चात्वर्ती साहित्य में सबसे अर्वाचीन है उनमें ग्यारह अंग, बारह उपांग, चार मूल, चार छेद और बत्तीसवां आवश्यक सूत्र के रूप में वर्तमान में बत्तीस आगमों का वर्गीकरण किया गया है।

११ अंग - आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञाताधर्मकथांग, उपासकदशांग, अन्तकृतदशा, अनुत्तरौपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण एवं विपाक सूत्र।

१२ उपांग - औपपातिक, राजप्रश्नीय, जीवाजीवाभिगम, प्रज्ञापना, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, चन्द्र प्रज्ञप्ति, सूर्य प्रज्ञप्ति, निरियावलिका, कल्पावतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा सूत्र।

४ छेद - दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प, व्यवहार और निशीथ सूत्र।

४ मूल - उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, नंदी और अनुयोगद्वार सूत्र।

१ आवश्यक सूत्र

कुल ३२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

प्रस्तुत उत्तराध्ययन सूत्र बत्तीस आगमों में एक मूल आगम है। इसे मूल सूत्र के रूप में स्थापित करने के पीछे क्या लक्ष्य रहा? इसके लिए आचार्य भगवंतों ने समाधान फरमाया है कि आत्मोत्थान के लिए प्रभु ने उत्तराध्ययन सूत्र के मोक्षमार्ग गति नामक अट्ठाईसवें अध्ययन की इस गाथा के द्वारा सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप को मोक्ष का मार्ग बतलाया है।

णाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
एयं मग्ग-मणुपत्ता, जीवा गच्छंति सुग्गइं॥

अर्थात् - सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप यह मोक्षमार्ग है। इस मार्ग का आचरण करके ही जीव सुगति - मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

उत्तराध्ययन सूत्र सम्यग्-दर्शन, चारित्र और तप का प्रतीक है, जबकि दशवैकालिक चारित्र और तप का। अनुयोगद्वार सूत्र दर्शन और ज्ञान का प्रतिनिधित्व करता है और नंदी सूत्र में पांच ज्ञान का निरूपण किया गया है। इस कारण उत्तराध्ययन सूत्र की गणना मूल सूत्रों में की गई है। सम्यग्-दर्शन के अभाव में ज्ञान, चारित्र और तप तीनों क्रमशः मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र और बाल तप माने गये हैं। जहाँ सम्यग्दर्शन होगा वहीं नियमा ज्ञान, चारित्र और तप भी सम्यक् होगा और इन्हीं की उत्कृष्ट आराधना को प्रभु ने मोक्ष मार्ग बतलाया है। इन्हीं हेतुओं के कारण इस सूत्र की गणना मूल सूत्र में की गई है।

श्रुत केवली भद्रबाहु स्वामी ने कल्पसूत्र में लिखा है कि श्रमण भगवान् महावीर कल्याण फल विपाक वाले पंचपन अध्ययनों और पाप फल वाले पचपन अध्ययनों एवं छत्तीस अपृष्ट-व्याकरणों की प्ररूपणा करते-करते सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गये। इसी आधार से यह माना जाता है कि छत्तीस अपृष्ट-व्याकरण उत्तराध्ययन के ही छत्तीस अध्ययन हैं। इस बात की पुष्टि उत्तराध्ययन सूत्र के छत्तीसवें अध्ययन की अन्तिम गाथा से भी होती है।

इइ पाउकरे बुद्धे, नायए परिनिव्वुए।
छत्तीसं उत्तरज्झाए, भवसिद्धीयसंमए॥

भावार्थ - इस प्रकार भवसिद्धिक संमत्त - भव्य जीवों के सम्मत्त (मान्य है) ऐसे उत्तराध्ययन सूत्र के छत्तीस अध्ययनों को प्रकट कर के बुद्ध - तत्त्वज्ञ केवलज्ञानी ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान् महावीर स्वामी परिनिर्वृत - निर्वाण को प्राप्त हो गये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तराध्ययन सूत्र प्रभु महावीर की अन्तिम देशना होने से इसका महत्त्व वैसे भी अत्यधिक हो जाता है क्योंकि परिवार में भी प्रायः देखा जाता है कि पुत्र अपने पिताश्री द्वारा दी गई अन्तिम शिक्षा का पालन करने का विशेष ध्यान रखते हैं। इसी प्रकार परमपिता भगवान् महावीर द्वारा यह अन्तिम उपदेश हम संसारी जीवों के लिए अमृत तुल्य है। इस सूत्र में धर्मकथानुयोग का ही नहीं, अपितु चारों ही अनुयोगों का सुन्दर - मधुर संगम है। यह भगवान् की वाणी का प्रतिनिधित्व करने वाला आगम है। इस आगम के सूक्त वचन इतने संक्षिप्त सारपूर्ण और गहन हैं कि वे निःसंदेह साधक जीवन को निर्वाणोन्मुख करने में गागर में सागर का काम करने वाले हैं। इसे यदि साधक जीवन की डायरी कह दिया जाय तो भी अतिश्योक्ति नहीं है।

प्रथम अध्ययन - विनय - प्रस्तुत सूत्र का प्रारम्भ विनय - अहंकार शून्यता से किया गया है। जो जैन दर्शन के आध्यात्मिक जीवन की मूल भूमिका है। विनय की पृष्ठभूमि पर ही श्रमणाचार और श्रावकाचार का विशाल महल टिका हुआ है। इसलिए गुरुदेव शिष्य को सर्व प्रथम विनय का स्वरूप बतलाते हुए फरमाते हैं कि किस प्रकार शिष्य को गुरुजनों के समक्ष बैठना, उठना, बोलना, चलना, उनके अनुशासन में रहकर ज्ञानार्जन आदि का विवेक रखना चाहिये। अविनीत शिष्य के लिए सड़े कानों वाली कुत्ती एवं सुअर का उदाहरण देकर सभी जगह अनादर और उसके दुःखदायी फल को बतलाया गया। वहीं दूसरी ओर विनीत शिष्य के लिए इस अध्ययन की अन्तिम गाथा में देव, गन्धर्व और मनुष्यों से पूजित शाश्वत सिद्धि गति का प्राप्त होना बतलाया है।

दूसरा अध्ययन - परीषह विजय - विनय की सद्शिक्षा के बाद दूसरे अध्ययन परीषह विजय में साधक जीवन में प्रवेश करने के पश्चात् अनेक कष्ट और परीषह आने वाले हैं उन्हें समभावों से कर्मों की निर्जरा का हेतु समझ कर सहन करना है। संयम को रणभूमि कहा गया है अतएव साधक को साधना पथ पर गति करते हुए अन्तर बाह्य परीषहों के आने पर उन्हें समभावों के साथ संघर्ष करते हुए, आगे बढ़ते हुए सफलता हासिल करनी है। इस रणभूमि में सफलता प्राप्त करने वाला ही सच्चा साधक कहलाता है।

तीसरा अध्ययन - चार बातों की दुर्लभता - इस अध्ययन का प्रारम्भ 'चत्तारि परमंगाणि - दुल्लहाणीह जंतुणो' से हुआ है। जीव को चार परम अंग अत्यन्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दुर्लभ है - मनुष्य भव, धर्म का श्रवण, धर्म पर श्रद्धा और संयम साधना में पुरुषार्थ, चार गति रूप संसार में मानव भव की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है। मानव भव मिल जाने पर भी आगे कहे जाने वाले क्रमशः सुधर्म, उस पर पूर्ण श्रद्धा और उसके पश्चात् भगवान् की आज्ञानुसार संयम साधना बहुत ही कठिन है, दुर्लभ है। अतएव मनुष्य भव की महत्ता को समझ कर पाये हुए मनुष्य भव को शेष तीन बातों में पुरुषार्थ कर सफल करना चाहिये।

चौथा अध्ययन - जीवन असंस्कृत - इस अध्ययन की शुरूआत हुई है- जीवन की क्षण भंगुरता से 'असंखयं जीविय मा पमायए' अर्थात् जीवन संस्कार रहित यानी क्षणिक है एक बार टूटने पर पुनः जोड़ा नहीं जा सकता। व्यक्ति सोचता है अभी तो मेरी बाल्य अथवा, युवावस्था है, धर्म तो वृद्धावस्था आने पर कर लूंगा। पर उसे पता नहीं कि वृद्धावस्था आयेगी अथवा नहीं? अतः धर्म कार्य में प्रमाद मत कर। सतत् जागरूक रह कर धर्माचरण करते रहना चाहिए। जो जीव धर्माचरण पिछली अवस्था के लिए छोड़ देता है वह पहले के समान पिछली अवस्था में भी धर्माचरण नहीं कर सकता। अन्त में आयु के समाप्त होने पर पश्चात्ताप के सिवाय कुछ भी हाथ नहीं लगता है।

पांचवां अध्ययन - सकाम अकाम मरण - प्रत्येक जीव के जीवन के साथ मृत्यु का चोली दामन का सम्बन्ध है। न चाहने पर भी मृत्यु निश्चित है अतः जीवन को जीने के साथ-साथ मरण की भी कला आना आवश्यक है। जो जीव यह कला जानता है, वही हंसते-हंसते मरण को वरण कर सकता है और उसी का मरण सकाम यानी पण्डित मरण कहा गया है। सकाम मरण विवेक युक्त विषय-कषाय से रहित समाधि युक्त होता है। सकाम मरण में साधक शरीर और आत्मा को भिन्न मानता हुआ मृत्यु का महोत्सव के रूप में स्वागत करता है। उसका एक मात्र ध्येय अपने निज स्वरूप को प्राप्त करना है। क्योंकि आत्मा अविनाशी, अजर-अमर, विशुद्ध चैतन्य रूप है। जीव ने विषय-कषाय के आधिन होकर तो आज तक अनन्त जन्म मरण किये हैं। अब ज्ञान का प्रकाश हुआ है। अतः पण्डित - सकाम मरण प्राप्त कर जीवन को सफल बना लेना चाहिए।

छट्ठा अध्ययन - क्षुल्लक निर्ग्रन्थीय - निर्ग्रन्थ शब्द जैन परम्परा का एक विशिष्ट शब्द है जो जैन साधु के लिए प्रयुक्त होता है। ग्रन्थ का अर्थ गांठ होता है। जैन साधु आभ्यन्तर और बाह्य दोनों ग्रन्थियों से मुक्त होता है। राग-द्वेष आदि कषाय भाव आभ्यन्तर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

ग्रन्थियाँ हैं। इन्हीं आभ्यन्तर ग्रन्थियों के कारण बाह्य ग्रन्थियों का जन्म होता। जैन साधु वही हो सकता है जो इन ग्रन्थियों से रहित होता है। इस अध्ययन में इसका सुन्दर विवेचन किया गया है।

सातवां अध्ययन - औरभ्रीय - इस अध्ययन में मेमने, काकिणी और आम्रभोजी राजा का उदाहरण देकर बतलाया गया है कि इन्द्रियों - काम भोग के वशीभूत बना हुआ मानव अपने अमूल्य मानव भव को हार कर बाद में घोर पश्चात्ताप करता है। बाल अज्ञानी जीव प्रत्यक्ष क्षणिक सुख के पीछे अनन्त काल के नरकादि दुर्गतियों को संग्रह कर लेता है। तुच्छ मानवीय कामभोगों की आसक्ति के पीछे दिव्य देव सुख और अनन्त मोक्ष के सुखों को वह भूल जाता है। इस अध्ययन में इसी कारण प्रभु ने अधर्म को छोड़ कर धर्माचरण और आसक्ति को छोड़कर अनासक्त बनने का उपदेश फरमाया है।

आठवां अध्ययन - कापिलीय - क्रोध, मान, माया आत्मा के एक-एक सद्गुण का नाश करता है पर लोभ सभी सद्गुणों का नाश करता है। इसी कारण लोभ को नीतिकारों ने 'पाप का बाप' कहा है। इस अध्ययन में लोभ के दुष्परिणाम का सजीव चित्रण किया गया है। कपिल केवली के कथानक के माध्यम से बतलाया गया कि उसके अन्तर मन में लोभ का प्रवाह इतना बढ़ा कि चारमासा सोने के स्थान पर पूरा राज्य लेने पर भी सन्तुष्टि नहीं हुई। पर ज्योंही उनकी परिणिति बदली कि वे इन सब का त्याग कर निर्ग्रन्थ बन गये और केवलज्ञान, केवलदर्शन को प्राप्त किया तथा पांच सौ डाकुओं को प्रतिबोध दिया जिससे वे मुनि बने। प्रस्तुत अध्ययन में संसार की असारता, ग्रन्थित्याग, साधना के आचार-विचार आदि पर प्रकाश डाला गया है।

नववाँ अध्ययन - नमिराजर्षि - विदेह देश का राजा - नमिराज के प्रव्रज्या का निमित्त बना दाह-ज्वर। दाह-ज्वर के उपशमन के लिए रानियों द्वारा चंदन घिसने से राजा को कंगनों की टकराहट की आवाज से वेदना होने लगी। फलतः रानियों ने सौभाग्य सूचक एक-एक कंगन अपने हाथों में रखकर शेष कंगन उतार दिये। आवाज बंद होने पर राजा का अनुप्रेक्षात्मक चिन्तन चला, जिसके कारण उन्हें जातिस्मरण ज्ञान हो गया। वे अपने पूर्वभवों को देखने लगे और प्रव्रज्या अंगीकार करने का निर्णय कर लिया। नमिराज के अकस्मात् राज्य त्याग कर प्रव्रजित होने को उद्यत जानकर देवराज इन्द्र ब्राह्मण का रूप धारण कर उनके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वैराग्य की परीक्षा लेने हेतु उनके समक्ष उपस्थित हुए और उनसे दस प्रश्न पूछे - नमिराजर्षि द्वारा उनका सुन्दर समाधान पाकर अपने असली रूप में प्रकट हुए, उन्हें वंदन नमस्कार किया। उनके उत्तम गुणों की प्रशंसा करते हुए अपने निज स्थान को चला गया। इस अध्ययन में प्रत्येक बुद्ध नमिराजर्षि के गृहत्याग से प्रव्रज्या तक का सुन्दर वर्णन है।

दसवां अध्ययन - द्रुमपत्रक - इस अध्ययन में मानव जीवन की दुर्लभता एवं क्षणभंगूरता, शरीर और इन्द्रियों की धीरे-धीरे क्षीणता का दिग्दर्शन कराकर क्षणमात्र भी प्रमाद नहीं करने का एक-दो-तीन बार ही नहीं कहा प्रत्युत छत्तीस बार इस बात को दोहराया गया है। इस अध्ययन में यद्यपि प्रभु ने गौतम स्वामी को सम्बोधन किया, किन्तु गौतम स्वामी तो चार ज्ञान चौदह पूर्व के ज्ञाता अप्रमत्त साधक थे, उन्हें लक्ष्य करके हम संसारी लोगों को सतत् धर्म अनुष्ठान में जागृत रहने का उपदेश फरमाया है।

ग्यारहवाँ अध्ययन - बहुश्रुत पूजा - प्रस्तुत अध्ययन में बहुश्रुत के गुणों का वर्णन किया गया है। जो आगमों का गहन और तलस्पर्शी ज्ञाता होने के साथ प्रकृति के भद्रिक, सरल, शास्त्रार्थ में पारंगत, बहुविज्ञ हो। प्रथम दो गाथाओं में बहुश्रुतता प्राप्त नहीं होने के कारणों का निरूपण किया है। तत्पश्चात् बहुश्रुतता प्राप्ति के आठ कारणों पर प्रकाश डाला गया है। तदनन्तर बहुश्रुतता प्राप्ति के बाधक अविनीतता का उल्लेख कर सुविनीत के लक्षण दिये गये हैं। अन्त में बहुश्रत के गुणों का निरूपण करके इसकी फलश्रुति मोक्ष के शाश्वत् सुख बतलाये गये हैं।

बारहवाँ अध्ययन - हरिकेशीय - जैन दर्शन के आध्यात्मिक आराधना में जाति, वर्ण आदि का कोई बन्धन नहीं है। इस तथ्य का उद्घाटन इस अध्ययन से हो जाता है। हरिकेश चाण्डाल कुल में उत्पन्न हुए थे। किन्तु संयम और तप की उत्तम आराधना के दिव्य प्रभाव से वे देवताओं के द्वारा वंदनीय पूजनीय बन गये। इस अध्ययन में हरिकेश मुनि के जीवन का वर्णन कर भिक्षा के लिए ब्राह्मणों की यज्ञशाला में जाने तथा वहाँ याज्ञिक ब्राह्मणों द्वारा उन्हें अपमानित करने पर उनकी सेवा में रहने वाले यक्ष द्वारा याज्ञिक ब्राह्मणों को निश्चेत करना, याज्ञिक ब्राह्मणों द्वारा क्षमा मांगने पर मुनि द्वारा उपदेश फरमाना आदि का सुन्दर वर्णन किया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

तेरहवाँ अध्ययन - चित्त संभूत - इस अध्ययन में चित्त और संभूत दोनों भाइयों के पिछले छह जन्मों के जीवन के उतार - चढ़ाव की कहानी है। चित्त और संभूत पूर्वभव में भाई थे। दोनों ने संयम स्वीकार कर देवलोक में गये, वहाँ से चवकर चित्त का जीव पुरिमताल नगर में सेठ का पुत्र हुआ और दीक्षा ग्रहण कर मुनि बना। संभूत का जीव ब्रह्म राजा का पुत्र ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती बना। चित्त का जीव जो मुनि बना था उसने ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती को संसार की असारता बताकर मुनिव्रत अंगीकार करने की प्रेरणा की। किन्तु ब्रह्मदत्त ने भोगों में आसक्त होने से मुनि की बात नहीं मानी। अन्ततः वह दुर्गति का मेहमान बना और मुनि ने शाश्वत सुखों को प्राप्त किये।

चौदहवाँ अध्ययन - इषुकारिय - इस अध्ययन में छह महापुरुषों का वर्णन है और यह घटना इषुकारनगर की है। अधिपति राजा का नाम इषुकार होने से इस अध्ययन का नाम इषुकारीय रखा गया है। सौधर्म देवलोक से चवकर छह जीव इस नगर में उत्पन्न हुए राजा इषुकार, रानी कमलावती, भृगु पुरोहित, उसकी पत्नी यशा तथा दो पुत्र देवभद्र और यशोभद्र। पुरोहित पुत्रों को जैन मुनियों को देखने से जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ और वे दीक्षा लेने के लिए तैयार हुए। पिताजी ने अपनी वैदिक संस्कृति के अनुसार अनेक युक्तियों से उन्हें समझाया, किन्तु पुत्रों के अकाट्य उत्तरों से पिता निरूत्तर हो गये। अतः दोनों पुत्र, माता-पिता एवं रानी कमलावती के उद्‌बोधन से राजा ने बोध को प्राप्त कर प्रव्रज्या ग्रहण की। इस प्रकार छह ही जीवों ने दीक्षा ग्रहण कर संयम तप की उत्कृष्ट आराधना कर मोक्ष प्राप्त किया।

पन्द्रहवाँ अध्ययन - सभिक्षुक - इस अध्ययन की प्रत्येक गाथा के अन्त में **'सभिक्खू'** शब्द आया हुआ है। इसलिए इस अध्ययन का नाम 'सभिक्षुक' रखा गया है। इस अध्ययन में घरबार से रहित जो भिक्षा के द्वारा आजीविका का निर्वाह करता है। उसका संयमी जीवन निर्बाध चले, अतः संयमी जीवन के बाधक तत्त्वों का निरूपण और उनसे निरपेक्ष रहकर साधक को किस प्रकार आगे बढ़ना इसका सुन्दर मार्गदर्शन दिया गया है।

सोलहवाँ अध्ययन - ब्रह्मचर्य समाधि - ब्रह्मचर्य, साधक जीवन की अमूल्य निधि है। अतएव उसकी पूर्ण सुरक्षा कैसे हो सकती है? इस अध्ययन में ब्रह्मचर्य समाधि के विभिन्न दस स्थानों का विस्तृत वर्णन किया गया है। इसका पालन करने वाले को कैसे सुख

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और आनंद की अनुभूति होती है यावत् देव उनके चरणों के दास बन जाते है। इसके विपरीत अब्रह्म का सेवन करने वाले को दुर्गति का मेहमान बनना पड़ता है। इसके दुष्परिणामों का उल्लेख किया गया है।

सतरहवाँ अध्ययन - पाप श्रमण - जो पूर्ण त्याग वैराग्य के साथ जैन प्रव्रज्या स्वीकार करने के पश्चात् कालान्तर में प्रमाद, इन्द्रिय वशीभूत, प्रतिष्ठा, सुखशीलियापन, गृहस्थों के कार्यों में संलग्न आदि अनेक कारणों से अपने स्वीकृत महाव्रतों में स्खलना करता है। जिसके कारण आगमकार ने उन्हें श्रमण होते हुए भी 'पाप श्रमण' कहा। इस अध्ययन में किन-किन कारणों से पापश्रमण बन जाता, इसका दिग्दर्शन करा कर, सभी श्रमण-श्रमणियों को ऐसी पापश्रमणता से दूर रहने का निर्देश दिया है।

अठारहवाँ अध्ययन - संजयीय - इस अध्ययन में संजय राजा के शिकारी जीवन की गर्दभालिमुनि के सत्संग से कैसा परिवर्तन हुआ उसका सुन्दर संवाद के रूप में विवेचन किया गया। राजा मुनि के उपदेश से प्रव्रजित हो जाते हैं। तत्पश्चात् उनका (संजयराजर्षि) का क्षत्रियमुनि से परिचय हुआ। क्षत्रिय मुनि ने संजयराजर्षि को धर्म में दृढ़ करने के लिए भरत आदि दस चक्रवर्ती जो मोक्ष पधारे तथा दशार्णभद्र, नमिराज, करकण्डु आदि चार प्रत्येक बुद्ध, उदायन, विजय, काशीराज, महाबल आदि बीस महान् व्यक्तियों के त्यागमय जीवन का दिग्दर्शन कराया। इस अध्ययन में संजयराजर्षि के कथानक के साथ अनेक महापुरुषों की अवान्तर कथाओं का समावेश हुआ है।

उन्नीसवाँ अध्ययन - मृगापुत्रीय - सुग्रीवनगर के राजा बलभद्र और रानी मृगावती का आत्मज राजकुमार का नाम यद्यपि 'बलश्री' था, किन्तु मृगा रानी का आत्मज होने से 'मृगापुत्र' के नाम से प्रसिद्ध हुए। एक दिन राजकुमार अपने झरोखे में बैठा कर नगर की शोभा निहार रहा था, उस समय उनकी दृष्टि राजमार्ग पर जाते हुए एक महान् तेजस्वी मुनि पर पड़ी उन्हें वे टकटकी लगाकर देखने लगे जिससे उन्हें जाति स्मरण ज्ञान हो गया। जाति स्मरण ज्ञान से उन्हें अपने पूर्व भव में पाला गया संयम स्मृति में आ गया। तत्पश्चात् वे तुरन्त माता-पिता के पास आये और दीक्षा की आज्ञा मांगी। माता-पिता ने संयम के कष्टों को बताया जिसका मृगापुत्रजी ने यथोचित समाधान दिया और दीक्षा ग्रहण कर के उत्कृष्ट संयम की साधना कर मोक्ष को प्राप्त किया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

बीसवाँ अध्ययन - महानिर्ग्रन्थीय - इस अध्ययन का नाम महानिर्ग्रन्थीय है किन्तु प्रसिद्धि में यह अध्ययन अनाथी मुनि के नाम से है। क्योंकि इस अध्ययन में मूल में सनाथी कौन और अनाथी कौन का स्वरूप समझाया गया है। संसारी लोग धन वैभव एवं परिवार से परिपूर्ण व्यक्ति को सनाथ मानते हैं। क्योंकि वे मानते हैं कि कष्ट आने पर ये हमारी रक्षा करने में समर्थ होंगे। पर ज्ञानी इसे सनाथ नहीं मानते क्योंकि रोगादि संकट आने पर स्वजन, धन, वैभव आदि उसकी रक्षा करने में समर्थ नहीं हो सकते हैं। प्रत्युत उसके पूर्वकृत शुभाशुभ ही उसे सनाथ-अनाथ बना सकते हैं। राजा श्रेणिक और महामुनि के इस अध्ययन में सुन्दर संवाद दिया गया है। इतना ही नहीं जो मुनि बनकर अपने ग्रहण किये गये व्रतों का यथाविध पालन नहीं करते हों, वे भी अनाथ की श्रेणी में ही आते हैं।

हपारे संघ द्वारा उत्तराध्ययन सूत्र तीन भागों में मूल अन्वयार्थ, संक्षिप्त विवेचन युक्त पूर्व में प्रकाशित हो रखा है। जिसका अनुवाद समाज के जाने माने विद्वान पं. र. श्री घेवरचन्दजी बांठिया न्याय व्याकरण तीर्थ, सिद्धान्त शास्त्री ने अपने गृहस्थ जीवन में किया था। जिसे स्वाध्याय प्रेमी श्रावक-श्राविका वर्ग ने काफी पसन्द किया। फलस्वरूप उक्त प्रकाशन की आठ आवृत्तियाँ संघ द्वारा प्रकाशित हो चुकी है। अतः संघ की आगम बत्तीसी प्रकाशन योजना के अन्तर्गत इसका प्रकाशन किया जा रहा है। इसके अनुवाद का कार्य मेरे सहयोगी **श्रीमान् पारसमलजी सा. चण्डालिया** ने प्राचीन टीकाओं के आधार पर किया है। आपके अनुवाद को **धर्मप्रेमी सुश्रावक श्रीमान् श्रीकांतजी गोलछा दल्लीराजहरा** ने वर्तमान ज्ञानगच्छाधिपति श्रुतधर भगवंत की आज्ञा से आगमज्ञ पूज्य लक्ष्मीचन्दजी म. सा. को सुनाने की कृपा की। पूज्यश्री ने जहाँ कहीं भी आगमिक धारणा सम्बन्धी न्यूनाधिकता महसूस की वहाँ संशोधन करने का संकेत किया। अतः हमारा संघ पूज्य गुरु भगवन्तों का एवं धर्मप्रेमी, सुश्रावक **श्रीमान् श्रीकांतजी गोलछा** का हृदय से आभार व्यक्त करता है। तत्पश्चात् मैंने इसका अवलोकन किया।

इसके अनुवाद में भी संघ द्वारा प्रकाशित भगवती सूत्र के अनुवाद (मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन) की शैली का अनुसरण किया गया है। यद्यपि इस आगम के अनुवाद में पूर्ण सतर्कता एवं सावधानी रखने के बावजूद विद्वान् पाठक बन्धुओं से निवेदन है कि जहाँ कहीं भी कोई त्रुटि, अशुद्धि आदि ध्यान में आवे वह हमें सूचित करने की कृपा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करावें। हम उनका आभार मानेंगे और अगली प्रकाशित होने वाली प्रति में उन्हें संशोधित करने का ध्यान रखेंगे। इस सूत्र के कुछ छत्तीस अध्ययन जिसमें से इस प्रथम भाग में प्रथम के **बीस अध्ययन** लिए गये हैं। शेष सोलह अध्ययन दूसरे भाग में लिए गये हैं।

इसके प्रकाशन के अर्थ सहयोगी **एक गुप्त साधर्मी बन्धु** हैं। आप स्वयं का नाम देना तो दूर अपने गांव का नाम देना भी पसन्द नहीं करते। आप संघ द्वारा प्रकाशित होने वाले अन्य प्रकाशन जैसे तेतली-पुत्र, बड़ी साधु वंदना, स्वाध्याय माला, अंतगडदसा सूत्र में भी सहयोग दे चुके हैं। इसके अलावा कितनी ही बार सम्यग्दर्शन अर्द्ध मूल्य योजना में सहकार देकर अनेक साधर्मी बन्धुओं को सम्यग्दर्शन मासिक पत्र का अर्द्ध मूल्य में ग्राहक बनने में सहयोगी बने हैं। दो साल पूर्व संघ द्वारा **लोंकाशाह मत समर्थन, जिनागम विरुद्ध मूर्ति पूजा, मुखवस्त्रिका सिद्धि एवं विद्युत बादर तेउकाय है** प्रकाशित हुई तो आपने इन चार पुस्तकों के सेट को अपनी ओर से लगभग पांच सौ संघों को फ्री भिजवाये। वर्तमान में आपके ही अर्थ सहयोग से संघ द्वारा प्रकाशित २२ आगमों का सेट अर्द्ध मूल्य में सभी श्री संघों को भिजवाये जा रहे हैं। इस प्रकार आप एकदम मूक अर्थसहयोगी हैं। आप संघ के प्रत्येक प्रकाशन में मुक्त हस्त से सहयोग देने के लिये तत्पर रहते हैं। ऐसे उदारमना गुप्त अर्थ सहयोगी पर संघ को गौरव है। संघ आपका हृदय से आभार मानता है। आप चिरायु रहें आपकी यह शुभ भावना उत्तरोत्तर वृद्धिंगत रहे। इसी मंगल कामना के साथ।

उत्तराध्ययन सूत्र की प्रथम आवृत्ति अगस्त २००५ में प्रकाशित हुई अब इसकी यह **द्वितीय आवृत्ति** प्रकाशित की जा रही है। जैसा कि पाठक बन्धुओं को मालूम ही है कि वर्तमान में कागज एवं मुद्रण सामग्री के मूल्य में काफी वृद्धि हो चुकी है। फिर भी गुप्त साधर्मी बन्धु के आर्थिक सहयोग से इसका मूल्य मात्र **रु. ४०) चालीस रुपया** ही रखा गया है जो कि वर्तमान् परिपेक्ष्य में ज्यादा नहीं है। पाठक बन्धु इसका अधिक से अधिक उपयोग करेंगे।

इसी शुभ भावना के साथ!

ब्यावर (राज.)
दिनांकः १-११-२००६

संघ सेवक
नेमीचन्द बांठिया
अ. भा. सु. जैन सं. र. संघ, **जोधपुर**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अस्वाध्याय

निम्नलिखित बत्तीस कारण टालकर स्वाध्याय करना चाहिये।

आकाश सम्बन्धी १० अस्वाध्याय	**काल मर्यादा**
१. बड़ा तारा टूटे तो-	एक प्रहर
२. दिशा-दाह *	जब तक रहे
३. अकाल में मेघ गर्जना हो तो-	दो प्रहर
४. अकाल में बिजली चमके तो-	एक प्रहर
५. बिजली कड़के तो-	आठ प्रहर
६. शुक्ल पक्ष की १, २, ३ की रात-	प्रहर रात्रि तक
७. आकाश में यक्ष का चिह्न हो-	जब तक दिखाई दे
८-९. काली और सफेद धूंअर-	जब तक रहे
१०. आकाश मंडल धूलि से आच्छादित हो-	जब तक रहे
औदारिक सम्बन्धी १० अस्वाध्याय	
११-१३. हड्डी, रक्त और मांस,	ये तिर्यंच के ६० हाथ के भीतर हो। मनुष्य के हो, तो १०० हाथ के भीतर हो। मनुष्य की हड्डी यदि जली या धुली न हो, तो १२ वर्ष तक।
१४. अशुचि की दुर्गंध आवे या दिखाई दे-	तब तक
१५. श्मशान भूमि-	सौ हाथ से कम दूर हो, तो।

* आकाश में किसी दिशा में नगर जलने या अग्नि की लपटें उठने जैसा दिखाई दे और प्रकाश हो तथा नीचे अंधकार हो, वह दिशा-दाह है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१६. चन्द्र ग्रहण- खंड ग्रहण में ८ प्रहर, पूर्ण हो तो १२ प्रहर

(चन्द्र ग्रहण जिस रात्रि में लगा हो उस रात्रि के प्रारम्भ से ही अस्वाध्याय गिनना चाहिये।)

१७. सूर्य ग्रहण- खंड ग्रहण में १२ प्रहर, पूर्ण हो तो १६ प्रहर

(सूर्य ग्रहण जिस दिन में कभी भी लगे उस दिन के प्रारंभ से ही उसका अस्वाध्याय गिनना चाहिये।)

१८. राजा का अवसान होने पर, जब तक नया राजा घोषित न हो

१९. युद्ध स्थान के निकट जब तक युद्ध चले

२०. उपाश्रय में पंचेन्द्रिय का शव पड़ा हो, जब तक पड़ा रहे

(सीमा तिर्यंच पंचेन्द्रिय के लिए ६० हाथ, मनुष्य के लिए १०० हाथ। उपाश्रय बड़ा होने पर इतनी सीमा के बाद उपाश्रय में भी अस्वाध्याय नहीं होता। उपाश्रय की सीमा के बाहर हो तो यदि दुर्गन्ध न आवे या दिखाई न देवे तो अस्वाध्याय नहीं होता।)

२१-२४. आषाढ़, आश्विन,
कार्तिक और चैत्र की पूर्णिमा दिन रात

२५-२८. इन पूर्णिमाओं के बाद की प्रतिपदा- दिन रात

२९-३२. प्रातः, मध्याह्न, संध्या और अर्द्ध रात्रि-
इन चार सन्धिकालों में- १-१ मुहूर्त्त

उपरोक्त अस्वाध्याय को टालकर स्वाध्याय करना चाहिए। खुले मुंह नहीं बोलना तथा सामायिक, पौषध में दीपक के उजाले में नहीं वांचना चाहिए।

नोट - नक्षत्र २८ होते हैं उनमें से आर्द्रा नक्षत्र से स्वाति नक्षत्र तक नौ नक्षत्र वर्षा के गिने गये हैं। इनमें होने वाली मेघ की गर्जना और बिजली का चमकना स्वाभाविक है। अतः इसका अस्वाध्याय नहीं गिना गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तराध्ययन सूत्र
विषयानुक्रमणिका

क्रं.	विषय	पृष्ठ
विनयश्रुत नामक प्रथम अध्ययन १-२६		
१.	विनय का स्वरूप	१
२.	विनीत शिष्य का लक्षण	२
३.	अविनीत शिष्य का लक्षण	३
४.	दुःशील शिष्य का निष्कासन	३
५.	अविनीत शिष्य का व्यवहार	४
६.	विनयाचरण का उपदेश	४
७.	विनय का परिणाम	५
८.	विनय के अनुष्ठान की विधि	५
९.	विनय के सूत्र	६
१०.	गुरु का उपदेश	६
११.	विनीत शिष्य का कर्त्तव्य	७
१२.	विनीत की प्रवृत्ति और निवृत्ति	८
१३.	विनीत अविनीत के गुण दोष	९
१४.	गुरुजनों के चित्तानुवर्ती होने की विधि	९
१५.	आत्मदमन और उसका फल	१०
१६.	आत्म दमन का उपाय	११
१७.	विनयाचार	११
१८.	कायिक अविनय	१२
१९.	वचन विनय	१३
२०.	गुरुजनों का कर्त्तव्य	१४
२१.	वचन शुद्धि	१५
२२.	संसर्गजन्य दोष परिहार	१६
२३.	गुरु का अनुशासन	१६
२४.	कठोर अनुशासन भी हितकारी	१७
२५.	आसन संबंधी विनयाचार	१८
२६.	यथोचित काल में यथोचित कार्य	१८
२७.	एषणा समिति	१९
२८.	पिण्डैषणा	२०
२९.	ग्रासैषणा	२०
३०.	गुरु की प्रसन्नता और अप्रसन्नता	२१
३१.	सुशिष्य और कुशिष्य में अंतर	२२
३२.	विनीत को लौकिक व लोकोत्तर लाभ	२३
३३.	विनय का महत्त्व	२५
३४.	विनय का फल	२५
परीषह नामक दूसरा अध्ययन २७-५३		
३५.	परीषह-निरूपण	२८
३६.	जम्बू स्वामी की जिज्ञासा	२९
३७.	सुधर्मा स्वामी का समाधान	२९
३८.	बाईस परीषहों के नाम	३०
३९.	परीषहों का स्वरूप	३१
	१. क्षुधा परीषह	*३१*
	२. तृषा (पिपासा) परीषह	*३२*
	३. शीत परीषह	*३३*
	४. उष्ण परीषह	*३४*
	५. दंशमशक परीषह	*३६*
	६. अचेल परीषह	*३७*

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रं.	विषय	पृष्ठ
	७. अरति परीषह	३८
	८. स्त्री परीषह	३९
	९. चर्या परीषह	४०
	१०. निषद्या परीषह	४१
	११. शय्या परीषह	४२
	१२. आक्रोश परीषह	४३
	१३. वध परीषह	४४
	१४. याचना परीषह	४५
	१५. अलाभ परीषह	४५
	१६. रोग परीषह	४६
	१७. तृण स्पर्श परीषह	४७
	१८. जल्ल परीषह	४८
	१९. सत्कार पुरस्कार परीषह	४९
	२०. प्रज्ञा परीषह	५०
	२१. अज्ञान परीषह	५१
	२२. दर्शन परीषह	५२
४०.	उपसंहार	५३
चतुरंगीय नामक तीसरा अध्ययन		**५४-६५**
४१.	चार परम अंग	५४
४२.	मनुष्य जन्म की दुर्लभता	५६
४३.	मनुष्य जन्म की प्राप्ति का उपाय	५८
४४.	श्रुतिधर्म की दुर्लभता	५९
४५.	श्रद्धा परम दुर्लभ	५९
४६.	संयम में पराक्रम	६०
४७.	दुर्लभ चतुरंग प्राप्ति का फल	६०
४८.	जीवन मुक्त का स्वरूप	६१
४९.	हितकर उपदेश	६२
५०.	देवलोकों की प्राप्ति	६२
५१.	दस अंगों सहित उत्पत्ति	६३
५२.	उपसंहार	६५

क्रं.	विषय	पृष्ठ
असंस्कृत नामक चौथा अध्ययन		**६६-७५**
५३.	असंस्कृत जीवन	६६
५४.	वैरानुबद्धता का परिणाम	६७
५५.	किये हुए कर्मों का परिणाम निश्चित	६७
५६.	कर्म फल भोग में कोई भागीदार नहीं	६८
५७.	धन, रक्षक नहीं है	६९
५८.	अप्रमत्तता का संदेश	७०
५९.	स्वच्छंदता-निरोध	७१
६०.	शाश्वतवादियों का कथन एवं - अन्य से तुलना	७२
६१.	प्रतिक्षण अप्रमत्त भाव	७३
६२.	द्वेष-विजय	७३
६३.	राग-विजय	७४
६४.	सद्गुणों की आकांक्षा	७४
अकाम मरणीय नामक पांचवां अध्ययन		**७६-९१**
६५.	मरण के स्थान	७६
६६.	अकाम मरण का स्वरूप	७७
६७.	कामभोगासक्त पुरुष की विचारणा	७८
६८.	विषयलोलुप पुरुषों की प्रवृत्ति	७९
६९.	इह-पारलौकिक दुष्फल का भय	८१
७०.	गाड़ीवान् का दृष्टान्त	८२
७१.	सकाम मरण का स्वरूप	८३
७२.	सकाम मरणोत्तर स्थिति	८७
७३.	साधक का कर्त्तव्य	८९
७४.	उपसंहार	९०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रं.	विषय	पृष्ठ
	क्षुल्लक निर्ग्रन्थीय नामक छठा अध्ययन ९२-१०१	
७५.	अज्ञान, दुःख का कारण	९२
७६.	सम्यग्दृष्टि का कर्त्तव्य	९४
७७.	परिग्रह त्याग का फल	९४
७८.	भ्रान्त मान्यताएं	९६
७९.	शरीरासक्ति, दुःख का कारण	९८
८०.	अप्रमत्तता का उपदेश	९८
८१.	संग्रहवृत्ति का त्याग	९९
८२.	एषणा समिति का पालन	१००
८३.	उपसंहार	१००
	औरभ्रीय नामक सातवां अध्ययन १०२-११६	
८४.	१. एलक दृष्टान्त	१०२
	वार्ष्टान्तिक (उपनय)	१०३
	नरकायु के अनुकूल पापकर्म	१०४
	पदार्थों के संग्रह एवं त्याग का फल	१०६
	जीव की भावी गति	१०६
८५.	२-३. काकिणी और आम्रफल- का उदाहरण	१०७
	देव-मनुष्यायु	१०९
८६.	४. तीन वणिकों का दृष्टान्त	१०९
८७.	दुर्गति में जाने वाले जीव	१११
८८.	मनुष्यत्व प्राप्त जीव	१११
८९.	मनुष्यत्व प्राप्त व्यक्ति की योग्यता	११२
९०.	देवत्व प्राप्त व्यक्ति की योग्यता	११३
९१.	कामभोगों की तुलना	११४
९२.	कामभोगों से अनिवृत्ति-निवृत्ति का फल	११५

क्रं.	विषय	पृष्ठ
९३.	अज्ञानी जीव की गति	११५
९४.	धीर जीव की गति	११६
९५.	उपसंहार	११६
	कापिलीय नामक आठवां अध्ययन ११७-१३०	
९६.	दुर्गति निवारण का उपाय	११९
९७.	भोगासक्त जीव की दशा	१२०
९८.	कामभोगों के त्याग की दुष्करता	१२१
९९.	पाप श्रमणों की दुर्गति	१२१
१००.	साधुजनोचित कर्त्तव्य	१२२
१०१.	एषणा समिति	१२३
१०२.	संयमशील साधु का आहार	१२४
१०३.	साधुचर्या के विरुद्ध आचरण	१२५
१०४.	भ्रष्ट साधकों की गति-मति	१२६
१०५.	तृष्णा की दुष्पूरता	१२७
१०६.	तृष्णा क्यों शांत नहीं होती?	१२८
१०७.	स्त्री संसर्ग त्याग	१२८
१०८.	उपसंहार	१३०
	नमि प्रव्रज्या नामक नौवाँ अध्ययन १३१-१५५	
१०९.	नमिराज का अभिनिष्क्रमण	१३३
११०.	अभिनिष्क्रमण कैसे हुआ?	१३४
१११.	देवेन्द्र ब्राह्मण के रूप में	१३५
११२.	प्रथम प्रश्न - मिथिला को कोलाहल क्यों?	१३५
११३.	नमिराजर्षि का उत्तर	१३५
११४.	देवेन्द्र द्वारा प्रस्तुति	१३७

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

क्रं.	विषय	पृष्ठ
११५.	द्वितीय प्रश्न - जलते हुए अंतःपुर को क्यों नहीं देखते?	१३७
११६.	नमिराजर्षि का उत्तर	१३७
११७.	तीसरा प्रश्न - नगर की सुरक्षा की चिंता क्यों नहीं?	१३९
११८.	नमि राजर्षि का उत्तर	१३९
११९.	चौथा प्रश्न - प्रासाद, गृहादि निर्माण विषयक	१४१
१२०.	नमि राजर्षि का उत्तर	१४१
१२१.	पांचवां प्रश्न - नगर की सुरक्षा विषयक	१४२
१२२.	नमि राजर्षि का उत्तर	१४३
१२३.	छठा प्रश्न - शत्रु राजाओं को जीतने विषयक	१४३
१२४.	नमि राजर्षि का उत्तर	१४४
१२५.	सातवां प्रश्न - यज्ञ ब्राह्मण भोजन आदि के संबंध में	१४५
१२६.	नमि राजर्षि का उत्तर	१४५
१२७.	आठवां प्रश्न- गृहस्थाश्रम का त्याग कर संन्यास क्यों?	१४६
१२८.	नमि राजर्षि का उत्तर	१४७
१२९.	नववां प्रश्न- हिरण्यादि भंडार की वृद्धि करने के संबंध में	१४७
१३०.	नमि राजर्षि का उत्तर	१४८
१३१.	दसवां प्रश्न - प्राप्त काम भोगों को- छोड़ कर अप्राप्त की इच्छा क्यों?	१४९
१३२.	नमि राजर्षि का उत्तर	१५०
१३३.	इन्द्र का असली रूप में प्रकट होना	१५१
१३४.	इन्द्र द्वारा स्तुति	१५३
१३५.	इन्द्र का गमन	१५४
१३६.	उपसंहार	१५५

द्रुमपत्रक नामक दसवां अध्ययन १५६-१७६

१३७.	जीवन की क्षणभंगुरता	१५६
१३८.	आयु की अस्थिरता	१५७
१३९.	मनुष्य जन्म की दुर्लभता	१५८
१४०.	पृथ्वीकायिक जीवों की कायस्थिति	१५८
१४१.	अप्काय की कायस्थिति	१५९
१४२.	तेजस्काय की कायस्थिति	१६०
१४३.	वायुकाय की कायस्थिति	१६०
१४४.	वनस्पतिकाय की कायस्थिति	१६१
१४५.	बेइन्द्रिय की कायस्थिति	१६२
१४६.	तेइन्द्रिय जीवों की कायस्थिति	१६२
१४७.	चउरिन्द्रिय जीवों की कायस्थिति	१६३
१४८.	पंचेन्द्रिय जीवों की कायस्थिति	१६३
१४९.	देव और नैरयिक की स्थिति	१६४
१५०.	आर्य देश की दुर्लभता	१६५
१५१.	सम्पूर्णेन्द्रियता की दुर्लभता	१६६
१५२.	धर्म श्रवण की दुर्लभता	१६७
१५३.	श्रद्धा की दुर्लभता	१६७
१५४.	धर्माचरण की दुर्लभता	१६८
१५५.	इन्द्रिय बलों की क्षीणता	१६८
१५६.	सर्व शरीर की निर्बलता	१७०
१५७.	रोगों के द्वारा निर्बलता	१७०
१५८.	स्नेह परित्याग	१७१
१५९.	त्याग की दृढ़ता	१७२
१६०.	मोक्ष मार्ग	१७२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रं.	विषय	पृष्ठ
१६१.	संसार सागर को शीघ्र पार करने का निर्देश	१७४
१६२.	अप्रमाद का फल	१७५
१६३.	सिद्धि का उपाय	१७५
१६४.	उपसंहार	१७६

बहुश्रुतपूजा नामक ग्यारहवां अध्ययन १७७-१९२

१६५.	अबहुश्रुत के लक्षण	१७७
१६६.	शिक्षा प्राप्त नहीं होने के कारण	१७८
१६७.	बहुश्रुतता की प्राप्ति के कारण	१७९
१६८.	अविनीत का लक्षण	१७९
१६९.	सुविनीत कौन?	१८१
१७०.	शिक्षा प्राप्त करने का अधिकारी	१८२
१७१.	बहुश्रुत का स्वरूप और माहात्म्य	१८३
	१. शंख की उपमा	१८३
	२. आकीर्ण अश्व की उपमा	१८४
	३. शूरवीर की उपमा	१८४
	४. हाथी की उपमा	१८५
	५. वृषभ की उपमा	१८६
	६. सिंह की उपमा	१८६
	७. वासुदेव की उपमा	१८७
	८. चक्रवर्ती की उपमा	१८७
	९. इन्द्र की उपमा	१८८
	१०. सूर्य की उपमा	१८८
	११. चन्द्रमा की उपमा	१८९
	१२. कोष्ठागार की उपमा	१८९
	१३. जम्बू वृक्ष की उपमा	१८९
	१४. सीता नदी की उपमा	१९०
	१५. मंदर पर्वत की उपमा	१९०
	१६. स्वयंभूरमण समुद्र की उपमा	१९१

क्रं.	विषय	पृष्ठ
१७२.	बहुश्रुतता का फल	१९१
१७३.	श्रुताभ्यास की प्रेरणा/उपसंहार	१९२

हरिकेशीय नामक बारहवां अध्ययन १९३-२१७

१७४.	हरिकेश मुनि का परिचय	१९५
१७५.	हरिकेशी मुनि के गुण	१९६
१७६.	भिक्षार्थ गमन	१९६
१७७.	याज्ञिकों द्वारा उपहास	१९७
१७८.	हरिकेशमुनि से पृच्छा	१९८
१७९.	यक्ष द्वारा शरीर पर प्रभाव	१९८
१८०.	यक्ष और याज्ञिकों का संवाद	१९९
१८१.	छात्रों द्वारा तांड़व	२०३
१८२.	भद्रा राजकुमारी का प्रयास	२०४
१८३.	मुनि का तपोबल माहात्म्य	२०४
१८४.	यक्ष द्वारा कुमारों की दुर्दशा	२०५
१८५.	मुनि की आशातना का दुष्परिणाम	२०६
१८६.	महर्षि का गुणानुवाद	२०६
१८७.	छात्रों की दुर्दशा का वर्णन	२०७
१८८.	आहारग्रहण की प्रार्थना	२०९
१८९.	आहार दान का प्रभाव	२१०
१९०.	तप का माहात्म्य	२११
१९१.	हरिकेशबल मुनि का उपदेश	२११
१९२.	यज्ञ विषयक जिज्ञासा	२१२
१९३.	मुनि का समाधान	२१३
१९४.	यज्ञ के साधन	२१४
१९५.	उपसंहार	२१७

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रं.	विषय	पृष्ठ
	चित्तसंभूतीय नामक तेरहवां अध्ययन २१८-२३३	
१९६.	संभूत एवं चित्त का परिचय	२१८
१९७.	दोनों का मिलन	२१९
१९८.	चक्रवर्ती का समृद्धि वर्णन	२२२
१९९.	चक्रवर्ती द्वारा मुनि को भोगों का आमंत्रण	२२२
२००.	मुनि द्वारा भोगों को छोड़ने का उपदेश	२२४
२०१.	विषयजन्य सुख की लघुता	२२४
२०२.	धर्माचरण न करने वालों के लिए हानि	२२६
२०३.	मृत्यु के समय कोई रक्षक नहीं	२२६
२०४.	एकत्व भावना	२२७
२०५.	मृत्यु के पश्चात् शरीर की गति	२२८
२०६.	धर्माचरण का उपदेश	२२८
२०७.	निदान की भयंकरता	२२९
२०८.	हाथी का दृष्टान्त	२३०
२०९.	कामभोगों की अनित्यता	२३१
२१०.	आर्य कर्म करने की प्रेरणा	२३१
२११.	चित्तमुनि का विहार	२३२
२१२.	ब्रह्मदत्त का नरक गमन	२३२
२१३.	चित्त का मुक्ति गमन उपसंहार	२३२
	इषुकारीय नामक चौदहवाँ अध्ययन २३४-२६०	
२१४.	छह जीवों का परिचय	२३५
२१५.	संसार विरक्त पुरोहित पुत्रों का वर्णन	२३६
२१६.	पुत्रों द्वारा दीक्षा की अनुमति मांगना	२३७
२१७.	पिता का पुत्रों को प्रलोभन	२३९
२१८.	पुत्रों का पिता को समाधान	२४०
२१९.	भृगु पुरोहित का कथन-श्रमण-क्यों बनना चाहते हो?	२४२
२२०.	कुमारों का प्रतिवाद	२४२
२२१.	भृगु पुरोहित का कथन - जीव का-अस्तित्व निषेध	२४३
२२२.	कुमारों का प्रतिवाद - बंध संसार का हेतु	२४४
२२३.	पुत्रों का उत्तर	२४५
२२४.	भविष्य में हम साथ ही दीक्षा लेंगे?	२४७
२२५.	पुत्रों के बिना मेरा गृहवास अनुचित	२४८
२२६.	कामगुणों के तीन विशेषण	२४९
२२७.	पत्नी की शंकाओं का समाधान	२५१
२२८.	पुरोहित पत्नी दीक्षा लेने को तैयार	२५२
२२९.	कमलावती रानी द्वारा राजा को प्रतिबोध	२५३
२३०.	वमन किये पदार्थ को ग्रहण-करना प्रशंसनीय नहीं	२५४
२३१.	तृष्णा दुष्पूर है	२५४
२३२.	धर्म ही मनुष्य का रक्षक है	२५५
२३३.	कमलावती की प्रव्रज्या की भावना	२५५
२३४.	रागद्वेषाग्नि से संसार जल रहा है	२५६
२३५.	विवेकी पुरुष का कर्त्तव्य	२५६
२३६.	त्याग में सुख है	२५७
२३७.	कामभोग, संसार वर्द्धक	२५७
२३८.	मोक्ष, स्वस्थान है	२५८
२३९.	राजा और रानी त्यागी हुए	२५८
२४०.	तप संयम में पराक्रमी बने	२५८
२४१.	छहों को विरक्ति, दीक्षा और मुक्ति	२५९
२४२.	उपसंहार	२६०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

क्रं.	विषय	पृष्ठ
	सभिक्षु नामक पन्द्रहवां अध्ययन २६१-२७१	
२४३.	भिक्षुत्व की चौभंगी	२६१
२४४.	सद्भिक्षु के लक्षण	२६२
२४५.	विविध विद्याओं से आजीविका न करने वाला	२६५
२४६.	मंत्रादि से चिकित्सा निषेध	२६६
२४७.	गृहस्थों से अति परिचय का निषेध	२६७
२४८.	रागद्वेष-त्याग	२६८
२४९.	नीरस आहारादि की निन्दा न करने वाला	२६९
२५०.	उपसंहार	२७१
	ब्रह्मचर्य-समाधि स्थान नामक सोलहवाँ अध्ययन २७२-२९२	
२५१.	ब्रह्मचर्य समाधि स्थान	२७३
२५२.	ब्रह्मचर्य समाधि स्थानों की जिज्ञासा	२७४
२५३.	जिज्ञासा का समाधान	२७४
२५४.	प्रथम ब्रह्मचर्य समाधि स्थान - विविक्त शयनासन सेवन	२७५
२५५.	द्वितीय ब्रह्मचर्य समाधि स्थान- स्त्रीकथावर्जन	२७७
२५६.	तृतीय ब्रह्मचर्य समाधि स्थान - एक आसन वर्जन	२७८
२५७.	चतुर्थ ब्रह्मचर्य समाधि स्थान - स्त्री अंगोपांग अदर्शन	२७९
२५८.	पंचम ब्रह्मचर्य समाधि स्थान - श्रुति संयम	२८०
२५९.	छठा ब्रह्मचर्य समाधि स्थान - पूर्वकृत भोग स्मृति संयम	२८१
२६०.	सप्तम ब्रह्मचर्य समाधि स्थान - प्रणीत आहार त्याग	२८२
२६१.	आठवां ब्रह्मचर्य समाधिस्थान- अति भोजन त्याग	२८२
२६२.	नवम ब्रह्मचर्य समाधि स्थान- विभूषा त्याग	२८४
२६३.	दसवाँ ब्रह्मचर्य समाधि स्थान - पंचेन्द्रिय विषय संयम	२८५
२६४.	प्रथम बाड़ (गुप्ति) - विविक्त शयनासन	२८६
२६५.	द्वितीय बाड़ - स्त्री कथा वर्जन	२८६
२६६.	तीसरी बाड़ - स्त्री के साथ एकासन निषेध	२८६
२६७.	चतुर्थ बाड़ - अंग-प्रत्यंग-प्रेक्षण निषेध	२८७
२६८.	पांचवीं बाड़ - वासनावर्द्धक शब्दादि श्रवण निषेध	२८७
२६९.	छठी बाड़ - पूर्वानुभूत भोगों के स्मरण का निषेध	२८८
२७०.	सातवीं बाड़ - विकार वर्द्धक आहार निषेध	२८८
२७१.	आठवीं बाड़ - मात्रा से अधिक आहार का निषेध	२८८
२७२.	नौवीं बाड़ - विभूषा त्याग	२८९

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रं.	विषय	पृष्ठ
२७३.	दसवीं बाड़ - शब्दादि में आसक्ति का निषेध	२८९
२७४.	ब्रह्मचर्य समाधि भंग के कारण	२९०
२७५.	शंका स्थानों का त्याग	२९१
२७६.	ब्रह्मचर्य की समाधि-स्थायिता	२९१
२७७.	ब्रह्मचर्य की महिमा	२९१
२७८.	उपसंहार	२९२
	पापश्रमणीय नामक सत्तरहवां अध्ययन २९३-३०२	
२७९.	पापश्रमणता का प्रारम्भ	२९३
२८०.	पापश्रमण का स्वरूप	२९४
२८१.	उपसंहार	३०२
	संयतीय नामक अठारहवाँ अध्ययन ३०३-३३३	
२८२.	संजय राजा का मृगयार्थ गमन	३०४
२८३.	ध्यानस्थ गर्दभालि अनगार	३०५
२८४.	मृग का हनन	३०५
२८५.	नृप का पश्चात्ताप	३०५
२८६.	मुनि से क्षमायाचना	३०६
२८७.	भयाक्रान्त राजा की अभय प्रार्थना	३०७
२८८.	मुनि द्वारा अभयदान और त्याग का उपदेश	३०८
२८९.	संजय नृप की विरक्ति और प्रव्रज्या ग्रहण	३११
२९०.	संजय राजर्षि की क्षत्रियराजर्षि से भेंट	३१२
२९१.	परिचयात्मक प्रश्न	३१२
२९२.	संजय राजर्षि द्वारा उत्तर	३१३
२९३.	चार वादों का निरूपण	३१४
२९४.	पाप और धर्म का फल	३१५
२९५.	शुद्ध ज्ञान क्रिया में स्थिर रहने का उपदेश	३१७
२९६.	धर्म में सुदृढ़ करने के लिए महापुरुषों - के उदाहरण	३१९
	१. भरत चक्रवर्ती	*३१९*
	२. सगर चक्रवर्ती	*३२०*
	३. मघवा चक्रवर्ती	*३२१*
	४. सनत्कुमार चक्रवर्ती	*३२१*
	५. शांतिनाथ	*३२३*
	६. कुंथुनाथ	*३२४*
	७. अरनाथ	*३२४*
	८. महापद्म चक्रवर्ती	*३२५*
	९. हरिषेण चक्रवर्ती	*३२५*
	१०. जय चक्रवर्ती	*३२६*
	११. दशार्णभद्र राजा	*३२६*
	१२. नमिराजर्षि	*३२७*
	१३-१५. करकण्डू आदि प्रत्येक बुद्ध	*३२८*
	१६. उदायन नृप	*३२९*
	१७. काशीराज नन्दन	*३३०*
	१८. विजय राजा	*३३०*
	१९. महाबल राजर्षि	३३१
२९७.	उपदेश का सार	३३२
२९८.	उपसंहार	३३३
	मृगापुत्रीय नामक उन्नीसवाँ अध्ययन ३३४-३७१	
२९९.	मुनिदर्शन	३३५
३००.	मृगापुत्र को जातिस्मरण ज्ञान	३३६
३०१.	विषयभोगों से विरक्ति	३३८

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रं.	विषय	पृष्ठ
३०२.	मृगापुत्र द्वारा दीक्षा की आज्ञा मांगना	३३८
३०३.	कामभोग दुःखदायी	३३९
३०४.	शरीर, दुःखों की खान	३४०
३०५.	शरीर की अशाश्वतता	३४०
३०६.	मनुष्य भव की असारता	३४१
३०७.	मनुष्य भव के दुःखों का दिग्दर्शन	३४१
३०८.	संसार से निर्वेद	३४२
३०९.	विषयभोगों का फल	३४२
३१०.	धर्म का पाथेय	३४२
३११.	आत्मा रूपी सार पदार्थ की सुरक्षा	३४४
३१२.	साधु जीवन की दुष्करता	३४४
३१३.	प्रथम महाव्रत की दुष्करता	३४५
३१४.	द्वितीय महाव्रत की दुष्करता	३४५
३१५.	तृतीय महाव्रत की दुष्करता	३४५
३१६.	चौथे महाव्रत की दुष्करता	३४६
३१७.	पंचम महाव्रत की दुष्करता	३४६
३१८.	छठे रात्रिभोजन की दुष्करता	३४६
३१९.	परीषह-विजय की कठिनाइयाँ	३४७
३२०.	कापोत वृत्ति	३४८
३२१.	विविध उपमाओं से संयमपालन-की दुष्करता का वर्णन	३४९
३२२.	अनुपशांत के लिए संयम पालना दुष्कर है	३५२
३२३.	नरकादि गतियों के दुःखों का वर्णन	३५२
३२४.	निष्प्रतिकर्मता रूप कष्ट	३६२
३२५.	मृगचर्या और साधुचर्या	३६२
३२६.	माता पिता द्वारा दीक्षा की आज्ञा	३६६
३२७.	मृगापुत्र का संयमी जीवन	३६६
३२८.	महर्षि मृगापुत्र की सिद्धि	३६९
३२९.	उपसंहार - निर्ग्रंथ धर्म के - आचरण का उपदेश	३७०

महानिर्ग्रंथीय बीसवाँ अध्ययन ३७२-३९९

३३०.	मंगलाचरण	३७२
३३१.	राजा का उद्यान गमन	३७३
३३२.	मुनि दर्शन	३७३
३३३.	राजा की विस्मययुक्त जिज्ञासा	३७४
३३४.	राजा की सविनय पृच्छा	३७५
३३५.	मुनि का उत्तर	३७६
३३६.	श्रेणिक के नाथ बनने की स्वीकृति	३७६
३३७.	राजा की अनाथता	३७७
३३८.	श्रेणिक विस्मित	३७७
३३९.	मैं अनाथ कैसे?	३७८
३४०.	अनाथता-सनाथता का स्पष्टीकरण	३७९
३४१.	दीक्षा का संकल्प	३८४
३४२.	वेदना से मुक्ति और दीक्षा	३८५
३४३.	सनाथता-अनाथता का मूल-कारण, आत्मा	३८६
३४४.	सनाथता के पथ पर भी अनाथ कौन?	३८७
३४५.	अनाथ भी सनाथ बन सकते हैं	३९४
३४६.	मुनि के प्रति कृतज्ञता प्रकाशन	३९६
३४७.	उपसंहार	३९९

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री अ० भा० सुधर्म जैन सं० रक्षक संघ, जोधपुर आगम बत्तीसी प्रकाशन योजना के अन्तर्गत प्रकाशित आगम

अंग सूत्र

क्रं.	नाम आगम	मूल्य
१.	आचारांग सूत्र भाग-१-२	५५-००
२.	सूयगडांग सूत्र भाग-१,२	६०-००
३.	स्थानांग सूत्र भाग-१, २	६०-००
४.	समवायांग सूत्र	२५-००
५.	भगवती सूत्र भाग १-७	३००-००
६.	ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र भाग-१, २	८०-००
७.	उपासकदशांग सूत्र	२०-००
८.	अन्तकृतदशा सूत्र	२५-००
९.	अनुत्तरोपपातिक दशा सूत्र	१५-००
१०.	प्रश्नव्याकरण सूत्र	३५-००
११.	विपाक सूत्र	३०-००

उपांग सूत्र

१.	उववाइय सुत्त	२५-००
२.	राजप्रश्नीय सूत्र	२५-००
३.	जीवाजीवाभिगम सूत्र भाग-१,२	८०-००
४.	प्रज्ञापना सूत्र भाग-१,२,३,४	१६०-००
५.	जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति	५०-००
६-७.	चन्द्रप्रज्ञप्ति-सूर्यप्रज्ञप्ति	२०-००
८-१२.	निरयावलिका (कल्पिका, कल्पवतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा)	२०-००

मूल सूत्र

१.	दशवैकालिक सूत्र	३०-००
२.	उत्तराध्ययन सूत्र भाग-१, २	८०-००
३.	नंदी सूत्र	२५-००
४.	अनुयोगद्वार सूत्र	५०-००

छेद सूत्र

१-३.	त्रीणिछेदसुत्ताणि सूत्र (दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प, व्यवहार)	५०-००
४.	निशीथ सूत्र	५०-००
१.	आवश्यक सूत्र	३०-००

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संघ के अन्य प्रकाशन

क्रं.	नाम	मूल्य
१.	अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग १	१४-००
२.	अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग २	४०-००
३.	अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग ३	३०-००
४.	अंगपविट्ठसुत्ताणि संयुक्त	८०-००
५.	अनंगपविट्ठसुत्ताणि भाग १	३५-००
६.	अनंगपविट्ठसुत्ताणि भाग २	४०-००
७.	अनंगपविट्ठसुत्ताणि संयुक्त	८०-००
८.	अनुत्तरोववाइय सूत्र	३-५०
९.	आयारो	८-००
१०.	सूयगडो	६-००
११.	उत्तरज्झयणाणि(गुटका)	१०-००
१२.	दसवेयालिय सुत्तं (गुटका)	५-००
१३.	णंदी सुत्तं (गुटका)	अप्राप्य
१४.	चउछेयसुत्ताइं	१५-००
१५.	आचारांग सूत्र भाग १	२५-००
१६.	अंतगडदसा सूत्र	१०-००
१७-१९.	उत्तराध्ययनसूत्र भाग १,२,३	४५-००
२०.	आवश्यक सूत्र (सार्थ)	१०-००
२१.	दशवैकालिक सूत्र	१०-००
२२.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग १	१०-००
२३.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग २	१०-००
२४.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग ३	१०-००
२५.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग ४	१०-००
२६.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह संयुक्त	१५-००
२७.	पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग १	८-००
२८.	पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग २	१०-००
२९.	पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग ३	१०-००
३०-३२.	तीर्थंकर चरित्र भाग १,२,३	१४०-००
३३	मोक्ष मार्ग ग्रन्थ भाग १	३५-००

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

क्रं.	नाम	मूल्य
३४.	मोक्ष मार्ग ग्रन्थ भाग २	३०-००
३५-३७.	समर्थ समाधान भाग १,२,३	५७-००
३८.	सम्यक्त्व विमर्श	१५-००
३९.	आत्म साधना संग्रह	२०-००
४०.	आत्म शुद्धि का मूल तत्वत्रयी	२०-००
४१.	नवतत्वों का स्वरूप	१३-००
४२.	अगार-धर्म	१०-००
४३.	Saarth Saamaayik Sootra	१०-००
४४.	तत्त्व-पृच्छा	१०-००
४५.	तेतली-पुत्र	४५-००
४६.	शिविर व्याख्यान	१२-००
४७.	जैन स्वाध्याय माला	१८-००
४८.	सुधर्म स्तवन संग्रह भाग १	२२-००
४९.	सुधर्म स्तवन संग्रह भाग २	१५-००
५०.	सुधर्म चरित्र संग्रह	१०-००
५१.	लोंकाशाह मत समर्थन	१०-००
५२.	जिनागम विरुद्ध मूर्त्ति पूजा	१५-००
५३.	बड़ी साधु वंदना	१०-००
५४.	तीर्थंकर पद प्राप्ति के उपाय	५-००
५५.	स्वाध्याय सुधा	७-००
५६.	आनुपूर्वी	१-००
५७.	सुखविपाक सूत्र	२-००
५८.	भक्तामर स्तोत्र	२-००
५९.	जैन स्तुति	६-००
६०.	सिद्ध स्तुति	३-००
६१.	संसार तरणिका	७-००
६२.	आलोचना पंचक	२-००
६३.	विनयचन्द चौबीसी	१-००
६४.	भवनाशिनी भावना	२-००

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

क्रं.	नाम	मूल्य
६५.	स्तवन तरंगिणी	५-००
६६.	सामायिक सूत्र	१-००
६७.	सार्थ सामायिक सूत्र	३-००
६८.	प्रतिक्रमण सूत्र	३-००
६९.	जैन सिद्धांत परिचय	३-००
७०.	जैन सिद्धांत प्रवेशिका	४-००
७१.	जैन सिद्धांत प्रथमा	४-००
७२.	जैन सिद्धांत कोविद	३-००
७३.	जैन सिद्धांत प्रवीण	४-००
७४.	तीर्थंकरों का लेखा	१-००
७५.	जीव-धड़ा	२-००
७६.	१०२ बोल का बासठिया	०-५०
७७.	लघुदण्डक	३-००
७८.	महादण्डक	१-००
७९.	तेतीस बोल	२-००
८०.	गुणस्थान स्वरूप	३-००
८१.	गति-आगति	१-००
८२.	कर्म-प्रकृति	१-००
८३.	समिति-गुप्ति	२-००
८४.	समकित के ६७ बोल	२-००
८५.	पच्चीस बोल	३-००
८६.	नव-तत्त्व	६-००
८७.	सामायिक संस्कार बोध	४-००
८८.	मुखवस्त्रिका सिद्धि	३-००
८९.	विद्युत् सचित्त तेऊकाय है	३-००
९०.	धर्म का प्राण यतना	२-००
९१.	सामण्ण सच्चिधम्मो	अप्राप्य
९२.	मंगल प्रभातिका	१.२५
९३.	कुगुरु गुर्वाभास स्वरूप	४-००

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

❀ णमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स ❀

श्री उत्तराध्ययन सूत्र

भाग-१

(मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

विणयसुयं णामं पढमं अज्झयणं

विनयश्रुत नामक प्रथम अध्ययन

उत्थानिका - प्रभु महावीर ने विनय को धर्म का मूल कहा है। विनय धर्म में ही आत्मा के असीम सुख का मूल निहित है। इसीलिए अपनी प्रथम देशना से लेकर अंतिम देशना तक अनेक बार प्रभु ने विनय धर्म का प्रतिपादन किया है। प्रभु ने अपनी अंतिम देशना उत्तराध्ययन सूत्र में धर्म तत्त्व के प्रतिपादन का प्रारम्भ ही विनयाध्ययन के रूप में किया है। प्रस्तुत अध्ययन में विनय का स्वरूप बतलाते हुए विनीत और अविनीत शिष्य के व्यवहारों को स्पष्ट किया गया है। इस अध्ययन की प्रथम गाथा इस प्रकार है -

विनय का स्वरूप

संजोगा विप्पमुक्कस्स, अणगारस्स भिक्खुणो।
विणयं पाउकरिस्सामि, आणुपुव्विं सुणेह मे॥१॥

कठिन शब्दार्थ - **संजोगा** - संयोग से, **विप्पमुक्कस्स** - विप्रमुक्त, **अणगारस्स** - अनगार, **भिक्खुणो** - भिक्षु का, **विणयं** - विनय, **पाउकरिस्सामि** - प्रकट करूँगा, **आणुपुव्विं**- अनुक्रम से, **सुणेह** - सुनो, **मे** - मुझ से।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - मातापितादि बाह्य संयोग और रागद्वेष कषायादि आभ्यंतर संयोग से रहित घरबार के बन्धनों से मुक्त, भिक्षा से निर्वाह करने वाले साधु का विनय प्रकट करूँगा। अतः सावधान हो कर अनुक्रम से मुझ से सुनो।

विवेचन - इस गाथा में सूत्रकार त्यागी महात्माओं के विनय धर्म के वर्णन की प्रतिज्ञा करते हुए उसके श्रवण करने का भव्य-पुरुषों को उपदेश करते हैं।

आगमकारों ने संयोग दो प्रकार का कहा है - १. बाह्य और २. आभ्यंतर। मातापितादि इष्ट पदार्थों का संबंध बाह्य संयोग है और क्रोध, मान, माया, लोभ आदि की तीव्र इच्छा आभ्यंतर संयोग है। जिस व्यक्ति ने दोनों प्रकार के संयोगों को ज्ञान वैराग्य द्वारा दृढ़ता पूर्वक त्याग करके अनगार, भिक्षु पद को ग्रहण किया है उसी महापुरुष के विनय धर्म का यहाँ उल्लेख किया जाता है।

अनगार - अगार अर्थात् घर, उससे जो रहित हो अर्थात् जिसने घर बार आदि का परित्याग कर दिया हो, उसे 'अनगार' कहते हैं।

भिक्षु - किसी भी गृहस्थ के लिए किसी तरह से भारभूत न होकर केवल शरीर यात्रा निर्वाहार्थ निर्दोष आहार, भिक्षा लेने वाले सत्पुरुष को 'भिक्षु' कहते हैं।

विनीत शिष्य का लक्षण

आणाणिद्देसकरे, गुरूणमुववायकारए।
इंगियागारसंपण्णे, से विणीए त्ति वुच्चइ॥२॥

कठिन शब्दार्थ - **आणा** - आज्ञा का, **णिद्देसकरे** - निर्देशानुसार करने वाला, **गुरूणं**- गुरुओं के, **उववायकारए** - समीप रहने वाला, उनकी आज्ञा के अनुरूप कार्य करने वाला, **इंगियागार** - गुरुओं के इंगित और आकार को, **संपण्णे** - भलीभांति जानने वाला, **से** - वह, **विणीए** - विनीत, **त्ति** - इस प्रकार से, **वुच्चइ** - कहा जाता है।

भावार्थ - गुरु आज्ञा को स्वीकार करने वाला, गुरुजनों के समीप रहने वाला, इंगित और आकार से गुरु के भाव को समझने वाला साधु विनीत कहा जाता है।

विवेचन - इस गाथा में विनीत - विनयवान् का लक्षण बताते हुए आगमकार फरमाते हैं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की आज्ञा दें, उसे तो आचरण में लावे और जिस कार्य के लिए निषेध करे उसको वह सर्वथा त्याग दे। शिष्य की सारी कार्यविधि गुरुजनों की दृष्टि के सम्मुख ही रहनी चाहिए ताकि उसका कोई भी कार्य गुरुजनों की आज्ञा के प्रतिकूल न हो। विनीत शिष्य गुरुजनों की प्रवृत्ति और निवृत्ति सूचक इंगित आकार आदि चेष्टाओं के ज्ञान की भी वह अपने में योग्यता संपादन करे। नेत्र का इशारा, सिर का हिलाना और दिशा आदि का अवलोकन करना इत्यादि जो भाव सूचक मूल चेष्टाएं हैं उन्हीं के द्वारा गुरुओं के आंतरिक अभिप्राय को समझ कर उसके अनुसार आचरण करने वाला शिष्य ही वास्तव में विनीत कहा जा सकता है।

अविनीत शिष्य का लक्षण

आणाऽणिद्देसकरे, गुरूणमणुववायकारए।
पडिणीए असंबुद्धे, अविणीए त्ति वुच्चइ॥३॥

कठिन शब्दार्थ - **अणिद्देसकरे** - अस्वीकार करने वाला, **अणुववायकारए** - समीप न रहने वाला, **पडिणीए** - प्रत्यनीक - प्रतिकूल आचरण करने वाला, **असंबुद्धे** - असम्बुद्ध - बोध रहित, **अविणीए** - अविनीत।

भावार्थ - गुरु आज्ञा न मानने वाला, गुरु के समीप न रहने वाला, उनके प्रतिकूल कार्य करने वाला तथा तत्त्वज्ञान रहित अविवेकी साधु अविनीत कहलाता है।

विवेचन - उपरोक्त गाथा में विनय धर्म के जितने लक्षण बतलाये हैं उनके विपरीत चलने वाला अविनीत कहा जाता है अर्थात् तीर्थंकरों की आज्ञा का विराधक और गुरुजनों के प्रतिकूल आचरण (बर्ताव) करने वाला 'अविनीत' कहा जाता है। अब इसी विषय को दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट किया जाता है -

दुःशील शिष्य का निष्कासन

जहा सुणी पूईकण्णी, णिक्कसिज्जइ सव्वसो।
एवं दुस्सीलपडिणीए, मुहरी णिक्कसिज्जइ॥४॥

कठिन शब्दार्थ - **जहा** - जैसे, **सुणी** - कुत्ती, **पूईकण्णी** - सड़े कानों वाली, **णिक्कसिज्जइ** - निकाली जाती है, **सव्वसो** - सभी स्थानों से, **एवं** - इसी प्रकार, **दुस्सील**- दुःशील - दुराचारी, **मुहरी** - वाचाल।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - जैसे सड़े कानों वाली कुत्ती सभी स्थान से निकाली जाती है, इसी प्रकार दुष्ट स्वभाव वाला, गुरुजनों के विरुद्ध आचरण करने वाला, वाचाल साधु सभी स्थानों (गच्छ-संघ आदि) से निकाला जाता है।

विवेचन - इस गाथा में जो दृष्टान्त दिया गया है वह स्वेच्छाचारी चारित्रभ्रष्ट अविनीत शिष्य के साथ बड़ा ही घनिष्ठ संबंध रखता है। जैसे सड़े कानों वाली कुतिया गृह आदि निवास योग्य स्थानों में रखने लायक नहीं है ठीक उसी प्रकार स्वेच्छाचारी गुरुजनविद्वेषी और चारित्रभ्रष्ट अविनीत शिष्य भी संघ आदि में स्थान देने योग्य नहीं है।

अविनीत शिष्य का व्यवहार

कणकुंडगं चइत्ताणं, विट्ठं भुंजइ सूयरो।
एवं सीलं चइत्ताणं, दुस्सीले रमइ मिए॥५॥

कठिन शब्दार्थ - **कणकुंडगं** - चावल के कुण्डे को, **चइत्ताणं** - छोड़ कर, **विट्ठं** - विष्ठा को, **भुंजइ** - खाता है, **सूयरे** - सूअर, **सीलं** - शील - सुंदर आचार को, **दुस्सीले** - दुःशील - दुराचार में, **रमइ** - रमण करता है, **मिए** - मृग।

भावार्थ - जैसे सूअर चावल के कुंडे को छोड़ कर विष्ठा खाता है, इसी प्रकार मृग के समान अज्ञानी साधु भी सदाचार को त्याग कर दुःशील (दुष्ट आचार) में रमण करता है।

विवेचन - यहाँ अविनीत साधु को सूअर और मृग की उपमा दी है। सूअर का उदाहरण है कि - जैसे सूअर के आगे बढ़िया चावल का कुंडा रखा गया हो और उसे वह खा रहा हो परन्तु दूसरी तरफ कोई बच्चा टट्टी चला गया हो और सूअर को उसकी गंध आ गई हो, तो वह चावल को खाना छोड़ कर विष्ठा खाने के लिए चला जाता है। इसी प्रकार अविनीत शिष्य भी विनय को छोड़ कर अविनय में रमण करता है। जैसे मृग तृण घास आदि के प्रत्यक्ष सुख को देखता है, किन्तु पाश (बन्धन) के दुःखों का विचार नहीं करता, इसी प्रकार अविनीत साधु भी वर्तमान के सुखों को देखता है, किन्तु अविनय के बुरे एवं दुःखदायी फल का विचार नहीं करता।

विनयाचरण का उपदेश

सुणिया भावं साणस्स, सूयरस्स णरस्स य।
विणए ठविज्ज अप्पाणं, इच्छंतो हियमप्पणो॥६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - सुणिया - सुन कर, **भावं** - दृष्टांतों को, **साणस्स** - कुतिया का, **सूयरस्स** - सूअर के, **य** - और, **णरस्स** - मनुष्य के, **विणए** - विनय में, **ठवेज्ज** - स्थापित करे, **अप्पाणं** - अपनी आत्मा को, **इच्छंतो** - चाहने वाला, **हियं** - हित, **अप्पणो**- आत्मा के।

भावार्थ - सड़े कानों वाली कुतिया और सूअर के साथ अविनीत मनुष्य के दृष्टान्तों को सुन कर अपना ऐहिक और पारलौकिक हित चाहने वाला व्यक्ति अपनी आत्मा को विनय में स्थापित करे।

विवेचन - 'सुणिया भावं' के स्थान पर टीका में **सुणिया** - (सुन कर) और **अभावं**- (अभाव - अशोभन=हीन स्थिति को) के रूप में शब्दों को अर्थ किया गया है। तदनुसार इस गाथा का भावार्थ इस प्रकार समझना चाहिए -

अपना आत्महित चाहने वाला साधु सड़े कान वाली कुतिया और विष्ठा भोजी सूअर के समान, दुःशील से होने वाले अभाव (-अशोभन=हीन स्थिति) को सुन (समझ) कर अपने आपको विनय (धर्म) में स्थापित करे।

विनय का परिणाम

तम्हा विणयमेसिज्जा, सीलं पडिलभेज्जओ।
बुद्धपुत्त णियागट्ठी, ण णिक्कसिज्जइ कण्हुइ॥७॥

कठिन शब्दार्थ - तम्हा - इसलिए, **विणयं** - विनय की, **एसिज्जा** - एषणा - आराधना करे, **पडिलभे** - प्राप्त करे, **जओ** - जिससे कि, **बुद्धपुत्त** - बुद्ध - आचार्य पुत्र (शिष्य), **णियागट्ठी** - नियागार्थी - मोक्ष को चाहने वाला, **कण्हुइ** - किसी स्थान से भी।

भावार्थ - इसलिए अविनय के दोषों को जान कर मोक्ष के अभिलाषी गुरु महाराज के लिए पुत्र के समान प्रिय साधु को विनय की एषणा-आराधना करनी चाहिए, जिससे सदाचार की प्राप्ति हो। ऐसा विनीत साधु कहीं से भी नहीं निकाला जाता, वह कहीं भी अपमानित नहीं होता।

विनय के अनुष्ठान की विधि

णिसंते सियाऽमुहरी, बुद्धाणं अंतिए सया।
अट्ठजुत्ताणि सिक्खिज्जा, णिरट्ठाणि उ वज्जए॥८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

कठिन शब्दार्थ - **णिसंते** - अतिशांत, **सिया** - हो, **अमुहरी** - परिमितभाषी, **बुद्धाणं**- आचार्यों के, **अंतिए** - समीप में, **सया** - सदा, **अट्ठजुत्ताणि** - अर्थ युक्त पदों को, **सिक्खिज्जा** - सीखे, **णिरट्ठाणि** - निरर्थक पदों को, **वज्जए** - छोड़ दे।

भावार्थ - साधु को चाहिए कि वह सदा अतिशय शान्त और वाचालता रहित कम बोलने वाला हो तथा आचार्यादि के समीप मोक्ष अर्थ वाले आगमों को सीखे और निरर्थक - मोक्ष अर्थ से रहित ज्योतिष, वैद्यक तथा स्त्री-कथादि का त्याग करें।

विवेचन - विनयशील शिष्य का धर्म है कि वह सदा शांत रहे, कभी क्रोध न करे, बिना विचार किये कभी न बोले, आचार्यों के समीप रह कर परमार्थ साधक तात्त्विक पदार्थों की शिक्षा ग्रहण करे और परमार्थ शून्य पदार्थों को जानने के निमित्त अपने अमूल्य समय को नहीं खोवे।

विनय के सूत्र

अणुसासिओ ण कुप्पिज्जा, खंतिं सेविज्ज पंडिए।
खुड्डेहिं सह संसग्गिं, हासं कीडं च वज्जए॥९॥

कठिन शब्दार्थ - **अणुसासिओ** - अनुशासित, **ण कुप्पिज्जा** - क्रोध न करे, **खंतिं** - क्षमा को, **सेविज्ज** - सेवन करे, **पंडिए** - पंडित, **खुड्डेहिं** - क्षुद्रों के, **सह** - साथ, **संसग्गिं**- संसर्ग को, **हासं** - हास्य को, **कीडं** - क्रीड़ा को।

भावार्थ - यदि कभी गुरु महाराज कठोर वचनों से शिक्षा दें, तो भी बुद्धिमान् विनीत शिष्य को क्रोध न करना चाहिए किन्तु क्षमा - सहनशीलता धारण करनी चाहिए, दुःशील क्षुद्र व्यक्तियों के अर्थात् द्रव्य बाल और भाव बाल व्यक्तियों के साथ संसर्ग-परिचय न करना चाहिए और हास्य तथा क्रीड़ा का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए।

विवेचन - टीका में "कीडं" का अर्थ करते हुए अन्त्याक्षरी, प्रहेलिका आदि को भी क्रीड़ा कहा है। मनोरंजन की सभी प्रवृत्तियाँ, साधना जीवन में उपयोगी नहीं होने से उन्हें यहाँ पर - "हास्य" एवं "क्रीड़ा" शब्द से समझना चाहिए।

गुरु का उपदेश

मा य चंडालियं कासी, बहुयं मा य आलवे।
कालेण य अहिज्जित्ता, तओ झाइज्ज एगओ॥१०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **मा** - नहीं, **चंडालियं** - क्रोधादि वश असत्य भाषण, **कासी** - करे, **बहुयं** - बहुत अधिक, **आलवे** - बोलें, **कालेण** - काल के समय में, **अहिज्जित्ता** - अध्ययन करके, **तओ** - तत्पश्चात्, **झाइज्ज** - ध्यान करे, **एगओ** - अकेले।

भावार्थ - साधु को क्रोधादि वश असत्य भाषण नहीं करना चाहिए और यथा समय शास्त्रादि का अध्ययन कर के, उसके बाद अकेला यानी राग-द्वेष रहित होकर एकांत में, चिन्तन-मनन करे।

विवेचन - गुरु शिष्य को उपदेश करते हैं कि वह क्रोध और लोभ आदि के वशीभूत होकर कभी झूठ न बोले क्योंकि मृषावाद का आचरण साधु के लिए हर प्रकार से निंदनीय है। झूठ बोलने से मनुष्य सभी के अविश्वास का पात्र बन जाता है इसलिए असत्य भाषण का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए।

पठन पाठन (स्वाध्याय) काल की मर्यादा के अनुसार करके, द्रव्य और भाव से एकाकी होकर उस का चिंतन करना चाहिए। द्रव्य से अकेला होना अर्थात् स्त्री, पशु और नपुंसकादि से रहित स्थान में बैठना और भाव से अकेला होना अर्थात् राग द्वेषादि से रहित होना है।

इस गाथा में अकृत्य का त्याग और कृत्य के सेवन का उपदेश दिया गया है।

विनीत शिष्य का कर्त्तव्य

आहच्च चंडालियं कट्टु, ण णिण्हविज्ज कयाइ वि।
कडं कडे त्ति भासिज्जा, अकडं णो कडे त्ति य॥११॥

कठिन शब्दार्थ - **आहच्च** - कदाचित्, **ण णिण्हविज्ज** - न छिपावे, **कयाइ वि** - कभी भी, **कडं** - किये हुए को, **कडे** - किया है, **भासेज्जा** - भाषण करे, **अकडं** - नहीं किये हुए को।

भावार्थ - यदि कभी क्रोधादि वश असत्य वचन मुख से निकल जाय तो उसे कभी भी छिपावे नहीं किन्तु किये हुए को किया है इस प्रकार और नहीं किये हुए को नहीं किया, इस प्रकार कहे अर्थात् किये हुए दोष को सरल भाव से स्वीकार कर ले।

विवेचन - विवेकी पुरुष कभी क्रोध या लोभादि के वशीभूत होकर झूठ बोलने के लिए बाध्य हो जाता है परन्तु ऐसा होने पर भी विनीत शिष्य का यह कर्त्तव्य है कि वह उसे छिपाने की हरगिज कोशिश न करे, गुरुजनों के पूछने अथवा न पूछने पर तथा किसी अन्य व्यक्ति के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देखने या न देखने पर भी वह उसे गुप्त न रखे। यदि उसने असद् भाषण किया है तो स्पष्ट शब्दों में कह दे कि मैंने यह किया है और उसने असत्य न बोला हो तो भी कह दे कि मैंने असत्य नहीं बोला है। इस प्रकार अपने अपराध की स्वीकृति में जरा भी संकोच नहीं करे।

विनीत की प्रवृत्ति और निवृत्ति

मा गलियस्सेव कसं, वयणमिच्छे पुणो पुणो।
कसं वा दट्ठुमाइण्णे, पावगं परिवज्जए॥१२॥

कठिन शब्दार्थ - गलियस्सेव - गलित घोड़े (अडियल) की तरह, **कसं** - चाबुक को, **वयणं** - वचन को, **इच्छे** - चाहे, **पुणो-पुणो** - बार-बार, **दट्ठुं** - देखकर, **आइण्णे** - आकीर्ण-विनयवान्, **पावगं** - पाप कर्म को, **परिवज्जए** - छोड़ दे।

भावार्थ - जैसे अडियल घोड़ा बार-बार चाबुक की मार खाये बिना सवार की इच्छानुसार प्रवृत्ति नहीं करता, इसी प्रकार विनीत शिष्य को हर समय गुरु महाराज को कहने का अवसर न देना चाहिए किन्तु जिस प्रकार जातिवंत विनीत घोड़ा चाबुक को देखते ही सवार की इच्छानुसार प्रवृत्ति करता है, उसी प्रकार विनीत शिष्य को गुरु का इंगिताकार समझ कर उनके मनोभाव के अनुसार प्रवृत्ति करनी चाहिए और पाप का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए।

विवेचन - इस गाथा में उपमा अलंकार का चित्र बड़ी ही सुंदरता से खींचा गया है। जैसे विनीत घोड़ा अपने स्वामी के आदेशानुसार चलने से अभीष्ट स्थान पर पहुँच जाता है उसी प्रकार गुरुजनों की आज्ञा पालन करता हुआ विनयशील शिष्य भी अपने अभीष्ट स्थान- मोक्ष मंदिर तक पहुँच जाता है। यहाँ पर घोड़े के समान शिष्य, चाबुक के समान वचन और मार्ग के समान मोक्ष मार्ग को समझना चाहिए तथा दुष्ट घोड़े के सदृश (समान) कुशिष्य है और विनीत घोड़े के समान सुशिष्य को समझे। अविनीत शिष्य के लिए चाबुक के आघात के समान तो गुरुजनों के आदेश रूप बार-बार के वचन हैं और विनीत शिष्य के लिए चाबुक के देखने के समान उनकी भाव सूचक अंगचेष्टा है।

सारांश यह है कि सुशील (विनीत) घोड़ा अपने स्वामी के आदेश का पालन करता हुआ स्वयं सुखी रह कर अपने स्वामी को भी सुख पहुँचाता है, इसी प्रकार गुरुजनों के उपदेशानुसार चलने वाला विनीत शिष्य भी अपनी आत्मा में किसी विलक्षण सुख का अनुभव करता हुआ अपनी आध्यात्मिक प्रवृत्ति से गुरुजनों को भी प्रसन्न कर लेता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विनीत अविनीत के गुण दोष

अणासवा थूलवया कुसीला, मिउं पि चंडं पकरंति सीसा।
चित्ताणुया लहु दक्खोववेया, पसायए ते हु दुरासयं पि॥१३॥

कठिन शब्दार्थ - **अणासवा** - अनाश्रवाः - गुरु आज्ञा न मानने वाले, **थूलवया** - बिना विचारे बोलने वाले, **कुसीला** - कुत्सित आचार वाले, **मिउं पि** - मृदुस्वभाव वाले गुरु को भी, **चंडं** - क्रोधी, **पकरंति** - बना देते हैं, **सीसा** - शिष्य, **चित्ताणुया** - चित्तानुगाः - चित्त के अनुसार चलने वाले, **लहु** - शीघ्र, **दक्खोववेया** - दाक्ष्योपपेताः - कार्य दक्षता से सम्पन्न, **पसायए** - प्रसन्न करते हैं, **ते** - वे विनीत शिष्य, **हु** - अवश्य ही, **दुरासयं पि** - अति क्रोधी गुरु को भी।

भावार्थ - गुरु की आज्ञा को न मानने वाले, कठोर वचन कहने वाले तथा दुष्ट आचार वाले अविनीत शिष्य शान्त स्वभाव वाले गुरु को भी क्रोधी बना देते हैं, किन्तु जो गुरु के चित्त के अनुसार प्रवृत्ति करने वाले और शीघ्र ही बिना विलम्ब गुरु का कार्य करने वाले हैं, वे विनीत शिष्य निश्चय ही उग्र स्वभाव वाले गुरु को भी प्रसन्न कर लेते हैं।

विवेचन - इस गाथा में अविनीत और विनीत शिष्य के आचरणों का गुरुजनों के चित्त पर जो प्रभाव पड़ता है उसका दिग्दर्शन कराया गया है।

शास्त्रकार का विनीत शिष्य के लिए यह उपदेश है कि वह अपने गुरुजनों के चित्त को सदा प्रसन्न रखने का प्रयत्न करे, अपनी सारी चर्या को वह उनके चित्त के अनुकूल रखे और भूल कर भी ऐसा कोई प्रतिकूल आचरण न करे जिससे कि उसके गुरुजनों के अन्तःकरण में किसी प्रकार का आघात पहुँचे। इसीमें इसके शिष्य भाव की सार्थकता है। विनीत शिष्य के विशुद्ध आचरणों का प्रभाव गुरुजनों के अतिरिक्त उसके निकटवर्ती अन्य व्यक्तियों पर भी पड़ता है। उसके कारण अन्य व्यक्तियों के जीवन में भी आशातीत परिवर्तन हो जाता है, इसलिए अविनीतता का परित्याग करके विनयशील बनना ही मुमुक्षु के जीवन का प्रधान लक्ष्य होना चाहिए।

गुरुजनों के चित्तानुवर्ती होने की विधि

णापुट्ठो वागरे किंचि, पुट्ठो वा णालीयं वए।
कोहं असच्चं कुव्विजा, धारिजा पियमप्पियं॥१४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **ण** - नहीं, **अपुट्ठो** - पूछे बिना, **वागरे** - बोले, **किंचि** - कुछ भी, **पुट्ठो** - पूछने पर, **अलीयं** - अलीक - असत्य, **वए** - बोले, **कोहं** - क्रोध को, **असच्चं** - असत्य - निष्फल, **कुव्वेज्जा** - कर दे, **धारेज्जा** - धारण करे, **पियं** - प्रिय वचन को, **अप्पियं** - अप्रिय वचन को।

भावार्थ - विनीय शिष्य बिना पूछे कुछ भी न बोले और पूछने पर असत्य न बोले। यदि कभी क्रोध उत्पन्न हो जाय, तो उसका अशुभ फल सोच कर उसे असत्य अर्थात् निष्फल कर देवे तथा अप्रिय लगने वाले गुरु के कठोर वचन को भी हितकारी जान कर प्रिय-समझे एवं धारण करे।

विवेचन - इस गाथा में शिष्य के लिए यह शिक्षा दी गई है कि वह बिना बोलाये थोड़ासा भी न बोले और यदि किसी बात पर उसे बोलाया जाय तो वह असत्य कभी न बोले। गुरुजनों के किसी तिरस्कार युक्त वचन को सुन कर वह अपने मन में क्रोध न लावे। यदि किसी कारणवशात् क्रोध आ भी जाय तो क्रोध के कटु फल का विचार करते हुए उसे निष्फल बना दे तथा गुरुजनों के प्रिय तथा अप्रिय बर्ताव में किसी प्रकार का अन्तर न समझता हुआ अपने लिए दोनों को ही परम हितकर समझे, यही उसकी विनयशीलता की सच्ची कसौटी है।

आत्मदमन और उसका फल

अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो।
अप्पा दंतो सुही होइ, अस्सिं लोए परत्थ य॥१५॥

कठिन शब्दार्थ - **अप्पा** - आत्मा का, **चेव** - निश्चय ही, **दमेयव्वो** - दमन करना चाहिए, **खलु** - निश्चय से, **दुद्दमो** - दुर्दम्य, **दंतो** - दान्त - दमन किया हुआ, **सुही** - सुखी, **होइ** - होता है, **अस्सिं** - इस, **लोए** - लोक में, **य** - और, **परत्थ** - परलोक में।

भावार्थ - आत्मा अर्थात् मन और इन्द्रियों का ही दमन करना चाहिए, क्योंकि आत्मा का दमन करना बड़ा कठिन है। आत्मा को दमन करने वाला इस लोक में और परलोक में सुखी होता है।

विवेचन - मन और इन्द्रियों को वश में लाने का प्रयत्न करना ही आत्मदमन है। इसी को दूसरे शब्दों में आत्म-स्वाधीनता कहते हैं। आत्मदमन से यह जीव इसलोक और परलोक दोनों में ही विलक्षण सुख का भागी होता है। इन्द्रिय और मन को दमन करना कोई साधारण

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

सी बात नहीं है। इसके समान दुःसाध्य कार्य लोक में दूसरा कोई नहीं है। वे महापुरुष धन्य हैं जिन्होंने अपने मन तथा इन्द्रियों को वश में कर रखा है। हजारों में कोई विरला व्यक्ति ही आत्मदमन करने वाला होता है अतः विनीत शिष्य को सर्वतोभावेन आत्मदमन की ओर ही प्रवृत्त होना चाहिए इसी में उसका कल्याण निहित है।

आत्मदमन का उपाय

वरं मे अप्पा दंतो, संजमेण तवेण य।
माऽहं परेहिं दम्मंतो, बंधणेहि वहेहि य॥१६॥

कठिन शब्दार्थ - **वरं** - अच्छा है, **मे** - मुझे, **संजमेण** - संयम से, **तवेण** - तप से, **अहं** - मेरा, **परेहिं** - दूसरे के द्वारा, **दम्मंतो** - दमन किया जाना, **बंधणेहि** - बन्धनों से, **वहेहि** - वध से।

भावार्थ - परवश हो कर दूसरों से वध और बन्धनों से दमन किये जाने की अपेक्षा मुझे अपनी इच्छा से ही तप और संयम से अपनी आत्मा का दमन करना श्रेष्ठ है।

विवेचन - द्वादशविध तप और पंचविध आस्रव निरोध रूप संयम के अनुष्ठान से जो आत्म-निग्रह किया गया है, वही सच्चा आत्मदमन है और इसी से आध्यात्मिक शांति की प्राप्ति हो सकती है।

विनयाचार

पडिणीयं च बुद्धाणं, वाया अदुव कम्मुणा।
आवी वा जइ वा रहस्से, णेव कुज्जा कयाइ वि॥१७॥

कठिन शब्दार्थ - **पडिणीयं** - प्रतिकूल आचरण, **बुद्धाणं** - गुरुओं - आचार्यों के, **वाया** - वचन (वाणी) से, **अदुव** - अथवा, **कम्मुणा** - कर्म से, **आवी** - प्रकट में, **वा** - अथवा, **रहस्से** - एकांत में, **णेव** - नहीं, **कुज्जा** - करे, **कयाइ वि** - कभी भी (कदाचित् भी)।

भावार्थ - विनीत शिष्य को चाहिए कि वह प्रकट में - लोगों के सामने अथवा एकान्त में, वचन से और कार्य से, कभी भी गुरु महाराज के विपरीत आचरण नहीं करे।

विवेचन - योग्य शिष्य को चाहिए कि वह अपने आचार्यों - गुरुजनों की लोगों के सामने अथवा परोक्ष में भी मन, वचन और काया से आशातना - अविनय नहीं करे। आचार्यों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पर आन्तरिक प्रेम न रखना, मानसिक अविनय है। वचनों के द्वारा उनकी भर्त्सना करना, वाचिक अविनय है। गुरुजनों के आसनादि को उनकी आज्ञा के बिना स्पर्श करना, उनके निजी उपकरणों की आशातना करना आदि कायिक अविनय कहलाता है।

कायिक अविनय

ण पक्खओ ण पुरओ, णेव किच्चाण पिट्ठओ।
ण जुंजे उरुणा उरुं, सयणे ण पडिस्सुणे॥१८॥

कठिन शब्दार्थ - **पक्खओ** - पक्ष - बराबर में, **पुरओ** - आगे, **किच्चाण** - वंदनीय आचार्यों के, **पिट्ठओ** - पीठ करके बैठना, **जुंजे** - जोड़े, **उरुणा** - घुटने से, **ऊरुं** - घुटने को, **सयणे** - शय्या पर बैठा या सोया हुआ, **पडिस्सुणे** - सुने।

भावार्थ - विनीत शिष्य को चाहिए कि वह आचार्य महाराज के लगता हुआ - पास में बराबर न बैठे, उनके आगे भी न बैठे और पीछे भी अविनीतपन से न बैठे तथा गुरु महाराज के इतना निकट भी न बैठे कि अपनी जांघ से उनकी जांघ का स्पर्श हो अर्थात् उनके शरीर का स्पर्श हो इस तरीके से तथा शय्या पर सोते या बैठे हुए ही गुरु महाराज के वचन नहीं सुने किन्तु आसन से नीचे उतर कर उत्तर देवे।

णेव पल्हत्थियं कुज्जा, पक्खपिंडं च संजए।
पाए पसारिए वावि, ण चिट्ठे गुरुणंतिए॥१९॥

कठिन शब्दार्थ - **पल्हत्थियं** - पर्यस्तिका - पालथी लगा कर, **पक्खपिंडं** - पक्ष पिण्ड- दोनों भुजाओं से घुटनों को आवेष्टित, **संजए** - संयमी साधु, **पाए** - पैरों को, **पसारिए** - फैला कर, **ण चिट्ठे** - न बैठे, **गुरुणंतिए** - गुरुओं के समीप में।

भावार्थ - विनीत साधु पलाठी मार कर अथवा पक्षपिंड कर के न बैठे और गुरु महाराज के सामने पाँव पसार कर भी न बैठे।

विवेचन - उपरोक्त दोनों गाथाओं में सूत्रकार ने शिष्य की उन शारीरिक चेष्टाओं का निषेध किया है जिसके द्वारा गुरुजनों का अपमान सूचित होता हो।

अपनी छाती के निकट घुटनों को खड़ा कर के उनको वस्त्र से बांध कर बैठना पल्हथी-पलाठी कहलाता है और उन्हें दोनों भुजाओं द्वारा बांध कर बैठना 'पक्खपिंड' - पक्षपिंड कहलाता है। शिष्य गुरु महाराज के सामने इस आसनों से नहीं बैठे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सारांश यह है कि गुरुओं के समीप तो उसी आसन से बैठना चाहिये जो कि शास्त्र सम्मत और सभ्य व्यक्तियों द्वारा अनुमोदित हो चुका है तथा जिससे गुरुजनों की अवज्ञा-अनादर-आशातना न हो।

वचन विनय

आयरिएहिं वाहिंतो, तुसिणीओ ण कयाइ वि।
पसायपेही णियागट्ठी, उवचिट्ठे गुरुं सया॥२०॥

कठिन शब्दार्थ - **आयरिएहिं** - आचार्यों के द्वारा, **वाहिंतो** - बुलाया हुआ, **तुसिणीओ**- मौन - चुपचाप, **पसायपेही** - प्रसादप्रेक्षी - कृपाकांक्षी, **णियागट्ठी** - नियागार्थी - मोक्ष की इच्छा रखने वाला, **उवचिट्ठे** - ठहरे - उपस्थित रहे, **गुरुं** - गुरु के पास, **सया** - सदा।

भावार्थ - आचार्य महाराज द्वारा बुलाए जाने पर विनीत शिष्य को चाहिए कि वह कभी भी चुपचाप बैठा न रहे, किन्तु गुरु की कृपा चाहने वाला, मोक्षार्थी साधु सदैव गुरु महाराज के समीप विनय के साथ उपस्थित होवे।

आलवंते लवंते वा, ण णिसीएज्ज कयाइ वि।
चइत्ता* आसणं धीरो, जओ जत्तं पडिस्सुणे॥२१॥

कठिन शब्दार्थ - **आलवंते** - एक बार बुलाने पर, **लवंते** - बार-बार बुलाने पर, **णिसीएज्ज** - बैठा रहे, **चइत्ता (चइऊण)** - छोड़ कर, **आसणं** - आसन को, **धीरो** - धैर्यवान्, **जओ जत्तं** - गुरुओं के वचन को यतना पूर्वक, **पडिस्सुणे** - स्वीकार करे।

भावार्थ - गुरु महाराज के एक बार बुलाने पर अथवा बार-बार बुलाने पर कभी भी बैठा न रहे, किन्तु विनीत धैर्यशील साधु आसन छोड़ कर गुरु महाराज के वचनों को यतना पूर्वक सावधान हो कर सुने।

आसणगओ ण पुच्छिज्जा, णेव सिज्जागओ कया।
आगम्मुक्कुडुओ संतो, पुच्छिज्जा पंजलिउडो॥२२॥

कठिन शब्दार्थ - **आसणगओ** - आसन पर बैठा हुआ, **ण** - नहीं, **पुच्छिज्जा** - पूछे, **णेव सिज्जागओ** - न ही शय्या पर बैठा हुआ, **आगम्म** - समीप आकर, **उक्कुडुओ संतो** - उत्कुटुक आसन से बैठता हुआ, **पंजलिउडो** - हाथ जोड़ कर।

---

* पाठान्तर - **चइऊण**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - गुरु महाराज से कुछ पूछना हो तो शिष्य को चाहिए कि वह आसन पर बैठा हुआ कभी नहीं पूछे और न शय्या पर रहा हुआ ही पूछे, किन्तु गुरु के समीप आकर उत्कुटुक आसन से (घुटनों के बल बैठ कर) विनयपूर्वक हाथ जोड़ कर पूछे।

विवेचन - प्रस्तुत गाथाओं में वाग्-विनय के स्वरूप का बड़ी ही सुंदरता से वर्णन किया गया है।

विनीत शिष्य का कर्त्तव्य है कि वह गुरुजनों के आह्वान् करने पर शीघ्र ही उनके पास आकर समुचित शब्दों में उनसे अपने लिए अनुष्ठेय कार्य की आज्ञा मांगे और इस बात के लिए अपना परम सौभाग्य समझे कि गुरु महाराज ने अपने पास बैठे हुए अन्य शिष्यों को छोड़ कर अमुक कार्य (सेवा) के निमित्त मुझे ही बुलाया है, यह उनकी मेरे ऊपर अनन्य कृपा का सूचक है। इस प्रकार मोक्षाभिलाषी शिष्य गुरुजनों की प्रसन्नता का विचार करता हुआ सदा उनके समीप रहने पर ही अपने को अधिक पुण्यशाली समझे।

गाथा २१ में **'आलवंते'** शब्द में 'आ' उपसर्ग ईषत् अर्थ का बोधक है जिसका तात्पर्य यह है कि गुरुजनों के थोड़ा सा बोलने पर भी उनके वचन को शीघ्रता से ग्रहण करने का प्रयत्न करे, किन्तु उनके वचन की उपेक्षा कदापि न करे।

गाथा २२ में स्पष्ट किया गया है कि शिष्य को जो कुछ भी गुरु से पूछना हो, विनय युक्त हो कर पूछे, उसमें किसी भी प्रकार की अविनीतता न होने पावे, इस बात की पूरी सावधानी रखे। यहाँ जो **'उक्कुडुओ'** शब्द आया है उसका संस्कृत में 'उत्कुटुक' रूप बनता है जिसका अर्थ मुक्तासन से है अर्थात् पीढे आदि पर कूल्हे (पुत) न लगाते हुए पैरों पर बैठना उत्कुटुकासन है।

गुरुजनों का कर्त्तव्य

एवं विणयजुत्तस्स, सुयं अत्थं च तदुभयं।
पुच्छमाणस्स सीसस्स, वागरिज्ज जहासुयं॥२३॥

कठिन शब्दार्थ - विणयजुत्तस्स - विनय से युक्त हो, **सुयं** - सूत्र को, **अत्थं** - अर्थ को, **तदुभयं** - तदुभय - सूत्र और अर्थ दोनों को, **पुच्छमाणस्स** - पूछने वाले को, **सीसस्स**- शिष्य का, **वागरिज्ज** - कहे, **जहासुयं** - यथाश्रुत - जैसा सुना वैसा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - गुरु महाराज को चाहिए कि इस प्रकार विनय से युक्त शिष्य के पूछने पर सूत्र अर्थ और सूत्र - अर्थ. दोनों जैसा गुरु महाराज से सुना हो उसी प्रकार कहे।

विवेचन - इस गाथा में विनयाचार से युक्त शिष्य के प्रति गुरुजनों के कर्त्तव्य का निर्देश किया गया है।

गुरुजनों ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों से जिस प्रकार की सूत्र, अर्थ और तदुभय की धारणा की हुई है उसी का विनीत शिष्य के समक्ष प्रतिपादन करे। इससे श्रुतज्ञान की सफलता और चिर-स्थायित्व बना रहता है।

वचन शुद्धि

मुसं परिहरे भिक्खू, ण य ओहारिणीं वए।
भासा दोसं परिहरे, मायं च वज्जए सया॥२४॥

कठिन शब्दार्थ - **मुसं** - असत्य (मृषा) को, **परिहरे** - त्याग दे, **भिक्खू** - भिक्षु - भिक्षाजीवी साधु, **ओहारिणीं** - निश्चयात्मक भाषा, **वए** - कहे, **भासा दोसं** - भाषा के दोष को, **मायं** - माया को, **वज्जए** - त्याग देवे।

भावार्थ - साधु सदा झूठ का सभी प्रकार से त्याग करे और निश्चयकारिणी भाषा न बोले, भाषा के सावद्य आदि दोषों को छोड़े और माया एवं क्रोधादि का त्याग करे।

विवेचन - वाणी की विशुद्धि-निर्दोषता ही वस्तुतः वचन विनय है। अतः वचन की शुद्धि के लिए वचनगत दोषों के त्याग का आदेश प्रस्तुत गाथा में किया गया है।

साधु मिथ्या भाषण, निश्चयात्मक भाषण, सावद्य भाषण और छल कपट मय भाषण का सर्वथा त्याग करे। सदैव निर्दोष भाषा का ही व्यवहार करे।

ण लविज्ज पुट्ठो सावज्जं, ण णिरट्ठं ण मम्मयं।
अप्पणट्ठा परट्ठा वा, उभयस्संतरेण वा॥२५॥

कठिन शब्दार्थ - **लविज्ज** - बोले, **पुट्ठो** - पूछने पर, **सावज्जं** - सावद्य भाषा, **णिरट्ठं** - निरर्थक, **मम्मयं** - मर्म युक्त वचन, **अप्पणट्ठा** - अपने लिए, **परट्ठा** - दूसरों के लिए, **उभयस्स** - उभय-दोनों के प्रयोजन से, **अंतरेण** - निष्प्रयोजन।

भावार्थ - कोई बात पूछने पर साधु अपने लिए अथवा दूसरे के लिए या अपने और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दूसरे (दोनों) के लिए सप्रयोजन सावद्य भाषा न बोले, निरर्थक वचन न कहे और मर्मभेदी वचन भी न कहे।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में साधु के लिए वचन गुप्ति के संरक्षण का उपदेश दिया गया है। विचारशील साधु कभी भी सावद्य भाषा, निरर्थक भाषा और मर्मयुक्त भाषा का अपने, दूसरे अथवा उभय के लिए व्यवहार न करे तथा सदैव सत्य, सार्थक, हित और मित बोलने का ही प्रयत्न करे।

संसर्गजन्य दोष परिहार

समरेसु अगारेसु, संधिसु य महापहे।
एगो एगित्थिए सद्धिं, णेव चिट्ठे ण संलवे॥२६॥

कठिन शब्दार्थ - **समरेसु** - लोहारशाला में, **अगारेसु** - घरों में, **संधीसु** - दो घरों की संधियों में, **महापहे** - महापथ-राजमार्ग में, **एगो** - अकेला साधु, **एगत्थिए** - अकेली स्त्री के, **सद्धिं** - साथ, **णेव चिट्ठे** - खड़ा न रहे, **ण संलवे** - न बोले।

भावार्थ - लोहारशाला में, सूने घरों में, दो घरों के बीच में और राजमार्ग में अकेला साधु अकेली स्त्री के साथ न खड़ा रहे और न बातचीत ही करे।

विवेचन - पूर्व की गाथाओं में आत्मगत दोषों के त्याग का उपदेश दिया गया है जब कि प्रस्तुत गाथा में संसर्गजन्य दोषों के त्याग का उपदेश दिया गया है।

जहाँ दोष की संभावना हो अथवा प्रवचन की लघुता होती हो, वैसे स्थानों में एकान्त न होते हुए भी, साधु को स्त्री सम्पर्क से बचना चाहिये।

गुरु का अनुशासन

जं मे बुद्धाणुसासंति, सीएण फरुसेण वा।
मम लाभुत्ति पेहाए, पयओ तं पडिस्सुणे॥२७॥

कठिन शब्दार्थ - **जं** - जो, **मे** - मुझे, **बुद्धा** - आचार्यादि गुरुजन, **अणुसासंति** - शिक्षा देते हैं, **सीएण** - शीतल वचनों से, **फरुसेण** - कठोर वचनों से, **मम** - मेरा, **लाभुत्ति** - लाभ है इस प्रकार, **पेहाए** - विचार करके, **पयओ** - प्रयत्न से युक्त, **तं** - उसको, **पडिस्सुणे** - स्वीकार करे, सुने।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - आचार्यादि गुरुजन मुझे कोमल अथवा कठोर वचनों से जो शिक्षा देते हैं, इसमें मेरा ही लाभ है, इस प्रकार विचार कर शिष्य को चाहिए कि वह सावधान हो कर उस शिक्षा को अंगीकार करे।

विवेचन - किसी प्रकार की भूल हो जाने पर उसके सुधार के निमित्त गुरुजन यदि किसी प्रकार की शिक्षा देने में प्रवृत्त हो तथा उस शिक्षा प्रवृत्ति में यदि वे कोमल अथवा कठोर वचनों का भी प्रयोग करे तो शिष्य को उचित है कि वह गुरुजनों के इस उपदेश को अपने लिए परम हितकारी समझ कर उसे श्रद्धा पूर्वक स्वीकार करे, गुरुजनों की हित शिक्षा की किसी भी रूप में अवहेलना न करे क्योंकि गुरुजनों की हित शिक्षा में अनेक प्रकार के प्रशस्त लाभ निहित हैं।

कठोर अनुशासन भी हितकारी

अणुसासणमोवायं, दुक्कडस्स य चोयणं।
हियं तं मण्णए पण्णो, वेस्सं होइ असाहुणो॥२८॥

कठिन शब्दार्थ - **अणुसासणं** - शिक्षा, **उवायं** - उपाय युक्त, **दुक्कडस्स** - पाप-दुष्कृत-को, **चोयणं** - प्रेरणा को, **हियं** - हितकारी, **मण्णए** - मानता है, **पण्णो** - बुद्धिमान्, **वेस्सं** - द्वेष का कारण, **होइ** - होता है, **असाहुणो** - असाधु को।

भावार्थ - कोमल तथा कठोर शब्द रूपी उपाय से दी गई, गुरुजनों की शिक्षा और पापकार्यों से निवर्तन के लिए की गई प्रेरणा को बुद्धिमान् विनीत शिष्य हितकारी मानता है, किन्तु अविनीत शिष्य के लिए वही शिक्षा द्वेषोत्पादक होती है।

हियं विगयभया बुद्धा, फरुसं पि अणुसासणं।
वेस्सं तं होइ मूढाणं, खंतिसोहिकरं पयं॥२९॥

कठिन शब्दार्थ - **विगयभया** - भय से रहित, **बुद्धा** - तत्त्वज्ञ शिष्य, **फरुसं** - कठोर, **पि** - भी, **मूढाणं** - मूर्खों के लिए, **खंति** - क्षमा, **सोहिकरं** - आत्मशुद्धि करने वाला, **पयं** - पद।

भावार्थ - सात प्रकार के भय से रहित तत्त्वज्ञानी शिष्य क्षमा और शुद्धि करने वाले ज्ञानादि गुणों के स्थान रूप गुरु महाराज की कठोर शिक्षा को भी हितकारी मानते हैं, किन्तु वही शिक्षा अज्ञानी अविनीत शिष्यों के लिए द्वेष उत्पन्न करने वाली होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में गुरुजनों के अनुशासन को विनीत और अविनीत शिष्य किस रूप में ग्रहण करते हैं इस विषय को स्पष्ट किया गया है। यद्यपि गुरुजनों की हित शिक्षा विनीत और अविनीत दोनों ही शिष्यों के लिए भेद भाव से रहित - समान रूप से होती है तथापि ग्रहण करने वाले पात्र के अनुसार उसका परिणमन होता है। कुपात्र में डाला हुआ हित शिक्षा रूप दुग्धामृत भी विकृति भाव को प्राप्त कर विष के तुल्य हानिकारक हो जाता है।

यहाँ पर 'हियं' शब्द से ऐहिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के हितों का ग्रहण है।

आसन संबंधी विनयाचार

आसणे उवचिट्ठेज्जा, अणुच्चेऽकुक्कुए थिरे।
अप्पुट्ठाई णिरुट्ठाई, णिसीएज्जऽप्पकुक्कुए॥३०॥

कठिन शब्दार्थ - **आसणे** - आसन पर, **उवचिट्ठेज्जा** - बैठे, **अणुच्चे** - ऊंचा न हो, **अकुक्कुए** - अस्पंदमान (आवाज न करने वाले), **थिरे** - स्थिर, **अप्पुट्ठाई** - प्रयोजन होने पर भी बारबार न उठे, **णिरुट्ठाई** - बिना प्रयोजन न उठने वाला, **णिसीएज्ज** - बैठे, **अप्पकुक्कुए** - हाथ पैर न चलाते हुए।

भावार्थ - शिष्य को चाहिए कि गुरु महाराज से नीचे तथा अल्प मूल्य वाले चरचर शब्द न करने वाले स्थिर आसन पर हाथ पाँव आदि न हिलाते हुए बैठे और बिना प्रयोजन उठे-बैठे नहीं और प्रयोजन होने पर भी बार-बार उठे-बैठे नहीं।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में शिष्य का आसन संबंधी विनयाचार किस प्रकार का होना चाहिए, इसका कथन किया गया है। गुरुजनों की अपेक्षा शिष्य का आसन हमेशा ही नीचा होना चाहिए। अर्थात् विनीत शिष्य द्रव्य और भाव दोनों प्रकार से गुरुजनों की अपेक्षा अपने को लघुता में रखे ताकि उसकी यह लघुता विनयाचार की सम्यक् आराधना से प्रभुता के उच्च सिंहासन पर विराजमान हो जाए।

यथोचित काल में यथोचित कार्य

कालेण णिक्खमे भिक्खू, कालेण य पडिक्कमे।
अकालं च विवज्जित्ता, काले कालं समायरे॥३१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **कालेण** - समय होने पर, **णिक्खमे** - निकले, **पडिक्कमे** - लौट आए, **अकालं** - असमय को, **विवज्जित्ता** - छोड़ कर, **समायरे** - आचरित करे।

भावार्थ - साधु समय पर भिक्षादि के लिए निकले और समय हो जाने पर लौट आवे, अकाल को वर्ज कर, नियत समय पर उस काल की क्रिया का आचरण करे।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में स्पष्ट किया गया है कि साधु के लिए जिस समय पर जिस क्रिया के अनुष्ठान की आज्ञा शास्त्र में दी है उसको उसी समय पर नियत रूप से करना चाहिए। भिक्षा के अलावा प्रतिक्रमण, प्रतिलेखना आदि अन्य धार्मिक कृत्यों को भी साधु समय पर ही करे, समय का अतिक्रमण करके अर्थात् असमय में कोई भी कृत्य न करे।

एषणा समिति

परिवाडिए ण चिट्ठेज्जा, भिक्खू दत्तेसणं चरे।
पडिरूवेण एसित्ता, मियं कालेण भक्खए॥३२॥

कठिन शब्दार्थ - **परिवाडिए** - पंक्ति में, **ण चिट्ठेज्जा** - खड़ा नहीं होवे, **दत्तेसणं** - दिया हुआ एषणीय, **चरे** - आसेवन - ग्रहण करे, **पडिरूवेण** - साधु के नियमानुसार, **एसित्ता** - गवेषणा करके, **मियं** - प्रमाण पूर्वक (परिमित), **भक्खए** - भोजन करे।

भावार्थ - साधु जहाँ जीमणवार की पंक्ति बैठी हो वहाँ खड़ा न रहे, किन्तु पृथक्-पृथक् घरों से, दाता द्वारा दिये हुए शुद्ध आहार की गवेषणा करे, अनगारोचित योग्य रीति से नियमानुसार आहार की गवेषणा कर आहार करने के समय परिमित आहार का भोजन करे।

विवेचन - जहाँ पर प्रीतिभोज अथवा विवाह आदि अन्य किसी निमित्त से जीमणवार किया गया हो, ऐसे स्थान पर साधु को आहार के लिए कदापि न जाना चाहिए क्योंकि ऐसे स्थान पर भिक्षा के निमित्त जाकर खड़ा होना साधु के लिए अप्रीति - असद्भाव का कारण बन जाता है अतः ऐसे स्थान से साधु कभी भिक्षा न लावें किन्तु अनेक घरों से थोड़ा-थोड़ा निर्दोष आहार लावे।

णाइदूरमणासण्णे, णाण्णेसिं* चक्खु-फासओ।
एगो चिट्ठेज्ज भत्तट्ठा, लंघित्ता तं णाइक्कमे॥३३॥

---

* पाठान्तर - **णण्णेसिं**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **णाइदूरं** - न अधिक दूर, **अणासण्णे** - न अति समीप, **णाण्णेसिं (णण्णेसिं)** - न औरों के, **चक्खुफासओ** - चक्षु स्पर्श में, **भत्तट्ठा** - भत्त (भोजन) के लिए, **लंघित्ता** - उल्लंघन करके, **णाइक्कमे** - प्रवेश न करे।

भावार्थ - गृहस्थ के घर पर भिखारी खड़े हों, तो गोचरी गया हुआ साधु उन्हें लाँघ कर गृहस्थ के घर में प्रवेश न करें, किन्तु वहाँ से न अति दूर और न अति निकट जहाँ दाता और भिखारी दोनों की दृष्टि न पड़ती हो वहाँ राग-द्वेष न करता हुआ यतना पूर्वक खड़ा रहे।

पिण्डैषणा

णाइउच्चे व णीए वा, णासण्णे णाइदूरओ।
फासुयं परकडं पिंडं, पडिगाहिज्ज संजए॥३४॥

कठिन शब्दार्थ - **अइउच्चे** - अधिक ऊंचे स्थान, **णीए** - नीचे स्थान, **आसण्णे** - समीप, **अइदूरओ** - अधिक दूर, **फासुयं** - प्रासुक, **परकडं** - परकृत - गृहस्थ के लिए बनाया हुआ, **पिंडं** - आहार, **पडिगाहिज्ज** - ग्रहण करे, **संजए** - साधु।

भावार्थ - दाता से अधिक ऊंचे स्थान और न अधिक नीचे स्थान, इसी प्रकार न अधिक निकट और न अधिक दूर खड़े होकर भिक्षा ग्रहण करे किन्तु साधु उचित स्थान पर खड़ा हो कर गृहस्थ के लिए बनाया हुआ प्रासुक आहार ग्रहण करे।

ग्रासैषणा

अप्पपाणेऽप्पबीयम्मि, पडिच्छण्णम्मि संवुडे।
समयं संजए भुंजे, जयं अपरिसाडियं॥३५॥

कठिन शब्दार्थ - **अप्पपाणे** - बेइन्द्रिय आदि प्राणियों से रहित, **अप्पबीयम्मि** - बीज रहित, **पडिच्छण्णंमि** - ऊपर से ढ़के हुए, **संवुडे** - संवृत (चारों ओर से घिरे हुए) स्थान में, **समयं** - साथ में अथवा समता पूर्वक, **भुंजे** - आहार करे, **जयं** - यतना पूर्वक, **अपरिसाडियं**- नहीं गिराते हुए।

भावार्थ - द्वीन्द्रियादि प्राणियों से रहित, शाली आदि बीज रहित, ऊपर से ढके हुए और चारों ओर से घिरे हुए स्थान में संयमी साधु दूसरे साधुओं के साथ यतना पूर्वक आहार का कण न गिराते हुए उपभोग करे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुकडित्ति सुपक्किति, सुच्छिण्णे सुहडे मडे।
सुणिट्ठिए सुलट्ठित्ति, सावज्जं वज्जए मुणी॥३६॥

कठिन शब्दार्थ - **सुकडित्ति** - बहुत अच्छा किया है, **सुपक्किति** - बहुत अच्छा पकाया है, **सुच्छिण्णे** - बहुत अच्छा छेदन किया है, **सुहडे** - तीखेपन, कडवेपन को अच्छा दूर किया, **मडे** - अच्छी तरह निर्जीव हो गया है, **सुणिट्ठिए** - घृतादि अच्छा भरा है, **सुलट्ठित्ति** - यह बहुत ही सुंदर है, **सावज्जं** - सावद्य, **वज्जए** - त्याग करे।

भावार्थ - आहार करते समय साधु इस प्रकार न बोले 'अच्छा बनाया, अच्छा पकाया, शाक-पत्रादि का छेदन अच्छा किया, शाकादि के तीखेपन आदि को अच्छा दूर किया, सत्तु आदि में घृतादि का खूब समावेश किया, यह भोजन रसोत्कर्षता को प्राप्त है और यह आहार रसादि सभी प्रकार से सुंदर हैं' इस प्रकार मुनि सावद्य वचनों का त्याग करें।

विवेचन - इस गाथा में साधु को भोजन करते समय अनावश्यक वचन और सावद्य वचन के परित्याग का आदेश किया गया है।

गुरु की प्रसन्नता और अप्रसन्नता

रमए पंडिए सासं, हयं भद्दं व वाहए।
बालं सम्मइ सासंतो, गलिअस्सं व वाहए॥३७॥

कठिन शब्दार्थ - **रमए** - प्रसन्न होता है, **पंडिए** - पंडित - विनीत, **सासं** - सिखाता हुआ, **हयं** - घोड़े को, **भद्दं** - भद्र, **वाहए** - वाहक, **बालं** - बाल-अबोध-अविनीत को, **सम्मइ** - खेदित होता है, **सासंतो** - अनुशासन करता हुआ-शिक्षा देता हुआ, **गलिअस्सं** - दुष्ट घोड़े को।

भावार्थ - जैसे भद्र घोड़े को सिखाता हुआ सवार प्रसन्न होता है, उसी प्रकार विनीत शिष्यों को शिक्षा देता हुआ गुरु प्रसन्न होता है और जैसे दुष्ट घोड़े को शिक्षा देता हुआ सवार खेदित होता है उसी प्रकार अविनीत शिष्य को शिक्षा देता हुआ गुरु खेदित होता है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में सरल और दुष्ट स्वभाव के अश्व का दृष्टान्त देते हुए सूत्रकार ने स्पष्ट किया है कि विनीत शिष्य को शिक्षा देने से गुरुजनों को किस प्रकार के सुफल की प्राप्ति होती है और इससे विपरीत अविनीत शिष्य को शिक्षा देने पर उन्हें किस कुफल का अनुभव करना पड़ता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

खड्डुया मे चवेडा मे, अक्कोसा य वहा य मे।

कल्लाणमणुसासंतो, पावदिट्ठित्ति मण्णइ॥३८॥

कठिन शब्दार्थ - खड्डुया - ठोले (ठोकर, लात) मारने रूप, **चवेडा** - थप्पड़ (चांटा) मारने, **मे** - मेरे लिए, अक्कोसा - आक्रोश, वहा - वध रूप, **कल्लाणं** - कल्याणकारी, **अणुसासंतो** - शिक्षा देने पर, **पावदिट्ठि** - पापदृष्टि वाला, **मण्णइ** - मानता है।

भावार्थ - कल्याणकारी शिक्षा देने पर पाप-दृष्टि अविनीत शिष्य इस प्रकार मानता है कि मेरे लिए ये वचन ठोले रूप हैं, मेरे लिए ये थप्पड़ रूप हैं और मेरे लिए ये आक्रोश रूप तथा वध रूप हैं।

विवेचन - जिस प्रकार सांप को पिलाया हुआ गोदुग्ध भी विष के रूप में परिणत हो जाता है। उसी प्रकार अविनीत (मूर्ख) शिष्य को दी गयी हित शिक्षा का परिणाम भी विपरीत और भयंकर होता है।

सुशिष्य और कुशिष्य में अंतर

पुत्तो मे भाय-णाइत्ति, साहू कल्लाण मण्णइ।

पावदिट्ठि उ अप्पाणं, सासं दासित्ति मण्णइ॥३९॥

कठिन शब्दार्थ - **पुत्तो** - पुत्र, **भाय** - भाई, **णाइ** - ज्ञातिजन, **साहू** - विनीत साधु, **अप्पाणं** - अपने आप को, **सासं** - शिक्षा को, **दासित्ति** - दास के समान।

भावार्थ - विनीत साधु गुरु महाराज की शिक्षा को कल्याणकारी मानता है और ऐसा समझता है कि गुरु महाराज मुझे अपना पुत्र, भाई, स्वजन मान कर शिक्षा देते हैं, किन्तु पापदृष्टि अविनीत शिष्य को शिक्षा देने पर वह अपने आपको दास के समान मानता है।

ण कोवए आयरियं, अप्पाणं पि ण कोवए।

बुद्धोवघाई ण सिया, ण सिया तोत्तगवेसए॥४०॥

कठिन शब्दार्थ - **ण कोवए** - कुपित नहीं करे, **आयरियं** - आचार्य को, **बुद्धोवघाई-बुद्धोपघाती-आचार्य** का उपघात करने वाला, **सिया** - हो, **तोत्तगवेसए** - तोत्र गवेषक-छिद्रान्वेषण करने वाला।

भावार्थ - विनीत शिष्य को चाहिए कि वह आचार्य महाराज को कुपित नहीं करे,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपने-आपको भी कुपित नहीं करे। आचार्य की उपघात करने वाला न हो और छिन्द्रान्वेषी (उनके दोषों को देखने वाला) भी न हो।

आयरियं कुवियं णच्चा, पत्तिएणं पसायए।
विज्झविज्ज पंजलिउडो, वएज्ज ण पुणोत्ति य॥४१॥

कठिन शब्दार्थ - **कुवियं** - कुपित, **णच्चा** - जानकर, **पत्तिएणं** - प्रीतिकेन-प्रीति-शांतिपूर्वक हार्दिक भक्ति से अथवा प्रातीतिकेन-शपथ आदि पूर्वक प्रतीतिकारक वचनों से, **पसायए** - प्रसन्न करे, **विज्झविज्ज** - शांत करे, **पंजलिउडो** - हाथ जोड़ कर, **वएज्ज** - कहे, **पुणो** - फिर, **त्ति** - ऐसा अपराध।

भावार्थ - आचार्य महाराज को कुपित जानकर विश्वासोत्पादक एवं विनय युक्त वचन कह कर उन्हें प्रसन्न करे और उनके क्रोध को शांत करे तथा हाथ जोड़ कर अपने अपराध की क्षमा मांगे और कहे कि हे भगवन्! फिर ऐसा अपराध कभी नहीं करूँगा।

विनीत को लौकिक व लोकोत्तर लाभ

धम्मज्जियं च ववहारं, बुद्धेहिं आयरियं* सया।
तमायरंतो ववहारं, गरहं णाभिगच्छइ॥४२॥

कठिन शब्दार्थ - **धम्मज्जियं** - क्षमा आदि यति धर्म युक्त, **ववहारं** - व्यवहार का, **बुद्धेहिं** - तत्त्वज्ञों ने, **आयरियं** - सेवन किया है, **तं** - उस, **आयरंतो** - आचरण करने वाला, **गरहं** - निन्दा को, **णाभिगच्छइ** - प्राप्त नहीं होता।

भावार्थ - तत्त्वज्ञ मुनियों ने सदा क्षमा आदि यतिधर्म युक्त व्यवहार का सेवन किया है, उस पाप कर्म हटाने वाले व्यवहार का आचरण करने वाला व्यक्ति निंदा को प्राप्त नहीं होता।

मणोगयं वक्कगयं, जाणित्ताऽऽयरियस्स उ।
तं परिगिज्झ वायाए, कम्मुणा उववायए॥४३॥

कठिन शब्दार्थ - **मणोगयं** - मनोगत - मन में रहे हुए अभिप्राय को, **वक्कगयं** - वचनों को सुन कर, **जाणित्ता** - जान कर, **आयरियस्स** - आचार्य महाराज के, **परिगिज्झ** - स्वीकार करे, **वायाए** - वचन से, **कम्मुणा** - कार्य से, **उववायए** - आचरण में लावे।

---

* पाठान्तर - **बुद्धेहाऽऽयरियं**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

भावार्थ - आचार्य महाराज के मन में रहे हुए अभिप्राय को जान कर और उनके वचनों को सुन कर, उसे वाणी द्वारा स्वीकार करे और कार्य द्वारा आचरण में लावे।

वित्ते अचोइए णिच्चं, खिप्पं हवइ सुचोइए।
जहोवइट्ठं सुकयं, किच्चाइं कुव्वइ सया॥४४॥

कठिन शब्दार्थ - **वित्ते** - विनीत शिष्य, **अचोइए** - प्रेरित न किये जाने पर, **खिप्पं** - शीघ्र ही, **हवइ** - प्रवृत्त होता है, **सुचोइए** - अच्छी तरह प्रेरित किये जाने पर, **जहोवइट्ठं** - यथोपदिष्ट रूप से, **सुकयं** - भलीभांति, **किच्चाइं** - कार्यों को, **कुव्वइ** - करता है।

भावार्थ - विनयवान् शिष्य सदा गुरु के प्रेरणा किये बिना ही उनका कार्य करता है और गुरु महाराज के सम्यक् प्रेरणा करने पर वह बुरा नहीं मानता, किन्तु शीघ्र ही उस कार्य में प्रवृत्ति करता है तथा सदैव गुरु महाराज के कहे अनुसार भली प्रकार कार्य करता है।

विवेचन - विनीत शिष्य अपनी कार्य दक्षता से भी गुरुजनों की प्रसन्नता के सम्पादन में किसी प्रकार की कसर बाकी न रखे, यही उसके विनय धर्म के अनुशीलन का सार है।

णच्चा णमइ मेहावी, लोए कित्ती से जायए।
हवइ किच्चाणं सरणं, भूयाणं जगई जहा॥४५॥

कठिन शब्दार्थ - **णमइ** - झुक जाता है, **मेहावी** - मेधावी - बुद्धिमान्, **लोए** - लोक में, **कित्ती** - कीर्ति, **जायए** - होती है, **किच्चाणं** - शुभ अनुष्ठानों - धर्माचरण का **सरणं** - शरण - आधार रूप, **जगई** - पृथ्वी, **जहा** - जैसे।

भावार्थ - ऊपर बतलाये हुए विनय के स्वरूप को जान कर बुद्धिमान् व्यक्ति नम्र बनता है, लोक में उसकी कीर्ति होती है और जिस प्रकार पृथ्वी सब प्राणियों के लिए आधार रूप है, उसी प्रकार वह भी सभी शुभ अनुष्ठानों एवं सद्गुणों का आधार रूप होता है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में विनय धर्म की फलश्रुति का उल्लेख किया गया है।

पुज्जा जस्स पसीयंति, संबुद्धा पुव्व-संथुया।
पसण्णा लाभइस्संति, विउलं अट्ठियं सुयं॥४६॥

कठिन शब्दार्थ - **पुज्जा** - पूज्य आचार्य आदि, **जस्स** - जिस पर, **पसीयंति** - प्रसन्न होते हैं, **संबुद्धा** - सम्बुद्ध - सम्यक् वस्तु तत्त्ववेत्ता, **पुव्वसंथुया** - पूर्व संस्तुत - परिचित, **पसण्णा** - प्रसन्न हुए, **लाभइस्संति** - लाभ देंगे, **विउलं** - विपुल, **अट्ठियं** - मोक्ष के अर्थ वाले - मोक्ष के प्रयोजन भूत, **सुयं** - श्रुतज्ञान का।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - तत्त्वज्ञानी पहले से ही शिष्य के विनयादि गुणों से परिचित पूज्य आचार्य महाराज जिस शिष्य पर प्रसन्न होते हैं, उसे, प्रसन्न हुए वे मोक्ष अर्थ वाले विपुल श्रुतज्ञान का लाभ देंगे।

विनय का महत्त्व

स पुज्जसत्थे सुविणीयसंसए, मणोरुई चिट्ठइ कम्मसंपया।
तवो समायारी समाहि संवुडे, महज्जुई पंच-वयाइं पालिया॥४७॥

कठिन शब्दार्थ - **पुज्जसत्थे** - पूज्य शास्त्र - शास्त्रीय ज्ञान में पूज्य सम्माननीय, प्रशंसनीय, **सुविणीयसंसए** - संशय रहित, **मणोरुई** - गुरु के मन को प्रीतिकर, **कम्मसंपया**- कर्म संपदा दस प्रकार की समाचारी से सम्पन्न, **तवो समाचारी** - तप समाचारी **समाहि**- समाधि, **संवुडे** - संवृत-सम्पन्न, **महज्जुई** - महान् द्युतिमान् (तपोदीप्ति युक्त), **पंचवयाइं** - पांच महाव्रतों का, **पालिया** - पालन करके।

भावार्थ - विनय की आराधना करने से शिष्य का शास्त्र ज्ञान प्रशंसनीय और संशय रहित होता है। वह विनीत शिष्य गुरु की रुचि के अनुसार प्रवृत्ति करता है और दस प्रकार की समाचारी से सम्पन्न होता है। तप समाचारी और समाधि से संवर वाला हो कर तथा पांच महाव्रतों का भली प्रकार पालन कर महान् तेजस्वी होता है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में विनय की महिमा गायी गई है। विनय धर्म की इससे अधिक और क्या महिमा हो सकती है कि उसके उपासक को जनता पूज्य शास्त्र की उपाधि से अलंकृत करती है अर्थात् उसका अध्ययन किया हुआ शास्त्र औरों की अपेक्षा अधिक पूज्य समझा जाता है तथा उसके श्रुतज्ञान को अन्य सर्व साधारण की अपेक्षा अधिक परिष्कृत, असंदिग्ध और आदरणीय माना जाता है क्योंकि उसने गुरु चरणों में रह कर विनय धर्म की सतत आराधना करते हुए श्रुत का सम्यक् अध्ययन किया है। विनयपूर्वक प्राप्त किया श्रुतज्ञान ही संदेह रहित होता है।

विनय का फल

स देवगंधव्वमणुस्स पूइए, चइत्तु देहं मलपंकपुव्वयं।
सिद्धे वा हवइ सासए, देवे वा अप्परए महिड्ढिए॥४८॥ त्ति बेमि॥

॥ विणयसुयं णाम पढमं अज्झयणं समत्तं॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **देवगंधव्वमणुस्स** - देव, गंधर्व और मनुष्य से, **पूइए** - पूजित, **चइत्तु** - छोड़ कर, **देहं** - शरीर को, **मलपंकपुव्वयं** - मल पंक (रज-वीर्य) पूर्वक, **सिद्धे** - सिद्ध, **सासए** - शाश्वत, **देवे** - देव, **अप्परए** - अल्प कर्म रज वाला, **महिड्ढिए** - महान् ऋद्धि वाला, **त्ति बेमि** - ऐसा मैं कहता हूँ।

भावार्थ - देव गन्धर्व और मनुष्य से पूजित वह विनीत शिष्य मलमूत्रादि से भरे हुए इस अपवित्र शरीर को छोड़ कर इसी जन्म में शाश्वत सिद्ध हो जाता है अथवा यदि कुछ कर्म शेष रह जाय तो महान् ऋद्धि वाला देव होता है।

त्ति बेमि - श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बूस्वामी से कहते हैं कि हे आयुष्मन् जम्बू! जैसा मैंने भगवान् महावीर स्वामी से सुना है, वैसा ही मैं तुम्हें कहता हूँ।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में विनय धर्म की फल श्रुति का वर्णन करते हुए उसके ऐहिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के विशिष्ट फल का प्रतिपादन किया गया है। इस गाथा में प्रयुक्त-

'मलपंकपुव्वयं' शब्द के दो अर्थ हैं - १. आत्म शुद्धि का विघातक होने से पाप कर्म एक प्रकार का मल है और वही पंक है। इस शरीर की प्राप्ति का कारण कर्ममल होने से वह भावतः मलपंक पूर्वक है और २. इस शरीर की उत्पत्ति माता के रज और पिता के वीर्य से होती है, माता का रज मल है और पिता का वीर्य पंक है अतः यह देह द्रव्यतः भी मलपंक (रज वीर्य) पूर्वक है।

त्ति बेमि में इति शब्द समाप्ति के अर्थ का बोधक है और ब्रवीमि का अर्थ हैं - मैं भगवान् एवं गणधरादि के उपदेश से ऐसा कहता हूँ अर्थात् सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बूस्वामी से कहते हैं कि मैंने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से जो विनय का स्वरूप सुना है उसी प्रकार मैंने तुम को कहा है, इसमें मैंने अपनी निजी कल्पना से कुछ भी नहीं कहा है।

॥ इति विनयश्रुत नामक प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिसहं णामं बीयं अज्झयणं

परीषह नामक दूसरा अध्ययन

उत्थानिका - पहले अध्ययन में विनय धर्म का स्वरूप विस्तार पूर्वक निरूपण करने के बाद सूत्रकार द्वारा उत्तराध्ययन सूत्र के द्वितीय अध्ययन में परीषह-जय के संबंध में चिंतन किया गया है। संयम साधना के पथ पर कदम बढ़ाते समय विविध प्रकार के कष्ट आते हैं पर साधक उन कष्टों से घबराता नहीं है। वह तो उस झरने की तरह है जो वज्र चट्टानों को चीर कर आगे बढ़ता है। न उसके मार्ग को पत्थर रोक पाते हैं और न ही गहरे गर्त ही। वह तो अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर बढ़ता रहता है। पीछे लौटना उसके जीवन का लक्ष्य नहीं होता।

परीषह अर्थात् 'परीत्ति सर्व प्रकारेण सह्यते इति परिषहः'

चारों ओर से आने वाले कष्टों को समभाव पूर्वक सहन करना परीषह है। परीषह की परिभाषा करते हुए तत्त्वार्थ सूत्र ९/८ में कहा है।

'मार्गाच्यवन निर्जरार्थं, परिषोढव्याः परीषहाः'

स्वीकृत मार्ग से च्युत न होने के लिए तथा कर्म निर्जरा के लिये जो कुछ सहा जाता है वह 'परीषह' है। उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २, समवायांग सूत्र समवाय २२ और तत्त्वार्थ सूत्र ९/८ में परीषह की संख्या २२ बताई है। समवायांग सूत्र में परीषह के २२ भेद इस प्रकार कहे हैं -

१.. क्षुधा २. पिपासा ३. शीत ४. उष्ण ५. दंशमशक ६. अचेल ७. अरति ८. स्त्री ९. चर्या १०. निषद्या ११. शय्या १२. आक्रोश १३. वध १४. याचना १५. अलाभ १६. रोग १७. तृण स्पर्श १८. जल्ल १९. सत्कार पुरस्कार २०. ज्ञान २१. दर्शन २२ प्रज्ञा।

समवायांग सूत्र के २२ वें समवाय में २२ परीषहों के नाम उपरोक्तानुसार है। उसमें १ से लेकर २१ तक के नामों में उत्तराध्ययन सूत्र के समान ही नाम दिये गये हैं। २२ वें परीषह का नाम 'अदर्शन परीषह' बताया गया है। ऐसा ही वर्णन तत्त्वार्थ सूत्र के ९वें अध्याय के ९ वें सूत्र में भी मिलता है। दर्शन परीषह और अदर्शन परीषह दोनों का भावार्थ एक ही है।

परीषहों की उत्पत्ति का कारण ज्ञानावरणीय, अन्तराय, मोहनीय और वेदनीय कर्म हैं। ज्ञानावरणीय कर्म, प्रज्ञा और अज्ञान परीषहों का, अन्तराय कर्म अलाभ परीषह का, दर्शन मोहनीय दर्शन परीषह का और चारित्र मोहनीय अचेल, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याचना,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सत्कार पुरस्कार, इन सात परीषहों का कारण है। वेदनीय कर्म क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंशमशक, शय्या, वध, रोग, तृण स्पर्श और जल्ल इन ग्यारह परीषहों का कारण है।

परीषह-निरूपण

द्वितीय अध्ययन में परीषहों का विस्तृत वर्णन है। इस का प्रथम सूत्र इस प्रकार हैं -

सुयं मे आउसं तेणं भगवया एवमक्खायं - इह खलु बावीसं परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया, जे भिक्खू सुच्चा णच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्खायरियाए परिव्वयंतो पुट्ठो णो विणिहण्णेज्जा।

कठिन शब्दार्थ - सुयं मे - मैंने सुना है, **आउसं** - हे आयुष्मन्, **एवं** - इस प्रकार, **अक्खायं** - प्रतिपादन किया है, **इह** - इस, जिनशासन में, **बावीसं** - बाईस, **परीसहा** - परीषह, **समणेणं** - श्रमण, **भगवया** - भगवान्, **महावीरेणं** - महावीर, **कासवेणं** - काश्यप गोत्री ने, **पवेइया** - बतलाये हैं, **जे** - जिनको, **भिक्खू** - साधु, **सोच्चा** - सुन कर, **णच्चा**- जान कर, **जिच्चा** - परिचित होकर, **अभिभूय** - जीत कर, **भिक्खायरियाए** - भिक्षाचर्या के लिए, **परिव्वयंतो** - पर्यटन करता हुआ, **पुट्ठो** - स्पृष्ट होने पर, **णो विणिहणेज्जा** - विचलित न होवें।

भावार्थ - श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बूस्वामी से कहते हैं कि हे आयुष्मन् जम्बू! मैंने सुना है उन भगवान् ने इस प्रकार कहा है, यहाँ जिन प्रवचन में काश्यप गोत्रीय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने बाईस परीषह कहे हैं, जिन्हें सुनकर, उनके स्वरूप को जान कर परिचित हो कर और जीत कर साधु भिक्षाचर्या में जाते हुए उन परीषहों के उपस्थित होने पर संयम से विचलित न होवे।

विवेचन - श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बूस्वामी से परीषहों का वर्णन करते हुए उसको प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए अपनी श्रुति परम्परा का भी उल्लेख करते हैं। यथा -

हे आयुष्मन्! मैंने सुना है कि उस जगत् प्रसिद्ध सर्वैश्वर्य सम्पन्न भगवान् ने इस रीति से प्रतिपादन किया है।

शंका - किस स्थान पर प्रतिपादन किया है?

समाधान - इस प्रवचन में प्रतिपादन किया है कि काश्यप गोत्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने बाईस परीषह बतलाये हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शंका - भगवान् ने स्वयं बतलाये हैं या किसी से सुन कर?

समाधान - किसी से सुन कर नहीं किन्तु अपने केवलज्ञान में देख कर इनका प्रतिपादन किया है।

साधु मुनिराज इन परीषहों को अपने गुरु भगवंतों के मुखारविंद से सुन कर यथावत् जान कर के पुनः पुनः अभ्यास के द्वारा इन से परिचित हो कर और इनके सामर्थ्य को नष्ट करके अपने चारित्र में - स्वीकृत नियम में दृढ़ रहने का प्रयत्न करे किन्तु भिक्षाचरी में घूमते हुए-भिक्षा के निमित्त भ्रमण करते हुए साधु को यदि कोई परीषह उपसर्ग (कष्ट) आ जावे तो वह दृढ़ता से और समभाव से उसका सामना करे तथा उस पर विजय प्राप्त करने की कोशिश करे परन्तु परीषह से डर कर अपने संयम मार्ग से भ्रष्ट होने की गर्हित चेष्टा कदापि न करें।

शंका - काश्यप शब्द सामान्यतया भगवान् ऋषभदेव का वाचक है फिर यहाँ भगवान् महावीर स्वामी के लिए 'काश्यप' शब्द का प्रयोग क्यों किया गया है?

समाधान - यद्यपि काश्यप शब्द सामान्यतया भगवान् ऋषभदेवस्वामी का वाचक है परन्तु टीकाकार ने यहाँ पर काश्यप शब्द से भगवान् महावीर स्वामी का ग्रहण किया है क्योंकि वे ही इस समय शासनपति हैं।

अब जम्बू स्वामी की परीषहों के विषय में जो जिज्ञासा है उसका उल्लेख किया जाता है।

जम्बू स्वामी की जिज्ञासा

कयरे खलु ते बावीसं परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया जे भिक्खू सुच्चा णच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्खायरियाए परिव्वयंतो पुट्ठो णो विणिहण्णेज्जा?

भावार्थ - शिष्य पूछता है कि हे भगवन्! वे बाईस परीषह कौन से हैं, जिन्हें काश्यप गोत्रीय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने कहे हैं, जिन्हें सुन कर, जिनके स्वरूप को जान कर, अभ्यस्त कर और जीत कर साधु भिक्षाचर्या में जाते हुए परीषहों के उपस्थित होने पर संयम से विचलित न होवे।

सुधर्मा स्वामी का समाधान

इमे खलु ते बावीसं परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जे भिक्खू सुच्चा णच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्खायरियाए परिव्वयंतो पुट्ठो णो विणिहण्णेज्जा।

भावार्थ - गुरु महाराज फरमाते हैं कि हे शिष्य! काश्यप गोत्रीय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी द्वारा कहे हुए वे बाईस परीषह ये हैं जिन्हें सुन कर, जान कर, अभ्यस्त कर और जीत कर साधु भिक्षाचर्या में जाते हुए परीषहों के उपस्थित होने पर संयम से विचलित न होवे।

बाईस परीषहों के नाम

तं जहा - (१) दिगिंछा परीसहे (२) पिवासा परीसहे (३) सीय परीसहे (४) उसिण परीसहे (५) दंसमसग परीसहे (६) अचेल परीसहे (७) अरइ परीसहे (८) इत्थी परीसहे (९) चरिया परीसहे (१०) णिसीहिया परीसहे (११) सिज्जा परीसहे (१२) अक्कोस परीसहे (१३) वह परीसहे (१४) जायणा परीसहे (१५) अलाभ परीसहे (१६) रोग परीसहे (१७) तणफास परीसहे (१८) जल्ल परीसहे (१९) सक्कार-पुरक्कार परीसहे (२०) पण्णा परीसहे (२१) अण्णाण परीसहे (२२) दंसण परीसहे।

कठिन शब्दार्थ एवं भावार्थ - तंजहा - वे २२ परीषह इस प्रकार हैं, **दिगिंछा परीसहे**- क्षुधा का परीषह, **पिवासा परीसहे** - प्यास का परीषह, **सीय परीसहे** - शीत का परीषह, **उसिण परीसहे** - उष्ण (गर्मी का) परीषह, **दंसमसग परीसहे** - दंशमशक (डाँस मच्छर आदि से होने वाला) परीषह, **अचेल परीसहे** - वस्त्र के अभाव से अथवा जीर्ण या अल्प वस्त्रों से होने वाला परीषह, **अरइ परीसहे** - अरति अर्थात् संयम में रति न होने का परीषह, **इत्थी परीसहे** - स्त्री का परीषह, **चरिया परीसहे** - चर्या (विहार का) परीषह, **णिसीहिया परीसहे**- निषद्या (एकान्त स्थान में बैठने का) परीषह, **सिज्जा परीसहे** - शय्या (रहने के स्थान की प्रतिकूलता से होने वाला) परीषह, **अक्कोस परीसहे** - आक्रोश (गाली आदि कठोर वचनों का) परीषह, **अलाभ परीसहे** - अलाभ (भिक्षा में आहारादि न मिलने का) परीषह, **रोग परीसहे** - रोग परीषह, **तणफास परीसहे** - तृण स्पर्श परीषह, **जल्ल परीसहे** - मैल परीषह, **सक्कार पुरक्कार परीसहे** - सत्कार-पुरस्कार परीषह (सत्कार एवं मान प्रतिष्ठा मिलने पर हर्षित न होना और न मिलने पर खिन्न न होना), **पण्णा परीसहे** -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रज्ञा परीषह, **अण्णाण परीसहे** - अज्ञान (अल्प ज्ञान का) परीषह, **दंसण परीसहे** - दर्शन (सम्यक्त्व) परीषह।

परीषहों का स्वरूप

परीसहाणं पविभत्ति, कासवेणं पवेइया।

तं भे उदाहरिस्सामि, आणुपुव्विं सुणेह मे॥१॥

कठिन शब्दार्थ - **परीसहाणं** - परीषहों का, **पविभत्ति** - प्रविभक्ति - विभाग, **उदाहरिस्सामि** - कहूँगा, **तं** - उसे, **भे** - तुम्हें, **आणुपुव्विं** - अनुक्रम से, **सुणेह** - सुनो, **मे** - मुझ से।

भावार्थ - काश्यप गोत्रीय भगवान् महावीर स्वामी ने परीषहों का जो विभाग फरमाया है, उसे आप लोगों से कहूँगा, क्रमशः मुझ से सुनो।

१. क्षुधा परीषह

दिगिंछा परिगए देहे, तवस्सी भिक्खू थामवं।

ण छिंदे ण छिंदावए, ण पए ण पयावए॥२॥

कठिन शब्दार्थ - **दिगिंछा परिगए** - क्षुधा परिगत-क्षुधा से व्याप्त, **देहे** - शरीर में, **तवस्सी** - तपस्वी, **भिक्खू** - साधु, **थामवं** - बलवान् - संयम बल या मनोबल से युक्त, **ण छिंदे** - छेदन न करे, **ण छिंदावए** - दूसरों से छेदन नहीं करावे, **ण पए** - स्वयं न पकावे, **ण पयावए** - न दूसरों से पकवाए।

भावार्थ - भूख से शरीर के पीड़ित होने पर भी संयम बल वाले तपस्वी साधु फलादि का स्वयं छेदन नहीं करे, दूसरों से छेदन नहीं करावे, अन्न आदि स्वयं न पकावे दूसरों से न पकवावे।

विवेचन - आगमकारों ने साधु के उक्त २२ परीषहों में क्षुधा परीषह को प्रथम स्थान दिया है, क्योंकि अन्य कष्टों की अपेक्षा क्षुधा का कष्ट अधिक बलवान् है और अन्य परीषहों की अपेक्षा वह दुर्जेय है। संयमशील साधु उस क्षुधा को समभाव पूर्वक बिना किसी प्रकार का आर्त्तध्यान किये हुए सहन करे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुत गाथा में वृक्षों के कच्चे अथवा पक्के फलों को स्वयं तोडने या दूसरों से तुड़वाने तथा उनके छेदन करने और दूसरों से करवाने एवं टूटे हुए उन सचित्त फलों तथा अन्य खाद्य पदार्थों को स्वयं पकाने या दूसरों से पकवाने का साधु के लिए स्पष्ट निषेध किया है अर्थात् साधु अपनी तीव्र क्षुधा को शांत करने के लिए आधाकर्मी आदि दोषों से दूषित आहार को प्राप्त करने का पापमय प्रयत्न कदापि न करे।

काली पव्वगं संकासे, किसे धमणिसंतए।
मायण्णे असण-पाणस्स अदीणमणसो चरे॥३॥

कठिन शब्दार्थ - काली पव्वंग - काक जंघा के, **संकासे** - समान, **किसे** - कृश, **धमणिसंतए** - धमनियों का जाल, **मायण्णे** - मात्रज्ञ - मात्रा जानने वाला, **असणपाणगस्स**- आहार पानी की, **अदीणमणसो** - दीनता रहित मन वाला होकर, **चरे** - विचरण करे।

भावार्थ - क्षुधा परीषह से सूख कर शरीर चाहे काकजंघा के समान दुर्बल हो जाय, नसें दिखने लग जाय, शरीर अत्यन्त कृश एवं दुर्बल हो जाय तो भी आहार पानी की मर्यादा को जानने वाला साधु मन में दीनता के भाव न लाता हुआ दृढ़ता के साथ संयम मार्ग में विचरे।

विवेचन - तपोनुष्ठान से जिसका शरीर अत्यंत कृक्ष हो गया है ऐसा अस्थिपंजरमय नितान्त कृश शरीर वाला साधु अदीन होकर बड़ी दृढ़ता से संयम मार्ग में विचरण करे अर्थात् उसे साधु के ग्रहण करने योग्य शुद्ध आहार - भिक्षा न मिले तो वह उसके लिए किसी प्रकार की दीनता सूचक लालसा को प्रकट न करे किन्तु क्षुधा के उस असहनीय कष्ट को भी समभाव से सहन कर लेवे और यदि उसको प्रासुक एषणीय आहार कहीं से मिल जाय तो उसकी सरसता में वह अपने आप को मूर्च्छित न करे तथा प्रमाण से अधिक भोजन करने की इच्छा भी न करे।

२. तृषा (पिपासा) परीषह

तओ पुट्ठो पिवासाए, दुगुंछी लज्जसंजए।
सीओदगं ण सेवेज्जा, वियडस्सेसणं चरे॥४॥

कठिन शब्दार्थ - पुट्ठो - स्पर्शित हुआ, **पिवासाए** - पिपासा - प्यास से, **दुगुंछी** - घृणा करने वाला, **लज्जसंजए** - लज्जावान् साधु, **सीओदगं** - शीतोदक - सचित्त जल का, **ण सेवेज्जा** - सेवन न करे, **वियडस्सेसणं** - विकृत - प्रासुक अचित्त जल की एषणा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - क्षुधा परीषह के बाद तृषा परीषह का वर्णन किया जाता है, अनाचार सेवन से घृणा करने वाला लज्जा और संयम वाला साधु, प्यास से पीड़ित होने पर सचित्त पानी का सेवन न करे, किन्तु अग्नि आदि के संयोग से प्रासुक बने हुए पानी की एषणा के लिए विचरे।

विवेचन - क्षुधा के बाद अब तृषा परीषह का वर्णन किया जाता है। अत्यंत बढ़ी हुई तृषा की शांति के निमित्त साधु को अविकृत - सचित्त (सजीव) जल के ग्रहण का सर्वथा निषेध है इसलिए विकृत - शस्त्रादि से अथवा अग्नि आदि के स्पर्श से विकृति को प्राप्त होकर जो जल पूर्णतया अचित्त-निर्जीव हो गया है उससे ही साधु उस तृषा को शांत करने का प्रयत्न करे।

छिण्णावाएसु पंथेसु, आउरे सुपिवासिए।
परिसुक्कमुहेऽदीणे, तं तितिक्खे परीसहं॥५॥

कठिन शब्दार्थ - **छिण्णावाएसु** - आवागमन से शून्य, **पंथेसु** - मार्गों में, **आउरे** - आतुर, **सुपिवासिए** - सुपिपासित - तीव्र प्यास से, **परिसुक्क मुहे** - सूखा हुआ मुख, **अदीणे** - अदीन-दीनता रहित, **तितिक्खे** - सहन करे।

भावार्थ - जहाँ लोगों का आना-जाना नहीं है ऐसे निर्जन मार्ग में जाता हुआ साधु प्यास से अतिव्याकुल हो जाय तथा मुँह सूख जाय फिर भी वह दीनता रहित होकर उस प्यास के परीषह को सहन करे, किन्तु साधु-मर्यादा का उल्लंघन कर के सचित्त पानी का सेवन नहीं करे।

विवेचन - दोपहर के समय अत्यंत धूप पड़ने के कारण जिन मार्गों में लोगों का आवागमन रुक गया हो और विहार करता हुआ साधु यदि उन मार्गों में चला जाय एवं वहाँ पर अत्यंत तृषा लगने के कारण उसका मुख सूखने लगे और चित्त व्याकुल हो जाय तो ऐसी दशा में भी संयमशील साधु सचित्त जल का सेवन न करे किन्तु तृषा के इस परीषह को अदीनता पूर्वक समभाव से सहन करे।

भूख और प्यास के कारण जिस साधु का शरीर अति कृश हो गया उसको शीत की बाधा विशेष रूप से उत्पन्न हो जाती है अतः आगमकार अब तीसरे शीत परीषह का वर्णन करते हैं।

३. शीत परीषह

चरंतं विरयं लूहं, सीयं फुसइ एगया।
णाइवेलं मुणी गच्छे, सुच्चाणं जिणसासणं॥६॥

कठिन शब्दार्थ - **चरंतं** - विचरते हुए, **विरयं** - विरत - हिंसादि से निवृत्त, **लूहं** -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रूक्ष शरीर वाले, **सीयं** - शीत का, **फुसइ** - स्पर्श हो, **एगया** - कभी, **ण** - नहीं, **अइवेलं** - काल का उल्लंघन करके, **गच्छे** - जावे, **सुच्चाणं** - सुनकर, **जिणसासणं** - जिन (भगवान्) के शासन को।

भावार्थ - अग्नि आदि के आरम्भ से निवृत्त रूक्ष शरीर वाले साधु को संयम मार्ग में विचरते हुए कभी शीतकाल में या अन्य समय में ठंड लगे तो साधु जिनागम को सुन कर साधु-मर्यादा या स्वाध्याय आदि की वेला का अतिक्रमण कर एक स्थान से दूसरे स्थान न जावे।

विवेचन - यदि किसी स्थान पर साधु को शीत की बाधा उपस्थित हो जावे तो साधु अपने स्वाध्याय के समय की अवहेलना करके शीत की निवृत्ति के लिए किसी अन्य स्थान में जाने की कोशिश न करे किन्तु भगवान् की साधु धर्म संबंधी शिक्षा का विचार करता हुआ उस असह्य शीत परीषह को सहन करने में ही अपने दृढ़तर संयम का परिचय देवें।

ण मे णिवारणं अत्थि, छवित्ताणं ण विज्जइ।
अहं तु अग्गिं सेवामि, इइ भिक्खू ण चिंतए॥७॥

कठिन शब्दार्थ - **णिवारणं** - शीत निवारक स्थान, **ण अत्थि** - नहीं है, **छवित्ताणं** - शरीर रक्षक कम्बल आदि, **ण विज्जइ** - नहीं है, **अहं** - मैं, **तु** - तो, **अग्गिं** - अग्नि का, **सेवामि** - सेवन कर लूं, **इइ** - इस प्रकार, **ण चिंतए** - न सोचे।

भावार्थ - शीत एवं वायु के बचाने वाले मकान आदि मेरे पास नहीं हैं और न मेरे पास शरीर की रक्षा करने वाले, वस्त्र - कम्बल आदि हैं, इसलिए मैं तो अग्नि का सेवन कर लूँ, इस प्रकार साधु सेवन करना तो दूर रहा, विचार भी नहीं करे।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में आगमकार साधु को अग्नि सेवन का निषेध करते हैं। क्योंकि अग्नि शास्त्रीय सिद्धान्त के अनुसार सचित्त वस्तु है, अग्निकाय के जीवों का ही एक पिण्डमात्र है इसलिए किसी शीत निवारक स्थान के न होने पर और शीत से रक्षा करने वाले कम्बल आदि वस्त्र का संयोग न होने पर भी साधु अग्नि का स्पर्श न करे किन्तु शीत की उस असह्य वेदना को समभाव पूर्वक सहन कर लेवें।

८ उष्ण परीषह

उसिण-परियावेणं, परिदाहेण तज्जिए।
घिंस वा परियावेणं, सायं णो परिदेवए॥८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **उसिण** - उष्णता (गरमी) के, **परियावेणं** - परिताप से, **परिदाहेण**- सर्व प्रकार के दाह से, **तज्जिए** - तर्जित - पीड़ित, **घिंसु** - ग्रीष्म ऋतु, **सायं** - साता (सुख) का, **परिदेवए** - विलाप न करे।

भावार्थ - ग्रीष्म ऋतु में अथवा अन्य ऋतु में उष्ण स्पर्श वाले पृथ्वी शिला आदि के ताप से, शरीर के भीतर और बाहर के दाह (जलन) से और सूर्य के ताप से पीड़ित हुआ साधु सुख के लिए परिदेवना (विलाप) न करे कि यह ताप कब शान्त होगा?

विवेचन - इस गाथा में उष्ण परीषह के उपस्थित होने पर साधु को आर्त्तध्यान करने का निषेध किया गया है। शांति पूर्वक कष्ट सहन करने में दो लाभ हैं - १. कष्ट की निवृत्ति हो जाती है और २. कर्मों की निर्जरा होती है। अतः संयमी साधु को गरमी के परीषह को समभाव से सहन करना चाहिये।

उण्हाहितत्तो मेहावी, सिणाणं णो वि पत्थए।
गायं ण परिसिंचेज्जा, ण वीएज्जा य अप्पयं॥९॥

कठिन शब्दार्थ - **उण्हाहि** - उष्णता से, **तत्तो** - तप्त, **मेहावी** - मेधावी, **सिणाणं** - स्नान को, **वि** - कभी भी, **णो पत्थए** - इच्छा न करे, **गायं** - गात्र - शरीर को, **ण परिसिंचेज्जा**- जल से सिंचन न करे, **ण वीएज्जा** - पंखे से हवा न करे।

भावार्थ - गर्मी से अत्यंत पीड़ित होने पर भी बुद्धिमान् साधु स्नान की अभिलाषा न करे, शरीर को जल से न भिगोवे और अपने शरीर पर पंखे आदि से हवा नहीं करे।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में उष्णता के कारण शरीर में उत्पन्न होने वाले परिताप की निवृत्ति के जितने भी बाह्य साधन हैं उन सब के उपयोग का साधु के लिए निषेध किया गया है।

स्नान के दो भेद हैं - १. देश स्नान और २. सर्व स्नान। केवल हाथ मुंह आदि धोना देश स्नान है और सिर से लेकर पांव तक शरीर को धोना सर्व स्नान है। साधु के लिए दोनों प्रकार के स्नान त्याज्य हैं तथा जल बिन्दुओं का शरीर पर छींटना और पंखे की हवा करना, यह भी निषिद्ध है। अतः उष्ण परीषह को समभाव पूर्वक सहन करना ही साधुचर्या की सच्ची कसौटी है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५ दंशमशक परीषह

पुट्ठो य दंसमसएहिं, समरे व महामुणी।
णागो संगाम-सीसे वा, सूरे● अभिहणे परं॥१०॥

कठिन शब्दार्थ - **दंसमसएहिं** - डांस-मच्छरों से, **समरे व** - संग्राम की तरह, समभाव वाला, **णागो** - हाथी, **संगामसीसे** - संग्राम के अग्रभाग पर रहा हुआ, **सूरे-सूरो** - शूरवीर, **अभिहणे** - हनन करता है, **परं** - अन्य शत्रु को।

भावार्थ - जिस प्रकार संग्राम के अग्रभाग पर रहा हुआ हाथी और शूरवीर योद्धा, शत्रु के बाणों की परवाह न करते हुए शत्रु को मारता है और विजय प्राप्त करता है, उसी प्रकार उत्तम साधु डांस-मच्छर आदि के काटने रूप कष्ट की उपेक्षा करता हुआ, क्रोधादि भाव-शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिए आत्म-संग्राम में डटा रहे।

विवेचन - दंशमशक आदि जीवों के सताये जाने पर भी साधु समभाव से इन कष्टों को सहन करे, इसी में उसकी शूरवीरता है।

ण संतसे ण वारिजा, मणंपि णो पओसए।
उवेहे णो हणे पाणे, भुंजंते मंस-सोणियं॥११॥

कठिन शब्दार्थ - **ण संतसे** - त्रास न देवे, **ण वारेजा** - न हटावे, **मणंपि** - मन से भी, **ण पओसए** - द्वेष न करे, **उवेहे** - उपेक्षा करे, उदासीन (सम) भाव से रहे, **णो हणे** - नहीं हने, **पाणे** - प्राणियों को, **भुंजंते** - खाते हुए, **मंससोणियं** - मांस और रुधिर को।

भावार्थ - मांस और रक्त को चूसते हुए डांस-मच्छर आदि प्राणियों को मारे नहीं और न उन्हें त्रास ही पहुँचावे तथा उन्हें रोक कर अन्तराय भी न करे, यहाँ तक कि मन से भी उन पर द्वेष न करे, किन्तु समभाव रखे।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में मच्छर, मक्खी आदि जंतुओं के प्रतिकार का साधु के लिए निषेध किया गया है।

दंशमशक आदि के उपद्रव से बचने के लिए वस्त्र आदि की गवेषणा करनी पड़ती है क्योंकि वस्त्रादि के ओढ़ने पर इनका उपद्रव बहुत कम हो जाता है। इसलिए अब अचेल परीषह का वर्णन किया जाता है।

● पाठान्तर - सूरो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६. अचेल परीषह

परिजुण्णेहिं वत्थेहिं, होक्खामि त्ति अचेलए।
अदुवा सचेलए होक्खं, इइ भिक्खू ण चिंतए॥१२॥

कठिन शब्दार्थ - परिजुण्णेहिं - जीर्ण होने पर, **वत्थेहिं** - वस्त्रों के, **होक्खामि** - हो जाऊँगा, **अचेलए** - अचेलक - वस्त्र रहित, **सचेलए** - सचेलक - वस्त्र सहित, **इइ** - इस प्रकार, **ण चिंतए** - चिंतन नहीं करे।

भावार्थ - वस्त्रों के जीर्ण हो जाने पर मैं वस्त्र-रहित हो जाऊँगा, इस प्रकार अथवा वस्त्र सहित हो जाऊँगा, साधु इस प्रकार विचार न करे।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में साधु को वस्त्रों के विषय में किसी भी प्रकार के ममत्व करने का निषेध किया गया है।

वस्त्र फट जाने पर साधु को भविष्य में वस्त्र न मिलने की आशंका से चिन्तित नहीं होना चाहिए और नये वस्त्र पाने की आशा से प्रसन्न भी नहीं होना चाहिये।

एगया अचेलए होइ, सचेले या वि एगया।
एयं धम्महियं णच्चा, णाणी णो परिदेवए॥१३॥

कठिन शब्दार्थ - एगया - कभी, **धम्महियं** - धर्म के लिए हितकारक, **णाणी** - ज्ञानी, **णो परिदेवए** - खेद नहीं करे।

भावार्थ - कभी (जिनकल्पी अवस्था में) साधु, वस्त्र-रहित होता है और कभी (स्थविरकल्पी अवस्था में) वस्त्र सहित होता है, इस प्रकार वस्त्र-रहित और वस्त्र-सहित, इन दोनों अवस्थाओं को धर्म के लिए हितकारी जान कर ज्ञानी पुरुष खेद नहीं करे।

विवेचन - जिनकल्प और स्थविर कल्प दोनों ही साधु के शास्त्र विहित धर्म-आचार हैं। अतः दोनों ही धर्मों - आचारों को हित रूप जानकर विवेकी पुरुष को कभी खिन्न-चित्त नहीं होना चाहिये।

वस्त्रादि के अभाव से शीत आदि की बाधा का उपस्थित होना अनिवार्य है और किसी प्रकार के कष्ट से अरति का उत्पन्न होना भी अवश्यंभावी है अतः अब अरति परीषह का वर्णन करते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७ अरति परीषह

गामाणुगामं रीयंतं, अणगारमकिंचणं।
अरई अणुप्पविसेज्जा, तं तितिक्खे परीसहं॥१४॥

कठिन शब्दार्थ - **गामाणुगामं** - ग्रामानुग्राम, **रीयंतं** - विचरते हुए, **अकिंचणं** - अकिंचन - परिग्रह रहित, **अरई** - अरति - संयम के प्रति अरुचि, **अणुप्पविसेज्जा** - प्रविष्ट (उत्पन्न) हो जाए, **तितिक्खे** - समभाव से सहन करे।

भावार्थ - ग्रामानुग्राम विहार करते हुए गृहत्यागी परिग्रह-रहित साधु के मन में यदि कभी अरति (संयम में अरुचि) उत्पन्न हो तो उस अरति परीषह को सहन करे और संयम में अरुचि नहीं लावें।

विवेचन - किसी ग्राम के मार्ग में जाते हुए उसी मार्ग में यदि कोई और ग्राम आ जावे तो उसे 'अनुग्राम' कहते हैं।

अरइं पिट्ठओ किच्चा, विरए आयरक्खिए।
धम्मारामे णिरारंभे, उवसंते मुणी चरे॥१५॥

कठिन शब्दार्थ - **पिट्ठओ** - पीठ, **किच्चा** - करके, **विरए** - विरत-हिंसादि से विरत, **आयरक्खिए** - आत्म रक्षक, **धम्मारामे** - धर्म में रमण करने वाला, **णिरारंभे** - निरारंभ-आरम्भ से रहित, **उवसंते** - उपशांत।

भावार्थ - हिंसादि से निवृत्त, दुर्गति से आत्मा की रक्षा करने वाला, आरंभ त्यागी, क्रोध आदि कषायों को शान्त करने वाला साधु, संयम विषयक अरति का तिरस्कार कर के धर्मरूपी उद्यान में विचरे।

विवेचन - साधु पुरुष को पतन की ओर ले जाने वाले जितने दोष हैं उन सब का मूल कारण आरम्भ समारम्भ हैं। अतः त्यागी साधु को आरम्भ समारंभ से सदैव दूर रहना चाहिये तभी वह धर्म रूपी वाटिका में रमण कर सकता है।

चिंता युक्त मनुष्य को कभी-कभी कामवासना के जागने की भी संभावना हो सकती है अतः अब आठवाँ स्त्री परीषह कहा जाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

८. स्त्री परीषह

संगो एस मणुस्साणं, जाओ लोगम्मि इत्थिओ।
जस्स एया परिण्णाया, सुकडं तस्स सामण्णं॥१६॥

कठिन शब्दार्थ - **संगो** - संग - आसक्ति (बंधन) रूप, **मणुस्साणं** - मनुष्यों के लिए, **लोगम्मि** - लोक में, **इत्थिओ** - स्त्रियाँ, **परिण्णाया** - परिज्ञा से, **सुकडं** - सुकृत-सफल, **सामण्णं** - श्रामण्य - साधुत्व।

भावार्थ - लोक में जो स्त्रियाँ हैं, वे मनुष्यों के लिए संग रूप-आसक्ति का कारण है, इन स्त्रियों को जिस साधु ने ज्ञपरिज्ञा से त्याज्य समझ कर प्रत्याख्यान परिज्ञा सें छोड़ दिया है, उस साधु का साधुत्व सफल है।

विवेचन - जिस मुमुक्षु पुरुष ने सोच समझ कर स्त्रियों के अनर्थकारी संसर्ग का पूर्ण रूप से परित्याग कर दिया है उसी का संयम सुंदर और निर्मल है।

एवमाद्दाय मेहावी, पंकभूयाओ इत्थिओ।
णो ताहिं विणिहण्णिज्जा, चरेज्जऽत्तगवेसए॥१७॥

कठिन शब्दार्थ - **एवं** - इस प्रकार, **आदाय** - भलीभांति जान कर, **पंकभूयाओ** - पंक-कीचड़ स्वरूप, **णो विणिहणिज्जा** - हनन न होवे - विनिघात न होने दे, **अत्तगवेसए** - आत्म-गवेषक होकर।

भावार्थ - इस प्रकार स्त्रियों के संग को कीचड़ रूप मान कर बुद्धिमान् साधु उनमें फंसे नहीं तथा आत्म-गवेषक हो कर संयम मार्ग में ही विचरे।

विवेचन - जैसे कीचड़ में फंस जाने वाला पुरुष कभी सूखा नहीं निकल सकता, उसी प्रकार स्त्री रूप कीचड़ के संसर्ग में आने वाले संयमी साधु के संयम व्रत में भी किसी न किसी प्रकार के दोष लगने की अवश्य संभावना है। अतः साधु स्त्री-संसर्ग से अपने आपको दूर रखे।

प्रस्तुत गाथा में आत्म-गवेषक पद दिया है, उसका आशय यह है कि पूर्णतया ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किये बिना आत्मा की गवेषणा नहीं हो सकती अतः मोक्ष पथगामी साधु के लिए यही उचित है कि स्त्रियों को कीचड़ के समान फंसाने वाली और मोक्ष मार्ग में विघ्न रूप समझ कर इनके संसर्ग को सर्वथा त्याग दे और अपने संयमव्रत की आराधना में ही दृढ़तापूर्वक विचरण करे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक ही स्थान में अधिक निवास करने से स्त्री-परीषह की संभावना हो सकती है अतः अब सूत्रकार चर्या परीषह का वर्णन करते हैं।

९. चर्या परीषह

एग एव चरे लाढे, अभिभूय परीसहे।
गामे वा णगरे वावि, णिगमे वा रायहाणीए॥१८॥

कठिन शब्दार्थ - **एग एव** - अकेला, **लाढे** - प्रासुक आहार से निर्वाह करने वाला साधु, **अभिभूय** - जीत कर, **गामे** - ग्राम में, **णगरे** - नगर में, **णिगमे** - निगम में, **रायहाणीए** - राजधानी में।

भावार्थ - प्रासुक-एषणीय आहार से निर्वाह करने वाला प्रशस्त साधु परीषहों को जीत कर, ग्राम अथवा नगर में अथवा व्यापारी बस्ती वाले प्रदेश में अथवा राजधानी में अकेला (राग-द्वेष रहित हो कर) अप्रतिबद्ध विहार करे।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में साधु को एक स्थान में बैठे न रह कर सदा ग्रामानुग्राम विचरण करने का आदेश किया गया है।

प्रस्तुत गाथा में प्रयुक्त **'एग एव'** शब्द के चार अर्थ होते हैं - १. एकाकी - राग द्वेष रहित २. निपुण, गुणी सहायक के अभाव में अकेला विचरण करने वाला गीतार्थ साधु ३. प्रतिमा धारण करके तदनुसार आचरण करने के लिए जाने वाला अकेला साधु ४. कर्म समूह नष्ट होने से मोक्षगामी या कर्म क्षय करने हेतु मोक्ष प्राप्ति योग्य अनुष्ठान के लिये जाने वाला एकाकी साधु।

असमाणो चरे भिक्खू, णेव कुज्जा परिग्गहं।
असंसत्तो गिहत्थेहिं, अणिकेओ परिव्वए॥१९॥

कठिन शब्दार्थ - **असमाणो** - असमान - गृहस्थ से असदृश (विलक्ष), अ+समान - मान (अहंकार, आडम्बर) से रहित, **परिग्गहं** - परिग्रह - ग्रामादि या आहारादि किसी पदार्थ में ममत्व बुद्धि, **असंसत्तो** - असंसक्त - असम्बद्ध - निर्लिप्त, **अणिकेओ** - अनिकेत - गृह बन्धन से मुक्त, **परिव्वए** - परिभ्रमण करे, विचरे।

भावार्थ - साधु गृहस्थियों की नेश्राय रहित होकर अप्रतिबद्ध विहार करे, परिग्रह (ग्रामादि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में मूर्छा-ममत्व भाव) कतई नहीं रखे। गृहस्थों से सम्बन्ध न रखता हुआ घर रहित हो कर विहार करता रहे।

१०. निषद्या परीषह

सुसाणे सुण्णगारे वा, रुक्खमूले व एगओ।
अकुक्कुओ णिसीएज्जा, ण य वित्तासए परं॥२०॥

कठिन शब्दार्थ - **सुसाणे** - श्मशान में, **सुण्णगारे** - शून्यागार - सूने घर में, **रुक्खमूले**- वृक्ष के मूल में, **एगओ** - एकाकी, **अकुक्कुओ** - अचपल भाव से, **णिसीएज्जा** - बैठे, **वित्तासए** - त्रास दे, **परं** - अन्य को।

भावार्थ - साधु श्मशान में अथवा सूने घर में अथवा वृक्ष के नीचे किसी प्रकार की अशिष्ट चेष्टा न करता हुआ अकेला हो - राग-द्वेष रहित हो कर बैठे और किसी भी प्राणी को त्रास न पहुँचावे।

विवेचन - 'निषद्या' शब्द के दो अर्थ हैं - १. उपाश्रय और २. बैठना। प्रस्तुत संदर्भ में बैठना अर्थ ही अभिप्रेत है।

'सुसाणे, सुण्णगारे, रुक्खमूले' - ये तीनों शब्द एकान्त स्थान के द्योतक हैं। इनमें विशिष्ट साधना करने वाले मुनि ही रहते हैं।

तत्थ से चिट्ठमाणस्स, उवसग्गाभिधारए।
संकाभीओ ण गच्छेज्जा, उट्ठित्ता अण्णमासणं॥२१॥

कठिन शब्दार्थ - **चिट्ठमाणस्स** - बैठे हुए, **उवसग्गा** - उपसर्ग, **अभिधारए** - चिंतन करे, **संकाभीओ** - अनिष्ट की शंका से भयभीत, **उट्ठित्ता** - उठ कर, **अण्णं** - दूसरे, **आसणं** - आसन (स्थान) पर।

भावार्थ - वहाँ श्मशान आदि में बैठे हुए उस साधु पर यदि उपसर्ग आवे तो ऐसा चिंतन करे कि 'मैं संयम में स्थिर हूँ, ये उपसर्ग मेरा क्या बिगाड़ सकते हैं।' इस प्रकार विचार कर उन्हें समभाव पूर्वक सहन करे किन्तु उपसर्गों की शंका से भयभीत हो कर अपने स्थान से उठ कर दूसरे स्थान पर न जावे।

विवेचन - श्मशान आदि एकान्त स्थान में सिंह, व्याघ्र आदि की नाना प्रकार की भयंकर ध्वनि सुन कर भी भय न होना, नाना प्रकार का उपसर्ग (देव, तिर्यंच और मनुष्य संबंधी) सहन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करते हुए भी मोक्ष मार्ग से च्युत न होना निषद्या परीषह-जय है। जो इस निषद्या जनित बाधाओं को समभाव पूर्वक सहन करता है, वह निषद्या परीषह-विजयी कहलाता है।

११. शय्या परीषह

उच्चावयाहिं सिज्जाहिं, तवस्सी भिक्खू थामवं।
णाइवेलं विहण्णिज्जा, पावदिट्ठि विहण्णइ॥२२॥

कठिन शब्दार्थ - **उच्चावयाहिं** - ऊंची-नीची (अच्छी बुरी) **सिज्जाहिं** - शय्या, **तवस्सी**- तपस्वी, **थामवं** - सामर्थ्यवान्, **अइवेलं** - संयम मर्यादा को, **ण विहण्णिज्जा** - भंग न करे, उल्लंघन न करे, **पावदिट्ठी** - पापदृष्टि, **विहण्णइ** - भंग करता है।

भावार्थ - शीत-तापादि के परीषह को सहन करने में समर्थ तपस्वी साधु को यदि ऊँची-नीची (अनुकूल-प्रतिकूल) शय्या मिले तो हर्ष विषाद न करता हुआ, संयम धर्म की मर्यादा का उल्लंघन न करे, क्योंकि 'यह अच्छा है, यह बुरा है', - इस प्रकार पाप-दृष्टि रखने वाला साधु संयम की मर्यादा का उल्लंघन कर शिथिलाचारी हो जाता है।

विवेचन - साधु, उच्च - उत्तम शय्या (उपाश्रय) को पाकर 'अहो! मैं कितना भाग्यशाली हूँ कि मुझे सभी ऋतुओं में सुखकारी ऐसी अच्छी शय्या (वसति या उपाश्रय) मिली हैं अथवा अवच (खराब) शय्या पाकर - 'आह! मैं कितना अभागा हूँ कि मुझे शीतादि निवारक शय्या भी नहीं मिली'-इस प्रकार हर्ष-विषाद आदि करके समता रूप अति उत्कृष्ट मर्यादा का उल्लंघन न करे।

पइरिक्कमुवस्सयं लद्धुं, कल्लाणं अदुव पावगं।
किमेगरायं करिस्सइ, एवं तत्थऽहियासए॥२३॥

कठिन शब्दार्थ - **पइरिक्कं** - प्रतिरिक्त - स्त्री आदि की बाधा से रहित, **उवस्सयं** - उपाश्रय-स्थान को, **लद्धुं** - पाकर, **कल्लाणं** - कल्याण - अच्छा, **अदुव** - अथवा, **पावगं**- पापक - बुरा, **किं** - क्या, **मे** - मेरा, **एगरायं** - एक रात्रि में, **करिस्सइ** - करेगा, **अहियासए** - समभाव पूर्वक सहन करे।

भावार्थ - स्त्री-पशु-पण्डक आदि से रहित, अच्छा अथवा बुरा स्थान प्राप्त कर 'एक रात में यह मेरा क्या करेगा' इस प्रकार सोच कर साधु वहाँ पर समभाव से सुख-दुःख सहन करे।

विवेचन - स्वाध्याय, ध्यान और विहार के श्रम के कारण थक कर खुरदरा, उबड़ खाबड़ प्रचुर मात्रा में कंकड़ों पत्थरों से व्याप्त अति शीत या अति उष्ण भूमि वाले, गंदे या

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सीलन भरे कोमल या कठोर प्रदेश वाले स्थान या उपाश्रय को पाकर भी जो साधु आर्त्तध्यान रौद्रध्यान से रहित होकर समभाव पूर्वक आवास स्थान संबंधी बाधाओं को सह लेता है, वह शय्या परीषह-जयी कहलाता है।

१२. आक्रोश परीषह

अक्कोसेज्जा परे भिक्खुं, ण तेसिं पडिसंजले।
सरिसो होइ बालाणं, तम्हा भिक्खू ण संजले॥२४॥

कठिन शब्दार्थ - अक्कोसेज्जा - आक्रोश - गाली दे, **परे** - कोई, **पडिसंजले** - प्रति संज्वलन - क्रोध करे, **सरिसो** - सदृश, **बालाणं** - बालकों - अज्ञानियों के, **ण संजले** - संज्वलित न हो।

भावार्थ - कोई व्यक्ति साधु को गाली देवे, बुरे वचन कह कर उसका अपमान करे, तो उस पर क्रोध नहीं करे, क्योंकि ऐसा करने से वह अज्ञानियों के सरीखा हो जाता है, इसलिए साधु क्रोध न करे।

विवेचन - अक्कोसेज्जा - 'आक्रोश' शब्द तिरस्कार, अनिष्ट वचन, क्रोधावेश में आकर गाली देना आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है।

बुद्धिमान् साधु को तत्त्वार्थ चिंतन में अपनी बुद्धि लगानी चाहिये, यदि आक्रोशकर्त्ता का आक्रोश सच्चा है तो उसके प्रति क्रोध करने की क्या आवश्यकता है? बल्कि यह सोचना चाहिये कि यह परम उपकारी मुझे हितशिक्षा देता है, भविष्य में ऐसा नहीं करूँगा। यदि आक्रोश असत्य है तो रोष करना ही नहीं चाहिये। गाली सुन कर वह सोचे - जिसके पास जो चीज होती है वही देता है। हमारे पास गालियाँ नहीं हैं इसलिए देने में असमर्थ हैं। इस प्रकार आक्रोश वचनों का उत्तर न देकर धीर, वीर एवं क्षमाशील अर्जुन मुनि की तरह जो उन्हें समभाव से सहता है, वही अत्यंत लाभ में रहता है।

सोच्चाणं फरुसा भासा, दारुणा गाम-कंटगा।
तुसिणीओ उवेहेज्जा, ण ताओ मणसि करे॥२५॥

कठिन शब्दार्थ - सोच्चाणं - सुन कर, **फरुसा** - कठोर, **भासा** - भाषा, **दारुणा** - दारुण-असह्य, **गामकंटगा** - ग्राम कण्टक - कांटे की तरह चुभने वाली, **तुसिणीओ** - मौन रहे, **उवेहेज्जा** - उपेक्षा करे, **ण मणसि करे** - मन में भी द्वेष भाव न लाए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - श्रोत्र आदि इन्द्रियों को कांटे के समान चुभने वाली दारुण (भयंकर) कठोर भाषा को सुन कर साधु मौन रह कर उसकी उपेक्षा करे। उस कठोर भाषा को मन में न रखे (द्वेषभाव न लावे)।

विवेचन - क्रोधाग्नि को उद्दीप्त करने वाले क्रोध रूप, आक्रोश रूप, कठोर, अवज्ञाकर, निंदा रूप, तिरस्कार सूचक असभ्य वचनों को सुन कर भी जो उस ओर अपना चित्त नहीं लगाता है, तत्काल उसका प्रतीकार करने में समर्थ होते हुए भी 'यह सब पाप कर्म का फल है' इस प्रकार जो चिंतन कर कषाय विष को अपने हृदय में लेश मात्र भी स्थान नहीं देता, वह आक्रोश परीषह-जयी होता है।

१३. वध परीषह

हओ ण संजले भिक्खू, मणं पि ण पओसए।
तितिक्खं परमं णच्चा, भिक्खू धम्मं विचिंतए॥२६॥

कठिन शब्दार्थ - **हओ** - मारे, **मणंपि** - मन से भी, **ण पओसए** - द्वेष न लावे, प्रदूषित न करे, **तितिक्खं** - तितिक्षा-क्षमा-सहिष्णुता को, **भिक्खु धम्मं** - भिक्षुधर्म - क्षमा, मार्दव आदि दशविध श्रमण धर्म का, **विचिंतए** - चिंतन करे।

भावार्थ - यदि कोई दुष्ट अनार्य पुरुष साधु को मारे तो, साधु उस पर क्रोध न करे। मन से भी उस पर द्वेष न लावे। 'क्षमा उत्कृष्ट धर्म है', ऐसा जान कर साधु क्षमा, मार्दव आदि दसविध यतिधर्म का, विचार कर के पालन करे।

समणं संजयं दंतं, हणिज्जा कोई कत्थइ।
णत्थि जीवस्स णासुत्ति, एवं पेहेज्ज संजए॥२७॥

कठिन शब्दार्थ - **समणं** - श्रमण, **संजयं** - संयत, **दंतं** - दान्त, **हणिज्जा** - मारे, **कत्थइ** - कहीं पर, **जीवस्स** - जीव का, **णासुत्ति** - नाश, **पेहेज्ज** - विचार करे, **संजए** - साधु।

भावार्थ - पांच इन्द्रियों का दमन करने वाले, संयमवंत, तपस्वी साधु को कोई भी व्यक्ति कहीं पर मारे तो 'जीव का कभी नाश नहीं होता', इस प्रकार साधु विचार करें।

विवेचन - वध का अर्थ है - डंडा, चाबुक, बेंत आदि से मारना पीटना अथवा प्राणों का वियोग कर देना।

वध परीषह का प्रसंग उपस्थित होने पर साधु मारने वालों पर लेशमात्र भी द्वेषादि न

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करता हुआ चिंतन करे कि यह मेरे शरीर को ही मारता है, मेरी आत्मा या आत्म-धर्म का हनन तो यह कर नहीं सकता क्योंकि आत्मा और आत्म-धर्म दोनों शाश्वत, अमर, अमूर्त्त है। इस प्रकार जो साधक विचार करता है वही वध परीषह पर विजय पाता है।

१४. याचना परीषह

दुक्करं खलु भो! णिच्चं, अणगारस्स भिक्खुणो।
सव्वं से जाइयं होइ, णत्थिं किंचिं अजाइयं॥२८॥

कठिन शब्दार्थ - दुक्करं - दुष्कर, **णिच्चं** - नित्य-सदा, **जाइयं** - मांगने पर, **अजाइयं**- अयाचित - बिना मांगे।

भावार्थ - गुरु महाराज कहते हैं कि हे शिष्य! घरबार के त्यागी, भिक्षा से निर्वाह करने वाले साधु का जीवन निश्चय ही बड़ा कठिन है, क्योंकि उसे सभी आहार-उपकरण आदि वस्तु सदा मांगने पर ही मिलती है। बिना मांगे कोई भी वस्तु नहीं मिलती।

गोयरग्गपविट्ठस्स, पाणी णो सुप्पसारए।
'सेओ अगारवासुत्ति', इइ भिक्खू ण चिंतए॥२९॥

कठिन शब्दार्थ - गोयरग्गपविट्ठस्स - गोचरी के लिए प्रविष्ट, **पाणी** - हाथ, **णो सुप्पसारए** - पसारना सहज नहीं है, **सेओ** - श्रेष्ठ, **अगारवासुत्ति** - गृहवास ही।

भावार्थ - गोचरी के लिए गये हुए साधु का हाथ, भिक्षा मांगने के लिए सहज ही नहीं फैलता इससे तो, गृहवास ही अच्छा है इस प्रकार साधु विचार भी न लावे।

विवेचन - याचना करने वाले को दूसरों के सामने हाथ फैलाना-'मुझे दो' इस प्रकार कहना सरल नहीं है। अतः साधु ऐसा नहीं सोचे कि इससे तो गृहवास ही श्रेयस्कर है।

१५ अलाभ परीषह

परेसु घास-मेसिज्जा, भोयणे परिणिट्ठिए।
लद्धे पिंडे अलद्धे वा, णाणुतप्पेज्ज संजए* ॥३०॥

---

* पाठान्तर - पंडिए - अर्थात् बुद्धिमान्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **परेसु** - गृहस्थों से, **घासं** - आहार की, **एसिज्जा** - गवेषणा करे, **भोयणे** - भोजन, **परिणिट्ठिए** - परिनिष्ठित हो जाने - पक जाने पर, **लद्धे** - मिलने पर, **पिण्डे** - पिण्ड (आहार), **अलद्धे** - न मिलने पर, **ण अणुतप्पेज्ज** - अनुताप (खेद) न करे।

भावार्थ - भोजन तैयार हो जाने पर साधु गृहस्थों के यहाँ आहार की गवेषणा करे, आहार मिले अथवा नहीं मिले तो बुद्धिमान् साधु खेद नहीं करे।

विवेचन - गृहस्थों के यहाँ भोजन तैयार हो जाने पर साधु मधुकरी वृत्ति से आहार की गवेषणा करे। इच्छानुकूल पर्याप्त आहार मिले, तो साधु को हर्षित नहीं होना चाहिए और इच्छा के प्रतिकूल अथवा अल्प आहार मिले अथवा आहार नहीं मिले तो खेद नहीं करना चाहिये।

अज्जेवाहं ण लब्भामि, अवि लाभो सुए सिया।
जो एवं पडिसंचिक्खे, अलाभो तं ण तज्जए॥३१॥

कठिन शब्दार्थ - **अज्जेव** - आज, **अहं** - मुझे, **ण लब्भामि** - नहीं मिला है, **लाभो** - लाभ - प्राप्त होना, **सुए** - कुल, **सिया** - हो जायगा, **पडिसंचिक्खे** - परिसमीक्षा करता है, **ण तज्जए** - पीड़ित नहीं करता।

भावार्थ - 'मुझे आज आहार नहीं मिला है तो संभवतः कल प्राप्त हो जायगा' जो साधु-आहार प्राप्त न होने पर इस प्रकार विचार कर के दीनभाव नहीं लाता, उसे अलाभ परीषह नहीं सताता है।

विवेचन - उच्च-नीच-मध्यम कुलों में गोचरी करते हुए आहार आदि की प्राप्ति होने या न होने पर भी जो संतोष वृत्ति रखता है और 'अलाभ में मुझे परम तप है' यह सोचता है वह अलाभ परीषह को जीतता है।

१६. रोग परीषह

णच्चा उप्पइयं दुक्खं, वेयणाए दुहट्टिए।
अदीणो ठावए पण्णं, पुट्ठो तत्थऽहियासए॥३२॥

कठिन शब्दार्थ - **णच्चा** - जानकर, **उप्पइयं** - उत्पन्न हुआ, **दुक्खं** - दुःख - ज्वर आदि रोग, **वेयणाए** - वेदना से, **दुहट्टिए** - पीड़ित होने पर, **अदीणो** - अदीन - दीनता रहित, **ठावए** - स्थिर करे, **पण्णं** - प्रज्ञा को।

भावार्थ - दुःख (ज्वरादि रोग) उत्पन्न हुआ जान कर वेदना से दुःखी हुआ साधु स्वकृत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कर्म का फल जान कर दीनता रहित हो कर अपनी बुद्धि को स्थिर करे और रोगावस्था में रोग से स्पृष्ट होने पर समभावपूर्वक सहन करे।

विवेचन - असाता वेदनीय कर्म के उदय से रोग ग्रस्त हो जाने पर मुनि दीन न बने और रोग जनित कष्टों को समभाव से सहन करे।

तेगिच्छं णाभिणंदिज्जा, संचिक्खत्तगवेसए।
एवं खु तस्स सामण्णं, जं ण कुज्जा ण कारवे॥३३॥

कठिन शब्दार्थ - **तेगिच्छं** - चिकित्सा की, **णाभिणंदिज्जा** - अभिनंदन (प्रशंसा) न करे, **संचिक्ख** - जान कर, **सामण्णं** - श्रामण्य - साधुता, **ण कारवे** - न कराए।

भावार्थ - आत्मशोधक मुनि चिकित्सा की अनुमोदना भी नहीं करे और रोग को अपने किये हुए कर्मों का फल जान कर समाधि पूर्वक सहन करे। जो रोग की चिकित्सा न तो स्वयं करता है और न दूसरे से कराता है तथा करते हुए को भला भी नहीं समझता है, इसी में उस साधु की सच्ची साधुता है।

विवेचन - मुनि भयंकर रोग उत्पन्न होने पर चिकित्सा न करे और न कराए। यह कथन जिनकल्पी तथा अभिग्रहधारी साधु की अपेक्षा से है। स्थविरकल्पी के लिए सावद्य चिकित्सा का निषेध है, निरवद्य चिकित्सा का नहीं।

१७ तृण स्पर्श परीषह

अचेलगस्स लूहस्स, संजयस्स तवस्सिणो।
तणेसु सयमाणस्स, हुज्जा गाय विराहणा॥३४॥

कठिन शब्दार्थ - **अचेलगस्स** - अचेलक - वस्त्र रहित, **लूहस्स** - रूक्ष शरीर वाले, **संजयस्स** - संयमी, **तवस्सिणो** - तपस्वी मुनि को, **तणेसु** - तृणों पर, **सयमाणस्स** - सोते हुए, **हुज्जा** - होती है, **गाय विराहणा** - शरीर में विराधना (पीड़ा)।

भावार्थ - वस्त्र-रहित रूक्ष शरीर वाले संयमी तपस्वी मुनि को तृणों पर सोते हुए शरीर में पीड़ा होती है।

विवेचन - तृण शब्द से सूखा घास, दर्भ, तृण, कंकड़ कांटे आदि जितने भी चुभने वाले पदार्थ हैं उन सब का ग्रहण करना चाहिये। ऐसे तृणादि पर सोने-बैठने लेटने आदि से चुभने,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शरीर छिल जाने से या कठोर स्पर्श होने से जो पीड़ा होती है, उसे समभाव पूर्वक सहन करने वाला तृणस्पर्श परीषह-जयी कहलाता है।

आयवस्स णिवाएणं, अउला हवइ वेयणा।
एवं णच्चा ण सेवंति, तंतुजं तणतज्जिया॥३५॥

कठिन शब्दार्थ - **आयवस्स** - तेज धूप, **णिवाएणं** - पड़ने से, **अउला** - अतुल - (तीव्र), **वेयणा** - वेदना, **ण सेवंति** - सेवन नहीं करते, **तंतुजं** - तंतुजन्य पट, **तणतज्जिया**- तृण स्पर्श से।

भावार्थ - अत्यन्त धूप पड़ने से और तृणों के स्पर्श से अत्यधिक वेदना होती है, उस समय साधु को इस प्रकार विचार करना चाहिए कि 'इस आत्मा ने नरकादि दुर्गतियों में जो वेदना सही है, उसके सामने यह तृणजन्य वेदना तो कुछ भी नहीं है। आये हुए कष्टों को समभाव से सहन करना मेरे लिए महान् लाभ का कारण है' - ऐसा जान कर जिनकल्पी मुनि वस्त्र-कम्बल आदि का सेवन नहीं करते हैं।

१८. जल्ल परीषह

किलिण्णगाए मेहावी, पंकेण व रएण वा।
धिंसु वा परियावेणं, सायं णो परिदेवए॥३६॥

कठिन शब्दार्थ - **किलिण्णगाए** - शरीर के क्लिन्न (लिप्त या गीले) हो जाने पर, **पंकेण** - पंक (मैल) से, **रएण** - रज से, **धिंसु** - ग्रीष्म ऋतु में, **परियावेणं** - परिताप से, **सायं** - साता सुख के लिए, **णो परिदेवए** - परिदेवन (विलाप) न करे।

भावार्थ - ग्रीष्म ऋतु में अथवा अन्य ऋतु में परिताप से होने वाले पसीने से अथवा मैल से अथवा रज से शरीर लिप्त हो जाय तो भी बुद्धिमान् साधु सुख के लिए दीनता नहीं दिखावे।

विवेचन - जल्ल का अर्थ है - पसीने से होने वाला मैल। ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की तीक्ष्ण किरणों के ताप से उत्पन्न पसीने के साथ धूल चिपक जाने पर मैल जमा होने से शरीर से दुर्गन्ध आने लगती है उसे मिटाने के लिए ठंडे जल से स्नान करने की अभिलाषा न रखना क्योंकि सचित्त ठंडे जल से अप्कायिक जीवों की विराधना होती है। इस प्रकार शरीर पर मैल जमा हो जाने पर उसे दूर करने की भावना न रखना और इस कष्ट को समभाव पूर्वक सहन करना जल्ल परीषह-जय है। जल्ल परीषह को मल्ल (मैल) परीषह भी कहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वेएज्ज णिज्जरापेही, आरियं धम्मणुत्तरं।
जाव सरीरभेओ त्ति, जल्लं काएण धारए॥३७॥

कठिन शब्दार्थ - **वेएज्ज** - प्राप्त करके, **णिज्जरापेही** - निर्जरापेक्षी - निर्जरा चाहने वाला, **आरियं** - आर्य, **धम्मं** - श्रुत चारित्र धर्म को, **धम्मणुत्तरं** - अनुत्तर (श्रेष्ठ), **सरीरभेओ त्ति** - शरीर विनाश पर्यन्त, **काएण** - शरीर से, **जल्लं** - मैल को, **धारए** - सहन करे, वेदन करे।

भावार्थ - सर्व प्रधान आर्य, श्रुतचारित्र रूप धर्म प्राप्त कर के निर्जरा चाहने वाला साधु जब तक शरीर का नाश न हो, तब तक-जीवन पर्यंत, इस शरीर से मैल परीषह को समभावपूर्वक सहन करे।

११. सत्कार पुरस्कार परीषह

अभिवायणमब्भुट्ठाणं, सामी कुज्जा णिमंतणं।
जे ताइं पडिसेवंति, ण तेसिं पीहए मुणी॥३८॥

कठिन शब्दार्थ - **अभिवायणं** - अभिवादन, **अब्भुट्ठाणं** - अभ्युत्थान, **सामी** - राजा आदि द्वारा, **णिमंतणं** - निमंत्रण, **पडिसेवंति** - सेवन करते हैं, **ण पीहए** - स्पृहा-चाहना नहीं करे।

भावार्थ - जो साधु स्वतीर्थ या अन्यतीर्थी राजा आदि द्वारा किये गये नमस्कार, सत्कार-सन्मान तथा भिक्षा के लिए निमंत्रण आदि का सेवन करते हैं, उनकी साधु चाहना नहीं करे और उनकी प्रशंसा भी नहीं करे।

अणुक्कसाई अप्पिच्छे, अण्णाएसी अलोलुए।
रसेसु णाणुगिज्झिज्जा, णाणुतप्पिज्ज पण्णवं॥३९॥

कठिन शब्दार्थ - **अणुक्कसाई** - अनुत्कशायी - सत्कार के लिए अनुत्सुक, अनुत्कषायी-अल्प कषाय वाला, अणुकषायी - सत्कार आदि न करने वालों पर क्रोध न करने वाला अथवा सत्कार आदि प्राप्त होने पर अहंकार न करने वाला, **अप्पिच्छे** - अल्पेच्छ - थोड़ी इच्छा यात्रा, इच्छा रहित - निष्पृह, **अण्णाएसी** - अज्ञातैषी - अज्ञात - अपरिचित कुलों से आहार आदि की एषणा करने वाला, **अलोलुए** - अलोलुप, **रसेसु** - रसों में, **ण अणुगिज्झेज्जा** - गृद्ध-आसक्त न हो, **ण अणुतप्पेज्ज** - अनुताप (खेद) न करे, **पण्णवं** - प्रज्ञावान्।

भावार्थ - अल्प कषाय वाला, सत्कार सन्मान आदि की इच्छा न करने वाला, अज्ञात कुलों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से भिक्षा लेने वाला लोलुपता रहित बुद्धिमान् साधु सरस भोजन में आसक्ति न रखे और उसके न मिलने पर खेद नहीं करे तथा दूसरों का सत्कार-सम्मानादि उत्कर्ष देख कर ईर्षालु नहीं बने।

विवचेन - सत्कार का अर्थ है - पूजा प्रशंसा और पुरस्कार का अर्थ है - अभ्युत्थान, आसन प्रदान, अभिवादन-नमन आदि। सत्कार-पुरस्कार के अभाव में दीनता न लाना, सत्कार पुरस्कार की आकांक्षा न करना, दूसरों की प्रसिद्धि, प्रशंसा, यशकीर्ति, सत्कार सम्मान आदि देख कर मन में ईर्ष्या न करना, दूसरों को नीचा दिखा कर स्वयं प्रतिष्ठा या प्रसिद्धि प्राप्त करने की लिप्सा-चाहना नहीं करना, सत्कार पुरस्कार परीषह-जय है।

२०. प्रज्ञा परीषह

से णूणं मए पुव्वं, कम्मा णाणफला कडा।
जेणाहं णाभिजाणामि, पुट्ठो केणइ कण्हुइ॥४०॥

कठिन शब्दार्थ - **णूणं** - निश्चय ही, **मए** - मैंने, **पुव्वं** - पूर्व जन्म में, **कम्मा** - कर्म, **णाणफला** - ज्ञान फल देने वाले अथवा, **अणाणफला** - अज्ञान फल देने वाले, **कडा** - किये हैं, **अभिजाणामि** - जानता हूँ, **पुट्ठो** - पूछे जाने पर, **केणइ** - किसी के द्वारा, **कण्हुइ** - किसी भी विषय में।

भावार्थ - निश्चय ही मैंने पूर्वजन्म में ज्ञान-फल देने वाले कर्म किये हैं, जिससे मैं सामान्य मनुष्य होते हुए भी किसी व्यक्ति द्वारा किसी भी विषय में पूछा जाने पर ठीक-ठीक उत्तर देता हूँ।

विवेचन - उपर्युक्त अर्थ प्रज्ञा के अतिशय की अपेक्षा से है और यही अर्थ इस प्रज्ञा परीषह में अधिक संगत होता है। टीकाकार ने अज्ञान के कर्मों की अपेक्षा भी इस गाथा का अर्थ दिया है, वह इस प्रकार है-

"निश्चय ही पूर्व भव में मैंने अज्ञान फल वाले कर्म किये हैं, जिससे कि मैं किसी व्यक्ति द्वारा किसी विषय में पूछा जाने पर नहीं जानता - ठीक-ठीक उत्तर नहीं दे सकता हूँ।"

अह पच्छा उइज्जंति, कम्माऽणाण फला कडा।
एवमस्सासि अप्पाणं, णच्चा कम्मविवागयं॥४१॥

कठिन शब्दार्थ - **अह पच्छा** - इसके बाद, **उइज्जंति** - उदय में आयेंगे, **कम्मविवागयं**- कर्म विपाक को, **अप्पाणं** - अपनी आत्मा को, **अस्सासि** - आश्वासन देना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इसके बाद ज्ञान का अभिमान करने से किये हुए अज्ञान फल देने वाले कर्म उदय में आवेंगे, इस प्रकार कर्म-विपाक को जान कर अपनी आत्मा को आश्वासन देना चाहिए अर्थात् ज्ञान का गर्व नहीं करना चाहिये।

कर्म अपने अबाधा काल के बाद फल देते हैं, तदनुसार पहले बांधे हुए अज्ञान-फल वाले ये ज्ञानावरणीय कर्म उसी समय फल न दे कर अभी उदय में आ रहे हैं। अतएव अज्ञान के लिए शोक न कर के अज्ञान-फल वाले कर्मों को क्षय करने का प्रयत्न करना चाहिये।

विवेचन - प्रज्ञा परीषह का अर्थ इस प्रकार होना चाहिए - 'बुद्धि की मंदता से होने वाला कष्ट अर्थात् ज्ञान के नहीं चढ़ने से बुद्धि की स्फुरणा नहीं होने से तथा पूछे गये प्रश्न का उत्तर नहीं आने से होने वाला आर्त्तध्यान (दुःख)। प्रज्ञा परीषह को ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से होना बताया है। गर्व करना मोहनीय कर्म के उदय से संबंधित होने से यहाँ नहीं होना चाहिये।

२१. अज्ञान परीषह

णिरट्ठगम्मि विरओ, मेहुणाओ सुसंवुडो।
जो सक्खं णाभिजाणामि, धम्मं कल्लाणं-पावगं॥४२॥

कठिन शब्दार्थ - **णिरट्ठगम्मि** - व्यर्थ ही, **विरओ** - विरत हुआ, **मेहुणाओ** - मैथुन से, **सुसंवुडो** - सुसंवृत - मन और इन्द्रियों का संवरण, **सक्खं** - प्रत्यक्ष, **कल्लाणं** - कल्याणकारी; **पावगं** - पापकारी।

भावार्थ - 'जो मैं अभी तक साक्षात् स्पष्ट रूप से कल्याणकारी धर्म के स्वरूप को और पाप के स्वरूप को भी नहीं जान सका हूँ तो फिर मेरा मैथुन आदि से निवृत्त होना और सम्यक् प्रकार से आस्रवों का निरोध करना व्यर्थ ही है' - इस प्रकार साधु कभी विचार नहीं करे, किन्तु ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय करने का प्रयत्न करे।

तवोवहाण-मादाय, पडिमं पडिवज्जओ।
एवं वि विहरओ मे, छउमं ण णियट्टइ॥४३॥

कठिन शब्दार्थ - **तवोवहाणं** - उपधान तप - आगमों का विधिवत् अध्ययन करते समय परम्परागत विधि के अनुसार प्रत्येक आगम के लिए निश्चित आयंबिल आदि तप करने का विधान, **आदाय** - अंगीकार करके, **पडिमं** - प्रतिमा को, **पडिवज्जओ** - धारण करता हुआ, **विहरओ** - विचरते हुए भी, **छउमं** - छद्मस्थपन, **ण णियट्टइ** - दूर नहीं होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - 'उपधान तप आदि अंगीकार करके, साधु की प्रतिमा को स्वीकार करते हुए इस प्रकार उत्कृष्ट चर्या से विचरते हुए भी मेरा छद्मस्थपन दूर नहीं होता है', इस प्रकार विचार कर साधु को खेद नहीं करना चाहिए, किन्तु अज्ञान को दूर करने के लिए शास्त्रविहित क्रियाओं में उत्साहपूर्वक विशेष रत रहना चाहिए।

विवेचन - यहाँ अज्ञान का अर्थ ज्ञान का अभाव नहीं किन्तु अल्पज्ञान या मिथ्याज्ञान है। यह परीषह अज्ञान के सद्भाव और अभाव - दोनों प्रकार से होता है। अज्ञान के रहते साधक में दैन्य, अश्रद्धा, भ्रांति आदि पैदा होती है।

अज्ञान परीषह का अर्थ इस प्रकार होना चाहिये - अनेक प्रकार के तप आदि को करते हुए भी छद्मस्थता के नहीं हटने से, अवधि आदि विशिष्ट ज्ञानों के नहीं होने से तथा धर्म का पूर्ण स्वरूप समझ में नहीं आने से होने वाला आर्त्तध्यान (दुःख) को अज्ञान परीषह कहते हैं। प्रज्ञा परीषह के समान यह परीषह भी ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से होता है।

२२. दर्शन परीषह

णत्थि णूणं परे लोए, इड्ढी वावि तवस्सिणो।
अदुवा वंचिओ मि त्ति, इइ भिक्खू ण चिंतए॥४४॥

कठिन शब्दार्थ - **परे लोए** - पर लोक, **इड्ढी** - ऋद्धि, **तवस्सिणो** - तपस्वी की, **वंचिओमि** - मैं ठगा गया हूँ, **ण चिंतए** - चिंतन न करे।

भावार्थ - 'निश्चय ही परलोक-जन्मान्तर अथवा तपस्वी की ऋद्धि नहीं है इसलिए साधुपन ले कर मैं ठगा गया हूँ' इस प्रकार साधु विचार नहीं करे।

अभू जिणा अत्थि जिणा, अदुवा वि भविस्सइ।
मुसं ते एवमाहंसु, इइ भिक्खू ण चिंतए॥४५॥

कठिन शब्दार्थ - **अभू** - भूतकाल में, **जिणा** - जिन - राग द्वेष को जीतने वाले, **अत्थि** - है, **भविस्सइ** - भविष्य में होंगे, **मुसं** - झूठ, **आहंसु** - कहा है।

भावार्थ - 'राग-द्वेष को जीतने वाले सर्वज्ञ जिन देव भूतकाल में हुए हैं, वर्तमान काल में महाविदेह क्षेत्र में सर्वज्ञ जिन-देव है अथवा भविष्य में होंगे', इस प्रकार उन सर्वज्ञ जिन देवों का अस्तित्व बताने वाले लोगों ने झूठ कहा है, अथवा भूत-भविष्यत्-वर्तमान काल के जिन देवों ने स्वर्ग आदि परलोक बतलाया है, वह झूठ कहा है - इस प्रकार साधु विचार नहीं करे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - दर्शन अर्थात् सम्यग्दर्शन। एकान्त क्रियावादी आदि ३६३ वादियों के विचित्र मत को सुन कर भी सम्यक् रूप से सहन करना - निश्चल चित्त से सम्यग् दर्शन को धारण करना, दर्शन परीषह-जय है अथवा दर्शन व्यामोह न होना दर्शन परीषह-सहन है। अथवा जिन या उनके द्वारा कथित जीव, अजीव, धर्म, अधर्म, परभव आदि परोक्ष होने के कारण मिथ्या है ऐसा चिंतन नहीं करना दर्शन परीषह-सहन है।

समवायांग सूत्र एवं तत्त्वार्थ सूत्र में इस परीषह का नाम 'अदर्शन परीषह' दिया है। दोनों में मात्र शब्दों का अंतर है। भावार्थ में कुछ भी फर्क नहीं है।

उपसंहार

एए परीसहा सव्वे, कासवेणं पवेइया।
जे भिक्खू ण विहण्णिज्जा, पुट्ठो केणइ कण्हुइ॥ त्ति बेमि॥४६॥

॥ दुइयं परिसहज्झयणं समत्तं॥

कठिन शब्दार्थ - कासवेणं - काश्यप गोत्रीय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने, **पवेइया**- प्ररूपण किया है, **कण्हुइ** - कहीं भी, **केणइ** - किसी भी, **पुट्ठो** - स्पृष्ट-आक्रान्त होने पर, **ण विहण्णिज्जा** - पराजित न हो।

भावार्थ - ये सभी परीषह काश्यप गोत्रीय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने फरमाये हैं, जिनके स्वरूप को जान कर धैर्यवान् साधु कहीं भी, इन परीषहों में से किसी भी परीषह के उपस्थित होने पर संयम से विचलित नहीं होवे॥४६॥ ऐसा मैं कहता हूँ॥

॥ इति परीषह नामक द्वितीय अध्ययन समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चाउरंगीय णामं तइयं अज्झयणं

चतुरंगीय नामक तीसरा अध्ययन

उत्थानिका - चतुरंगीय नामक इस तृतीय अध्ययन में १. मनुष्यभव २. सद्धर्म श्रवण ३. सद्धर्मश्रद्धा और ४. संयम में पराक्रम - इन चारों अंगों की दुलर्भता का क्रमशः प्रतिपादन किया गया है। सर्वप्रथम मनुष्य जन्म की दुलर्भता का प्रतिपादन छह गाथाओं में किया गया है। मानव जीवन अत्यंत पुण्योदय से प्राप्त होता है। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने **'दुल्लहे खलु माणुसे भवे'** कह कर मानव जीवन की दुर्लभता बताई है। अन्य मतावलम्बियों ने भी मानव भव दुर्लभ कहा है। मानव जीवन की महत्ता का कारण यह है कि इस भव में वह अपने जीवन को सद्गुणों से चमका कर मोक्ष प्राप्ति का पुरुषार्थ कर सकता है।

जीवों को मानव तन (भव) मिलना भी अत्यन्त कठिन है। उस मानव भव के साथ सद्धर्म का श्रवण एवं सद्धर्म पर श्रद्धा होना तो और भी अत्यधिक कठिन है। संयम में पराक्रम करना तो इन तीनों बोलों से भी बहुत अधिक कठिन है।

जब तब साधक की श्रद्धा समीचीन एवं सुस्थित नहीं होती तब तक साधना पथ पर उसके कदम दृढ़ता से आगे नहीं बढ़ सकते हैं इसलिए श्रद्धा पर विशेष बल दिया गया है। साथ ही धर्म श्रवण की भी प्रेरणा दी गई है। धर्म श्रवण से ही जीवादि तत्त्वों का सम्यक् ज्ञान होता है और सम्यग्ज्ञान होने पर ही साधक पुरुषार्थ के द्वारा मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

तीसरे अध्ययन की प्रथम गाथा इस प्रकार हैं -

चार परम अंग

चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणीह जंतुणो।
माणुसत्तं सुई सद्धा, संजमम्मि य वीरियं॥१॥

कठिन शब्दार्थ - **चत्तारि** - चार, **परमंगाणि** - प्रधान अंगों की, **दुल्लहाणीए** - दुर्लभ, **जंतुणो** - प्राणी के लिए, **माणुसत्तं** - मनुष्य जन्म, **सुई** - श्रुति - धर्म शास्त्र का श्रवण, **सद्धा** - श्रद्धा, **संजमम्मि** - संयम में, **वीरियं** - वीर्य (पराक्रम)।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इस संसार में प्राणी के लिए मनुष्य-जन्म, धर्मशास्त्र का श्रवण, धर्म पर श्रद्धा और संयम में पराक्रम - आत्मशक्ति लगाना, इन चार प्रधान अंगों की प्राप्ति होना दुर्लभ है।

विवेचन - दूसरे अध्ययन में परीषहों का वर्णन और उनके सहन करने का उपदेश दिया गया है। परीषहों को सहन करने की शक्ति मनुष्य में ही है किन्तु मनुष्य को उपर्युक्त चार अंगों की प्राप्ति होना अति कठिन है। अतः इस तीसरे अध्ययन में उन दुर्लभ चार अंगों का निरूपण किया गया है। इन चारों अंगों के निरूपण के कारण इस अध्ययन को 'चातुरंगीय अध्ययन' कहते हैं। इस संसार चक्र में भ्रमण करते हुए जीव को चारों अंगों का प्राप्त होना बहुत ही कठिन है, क्योंकि ये चारों ही अंग मोक्ष के साधनभूत होने से जीव के लिए बहुत ही उपकारी माने गये हैं -

१. **मनुष्यत्व** - यहाँ पर मनुष्यत्व का अर्थ 'मनुष्यभव (जन्म)' ही समझना चाहिये। 'मानवता' अर्थ नहीं समझना चाहिये। 'त्व (ता)' प्रत्यय उसी मूल शब्द के अर्थ को बताने के लिए ही यहाँ पर प्रयुक्त हुआ है। जैसे देव को देवता भी कहा जाता है। वैसे ही यहाँ पर भी समझना चाहिये। इसी अध्ययन की सातवीं, आठवीं गाथा में मनुष्य जन्म एवं मनुष्य संबंधी शरीर की प्राप्ति को ही दुर्लभ कहा है। अतः वास्तव में जीवों को मनुष्य-जन्म की प्राप्ति होना अत्यन्त दुर्लभ है। मानवता आदि का समावेश भी गौण रूप से इसमें समझ लेना चाहिए। प्रमुख रूप से तो मनुष्य जन्म को ही दुर्लभ समझना चाहिये।

उत्तराध्ययन सूत्र के १०वें अध्ययन की चौथी गाथा के प्रथम चरण में शास्त्रकारों ने स्पष्ट रूप से कहा है - "**दुल्लहे खलु माणुसे भवे**" अर्थात् मनुष्य भव की प्राप्ति अत्यंत दुर्लभ है।

२. **श्रुति** - कदाचित् पुण्य योग से मनुष्यभव की प्राप्ति भी हो जाय परन्तु उसमें श्रुति 'जिन प्ररूपित' धर्म के श्रवण का संयोग मिलना तो और भी कठिन है क्योंकि धर्म का श्रवण किये बिना कर्त्तव्याकर्त्तव्य का पूर्णतया बोध नहीं हो सकता अतः श्रुति का प्राप्त होना मनुष्यभव से भी अधिक आवश्यक है।

३. **श्रद्धा** - कदाचित् श्रुति की प्राप्ति भी किसी पुण्य के विशेष उदय से हो जाए परन्तु उसमें श्रद्धा का प्राप्त होना तो और भी कठिनतर है। बिना श्रद्धा के, बिना दृढ़तर विश्वास के सुना हुआ धर्म शास्त्र भी ऊषर भूमि में बोए हुए बीज की तरह निष्फल प्रायः हो जाता है और हेयोपादेय के ज्ञान से भी श्रद्धा शून्य हृदय खाली रह जाता है अतः मनुष्यभव और श्रुति के साथ श्रद्धा का होना बहुत ही आवश्यक है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४. संयम में पुरुषार्थ - माना कि मनुष्यभव और श्रुति के साथ पुण्य संयोग से श्रद्धा की भी प्राप्ति हो गई किन्तु धर्म शास्त्रों की शिक्षा के अनुसार यदि संयम में पुरुषार्थ न हुआ तो वह श्रद्धा भी किसी काम की नहीं, अतः संयम में वीर्य-पुरुषार्थ का होना और भी दुर्लभ है।

सारांश यह है कि संसार चक्र में भ्रमण करते हुए इस जीव को बड़े ही पुण्य के प्रभाव से इन उपर्युक्त चारों अंगों की प्राप्ति होती है। अतः मोक्ष के साधनभूत इन चारों अंगों को प्राप्त करके मनुष्य को अपने अभीष्ट लक्ष्य की ओर बढ़ने का प्रयत्न करना चाहिये क्योंकि इन चारों अंगों की प्राप्ति बार-बार नहीं होती। ये तो बड़े ही दुर्लभ हैं। इनका लाभ तो किसी निकट भवी भाग्यशाली पुरुष को ही उसके शुभतर पुण्योदय से हो सकता है।

अब सूत्रकार इन चारों अंगों का नाम निर्देश करते हुए इनमें से प्रथम मनुष्य जन्म की दुर्लभता के विषय में कहते हैं। यथा -

मनुष्य जन्म की दुर्लभता

समावण्णाण संसारे, णाणागोत्तासु जाइसु।
कम्मा णाणाविहा कट्टु, पुढो विस्संभिया पया॥२॥

कठिन शब्दार्थ - **समावण्णाण** - प्राप्त हुए, **संसारे** - संसार में, **णाणागोत्तासु** - नाना प्रकार के गोत्रों में, **जाइसु** - जातियों में, **कम्मा** - कर्म, **णाणाविहा** - नाना प्रकार के, **कट्टु** - करके, **पुढो** - पृथक्-पृथक्, **विस्सं** - जगत् (विश्व) को, **भया** - भर दिया, **पया** - जीव।

भावार्थ - इस संसार में जीव अनेक प्रकार के कर्म कर के विविध गोत्र वाली जातियों में प्राप्त हुए हैं और वे एक-एक कर के सारे विश्वर में व्याप्त हैं-कभी कहीं, कभी कहीं उत्पन्न हो कर सारे लोक में जन्म-मरण किये हैं।

विवेचन - इस अनादि संसार चक्र में जीव नाना प्रकार के त्रस आदि गोत्रों और एकेन्द्रिय आदि जातियों में प्राप्त हुए हैं। इतना ही नहीं किन्तु एक-एक जीव ने ज्ञानावरणीय आदि नाना प्रकार के कर्मों के प्रभाव से जन्म मरण के द्वारा इस सारे विश्व को भर रखा है अर्थात् इस असंख्यात योजन प्रमाण लोक में ऐसा कोई आकाश प्रदेश नहीं है जहाँ इस जीव ने जन्म-मरण नहीं किया हो।

एगया देवलोएसु, णरएसु वि एगया।
एगया आसुरे काये, अहाकम्मेहिं गच्छइ॥३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **एगया** - कभी, **देवलोएसु** - देवलोक में, **णरएसु** - नरक में, **आसुरे काये** - असुर आदि काय में, **अहाकम्मेहिं** - यथाकर्म के अनुसार, **गच्छइ** - जाता है।

भावार्थ - अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार जीव कभी देवलोक में, कभी नरक में और कभी असुर योनि में उत्पन्न होता है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में कर्मों के फल का दिग्दर्शन किया गया है जीव जिस प्रकार का कर्म करता है उसी के अनुसार उसका फल भी वह भोगता है। शुभ कर्मों के विपाक से जीव कभी देवलोक में उत्पन्न होता है तो कभी अशुभ कर्मों के उदय से रत्नप्रभा आदि नरकों में यातनाएं भोगता है अर्थात् यह जीव जिस जिस प्रकार का आचरण करता है उसी के विपाकोदय के अनुसार वैसी ही योनियों में उसका जन्म होता है।

एगया खत्तिओ होइ, तओ चंडाल बुक्कसो।
तओ कीडपयंगो य, तओ कुंथू-पिवीलिया॥४॥

कठिन शब्दार्थ - **खत्तिओ** - क्षत्रिय, **चंडाल** - चाण्डाल, **बुक्कस** - बुक्कस, **कीड**-कीट, **पयंगो** - पतंग, **तओ** - तदनन्तर, **कुंथु** - कुन्थु, **पिवीलिया** - पिपीलिका-चींटी।

भावार्थ - मनुष्य जन्म योग्य कर्म के उदय आने पर यह जीव कभी क्षत्रिय होता है इसके बाद कभी चंडाल और बुक्कस (वर्णसंकर) होता है, कभी कीड़ा और पतंगिया तथा कभी कुन्थु और चींटी।

विवेचन - उक्त गाथा में उल्लेख किये गये क्षत्रिय शब्द से उच्च जाति और चण्डाल, बुक्कस शब्द से नीच और वर्ण संकर जाति की सूचना दी गई है। कीट, पतंग, कुंथु, पिपीलिका से समस्त तिर्यग् जाति के जीवों का ग्रहण अभीष्ट है। यह जीव स्वकृत कर्मों के प्रभाव से चतुर्गति रूप संसार में परिभ्रमण करता है। देव और नरक का उल्लेख तीसरी गाथा में किया गया है एवं मनुष्य और तिर्यंच का कथन इस चौथी गाथा में है। इन्हीं चारों गतियों के समुदाय का नाम 'संसार-चक्र' है।

एवमावट्टजोणीसु, पाणिणो कम्म-किव्विसा।
ण णिव्विज्जंति संसारे, सव्वट्ठेसु व खत्तिया॥५॥

कठिन शब्दार्थ - **आवट्ट** - आवर्तन करते हुए, **जोणीसु** - योनियों में, **पाणिणो** - प्राणी, **कम्म** - **किव्विसा** - कर्मों से किल्विष - मलीन, **ण णिव्विज्जंति** - निवृत्त नहीं होते, **सव्वट्ठेसु** - सर्व अर्थों में, **व** - जिस प्रकार, **खत्तिया** - क्षत्रिय।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

भावार्थ - जिस प्रकार सभी मनोज्ञ काम-भोग एवं राज्य-ऋद्धि मिल जाने पर भी क्षत्रियों की राज्य बढ़ाने की तृष्णा शांत नहीं होती उसी प्रकार संसार में अशुभ कर्म वाले प्राणी नाना प्रकार की योनियों में परिभ्रमण करते हुए भी निर्वेद प्राप्त नहीं करते। संसार-परिभ्रमण से उन्हें, कभी उद्वेग नहीं होता।

विवेचन - चतुर्गति में निरन्तर भ्रमण करते हुए भी इस जीव को उपरति नहीं होती है - यह इस गाथा में बताया है।

कम्म-संगेहिं संमूढा, दुक्खिया बहुवेयणा।
अमाणुसासु जोणिसु, विणिहम्मंति पाणिणो॥६॥

कठिन शब्दार्थ - **कम्मसंगेहिं** - कर्मों के संयोग से, **सम्मूढा** - मूढ बने हुए, **दुक्खिया**- दुःखित, **बहुवेयणा** - बहुत वेदना से युक्त, **अमाणुसासु** - मनुष्येतर - मनुष्य को छोड़ अन्य, **जोणिसु** - योनियों में, **विणिहम्मंति** - पीड़ा को प्राप्त होते हैं, **पाणिणो** - प्राणी।

भावार्थ - कर्मों के संबंध से मूढ़ बने हुए दुःखी और अतिशय वेदना वाले प्राणी मनुष्य-योनि के सिवाय दूसरी नरक आदि योनियों में अनेक प्रकार से दुःख भोगते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में जीवों के पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मों की फल विचित्रता और फलतः अन्य योनियों की अपेक्षा मनुष्य योनि की श्रेष्ठता का दिग्दर्शन कराया गया है।

मनुष्य जन्म की प्राप्ति का उपाय

कम्माणं तु पहाणाए, आणुपुव्वी कयाइ उ।
जीवा सोहि-मणुप्पत्ता, आययंति मणुस्सयं॥७॥

कठिन शब्दार्थ - **कम्माणं** - कर्मों के, **पहाणाए** - विनष्ट होने पर, **आणुपुव्वी** - अनुक्रम से, **कयाइ उ** - कदाचित्, **सोहिं** - शुद्धि को, **अणुप्पत्ता** - प्राप्त हुए, **आययंति** - प्राप्त करते हैं, **मणुस्सयं** - मनुष्यत्व को।

भावार्थ - कभी क्रमशः मनुष्यगति प्रतिबंधक कर्मों के नाश होने पर कर्म-क्षय रूप शुद्धि को प्राप्त हुए जीव मनुष्य-जन्म प्राप्त करते हैं।

विवेचन - मनुष्य जन्म को अत्यंत दुर्लभ बताकर आगमकार ने प्रस्तुत गाथा में मनुष्य जन्म की प्राप्ति का कारण बतलाने की कृपा की है। मनुष्य गति के प्रतिबन्धक कर्मों का विनाश और शुद्धि की प्राप्ति ही मनुष्य जन्म का कारण है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रुतिधर्म की दुर्लभता

माणुस्सं विग्गहं लद्धुं, सुई धम्मस्स दुल्लहा।
जं सोच्चा पडिवज्जंति, तवं खंतिमहिंसयं॥८॥

कठिन शब्दार्थ - **माणुस्सं** - मनुष्य का, **विग्गहं** - शरीर, **लद्धुं** - प्राप्त करके, **धम्मस्स** - धर्म का, **सुई** - श्रवण, **दुल्लहा** - दुर्लभ, **जं** - जिसको, **सोच्चा** - सुन कर, **पडिवज्जंति** - ग्रहण करते हैं, **तवं** - तप को, **खंतिं** - क्षमा को, **अहिंसयं** - अहिंसा को।

भावार्थ - मनुष्य सम्बन्धी शरीर पा कर भी धर्म का श्रवण करना दुर्लभ है, जिसे सुन कर जीव तप, क्षमा और अहिंसा अंगीकार करते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में सूत्रकार ने मनुष्य जन्म के प्राप्त हो जाने पर भी धर्म श्रवण की दुलर्भता बतायी है क्योंकि यह जीव विषय पोषक राग रंग के श्रवण के लिए तो बिना किसी की प्रेरणा के स्वयं ही उद्यत रहता है परन्तु सौभाग्यवश जहाँ धर्म के श्रवण करने का अवसर आता है वहाँ पर सुज्ञ पुरुषों की प्रेरणा के होते हुए भी इसको प्रमाद-आलस्य आ दबाता है जिसके कारण उसकी इस ओर रुचि नहीं होती। अतः पुण्य संयोग से मनुष्य जन्म के मिल जाने पर भी उसमें धर्म की श्रुति और भी दुर्लभ है।

धर्म श्रवण से ही मनुष्य के हृदय में तप, क्षमा और अहिंसा आदि सद्गुणों का जन्म होता है। अतः इसका प्राप्त होना निस्संदेह दुर्लभ है।

यहाँ पर तप से द्वादशविध तप, क्षमा से दशविध यतिधर्म और अहिंसा से साधु के पांच महाव्रतों का ग्रहण अभिप्रेत है।

श्रवण करने के बाद श्रद्धा उत्पन्न होती है अतः अब श्रद्धा की दुर्लभता के विषय में कहते हैं -

श्रद्धा परम दुर्लभ

आहच्च सवणं लद्धुं, सद्धा परम-दुल्लहा।
सोच्चा णेयाउयं मग्गं, बहवे परिभस्सइ॥९॥

कठिन शब्दार्थ - **आहच्च** - कदाचित्, **सवणं** - धर्म का श्रवण, **लद्धुं** - प्राप्त करके, **सद्धा** - श्रद्धा, **परम दुल्लहा** - परम दुर्लभ, **णेयाउयं** - न्याय युक्त, **मग्गं** - मार्ग को, **बहवे** - बहुत से, **परिभस्सइ** - भ्रष्ट हो जाते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

भावार्थ - कदाचित् धर्म का श्रवण पा कर भी उस पर श्रद्धा-रुचि होना अत्यन्त दुर्लभ है, क्योंकि न्याय संगत सम्यग्दर्शनादि रूप मोक्षमार्ग सुन कर भी बहुत से मनुष्य उससे भ्रष्ट हो जाते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में स्पष्ट किया गया है कि धर्म श्रवण के साथ श्रद्धा का होना अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए उक्त गाथा में न्याय मार्ग का उल्लेख किया है। सम्यग्दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यक् चारित्र का अनुसरण न्याय मार्ग है। इसी को दूसरे शब्दों में मोक्षमार्ग कहा है। न्याय मार्ग को सुन कर और समझ कर भी बहुत से जीव श्रद्धा के न होने पर धर्म मार्ग से च्युत हो जाते हैं, इसलिए श्रद्धा का होना परम आवश्यक है।

संयम में पराक्रम

सुइं च लद्धुं सद्धं च, वीरियं पुण दुल्लहं।
बहवे रोयमाणा वि, णो य णं पडिवज्जइ॥१०॥

कठिन शब्दार्थ - **बहवे** - बहुत से, **रोयमाणा** - रुचि रखते हुए, **वि** - भी, **णो पडिवज्जइ** - सम्यक् रूप से स्वीकार नहीं करते।

भावार्थ - मनुष्य जन्म, धर्म-श्रवण और धर्म-श्रद्धा पा कर भी संयम में पराक्रम करना-शक्ति लगाना और भी दुर्लभ है, क्योंकि बहुत-से मनुष्य धर्म एवं संयम को अच्छा तो समझते हैं और रुचिपूर्वक सुनते भी हैं। किन्तु उसे आचरण में नहीं ला सकते।

विवेचन - कदाचित् किसी जीव को मनुष्य जन्म, धर्म का श्रवण और धर्म में पूर्ण अभिरुचि (श्रद्धा) ये तीनों साधन मिल भी जाएं तो भी इनके साथ वीर्य - संयम में पुरुषार्थ का मिलना और भी कठिन है। अतएव बहुत से जीवों को धर्म में रुचि होते हुए भी वे संयम में पुरुषार्थ नहीं कर सकते क्योंकि जीव के संयम विषयक पुरुषार्थ का प्रतिबंधक चारित्र मोहनीय कर्म है। चारित्र मोहनीय कर्म के क्षय या क्षयोपशम हुए बिना जीव चारित्र ग्रहण नहीं कर सकता। इसलिए आगमकारों ने वीर्य पुरुषार्थ को परम दुर्लभ कहा है।

दुर्लभ चतुरंग प्राप्ति का फल

माणुसत्तम्मि आयाओ, जो धम्मं सोच्च सद्दहे।
तवस्सी वीरियं लद्धुं, संवुडे णिद्धुणे रयं॥११॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **माणुसत्तम्मि** - मनुष्य भव में, **आयाओ** - आकर, **संवुडे** - संवृत होकर, **रयं** - रज को, **णिद्धुणे** - नष्ट कर देता है।

भावार्थ - मनुष्य-जन्म पा कर जो आत्मा धर्म सुन कर उस पर श्रद्धा रखता है, संयम विषयक वीर्य (शक्ति) पाकर, संयम में उद्यम कर, तपस्वी और संवर वाला होकर वह कर्म-रज का नाश कर देता है।

विवेचन - इन चारों दुर्लभ अंगों को प्राप्त कर संयम की आराधना करने वाला मुमुक्षु संवर द्वारा नवीन कर्मों को आने से रोकता है और तपस्या द्वारा पूर्वकृत कर्मों का नाश करके अन्त में शाश्वत सिद्ध होता है।

जीवन मुक्त का स्वरूप

सोही उज्जुय-भूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ।
णिव्वाणं परमं जाइ, घयसित्तिव्व पावए॥१२॥

कठिन शब्दार्थ - **सोही** - शुद्धि, **उज्जुय-भूयस्स** - ऋजुभूत - सरल की, **सुद्धस्स** - शुद्ध के, **परमं** - परम (कल्याण स्वरूप), **णिव्वाणं** - निर्वाण को, **जाइ** - प्राप्त करता है, **घयसित्तिव्व** - घृत से सींची, **पावए** - अग्नि।

भावार्थ - मनुष्य-जन्म, धर्मश्रवण, धर्मश्रद्धा और संयम में पराक्रम ये चार प्रधान अंग पा कर मुक्ति की ओर प्रवृत्त हुए, सरल भाव वाले व्यक्ति की शुद्धि होती है और शुद्धि प्राप्त आत्मा में ही धर्म ठहर सकता है। घी से सींची हुई अग्नि के समान तप-तेज से देदीप्यमान होती हुई वह आत्मा परम निर्वाण-मोक्ष प्राप्त करती है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में स्पष्ट किया गया है कि धर्म की प्रतिष्ठा के लिए कषायनिर्मुक्त आत्मा ही अपेक्षित है। कषायमुक्त - शुद्ध और धर्म युक्त आत्मा को ही जीवन मुक्त कहते हैं। कषायों से मलिन बनी हुई आत्मा में धर्म को ठहरने के लिए स्थान नहीं है।

यहाँ घृतसिक्त अग्नि का उदाहरण दिया है इसका तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार घृत सींची हुई अग्नि अधिक तेज वाली होती है उसी प्रकार कषाय मुक्त और धर्म युक्त आत्मा के बढ़े हुए तपोबल में भी वैसी ही उत्कष्ट प्रभापूर्ण तेजस्विता होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हितकर उपदेश

विगिंच कम्मुणो हेउं, जसं संचिणु खंतिए।
सरीरं पाढवं हिच्चा, उड्ढं पक्कमइ दिसं॥१३॥

कठिन शब्दार्थ - **विगिंच** - दूर करके, **कम्मुणो** - कर्मों के, **हेउं** - हेतु को, **जसं** - संयम यश को, **संचिणु** - संचित कर, **खंतिए** - क्षमा से, **सरीरं** - शरीर को, **पाढवं** - पार्थिव, **हिच्चा** - छोड़ कर, **उड्ढं** - ऊर्ध्व, **पक्कमइ** - प्राप्त करता है, **दिसं** - दिशा को।

भावार्थ - मनुष्य जन्म आदि के रोकने वाले कर्मों के हेतु - मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और अशुभयोगों को पृथक् करो। क्षमा आदि दसविध यतिधर्म का सेवन करके संयम रूपी यश को अधिकाधिक बढ़ाओ। ऐसा करने वाला व्यक्ति इस पार्थिव औदारिक शरीर को छोड़कर ऊर्ध्व दिशा को (स्वर्ग अथवा मोक्ष को) प्राप्त करता है।

विवेचन - इस गाथा में मिथ्यात्व आदि कर्म बंध के हेतुओं को दूर कर, क्षमा आदि दस-विध यति धर्म का सेवन कर संयम रूप यश का संचय करने का उपदेश दिया गया है।

देवलोकों की प्राप्ति

विसालिसेहिं सीलेहिं, जक्खा उत्तरउत्तरा।
महासुक्का व दिप्पंता, मण्णंता अपुणच्चवं॥१४॥

कठिन शब्दार्थ - **विसालिसेहिं** - नाना प्रकार के, **सीलेहिं** - शीलों से, **जक्खा** - यक्ष-देव, **उत्तरउत्तरा** - प्रधान से प्रधान, **महासुक्का** - महाशुक्ल, **व** - की तरह, **दिप्पंता** - प्रकाशमान होकर, **मण्णंता** - मानते हुए, **अपुणच्चवं** - पुनः च्यवन नहीं होता।

भावार्थ - अनेक प्रकार के व्रत अनुष्ठानों का पालन करने से जीव यहाँ का आयुष्य पूरा कर उत्तरोत्तर प्रधान विमानवासी देव होता है। वह महाशुक्ल अर्थात् अत्यन्त उज्ज्वल, सूर्य चन्द्रमा के समान प्रकाशमान होता हुआ और 'यहाँ से फिर दूसरी गति में नहीं चवूँगा।' - इस प्रकार मानता हुआ वहाँ रहता है।

विवेचन - जब शुभ कर्म शेष रह जाते हैं तो जीव को देवलोक की प्राप्ति होती है। इस गाथा में स्वर्गप्राप्त जीव की अवस्था का वर्णन किया गया है। देवों के विमान सूर्य और चन्द्र की तरह प्रकाश करते हैं। वे देव अति दीर्घायु पल्योपम सागरोपम और अति सुख प्राप्ति के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कारण वे अपनी मृत्यु को भी बिल्कुल भूल जाते हैं। उन्हें यह भान ही नहीं रहता कि पुण्य कर्म- जन्य फल की समाप्ति पर कभी हमारा यहाँ से च्यवन भी होगा? वे तो अपने को मृत्यु से सदा रहित मानते हुए वहाँ पर रहते हैं।

अप्पिया देवकामाणं, कामरूव विउव्विणो।
उड्ढं कप्पेसु चिट्ठंति, पुव्वा वाससया बहू॥१५॥

कठिन शब्दार्थ - **अप्पिया** - प्राप्त हुए, **देवकामाणं** - देव काम-भोगों को, **कामरूव**- इच्छानुसार, **विउव्विणो** - विकुर्वणा करने वाले, **कप्पेसु** - कल्पों (विमानों) में, **चिट्ठंति** - ठहरते हैं, **पुव्वा** - पूर्वों, **वाससया** - सौ वर्षों तक।

भावार्थ - दिव्यांगना स्पर्श आदि देव सम्बन्धी कामों को प्राप्त हुए और इच्छानुसार विविध रूप बनाने की शक्ति वाले वे देव सैकड़ों पूर्व वर्षों तक ऊपर सौधर्मादि एवं ग्रैवेयकादि विमानों में रहते हैं।

विवेचन - तप और संयम के प्रभाव से देवगति को प्राप्त हुए जीव को नाना प्रकार के रूप बनाने की लब्धि और दीर्घायुष्य की प्राप्ति होती है। पूर्वों के वर्षों की गणना टीकाकार ने इस प्रकार दी है - **'पूर्वाणि वर्ष सप्तति कोटि लक्षषट् पंच शत् कोटि सहस्रमितानि'** अर्थात् ७० लाख ५६ हजार करोड़ वर्ष का एक पूर्व होता है, ऐसे असंख्यात पूर्वों तक जीव वहाँ देवलोक में रहता है।

दस अंगों सहित उत्पत्ति

तत्थ ठिच्चा जहाठाणं, जक्खा आउक्खए चुया।
उवेंति माणुसं जोणिं, से दसंगेऽभिजायइ॥१६॥

कठिन शब्दार्थ - **ठिच्चा** - रह कर, **जहाठाणं** - यथा स्थान, **आउक्खए** - आयु के क्षय होने पर, **चुया** - चव कर, **उवेंति** - प्राप्त करते हैं, **माणुसं जोणिं** - मनुष्य योनि को, **दसंगे** - दस अंगों की, **अभिजायइ** - प्राप्ति होती है।

भावार्थ - वे देव वहाँ देवलोक में अपने-अपने स्थान पर रहे हुए आयु क्षय होने पर वहाँ से चव कर मनुष्य-योनि प्राप्त करते हैं, वहाँ उन्हें दस अंगों की प्राप्ति होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

खित्तं वत्थुं हिरण्णं च, पसवो दासपोरुसं।

चत्तारि कामखंधाणि, तत्थ से उववज्जइ॥ १७॥

कठिन शब्दार्थ - **खित्तं** - क्षेत्र, **वत्थुं** - वास्तु-भवन आदि, **हिरण्णं** - हिरण्य-सोना, **पसवो** - पशु, **दासपोरुसं** - दास व पुरुष समूह, **कामखंधाणि** - काम स्कन्ध।

भावार्थ - दस अंगों में से पहला अंग यह है - १. जहाँ क्षेत्र वास्तु-भवन आदि, सोना, पशु तथा दास और पुरुष वर्ग, ये चार कामस्कंध हों वहाँ वह दिव्य आत्मा उत्पन्न होती है।

मित्तवं णाइवं होइ, उच्चागोए य वण्णवं।

अप्पायंके महापण्णे, अभिजाए जसो बले॥ १८॥

कठिन शब्दार्थ - **मित्तवं** - मित्रवान्, **णाइवं** - ज्ञातिवान्, **उच्चागोए** - उच्चगोत्रीय, **वण्णवं** - वर्णवान् - सुंदर वर्ण वाला, **अप्पायंके** - आतंक रहित (नीरोग), **महापण्णे** - महाप्राज्ञ, **अभिजाए** - अभिजात - विनयवान्, **जसो** - यशस्वी, **बले** - बलवान्।

भावार्थ - शेष नौ अंग इस प्रकार हैं - वह दिव्यात्मा मानव भव में २. मित्र वाला ३. ज्ञाति वाला ४. उच्च गोत्र वाला ५. सुन्दर वर्ण वाला ६. नीरोग ७. महा प्रज्ञाशाली ८. विनीत - सब को प्रिय लगने वाला ९. यशस्वी और १०. बलवान् होता है।

विवेचन - इस गाथा में शेष नौ अंगों का निर्देश किया गया है। देवलोक से आये हुए जीव का वर्णन करते हुए शास्त्रकार कहते हैं कि वह पुण्यात्मा जीव इस संसार में बहुत मित्रों वाला होता है। अधिक संबंधियों वाला होता है तथा ऊँचे कुल में जन्म लेने वाला होता है, उसके शरीर का वर्ण भी बड़ा सुंदर - स्निग्ध और गौरादि वर्ण युक्त होता है। उसका शरीर नीरोग - रोग रहित होता है एवं बुद्धिशाली मनुष्यों में अधिक बुद्धि रखने वाला, विनयशील, यशस्वी और बलशाली होता है। उक्त गुण उस आत्मा में स्वभाव से ही होते हैं अर्थात् पूर्वोपार्जित शेष रहे शुभ कर्मों के प्रभाव से ये सब वस्तुएं उस आत्मा को बिना ही यत्न के प्राप्ति हो जाती है। किसी साधन विशेष के अनुष्ठान की उसे आवश्यकता नहीं होती।

भोच्चा माणुस्सए भोए, अप्पडिरूवे अहाउयं।

पुव्विं विसुद्ध-सद्धम्मे, केवलं बोहि बुज्झिया॥१९॥

कठिन शब्दार्थ - **भोच्चा** - भोग करके, **माणुस्सए** - मनुष्य के, **भोए** - भोगों को,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अप्पडिरूवे - अप्रतिरूप - उपमा रहित, **अहाउयं** - यथा आयु-आयु पर्यन्त, **पुव्विं** - पूर्व, **विसुद्ध** - निर्मल, **सद्धम्मे** - सद्धर्म में, **बोहिं** - बोधि को, **बुज्झिया** - प्राप्त करके।

भावार्थ - यथाआयु - अपनी आयु के अनुसार मनुष्य भव के अनुपम भोगों को भोग कर पूर्व भव में निदान रहित शुद्ध धर्म का आचरण करने के कारण वह शुद्ध सम्यक्त्व को प्राप्त कर लेता है।

पुण्यात्मा जीव मनुष्य के अनुपम कामभोगों को भोग कर पूर्व जन्म में अर्जित किये हुए निदान रहित शुद्ध धर्म के अनुसार निष्कलंक बोधि को प्राप्त कर लेता है। निष्कलंक बोधि आर्हत् (जिन) धर्म की प्राप्ति रूप होती है। विशुद्ध धर्म अथवा बोधि की प्राप्ति के बाद वे पुण्यात्मा जीव क्या करते हैं? यह आगे की गाथा में बताया जाता है -

उपसंहार

चउरंगं दुल्लहं णच्चा, संजमं पडिवज्जिया।
तवसा धुयकम्मंसे, सिद्धे हवइ सासए॥ २०॥

॥ चाउरंगिज्जं णाम तइयं अज्झयणं समत्तं॥

कठिन शब्दार्थ - **चउरंगं** - चारों अंगों को, **दुल्लहं** - दुर्लभ, **णच्चा** - जान कर, **संजमं** - संयम को, **पडिवज्जिया** - ग्रहण करके, **तवसा** - तप से, **धूयकम्मंसे** - धूत-कर्मांश - कर्मों के अंश को दूर करने वाला, **सिद्धो** - सिद्ध, **सासए** - शाश्वत, **हवइ** - होता है।

भावार्थ - उक्त चार अंगों को दुर्लभ जान कर संयम अंगीकार करता है और तप से सम्पूर्ण कर्मों को क्षय करके शाश्वत सिद्ध हो जाता है। ऐसा मैं कहता हूँ।

विवेचन - ऊपर जिन चारों अंगों का वर्णन किया गया है उनकी प्राप्ति को दुर्लभ जान कर जिस जीव ने संयम को ग्रहण करके तपोऽनुष्ठान के द्वारा कर्मांशों को अपनी आत्मा से सदा पृथक् कर दिया है, वह जीव शाश्वत - सदा रहने वाली सिद्धि गति - मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। त्ति बेमि का तात्पर्य पूर्ववत् है।

॥ इति चतुरंगीय नामक तृतीय अध्ययन समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असंखयं णामं चउत्थं अज्झयणं

असंस्कृत नामक चौथा अध्ययन

उत्थानिका - तीसरे अध्ययन में चारों अंगों की दुर्लभता का विस्तार से वर्णन किया गया है। पुण्योदय से किसी जीव को उन चारों अंगों की प्राप्ति भी हो जाय तो उसके लिए यह उचित है कि वह धर्म में कभी प्रमाद न करे। प्रस्तुत चतुर्थ अध्ययन में प्रमाद के त्याग और अप्रमाद के सेवन का उपदेश दिया गया है।

इसकी प्रथम गाथा इस प्रकार हैं -

असंस्कृत जीवन

असंखयं जीविय मा पमायए, जरोवणीयस्स हु णत्थि ताणं।
एवं वियाणाहि जणे पमत्ते, किण्णु विहिंसा अजया गहिंति॥ १॥

कठिन शब्दार्थ - **असंखयं** - असंस्कृत - संस्कार रहित, **जीविय** - जीवन, **मा पमायए**- प्रमाद मत करो, **जरोवणीयस्स** - जरा (वृद्धावस्था) के समीप आने पर, **णत्थि** - नहीं, **ताणं** - रक्षक, **वियाणाहि** - समझो (जानो), **जणे** - जन, **पमत्ते** - प्रमत्त - प्रमादी, **किण्णु**- किसका, **विहिंसा** - हिंसा करने वाले, **अजया** - अजितेन्द्रिय, **गहिंति** - ग्रहण करेंगे।

भावार्थ - यह जीवन संस्कार रहित है अर्थात् एक बार टूटने पर पुनः नहीं जोड़ा जा सकता अतएव प्रमाद मत करो। वृद्धावस्था को प्राप्त हुए व्यक्ति की रक्षा करने वाला निश्चय ही कोई नहीं है। इस प्रकार समझो कि हिंसा करने वाले और पाप स्थान से निवृत्त न होने वाले प्रमादी पुरुष अन्त समय में किस की शरण में जावेंगे?

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में प्रमाद-त्याग का उपदेश देते हुए कहा गया है कि - यह जीवन संस्कार रहित अर्थात् चिर स्थायी नहीं है अतः तू प्रमाद मत कर। जीवन क्षण भंगुर है। मनुष्य तो क्या इन्द्र, महेन्द्र आदि कोई भी टूटी हुई आयु का संधान नहीं कर सकते। संसार की टूटी हुई प्रायः हर वस्तु किसी न किसी प्रकार से जोड़ी जा सकती है किन्तु आयु का संधान किसी प्रकार के यत्न से भी साध्य नहीं है अतः धर्मानुष्ठान में कभी भी प्रमाद नहीं करना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कई भोले प्राणी कहते हैं कि वृद्धावस्था में धर्माचरण करेंगे, अभी तो मौज मस्ती के दिन हैं परन्तु यह याद रखना चाहिये कि युवावस्था में जिन पुत्रादि के लिए आत्म-समर्पण किया जाता है वे ही वृद्धावस्था आने पर तिरस्कार करने लग जाते हैं। अतः वृद्धावस्था में धर्मानुष्ठान की आशा करना व्यर्थ है। वृद्धावस्था में कोई भी रक्षक और सहायक नहीं होगा, यह जान कर धर्म के आचरण में जितनी शीघ्रता हो सके उतनी श्रेष्ठ है।

वैरानुबद्धता का परिणाम

जे पावकम्मेहिं धणं मणुस्सा, समाययंति अमइं✡ गहाय।
पहाय ते पास-पयट्टिए णरे, वेराणुबद्धा णरयं उवेंति॥ २॥

कठिन शब्दार्थ - पावकम्मेहिं - पाप कर्मों से, **धणं** - धन को, **समाययंति** - उपार्जित (एकत्र) करते हैं, **अमइं (अमयं)** - कुमति - कुबुद्धि को, अमृत के समान समझ कर, **गहाय** - ग्रहण करके, **पहाय** - छोड़ कर, **पास** - विषय रूप पाश में, **पयट्टिए** - प्रवृत्त हुए, **वेराणुबद्धा** - वैरानुबंध - वैर से बंधे हुए, **णरयं** - नरक में, **उवेंति** - उत्पन्न होते हैं।

भावार्थ - कुबुद्धि एवं अज्ञान के वश होकर जो मनुष्य पाप कर्मों से धन को अमृत के समान समझ कर ग्रहण कर के संचय करते हैं, स्त्री पुत्र आदि के पाश में फँसे हुए और वैर-भाव की श्रृंखला में जकड़े हुए वे मनुष्य अन्त समय में धन को यहीं छोड़ कर नरक को प्राप्त करते हैं। उस समय वह धन उनको शरण रूप नहीं होता।

विवेचन - इस गाथा में पाप कर्मों के द्वारा एकत्रित किये गये धन के परिणाम विशेष का वर्णन किया गया है।

किये हुए कर्मों का परिणाम निश्चित

तेणे जहा संधिमुहे गहीए, सकम्मुणा किच्चइ पावकारी।
एवं पया पेच्च इहं च लोए, कडाण कम्माण ण मुक्ख अत्थि॥ ३॥

कठिन शब्दार्थ - तेणे - चोर, **संधिमुहे** - संधिमुख पर, **गहीए** - गृहीतः - पकड़ा हुआ, **सकम्मुणा** - अपने कर्मों से, **किच्चइ** - कष्ट पाता है, **पावकारी** - पाप कर्म करने

✡ पाठान्तर - अभयं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वाला, **पया** - जीव की, **पेच्च** - परलोक, **इहं** - इस, **लोए** - लोक में, **कडाण** - किये हुए, **कम्माण** - कर्मों का फल भोगे बिना, **मुक्ख** - मोक्ष, **ण अत्थि** - नहीं है।

भावार्थ - जिस प्रकार संधिमुख पर सेंध लगाते हुए पकड़ा हुआ पापात्मा चोर अपने ही किये हुए कर्मों से दुःख पाता है, उसी प्रकार जीव इसलोक और परलोक में अपने किये हुए अशुभ कर्मों से दुःख पाते हैं, क्योंकि फल भोगे बिना किये हुए कर्मों से छुटकारा नहीं होता।

विवेचन - जैसे चोरी करते समय पकड़ा जाने वाला चोर अपने किए हुए पाप कर्म से दुःख पाता है उसी प्रकार पाप कर्मों का आचरण करने वाले सभी जीव इसलोक तथा परलोक में दुःख को प्राप्त होते हैं। तात्पर्य यह है कि कर्मों को भोगना ही पड़ेगा बिना भोगे कर्मों से कभी छुटकारा नहीं होता।

शंका - प्रस्तुत गाथा में पाप कर्म का फल दुःख बतलाया है परन्तु यह नहीं बतलाया कि कर्म ही उस दुःख रूप फल को देते हैं अतः फल को दिलाने वाला कोई और ही होना चाहिये?

समा[illegible] सूत्रकार ने तो काल-स्वभाव-कर्म-पुरुषार्थ और नियति - इन पांचों समवायों को हर एक कार्य का कारण स्वीकार किया है। केवल कर्म मात्र को कारण नहीं माना। अतः ये पांचों ही समवाय शुभाशुभ कर्मों के करने और उनका सुख दुःख रूप जो फल होता है उसके भोगने में उपस्थित रहते हैं। जैसे कल्पना करो कि किसी ने विष भक्षण कर लिया हो तो उसको मृत्यु रूप फल की प्राप्ति इन पांच समवायों से ही होती है। यथा विष भक्षण का समय - काल विष की तीक्ष्ण मारकत्व शक्ति स्वभाव, अशुभ कर्म का उदय - कर्म, खाने का उद्यम करना - पुरुषार्थ और आयु के क्षय के समय में विष भक्षण करना - नियति, इस प्रकार कार्य मात्र की सिद्धि में इन पांच समवायों की कारणता विद्यमान रहती है।

कर्म फल भोग में कोई भागीदार नहीं

संसारमावण्ण परस्स अट्ठा, साहारणं जं च करेइ कम्मं।
कम्मस्स ते तस्स उ वेयकाले, ण बंधवा बंधवयं उवेंति॥४॥

कठिन शब्दार्थ - संसारं - संसार को, **आवण्ण** - प्राप्त हुआ, **परस्स** - दूसरों के, **अट्ठा** - निमित्त, **साहारणं** - साधारण, **कम्मस्स** - कर्म के, **वेयकाले** - वेदन के समय में, **बंधवा** - बंधुजन, **बंधवयं** - बन्धुता को, **ण उवेंति** - प्राप्त नहीं होते।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - संसार में प्राप्त हुआ जीव दूसरे के लिये और अपने लिए जो साधारण कर्म करता है, उस कर्म के फलभोग के समय निश्चय ही वे बंधु आदि बंधुता का पालन नहीं करते हैं, अर्थात् फल भोगने के समय दुःख में हिस्सा नहीं बंटाते, यह जीव अपने किये हुए कर्मों को अकेला ही भोगता है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में आगमकार कहते हैं कि हे जीव! अपने किए हुए शुभाशुभ कर्मों का उत्तरदायित्व तेरे ही ऊपर है। तेरे बिना और कोई भी तेरे किये हुए अशुभ कर्म से उत्पन्न होने वाले दुःख का विभाग नहीं कर सकता, अतः तू धर्म मार्ग के अनुसरण में कभी प्रमाद मत कर।

धन, रक्षक नहीं है

वित्तेण ताणं ण लभे पमत्ते, इमम्मि लोए अदुवा परत्था।
दीवप्पणट्ठे व अणंतमोहे, णेयाउयं दट्ठुमदट्ठुमेव॥ ५॥

कठिन शब्दार्थ - **वित्तेण** - धन से, **ताणं** - त्राण (रक्षा), **ण लभे** - प्राप्त नहीं कर सकता, **पमत्ते** - प्रमादी, **इमम्मि** - इस, **लोए** - लोक में, **अदुवा** - अथवा, **परत्था** - परलोक में, **दीवप्पणट्ठेव** - बुझे हुए दीपक के समान, **अणंतमोहे** - अनंत मोह वाला जीव, **णेयाउयं** - न्याय युक्त मार्ग को, **दट्ठुं** - देख कर, **अदट्ठुमेव** - नहीं देखता है।

भावार्थ - प्रमादी पुरुष इस लोक में अथवा परलोक में धन से शरण नहीं पाता है। जिसका दीपक बुझ गया है ऐसे व्यक्ति के समान अनन्त मोह वाला प्राणी न्याय युक्त सम्यग्दर्शनादि रूप मुक्ति मार्ग को देखकर भी, न देखने वाला ही रहता है।

विवेचन - भगवान् फरमाते हैं कि इस लोक और परलोक दोनों में ही कर्म जन्य दुःख की निवृत्ति में धन से किसी प्रकार की भी सहायता नहीं मिल सकती।

जैसे दीपक ले कर गुफा में गया हुआ व्यक्ति दीपक के प्रकाश में वहाँ रही हुई सभी वस्तुएं देखता है, किन्तु प्रमादवश दीपक बुझ जाने पर उसका वस्तुओं का देखना और न देखना एक-सा हो जाता है। इसी प्रकार कर्मों का क्षयोपशम होने पर श्रुतज्ञान रूप भाव दीपक के प्रकाश में आत्मा मोक्षमार्ग का दर्शन करता है, किन्तु धन आदि में आसक्ति के कारण वह पुनः कर्मों से आवृत्त हो जाता है, फलतः उसका मुक्तिमार्ग का दर्शन करना भी, न करने के समान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ही हो जाता है। इस प्रकार धन स्वयं भी जीव का रक्षण नहीं कर सकता और रक्षा करने वाले सम्यग्दर्शन आदि गुणों का भी घातक होता है।

अप्रमत्तता का संदेश

सुत्तेसु यावि पडिबुद्ध जीवी, णो वीससे पंडिए आसुपण्णे।
घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं, भारंड-पक्खी व चरेऽप्पमत्तो॥ ६॥

कठिन शब्दार्थ - **सुत्तेसु** - सोते लोगों में, **यावि** - और भी, **पडिबुद्धजीवी** - जागृत रह कर जीवन जीने वाला, **णो वीससे** - विश्वास न करे, **पंडिए** - पंडित (विद्वान्), **आसुपण्णे**- आशुप्रज्ञ - तीव्र बुद्धि वाला, **घोरा** - घोर - अत्यन्त भयानक, **मुहुत्ता** - मुहूर्त्त (काल), **अबलं** - निर्बल, **सरीरं** - शरीर, **भारंडपक्खी व** - भारण्ड पक्षी के समान, **चरे** - विचरण करे, **अप्पमत्तो** - अप्रमादी होकर।

भावार्थ - द्रव्य और भाव से सोये हुए लोगों के बीच भी द्रव्य और भाव से जाग कर संयम युक्त जीवन जीने वाला, आशुप्रज्ञ पंडित मुनि प्रमादाचरण में विश्वास नहीं करे। काल, घोर-अनुकम्पा रहित है और शरीर निर्बल है। अतएव भारण्ड पक्षी के समान प्रमाद रहित हो कर सावधानी पूर्वक विचरे।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में साधु को प्रमादी पुरुषों से सावधान रहने और स्वयं अप्रमत्त रह कर जीवन व्यतीत करने का उपदेश दिया गया है।

निद्रा में प्रमाद और जागरण में अप्रमत्तता है। अतः आशुप्रज्ञ पंडित मुनि को चाहिये कि धर्म के प्रति असावधान एवं प्रमादी लोगों के बीच रहते हुए भी स्वयं सदा धर्म में तत्पर रहे और जन-साधारण के समान प्रमाद में कतई विश्वास नहीं करे। काल निर्दय है, उसके आगे शरीर सर्वथा अशक्त है। अतएव मुमुक्षु को चाहिये कि भारण्ड पक्षी के समान सदा प्रमाद-रहित हो कर शास्त्र-विहित अनुष्ठानों का सेवन करे। भारण्ड पक्षी के शरीर की रचना ही ऐसी होती है कि तनिक प्रमाद भी उसकी जीवन लीला को समाप्त कर देता है। इसी प्रकार साधु जीवन में जरा-सा प्रमाद, संयम-जीवन को नष्ट कर देता है।

चरे पयाइं परिसंकमाणो, जं किंचि पासं इह मण्णमाणो।
लाभंतरे जीविय बूहइत्ता, पच्छा परिण्णाय मलावधंसी॥७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **पयाइं** - पद पद पर, **परिसंकमाणो** - शंका करता हुआ, **जं** - जो, **किंचि** - कुछ-थोड़ा, **पासं** - पाश रूप, **मण्णमाणो** - मानता हुआ, **लाभंतरे** - लाभ होता हो, **जीविय** - जीवन को, **बूहइत्ता** - वृद्धि करे, **पच्छा** - पीछे, **परिण्णाय** - परिज्ञा से जान कर, **मलावधंसी** - कर्म रूप मल को दूर करने वाला होवे।

भावार्थ - साधु को चाहिए कि मूलगुण आदि स्थानों में पद-पद पर कहीं दोष न लग जाय इस प्रकार शंका करता हुआ और इस लोक में गृहस्थ के साथ जो कुछ थोड़ा भी परिचय आदि है उसे संयम के लिए पाश रूप मानता हुआ विचरे। जब तक इस शरीर से विशेष ज्ञान-ध्यान-संयम-तप आदि गुणों का लाभ होता हो, तब तक जीवन की वृद्धि करे अर्थात् अन्न-पानी आदि द्वारा सार-संभाल करे, किन्तु बाद में लाभ न होने की अवस्था में ज्ञपरिज्ञा द्वारा शरीर को धर्म-साधन में, अयोग्य समझ कर और प्रत्याख्यान परिज्ञा द्वारा आहार का त्याग कर इस औदारिक शरीर का त्याग करे।

विवेचन - उक्त गाथा में **'परिण्णा'** परिज्ञा शब्द दिया है जिसका तात्पर्य यह है कि जब तुमको पूर्ण रूप से यह ज्ञान हो जाय कि यह शरीर अब नहीं रहेगा। इस का वियोग अब अवश्यंभावी है उस समय पर संयमशील पुरुष को उचित है कि वह भक्त प्रत्याख्यान आदि अनशनव्रत के द्वारा अपने कर्ममल को दूर करने का प्रयास करे।

स्वच्छंदता-निरोध

छंदं णिरोहेण उवेइ मोक्खं, आसे जहा सिक्खिय वम्मधारी।
पुव्वाइं वासाइं चरेऽप्पमत्तो, तम्हा मुणी खिप्पमुवेइ मोक्खं॥८॥

कठिन शब्दार्थ - **छंदं** - स्वच्छदता का, **णिरोहेण** - निरोध से, **उवेइ** - प्राप्त होता है, **मोक्खं** - मोक्ष को, **आसे** - छोड़ा, **जहा** - जैसे, **सिक्खिय** - शिक्षित, **वम्मधारी** - कवच को धारण करने वाला, **पुव्वाइं** - पूर्वों, **वासाइं** - वर्षों तक, **अप्पमत्तो** - अप्रमत्त-प्रमाद रहित, **खिप्पं** - शीघ्र।

भावार्थ - जिस प्रकार सवार की अधीनता में रह कर शिक्षा पाया हुआ और शरीर पर कवच धारण करने वाला घोड़ा, युद्ध में शत्रुओं से नहीं मारा जाता अपितु शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है, इसी प्रकार गुरु की अधीनता में रह कर शास्त्र-विहित आचार का सेवन करने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वाला मुनि स्वच्छन्दता का त्याग करने से मोक्ष प्राप्त करता है। अतएव गुरु की आज्ञा में रहता हुआ साधु पूर्व वर्ष तक प्रमाद रहित हो कर विचरण करे। इस प्रकार करने से साधु शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करता है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में मोक्ष के उपाय का वर्णन किया है। इच्छाओं का निरोध और गुरुजनों की भक्ति, ये मोक्षपुरी के दो मुख्य मार्ग हैं, जिन पर चलने वाला शीघ्र ही मोक्ष को पा लेता है। गुरु आज्ञा के प्रतिकूल चलने वाला स्वेच्छाचारी शिष्य संयम मार्ग से भ्रष्ट हो कर संसार चक्र में ही भ्रमण करता रहता है अतः आगमकार ने अप्रमत्त रह कर संयम का आचरण करने का उपदेश दिया है।

शाश्वतवादियों का कथन एवं अन्य से तुलना

स पुव्वमेवं ण लभेज्ज पच्छा, एसोवमा सासयवाइयाणं।
विसीयइ सिढिले आउयम्मि, कालोवणीए सरीरस्स भेए॥९॥

कठिन शब्दार्थ - पुव्वमेवं - पहले के समान, **ण लभेज्ज** - प्राप्त न होवे, **एसोवमा**- यह उपमा, **सासय** - शाश्वत, **वाइयाणं** - वादियों की है, **विसीयइ** - खेद पाता है, **सिढिले** - शिथिल, **आउयम्मि** - आयु के होने पर, **कालोवणीए** - काल के समीप आने पर, **सरीरस्स** - शरीर के, **भेए** - भेद होने पर।

भावार्थ - जो व्यक्ति पहले से ही अप्रमत्त हो कर ऊपर कहे अनुसार धर्माचरण नहीं करता और पिछली अवस्था के लिए छोड़ देता है, वह पहले के समान, बाद में भी धर्माचरण न कर सकेगा। शाश्वतवादी (निश्चयवादी) निरुपक्रम आयु वालों का 'बाद में धर्म का आचरण कर लेंगे', यह विचारना ठीक भी हो सकता है, किन्तु जल के बुलबुले के समान आयु वालों का यह विचारना ठीक नहीं है, ऐसा व्यक्ति, आयु के शिथिल होने पर तथा मृत्यु काल निकट आने पर एवं शरीर के नाश होने के अवसर पर खेद करता है।

विवेचन - आयु के परिमाण को जानने वाले निरुपक्रम आयु वाले लोग यदि कहें कि 'हम पीछे धर्माचरण कर लेंगे' तो उनका कहना ठीक भी हो सकता है, किन्तु जिनकी आयु का कोई निश्चय नहीं है, न जाने कब टूट जाय, वे यदि बाद में धर्माचरण की बात कहें, तो वे पहले भी न करेंगे और पीछे भी न कर पायेंगे। अन्त में आयु समाप्त होने के समय मौत के निकट आने पर हाथ मलने के सिवाय उनका कोई चारा न होगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिक्षण अप्रमत्त भाव

खिप्पं ण सक्केइ विवेकमेउं, तम्हा समुट्ठाय पहाय कामे।
समिच्च लोगं समया महेसी, आयाणुरक्खी चरेऽप्पमत्तो॥१०॥

कठिन शब्दार्थ - **खिप्पं** - शीघ्र, **ण सक्केइ** - समर्थ नहीं, **विवेगं** - विवेक को, **एउं** - प्राप्त करने को, **तम्हा** - इसलिए, **समुट्ठाय** - सम्यक् प्रकार से उद्यत होकर, **पहाय** - त्याग कर, **कामे** - कामभोगों को, **समिच्च** - जान कर, **लोयं** - लोक को, **समया** - समभाव से, **महेसी** - महर्षि, **आयाणुरक्खी** - आत्मानुरक्षी - आत्मा की रक्षा करने वाला।

भावार्थ - शीघ्र ही विवेक प्राप्त करना और बाह्य संग एवं कषायों का त्याग करना, शक्य नहीं है। इसलिए आत्मा की रक्षा करने वाला मोक्षार्थी मुनि काम भोगों का त्याग कर और लोक का स्वरूप समभाव पूर्वक जान कर प्रमाद रहित हो कर सावधानी पूर्वक विचरे॥१०॥

विवेचन - जरा और मृत्यु के अति निकट आ जाने पर जीव को विवेक शक्ति का शीघ्र प्राप्त होना बहुत कठिन है। अतः धर्म का आचरण पीछे से कर लिया जायेगा इस प्रकार के भावों को त्याग देना चाहिये और धर्मानुष्ठान में लग जाना चाहिये।

द्वेष-विजय

मुहुं मुहुं मोहगुणे जयंतं, अणेग-रूवा समणं चरंतं।
फासा फुसंति असमंजसं च, ण तेसु भिक्खू मणसा पउस्से॥११॥

कठिन शब्दार्थ - **मुहुं मुहुं** - बार-बार, **मोहगुणे** - मोह गुण को, **जयंतं** - जीतता हुआ, **अणेगरूवा** - अनेक प्रकार के, **समणं** - साधु, **चरंतं** - संयम मार्ग में चलते हुए, **फासा** - स्पर्श, **फुसंति** - स्पर्शित होते हैं, **असमंजसं** - प्रतिकूल रूप से, **मणसा** - मन से, **ण पउस्से** - द्वेष नहीं करे।

भावार्थ - शब्दादि मोह गुणों को बारम्बार - निरन्तर जीतते हुए और संयम मार्ग में विचरते हुए साधु को अनेक प्रकार के शब्दादि विषय प्रतिकूल रूप से स्पर्श करते हैं किन्तु साधु को चाहिए कि उन पर मन से भी द्वेष न करे॥११॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रमाद का मूल कारण राग और द्वेष हैं। अतः प्रस्तुत गाथा में द्वेष त्याग का उपदेश दिया गया है। अब अनुकूल स्पर्शों पर राग-विजय का उपदेश देते हैं।

राग-विजय

मंदा य फासा बहुलोहणिज्जा, तहप्पगारेसु मणं ण कुज्जा।
रक्खेज्ज कोहं विणएज्ज माणं, मायं ण सेवेज्ज पहेज्ज लोहं॥१२॥

कठिन शब्दार्थ - **मंदा** - मंद, **बहुलोहणिज्जा** - बहुत लोभनीय, **तहप्पगारेसु** - तथा प्रकारों में, **मणं** - मन को, **ण कुज्जा** - न करे, **रक्खिज्ज** - दूर करे, **कोहं** - क्रोध को, **विणएज्ज** - टाल देवे, **माणं** - मान को, **मायं** - माया को, **म सेवेज्ज** - सेवन न करे, **पहेज्ज** - छोड़ दे, **लोहं** - लोभ को।

भावार्थ - शब्दादि विषय, विवेक-बुद्धि को मन्द करने वाले और बहुत ही लुभाने वाले हैं। मुमुक्षु को इस प्रकार के आकर्षक शब्दादि विषयों में मन न लगाना चाहिए। उनमें रागपूर्वक प्रवृत्ति न करनी चाहिए। उसे क्रोध को शान्त करना चाहिए। मान को दूर करना चाहिये। माया का सेवन नहीं करना चाहिये और लोभ का त्याग करना चाहिये।

विवेचन - शब्दादि अनुकूल स्पर्शों की प्रलोभनता में विवेकी साधु को अपना मन कभी न लगाना चाहिये तथा क्रोध, मान, माया और लोभ का भी परित्याग कर देना चाहिये। क्रोधादि चारों कषाय राग और द्वेष के ही अंतर्गत है। क्रोध और मान द्वेष के अन्तर्गत है एवं माया तथा लोभ राग के अंतर्गत है। अतः इनको जीत लेने से मोह के सभी गुण (प्रकार-भेद) जीत लिये जाते हैं।

सद्गुणों की आकांक्षा

जे संखया तुच्छ परप्पवाई, ते पिज्ज-दोसाणुगया परज्झा।
एए अहम्मेत्ति दुगुंछमाणो, कंखे गुणे जाव सरीरभेए॥१३॥ त्ति बेमि॥

॥ असंखयं णामं चउत्थं अज्झयणं समत्तं॥

कठिन शब्दार्थ - **संखया** - संस्कृत, **तुच्छ** - निःसार, **परप्पवाई** - परप्रवादी,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पिज्जदोसाणुगया - प्रेम - राग द्वेष के अनुगत, **परज्झा** - परवश (पराधीन), **अहम्मे** - अधर्म के, **दुगुंछमाणो** - जुगुप्सा करता हुआ, **कंखे** - इच्छा करे, **गुणे** - गुणों की, **जाव** - जब तक, **सरीरभेए** - शरीर का भेद हो (शरीर छूटे)।

भावार्थ - जो संस्कृत यानी बाहरी दिखावे वाले, किन्तु अन्तःकरण की शुद्धि से रहित निस्सार वचन बोलने वाले, अन्यतीर्थियों के शास्त्रों की प्ररूपणा करने वाले वादी हैं वे राग-द्वेष से युक्त हैं, इस कारण पराधीन हैं। ये लोग अधर्म के हेतु हैं इस प्रकार जान कर उनकी जुगुप्सा करता हुआ मुमुक्षु जब तक शरीर का नाश न हो तब तक जीवन पर्यन्त सम्यग्दर्शनादि गुणों की इच्छा करे। ऐसा मैं कहता हूँ।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में अन्यमतावम्बियों के बाह्य आडम्बर के परित्याग की एवं शरीर का भेद नहीं होने तक ज्ञानादि गुणों की इच्छा करने की शिक्षा दी गयी है।

॥ इति असंस्कृत नामक चौथा अध्ययन समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अकाममरणिज्जं णामं पंचमं अज्झयणं

अकाम मरणीय नामक पांचवां अध्ययन

उत्थानिका - चौथे अध्ययन में मरण पर्यन्त साधु को प्रमाद नहीं करने की शिक्षा दी गयी है। अतः मरण के भेदों का ज्ञान भी जरूरी है। इस पांचवें अध्ययन में मरण के दो भेद - सकाम मरण और अकाम मरण का विस्तार से वर्णन किया गया है। साधक को बाल मरण का त्याग कर पंडित मरण के लिए पुरुषार्थ करना चाहिये। प्रस्तुत अध्ययन की प्रथम गाथा इस प्रकार है -

अण्णवंसि महोहंसि, एगे तिण्णे दुरुत्तरे।
तत्थ एगे महापण्णे, इमं पण्हमुदाहरे॥१॥

कठिन शब्दार्थ - **अण्णवंसि** - संसार समुद्र में, **महोहंसि** - महा प्रवाह वाले, **एगे** - कितने ही, **तिण्णे** - तिर गए, **दुरुत्तरे** - दुस्तर, **महापण्णे** - महाप्राज्ञ, **पण्हं** - प्रश्न का, **उदाहरे** - उत्तर दिया।

भावार्थ - महाप्रवाह वाले दुस्तर संसार-समुद्र में कोई महात्मा तिर गये हैं, इस विषय में - संसार पार करने के विषय में किसी जिज्ञासु के पूछने पर एक महाप्रज्ञाशाली तीर्थंकर देव ने इस प्रकार प्रश्न का उत्तर - उपदेश फरमाया है।

विवेचन - यह संसार समुद्र बड़ा ही दुस्तर है। इसके जन्म मरण रूप महाप्रवाह में पड़ा हुआ प्राणी भाग्य से ही बाहर निकल सकता है। राग द्वेष रूप अंतरंग शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाले कोई कोई महापुरुष ही इससे पार हो सकते हैं।

मरण के स्थान

संतिमे य दुवे ठाणा, अक्खाया मरणंतिया।
अकाम-मरणं चेव, सकाम-मरणं तहा॥२॥

कठिन शब्दार्थ - **संति** - हैं, **इमे** - ये, **दुवे** - दो, **ठाणा** - स्थान, **अक्खाया** - कहे गये हैं, **मरणंतिया** - मरण के समीप, **अकाम मरणं** - अकाम मरण, **सकाम मरणं** - सकाम मरण।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - मरण रूप अन्त समय के ये दो स्थान कहे गये हैं - अकाम मरण तथा सकाम मरण।

विवेचन - मृत्यु के समय सभी जीव इन दो स्थानों के आश्रित होकर मृत्यु को प्राप्त होते हैं -

१. अकाम मरण - जो जीव अज्ञान की दशा में अज्ञान के वशीभूत होकर मृत्यु को प्राप्त होते हैं उनकी मृत्यु को बाल मरण या अकाम मरण कहते हैं।

२. सकाम मरण - जो जीव ज्ञान पूर्वक मृत्यु को प्राप्त होते हैं उनकी यह ज्ञानगर्भित मृत्यु पंडित मरण या सकाम मरण कहलाती है। इसी बात को आगे की गाथा में स्पष्ट करते हैं-

बालाणं तु अकामं तु, मरणं असइं भवे।
पंडियाणं सकामं तु, उक्कोसेण सइं भवे॥३॥

कठिन शब्दार्थ - **बालाणं** - अज्ञानियों का, **अकामं** - अकाम, **तु** - तो, **मरणं** - मरण, **असइं** - बार-बार, **भवे** - होता है, **पंडियाणं** - पंडितों का, **सकामं** - सकाम, **उक्कोसेण** - उत्कृष्टता से, **सइं** - एक ही बार।

भावार्थ - अज्ञानी जीवों के अकाम मरण ही बार-बार होता है, पंडित पुरुषों का सकाम मरण तो उत्कृष्ट (केवलज्ञानी की अपेक्षा) एक ही बार होता है।

विवेचन - जो सदा सद् के विचारों से विकल है उन मूर्खों की अकाम मृत्यु अनेक बार होती है क्योंकि वे विषय कषायों के वशीभूत होकर बार-बार जन्म मरण करते हैं। इसके विपरीत जो सद्-असद् का विचार करने वाले पंडित पुरुष हैं उनकी मृत्यु उत्कृष्ट रूप से एक ही बार होती है। यह कथन केवलज्ञान प्राप्त मुनि की अपेक्षा से हैं।

अकाम मरण का स्वरूप

तत्थिमं पढमं ठाणं, महावीरेण देसियं।
काम-गिद्धे जहा बाले, भिसं कूराइं कुव्वइ॥४॥

कठिन शब्दार्थ - **तत्थ** - वहाँ - उन दो स्थानों में, **पढमं ठाणं** - प्रथम स्थान, **देसिय**- बतलाया गया है, **कामगिद्धे** - कामभोगों में आसक्त, **भिसं** - भीषण-अतिशय, **कूराइं** - क्रूर, **कुव्वइ** - करता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इनमें से यह पहला स्थान यानी अकाम-मरण, भगवान् महावीर ने कहा है। जिस प्रकार इन्द्रिय विषयों में आसक्त अज्ञानी जीव अत्यन्त क्रूर कर्म करता है॥४॥

विवेचन - जो अज्ञानी जीव कामवासनाओं में अत्यंत आसक्ति रखने वाले हैं और हिंसा आदि अति क्रूर कर्मों का आचरण करने वाले हैं उनका अकाम मरण होता है - ऐसा श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने कहा है।

जैसे अबोध बालक अपने हित और अहित को नहीं जानता, उसी प्रकार अज्ञानी - मूर्ख जीव भी अपने हित का कुछ भी विचार न करता हुआ हिंसा आदि क्रूर कर्मों में प्रवृत्त हो जाता है जिसका कि फल अकाम मरण है।

कामभोगासक्त पुरुष की विचारणा

जे गिद्धे कामभोगेसु, एगे कूडाय गच्छइ।
ण मे दिट्ठे परे लोए, चक्खुदिट्ठा इमा रई॥५॥

कठिन शब्दार्थ - गिद्धे - मूर्च्छित, **कामभोगेसु** - कामभोगों में, **कूडाय** - कूट की ओर - नरक में, **दिट्ठे** - देखा, **परे लोए** - परलोक, **चक्खुदिट्ठा** - चक्षुदृष्टि, **इमा** - यह, **रई** - रति।

भावार्थ - जो शब्द और रूप के काम तथा स्पर्श, रस और गन्ध रूप भोग में आसक्त है वह अकेला ही नरक में जाता है अथवा कूट-द्रव्य से मृगबन्धनादि और भाव से मिथ्या भाषणादि में प्रवृत्ति करता है। किसी हितैषी द्वारा प्रेरणा किये जाने पर वह उत्तर देता है कि मैंने परलोक नहीं देखा है और यह शब्दादि विषयों का सुख प्रत्यक्ष ही दिखाई दे रहा है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में विषयासक्त पुरुष के जघन्य विचारों और उसकी विषयासक्ति के भावी फलोदय का दिग्दर्शन कराया गया है।

हत्थागया इमे कामा, कालिया जे अणागया।
को जाणइ परे लोए, अत्थि वा णत्थि वा पुणो॥६॥

भावार्थ - हत्थागया - हाथ में आये हुए, **कामा** - काम-भोग, **कालिया** - कालिक, **अणागया** - अनागत - भविष्य में होने वाले, **को** - कौन, **जाणइ** - जानता है, **अत्थि** - है, **वा** - अथवा, **णत्थि** - नहीं, **पुणो** - फिर।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - ये शब्दादि विषय-सुख हाथ में आये हुए - स्वाधीन हैं और जो भविष्यत्कालीन-परभव में प्राप्त होने वाले सुख हैं वे अनिश्चित काल के बाद प्राप्त होने वाले हैं और संदिग्ध हैं, क्योंकि कौन जानता है कि फिर परलोक है अथवा नहीं है?

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में कामादि विषयों में अत्यंत आसक्ति रखने वाले पुरुष के स्वार्थ साधक विचारों का वर्णन किया गया है।

जणेण सद्धिं होक्खामि, इइ बाले पगब्भइ।
कामभोगाणुराएणं, केसं संपडिवज्जइ॥७॥

कठिन शब्दार्थ - **जणेण** - लोगों के, **सद्धिं** - साथ, **होक्खामि** - रहूँगा, **इइ** - इस प्रकार, **पगब्भइ** - धृष्ठता करता है, **कामभोगाणुराएणं** - कामभोगों के प्रति अनुराग से, **केसं** - क्लेश को, **संपडिवज्जइ** - पाता है।

भावार्थ - 'लोगों के साथ होगा अर्थात् सभी लोग शब्दादि सुख भोगते हैं, उनका जो हाल होगा वही मेरा भी होगा' इस प्रकार अज्ञानी जीव धृष्टता करता है। वह जीव काम भोगों में अनुराग रखने के कारण क्लेश - यहाँ और परभव में दुःख प्राप्त करता है।

विवेचन - विषयानुरागी पुरुषों को परलोक के अस्तित्व का ज्ञान हो जाने पर भी वे विषयों से विरक्त नहीं होते किन्तु अपनी जघन्य प्रवृत्ति का येन केन उपायेन समर्थन ही करते हैं।

विषयलोलुप पुरुषों की प्रवृत्ति

तओ से दंडं समारभइ, तसेसु थावरेसु य।
अट्ठाए य अणट्ठाए, भूयगामं विहिंसइ॥८॥

कठिन शब्दार्थ - **दंडं** - दण्ड - हिंसा का, **समारभइ** - आरम्भ करता है, **तसेसु** - त्रसों में, **थावरेसु** - स्थावरों में, **अट्ठाए** - अर्थ के लिए, **अणट्ठाए** - अनर्थ के लिए, **भूयगामं** - प्राणी समूह का, **विहिंसइ** - हिंसा करता है।

भावार्थ - इस कारण वह त्रस और स्थावर प्राणियों में हिंसा का आरम्भ करता है। अपने और दूसरों के प्रयोजन से और निष्प्रयोजन ही प्राणियों की हिंसा करता है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में विषय कामना से प्रेरित हुए मनुष्य की हिंसक प्रवृत्ति का उल्लेख किया गया है। कामी - विषयी पुरुषों की हिंसक प्रवृत्ति में अर्थ-अनर्थ का जरा भी विचार नहीं होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हिंसे बाले मुसावाई, माइल्ले पिसुणे सढे।
भुंजमाणे सुरं मंसं, सेयमेयं ति मण्णइ॥९॥

कठिन शब्दार्थ - **हिंसे** - हिंसा करने वाला, **बाले** - मूर्ख, **मुसावाई** - मृषावादी, **माइल्ले** - मायावी - छल कपट करने-वाला, **पिसुणे** - पिशुन - चुगली करने वाला, **सढे** - शठ - धूर्त, **भुंजमाणे** - खाता हुआ, **सुरं** - मदिरा, **मंसं** - मांस को, **सेयं** - श्रेय - श्रेष्ठ, **मण्णइ** - मानता है।

भावार्थ - हिंसा करने वाला, झूठ बोलने वाला, मायाचार का सेवन करने वाला, दूसरों के दोष प्रकट करने वाला, धूर्त, वह अज्ञानी जीव मदिरा मांस का सेवन करता हुआ 'यही कल्याणकारी है', इस प्रकार मानता है।

विवेचन - अकाम मरण को प्राप्त होने वाला मूर्ख-अज्ञानी जीव हिंसा करता हुआ, झूठ बोलता हुआ, छल कपट करता हुआ, चुगली करता हुआ, धूर्तता करता हुआ तथा मदिरा और मांस खाता हुआ भी अपने इन कुत्सित आचरणों को श्रेष्ठ समझता है।

कायसा वयसा मत्ते, वित्ते गिद्धे य इत्थिसु।
दुहओ मलं संचिणइ, सिसुणागुव्व मट्टियं॥१०॥

कठिन शब्दार्थ - **कायसा** - काया से, **वयसा** - वचन से, **मत्ते** - मत्त, **वित्ते** - वित्त - धन में, **इत्थिसु** - स्त्रियों में, **दुहओ** - दोनों प्रकार से, **मलं** - कर्म मल को, **संचिणइ** - संचित करता है, **सिसुणागो** - शिशुनाग (अलसिया), **व्व** - जैसे, **मट्टियं** - मिट्टी को।

भावार्थ - काया से, वचन से और मन से मदान्ध बना हुआ तथा धन और स्त्रियों में आसक्त बना हुआ वह अज्ञानी दोनों प्रकार से-रागद्वेषमयी बाह्य और आभ्यन्तर प्रवृत्तियों द्वारा कर्म-मल का संचय करता है, जैसे अलसिया मिट्टी खाता है और उसे शरीर पर भी लगाता है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में अज्ञानी जीव की प्रवृत्ति का दिग्दर्शन कराया गया है। अबोध प्राणी अपनी शारीरिक, वाचिक और मानसिक प्रवृत्ति के द्वारा दोनों प्रकार से अर्थात् राग और द्वेष से कर्म मल को एकत्रित करता है जैसे शिशुनाग - अलसिया दोनों प्रकार से - मुख और शरीर से मिट्टी ग्रहण करता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इह-पारलौकिक दुष्फल का भय

तओ पुट्ठो आयंकेणं, गिलाणो परितप्पइ।
पभीओ परलोगस्स, कम्माणुप्पेही अप्पणो॥११॥

कठिन शब्दार्थ - **तओ** - तदनन्तर, **पुट्ठो** - स्पर्शित हुआ, **आयंकेणं** - आतंक से, **गिलाणो** - ग्लान - रोगी, **परितप्पइ** - खेद को पाता है, **पभीओ** - डरता हुआ, **परलोगस्स**- परलोक से, **कम्माणुप्पेही** - कर्मों को देखने वाला, **अप्पणो** - अपने किये हुए।

भावार्थ - इसके बाद शीघ्र ही घात करने वाले शूलादि रोग से पीड़ित हुआ वह अज्ञानी जीव मन में ग्लानि का अनुभव करता है तथा परलोक से डरा हुआ वह जीव अपने दुष्ट कर्मों को याद करके पश्चात्ताप करता है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में विषय वासनाओं के उद्रेक से अधिक कर्म मल का संचय करने वाले जीव की रोग आदि के उपस्थित होने पर जो दशा होती है, उसका चित्रण किया गया है।

सुया मे णरए ठाणा, असीलाणं च जा गई।
बालाणं कूरकम्माणं, पगाढा जत्थ वेयणा॥१२॥

कठिन शब्दार्थ - **सुया** - सुना है, **मे** - मैंने, **णरए ठाणा** - नरक में स्थान, **असीलाणं**- दुष्टों की, **जा** - जो, **गई** - गति, **बालाणं** - अज्ञानियों, **कूरकम्माणं** - क्रूर कर्म करने वाले, **पगाढा** - प्रगाढ़, **जत्थ** - जहाँ, **वेयणा** - वेदना।

भावार्थ - सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि हे आयुष्मन् जम्बू! मैंने नरक में उत्पन्न होने के स्थानों के विषय में भगवान् से सुना है और दुःशील पुरुषों की जो गति (नरक गति) होती है, उसे भी सुना है, जहाँ क्रूर कर्म वाले, बाल (अज्ञानी) जीवों को, प्रगाढ़ (असह्य) वेदना होती है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में दुष्ट कर्मों के फलस्वरूप नरक आदि यातनाओं का दिग्दर्शन कराया गया है।

तत्थोववाइयं ठाणं, जहा मेयमणुस्सुयं।
आहाकम्मेहिं गच्छंतो, सो पच्छा परितप्पइ॥१३॥

कठिन शब्दार्थ - **तत्थ** - वहाँ पर, **उववाइयं** - उत्पन्न होने के, **ठाणं** - स्थान को,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मेयं - मैंने, **अणुस्सुयं** - सुना है, **अहाकम्मेहिं** - अपने कर्मों के अनुसार, **गच्छंतो** - जाता हुआ, **परितप्पइ** - परिताप करता है।

भावार्थ - वहाँ नरक में उत्पन्न होने का स्थान जैसा दुःखदायी है मैंने उसके विषय में सुना है। बाद में - आयु क्षीण होने पर अपने कर्मों के अनुसार वहाँ जाता हुआ वह जीव पश्चात्ताप करता है।

विवेचन - नरक में उत्पन्न होने के कुंभी आदि अनेक स्थान हैं, उन स्थानों में अपने किए अशुभ कर्मों के प्रभाव से नरक में जाकर उत्पन्न होने वाला जीव, आयु के क्षय होने पर इस प्रकार पश्चात्ताप करता है - हा! मुझे धिक्कार है। मैंने कुछ भी सुकृत नहीं किया, दुर्लभ मानव जीवन का मैंने कुछ भी मूल्य नहीं समझा। मैं बड़ा मंद भागी हूँ इत्यादि। अंत समय में नरक गति का ध्यान आने से वह अबोध प्राणी अत्यंत भयभीत हो उठता है।

गाड़ीवान् का दृष्टान्त

जहा सागडिओ जाणं, समं हिच्चा महापहं।
विसमं मग्गमोइण्णो, अक्खे भग्गम्मि सोयइ॥१४॥

कठिन शब्दार्थ - **सागडिओ** - गाड़ी वाला, **जाणं** - जान कर, **समं** - समान, **हिच्चा**- छोड़ कर, **महापहं** - महापथ को, **विसमं** - विषम, **मग्गं** - मार्ग को, **ओइण्णो** - प्राप्त हुआ, **अक्खे** - धुरी के, **भग्गम्मि** - टूट जाने पर, **सोयइ** - शोक करता है।

भावार्थ - जैसे गाड़ीवान् जान बूझ कर समतल महापथ (राजमार्ग) छोड़ कर विषम मार्ग को प्राप्त हुआ धुरी के टूट जाने पर शोक करता है।

एवं धम्मं विउक्कम्म, अहम्मं पडिवज्जिया।
बाले मच्चुमुहं पत्ते, अक्खे भग्गे व सोयइ॥१५॥

कठिन शब्दार्थ - **विउक्कम्म** - छोड़कर, **अहम्मं** - अधर्म को, **पडिवज्जिया** - स्वीकार करने वाला, **मच्चुमुहं** - मृत्यु के मुख में, **पत्ते** - प्राप्त होकर।

भावार्थ - इसी प्रकार धर्म को छोड़ कर अधर्म को स्वीकार करने वाला अज्ञानी जीव मृत्यु के मुख में प्राप्त हो कर उसी प्रकार पश्चात्ताप करता है जैसे धुरी के टूट जाने पर गाड़ीवान् शोक करता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - गाड़ीवान् का दृष्टान्त दे कर प्रस्तुत गाथाओं में धर्म का त्याग कर अधर्म को स्वीकार करने से होने वाले परिणाम का दिग्दर्शन कराया गया है। जो अज्ञानी व्यक्ति धर्म का उल्लंघन कर अधर्म को स्वीकार कर लेता है, वह मृत्यु के मुख में पड़ने पर उसी प्रकार शोक करता है जैसे धुरी के टूट जाने पर गाड़ीवान् करता है।

तओ से मरणंतम्मि, बाले संतस्सइ भया।
अकाम-मरणं मरइ, धुत्ते व कलिणा जिए॥१६॥

कठिन शब्दार्थ - **मरणंतम्मि** - मृत्यु रूप प्राणांत के समय, **बाले** - अज्ञानी, **संतस्सइ**- संत्रस्त होता है, **भया** - भय से, **धुत्ते व** - जुआरी की तरह, **कलिणा** - कलि-दाव में, **जिए** - हारे हुए।

भावार्थ - इसके बाद मरण रूप अन्त समय के उपस्थित होने पर वह अज्ञानात्मा नरकगति में जाने के डर से कांपता है और दाव में हारे हुए जुआरी के समान, दिव्य-सुखों को हारा हुआ वह पापात्मा अकाममरण मरता है।

विवेचन - प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार जुए में दो प्रकार के दाव होते थे - १. कृतदाव और २. कलिदाव। 'कृत' जीत का दाव और 'कलि' हार का दाव माना जाता था। प्रस्तुत गाथा में **'कलिणा जिए'** शब्द आया है जिसका अर्थ है - एक ही दाव में पराजित।

सकाम मरण का स्वरूप

एयं अकाम-मरणं, बालाणं तु पवेइयं।
इत्तो सकाम-मरणं, पंडियाणं सुणेह मे॥१७॥

कठिन शब्दार्थ - **पवेइयं** - कहा गया है, **इत्तो** - यहाँ से आगे, **पंडियाणं** - पंडित पुरुषों का, **सुणेह** - सुनो।

भावार्थ - यह अज्ञानी जीवों का अकाम-मरण कहा गया है, यहाँ से आगे पण्डित पुरुषों का सकाम-मरण मैं कहता हूँ सो सुनो।

विवेचन - पूर्वोक्त गाथाओं में बाल जीवों के अकाम मरण का वर्णन करने के बाद सूत्रकार अब पंडितों के सकाम मरण का वर्णन करते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मरणं पि सपुण्णाणं, जहा मेऽयमणुस्सुयं।
विप्पसण्ण-मणाघायं, संजयाणं वुसीमओ॥१८॥

कठिन शब्दार्थ - **सपुण्णाणं** - पुण्यवंत (पुण्यशाली), **अणुस्सुयं** - सुना है, **विप्पसण्णं**- प्रसन्नता युक्त, अनाकुल चित्त, **अणाघायं** - व्याघात (आघात) रहित, **संजयाणं** - संयत (संयमी), **वुसीमओ** - जितेन्द्रिय।

भावार्थ - पुण्यवन्त संयमी जितेन्द्रिय महात्माओं का पंडित मरण होता है जैसा कि मैंने उसके लिए सुना है वह मरण प्रसन्नता युक्त एवं व्याघात रहित होता है।

पंडित मरण के अधिकारी

ण इमं सव्वेसु भिक्खुसु, ण इमं सव्वेसुऽगारिसु।
णाणासीला अगारत्था, विसमसीला य भिक्खुणो॥१९॥

कठिन शब्दार्थ - **भिक्खुसु** - भिक्षुओं को, **अगारिसु** - गृहस्थों को, **णाणासीला** - नाना प्रकार के शीलों (व्रत नियमों) से सम्पन्न, **अगारत्था** - गृहस्थ भी, **विसमसीला** - विषमशील - विकृत-सनिदान सातिचार शील वाले।

भावार्थ - यह पण्डित मरण न सभी भिक्षुओं को होता है और न यह सभी गृहस्थों को होता है, गृहस्थ भी अनेक प्रकार के शील वाले होते हैं और साधु भी विषम-शील होते हैं।

विवेचन - कठिन व्रत पालने वाले भिक्षुओं को और विविध सदाचार का सेवन करने वाले गृहस्थों को पण्डित-मरण की प्राप्ति होती है।

संति एगेहिं भिक्खूहिं, गारत्था संजमुत्तरा।
गारत्थेहि य सव्वेहिं, साहवो संजमुत्तरा॥२०॥

कठिन शब्दार्थ - **एगेहिं** - कई, **संजमुत्तरा** - उत्तम संयम वाले, **गारत्थेहि** - गृहस्थों से, **साहवो** - साधु।

भावार्थ - कई नामधारी साधुओं की अपेक्षा गृहस्थ उत्तम संयम वाले होते हैं और सभी गृहस्थों की अपेक्षा साधु उत्तम एवं शुद्ध संयम वाले होते हैं।

विवेचन - इस गाथा का अभिप्राय यह है कि अव्रती, अचारित्री या नामधारी भिक्षुओं की अपेक्षा सम्यग्दृष्टि युक्त देश विरत गृहस्थ संयम में श्रेष्ठ होते हैं किन्तु उन सब देश विरत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गृहस्थों की अपेक्षा सर्वविरत भावभिक्षु संयम में श्रेष्ठ होते हैं क्योंकि उनका संयम व्रत परिपूर्ण है। इसे एक संवाद द्वारा समझाया गया है -

एक श्रावक ने साधु से पूछा - श्रावकों और साधुओं में कितना अन्तर है?

साधु ने कहा - सरसो और मंदर (मेरु) पर्वत जितना।

श्रावक ने पुनः पूछा - कुलिंगी (वेशधारी) साधु और श्रावक में कितना अन्तर है?

साधु ने उत्तर दिया - वही सरसों और मेरु पर्वत जितना।

श्रावक की शंका का समाधान इससे हो गया।

चीराजिणं णगिणिणं, जडी संघाडी मुंडिणं।
एयाणि वि ण तायंति, दुस्सीलं परियागयं॥२१॥

कठिन शब्दार्थ - **चीर** - चीवर (वल्कल-वस्त्र) **अजिणं** - अजिन - मृग-चर्म, मृगछाला आदि, **णगिणिणं** - नग्नता, **जडी** - जटा-धारण, **संघाडी** - संघाटी - चिथडों (वस्त्रों के टुकड़ों) को जोड़ कर बनाया हुआ उत्तरीय, **मुण्डिणं** - शिरो मुण्डन, **एयाणि** - ये सब, **ण तायंति** - रक्षा नहीं कर सकते, **दुस्सीलं** - दुःशील (दुराचारी) को, **परियागयं** - प्रव्रज्या पर्याय प्राप्त।

भावार्थ - चीवर और मृगचर्म, नग्नता, जटा धारण करना, संघाटी-वस्त्रों के टुकड़ों को जोड़कर बनाई हुई कन्था, मस्तक मुंडन, ये साधुता के बाह्य चिह्न भी दीक्षा-पर्याय धारण किये हुए दुःशील पुरुष की दुर्गति से रक्षा नहीं कर सकते।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में स्पष्ट किया गया है कि साधु का बाह्यवेष या बाह्याचार, दुराचारी साधु को दुर्गति गमन से नहीं बचा सकता है। इस गाथा का उल्लेख कर सूत्रकार ने 'गृहस्थ कई भिक्षुओं में संयम में श्रेष्ठ होते हैं' इस वाक्य का समर्थन किया है और बाह्य वेशभूषा से स्वर्ग या मोक्ष प्राप्ति की मान्यता का खंडन किया है।

पिंडोलए व दुस्सीले, णरगाओ ण मुच्चइ।
भिक्खाए वा गिहत्थे वा, सुव्वए कम्मइ दिवं॥२२॥

कठिन शब्दार्थ - **पिंडोलए** - भिक्षा जीवी, **दुस्सीले** - दुःशील, **णरगाओ** - नरक से, **ण मुच्चइ** - बच नहीं सकता, **भिक्खाए** - भिक्षुक, **गिहत्थे** - गृहस्थ, **सुव्वे** - सुव्रती - व्रतों का निरतिचार पालक, **कम्मइ** - जाता है, प्राप्त करता है, **दिवं** - देवलोक को।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - भिक्षा मांग कर निर्वाह करने वाला भिक्षु भी यदि दुष्ट आचार वाला हो तो नरक से नहीं बच सकता। भिक्षुक हो अथवा गृहस्थ हो जो सुन्दर अर्थात् निरतिचार व्रत पालन करने वाला है, वही देवलोक में जाता है।

विवेचन - दुःशील को केवल भिक्षाचरिता नरक से नहीं बचा सकती है इसके लिए टीकाकार ने निम्न उदाहरण दिया है -

राजगृह नगर में एक उद्यान में नागरिकों ने बृहद भोज किया। एक भिक्षुक नगर में तथा उद्यान में जगह जगह भिक्षा मांगता फिरा, उसने दीनता भी दिखाई, परन्तु किसी ने कुछ नहीं दिया। अतः उसने वैभारगिरि पर चढ़ कर रोष वश नागरिकों पर शिला गिरा कर उन्हें मारने का विचार किया। दुर्भाग्य से शिला गिरते समय वह स्वयं शिला के नीचे दब गया। वहीं मर कर सातवीं नरक में गया। अतः दुराचारी को भिक्षाजीविता नरक से नहीं बचा सकती।

इससे स्पष्ट है कि सम्यक्त्व पूर्वक अतिचार - निदान-शल्य रहित व्रताचरण करने वाला ही स्वर्ग या मोक्ष का अधिकारी होता है।

अगारि सामाइयंगाणि, सड्ढी काएण फासए।
पोसहं दुहओ पक्खं, एगरायं ण हावए॥२३॥

कठिन शब्दार्थ - **अगारि सामाइयंगाणि** - अगारि सामायिक के अंग - गृहस्थ की सम्यक्त्व, देशविरति रूप सामायिक और उसके अंगों का, **सड्ढी** - श्रद्धावान् श्रावक, **काएण** - काया से, **फासए** - स्पर्श करे, **पोसहं** - पौषध, **दुहओ** - दोनों, **पक्खं** - पक्षों में, **एगरायं** - एक रात्रि के लिए भी, **ण हावए** - नहीं छोड़े।

भावार्थ - श्रद्धावान् श्रावक गृहस्थ की सम्यक्त्व, श्रुत और देशविरति रूप सामायिक और उसके अंगों का काया से पालन करे, उपलक्षण से मन और वचन से भी पालन करे। दोनों अर्थात् कृष्ण-पक्ष और शुक्ल-पक्ष में अष्टमी, चतुर्दशी अमावस्या और पूर्णिमा के दिन, एक रात्रि के लिए भी पौषध नहीं छोड़े।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में श्रावक के लिए पर्व तिथियों का पौषध न छोड़ने का निर्देश किया है। **'एगरायं'** में रात्रि शब्द से सूत्रकार का यह आशय है कि यदि कभी आवश्यक कार्य में संलग्न रहने से गृहस्थ दिन में पौषध नहीं भी कर सके तो भी रात्रि में तो उसे अवश्य पौषध करना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भगवती सूत्र शतक १२ उद्देशक १ में उल्लिखित शंख श्रावक के वर्णन से अशन, पान का त्याग किये बिना भी पौषध किया जा सकता है जिसे देश पौषध (या दया - छह काय व्रत) कहते हैं। **'पोषणं पोषः** अर्थात् धर्मस्य तं धत्ते इति पौषधं' पौषध का शब्दशः अर्थ होता है - जो धर्म का पोषण करे अथवा जिस व्रत के द्वारा धर्म का पोषण किया जाय, उसे 'पौषध' कहते हैं। पौषध अर्थात् धर्म के पोष (पुष्टि) को धारण करने वाला। जैन धर्मानुसार श्रावक के बारहव्रतों में ग्यारहवाँ व्रत प्रतिपूर्ण (परिपूर्ण) पौषध है। प्रतिपूर्ण पौषध में अशनादि चारों आहारों का त्याग, मणि-मुक्ता स्वर्ण आभरण माला, उबटन, मर्दन, विलेपन आदि शरीर सत्कार का त्याग, अब्रह्म का त्याग एवं शस्त्र मूसल आदि व्यवसाय आदि तथा आरम्भादि सांसारिक एवं सावद्य कार्यों का त्याग करना अनिवार्य होता है तथा एक अहोरात्रि (आठ प्रहर) तक आत्मचिन्तन, स्वाध्याय, धर्मध्यान एवं सावद्य प्रवृत्तियों के त्याग में बिताना होता है।

श्रावक के लिए दोनों पक्षों में छह पौषध करने का विधान है। यदि छह नहीं कर सके तो एक माह में कम से कम दो पौषध तो अवश्य करे।

एवं सिक्खासमावण्णे, गिहवासे वि सुव्वए।
मुच्चइ छविपव्वाओ, गच्छे जक्खसलोगयं॥२४॥

कठिन शब्दार्थ - सिक्खासमावण्णे - शिक्षा (व्रताचरण के अभ्यास) से सम्पन्न, **गिहवासे** - गृहवास में, **मुच्चइ** - मुक्त हो जाता है, **छवि पव्वाओ** - छवि पर्व - छवि का अर्थ है चमड़ी और पर्व का अर्थ है शरीर के संधि स्थल - घुटना, कोहनी आदि अर्थात् मानवीय औदारिक शरीर से, **गच्छे** - जाता है, **जक्खसलोगयं** - यक्षसलोकतां - यक्ष अर्थात् देव, सलोक-देवों के समान लोक यान देवलोक में।

भावार्थ - इस प्रकार व्रत पालन रूप शिक्षा सहित सुव्रती श्रावक गृहस्थावस्था में रहता हुआ भी चर्म, घुटने और कोहनी आदि पर्व यानी सन्धिभागों से अर्थात् औदारिक शरीर से छूट जाता है और देवलोक में जाता है।

सकाम मरणोत्तर स्थिति

अह जे संवुडे भिक्खू, दुण्ह-मण्णयरे सिया।
सव्वदुक्खप्पहीणे वा, देवे वावि महिड्ढिए॥२५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - संवुडे - संवृत - आस्रवद्वार निरोधक, **दुण्ह** - दोनों में से, **अण्णयरे**- एक, **सव्वदुक्खप्पहीणे** - सभी दुःखों से रहित मुक्त, **महिड्ढिए** - महर्द्धिक-महाऋद्धिशाली।

भावार्थ - जो संवर वाला साधु है वह मनुष्यायु के समाप्त होने पर दो में से एक होता है या तो सभी दुःखों का नाश करने वाला सिद्ध होता है अथवा महाऋद्धिशाली देव होता है।

उत्तराइं विमोहाइं, जुइमंताणुपुव्वसो।
समाइण्णाइं जक्खेहिं, आवासाइं जसंसिणो॥२६॥

कठिन शब्दार्थ - **उत्तराइं** - उपरिवर्ती-उत्तरोत्तर ऊपर रहे हुए, **विमोहाइं** - मोह रहित, **जुइमंता** - द्युति (कान्ति) मान्, **अणुपुव्वसो** - क्रमशः, **समाइण्णाइं** - परिव्याप्त-भरे हुए, **जक्खेहिं** - देवों से, **आवासाइं** - आवास, **जसंसिणो** - यशस्वी।

भावार्थ - उन देवों के आवास उत्तरोत्तर ऊपर रहे हुए हैं क्रमशः मोह की न्यूनता वाले एवं मिथ्यादर्शनादि से रहित विशेष द्युति (प्रभा) वाले देवों से भरे हुए हैं, वे देव यशस्वी होते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत गाथाओं में स्पष्ट किया है कि सकाम मृत्यु प्राप्त जीव के कुछ कर्म शेष रह जाने के कारण मोक्ष के बदले देवलोक की उत्कृष्ट ऋद्धि की प्राप्ति होती है। यहाँ देवों के प्रासाद और उनमें देवों के निवास की संख्या का वर्णन किया गया है।

दीहाउया इड्ढिमंता, समिद्धा कामरूविणो।
अहुणोववण्णसंकासा, भुज्जो अच्चिमालिप्पभा॥२७॥

कठिन शब्दार्थ - **दीहाउया** - दीर्घायु वाले, **इड्ढिमंता** - ऋद्धि वाले, **समिद्धा** - समृद्धि वाले, **कामरूविणो** - इच्छानुकूल वैक्रिय करने वाले, **अहुणोववण्णसंकासा** - तत्काल उत्पन्न हुए देव के समान, **भुज्जो** - अनेक, **अच्चिमालि** - सूर्यों की तरह, **प्पभा** - प्रभा वाले।

भावार्थ - वे देव दीर्घ आयु वाले, ऋद्धि संपन्न, अत्यंत दीप्त, इच्छानुसार रूप बनाने वाले नवीन उत्पन्न हुए देव के समान अर्थात् जन्म से लेकर अन्त समय तक एक समान वर्ण, बल, द्युति आदि वाले और बहुत से सूर्यों जैसी दीप्ति वाले होते हैं।

विवेचन - जो जीव पंडित मरण को प्राप्त होकर अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होते हैं उनकी उत्कृष्ट आयु ३३ सागरोपम की होती है। वे अनेक ऋद्धियों से युक्त, अति तेजस्वी और इच्छानुसार वैक्रिय शक्ति से सम्पन्न (युक्त) होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ताणि ठाणाणि गच्छंति, सिक्खित्ता संजमं तवं।
भिक्खाए वा गिहत्थे वा, जे संति परिणिव्वुडा॥२८॥

कठिन शब्दार्थ - **ताणि** - उन, **ठाणाणि** - स्थानों को, **गच्छंति** - जाते हैं, **सिक्खित्ता**- अभ्यास करके, **संजमं** - संयम, **तवं** - तप का, **भिक्खाए** - भिक्षाजीवी साधु, **गिहत्थे** - गृहस्थ, **परिणिव्वुडा** - परिनिवृत्त - हिंसा से निवृत्त (शांत) अथवा कषायों से रहित।

भावार्थ - भिक्षु हो अथवा गृहस्थ हो, जिन्होंने उपशम द्वारा कषायाग्नि को शान्त कर दिया है वे संयम और तप का पालन कर ऊपर बताये हुए स्थानों में जाते हैं।

विवेचन - स्वर्गादि फल का हेतुभूत जो पंडित मरण है उसकी प्राप्ति उन्हीं आत्माओं को होती है जो कि प्रशांत, कषायमुक्त, शुद्ध आचार रखने वाले और सदैव निवृत्ति परायण हैं।

तेसिं सुच्चा सपुज्जाणं, संजयाणं वुसीमओ।
ण संतसंति मरणंते, सीलवंता बहुस्सुया॥२९॥

कठिन शब्दार्थ - **संपुज्जाणं** - सत् पूज्यों, **संजयाणं** - संयतों, **वुसीमओ** - जितेन्द्रिय, **ण संतसंति** - संत्रस्त नहीं होते हैं, **मरणंते** - मृत्यु के समीप जाने से, **सीलवंता** - शीलवान् (चारित्र युक्त) **बहुस्सुया** - बहुश्रुत।

भावार्थ - उन सच्चे पूजनीय, संयमवंत, जितेन्द्रिय भाव-साधुओं का उपरोक्त वर्णन सुन कर चारित्रशील बहुश्रुत महात्मा मरणान्त समय के उपस्थित होने पर उद्विग्न नहीं होते।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में पंडित मरण योग्य साधु की मृत्यु के समय की मनःस्थिति का चित्रण किया गया है।

'सीलवंता बहुस्सया' - शीलवान् और बहुश्रुत, इन दो पदों का एक साथ प्रयोग इसलिए भी सूत्रकार ने किया है कि केवल चारित्र या केवल ज्ञान ही साध्य सिद्धि का हेतु नहीं हो सकता किन्तु ज्ञान और चारित्र इन दो का समुच्चय ही मोक्ष का कारण है। चारित्रवान् और बहुश्रुत जीव ही मृत्यु भय से सर्वथा रहित हो सकते हैं, सर्व साधारण नहीं।

साधक का कर्त्तव्य

तुलिया विसेसमादाय, दयाधम्मस्स खंतिए।
विप्पसीइज्ज मेहावी, तहाभूएण अप्पणा॥३०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **तुलिया** - तोल करके (तुलना करके), **विसेसं** - विशिष्ट को, **आदाय** - ग्रहण करके, **दयाधम्मस्स** - दया धर्म को, **खंतिए** - क्षमा से, **विप्पसीएज्ज** - प्रसन्न करे, **तहाभूएण** - तथाभूत, **अप्पणा** - आत्मा से।

भावार्थ - सकाम-मरण और अकाम-मरण की तुलना कर के और दोनों में से विशेषता वाले सकाम-मरण को ग्रहण कर के और इसी प्रकार शेष धर्मों की अपेक्षा दयाधर्म की विशेषता जान कर और उसे स्वीकार कर बुद्धिमान् साधु, क्षमा मार्दव आदि गुणों द्वारा अपनी आत्मा को प्रसन्न रखे और मरण समय भी तथाभूत-उसी प्रकार आपको व्याकुलता रहित और शान्त बनाये रखे।

तओ काले अभिप्पेए, सड्ढी तालिसमंतिए।
विणएज्ज लोमहरिसं, भेयं देहस्स कंखए॥३१॥

कठिन शब्दार्थ - **काले** - मृत्यु समय के, **अभिप्पेए** - प्राप्त होने पर, **सड्ढी** - श्रद्धावान् पुरुष, **तालिसं** - तादृश (उसी प्रकार), **अंतिए** - गुरु के निकट, **विणएज्ज** - दूर करे, **लोमहरिसं** - लोमहर्ष (रोमांच) को, **भेयं** - भेद की, **देहस्स** - शरीर के, **कंखए** - कांक्षा (इच्छा) करें।

भावार्थ - इसके बाद जब योगों की शक्ति हीन हो जाय और वे धर्म-साधना के योग्य न रहें उस समय मृत्यु का अवसर आने पर श्रद्धावान् पुरुष गुरुजनों के समीप वैसा मृत्यु के भय से होने वाले रोमांच को दूर करें और जीवन-मरण की आकांक्षा रहित हो कर शरीर का नाश चाहे अर्थात् पंडित मरण की इच्छा करे।

उपसंहार

अह कालम्मि संपत्ते, आघायाय समुस्सयं।
सकाममरणं मरइ, तिण्हमण्णयरं मुणी॥३२॥ त्ति बेमि॥

॥ अकाममरणीयं णामं पंचमं अज्झयणं समत्तं॥

कठिन शब्दार्थ - **कालम्मि** - काल के, **संपत्ते** - प्राप्त होने पर, **आघायाय** - विनाश करता हुआ, **समुस्सयं** - शरीर का, **सकाममरणं** - सकाम मरण को, **मरइ** - मरता है, **तिण्हं** - इन तीनों (भक्तप्रत्याख्यान, इंगित, पादपोपगमन) में से, **अण्णयरं** - किसी एक।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इसके बाद मृत्यु समय प्राप्त होने पर मुनि शरीर का ममत्वभाव छोड़ कर भक्त-प्रत्याख्यान, इंगित और पादपोपगमन इन तीन मरणों में से किसी एक मरण से सकाम-मरण मरता है। इस प्रकार मैं कहता हूँ।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में शास्त्रकार ने तीन प्रकार से सकाम मरण की प्राप्ति का कथन किया है। यथा -

१. **भक्तप्रत्याख्यान** - जिसमें यावज्जीवन के लिए त्रिविध या चतुर्विध आहार का त्याग हो, उसे भक्त-प्रत्याख्यान कहते हैं।

२. **इंगित मरण** - निश्चित की हुई भूमि से बाहर न जाने की प्रतिज्ञा इंगित मरण है।

३. **पादपोपगमन** - वृक्ष की कटी हुई शाखा की तरह एक ही स्थान में स्थिर पड़े रहने को पादपोपगमन कहते हैं।

मृत्यु समय के अति निकट आने पर संलेखना आदि के द्वारा औदारिक, तैजस और कार्मण शरीरों का अंत करता हुआ साधक भक्त-प्रत्याख्यान आदि में से किसी एक मरण से सकाम मृत्यु को प्राप्त करे। **'त्ति बेमि'** का अर्थ पूर्ववत् है।

॥ इति अकाम मरण नामक पांचवां अध्ययन समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

खुड्डागणियंठिज्जं णामं छट्ठं अज्झयणं

क्षुल्लक निर्ग्रन्थीय नामक छठा अध्ययन

पांचवें अध्ययन में सकाम मरण और अकाम मरण का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। सकाम मरण की प्राप्ति प्रायः विरत आत्माओं को ही होती है। निर्ग्रन्थ, विरत ही होते हैं अतः छठे अध्ययन में उन्हीं निर्ग्रन्थों का वर्णन किया जाता है।

निर्ग्रन्थ शब्द का सामान्य अर्थ है - ग्रंथि (गांठ) रहित। ग्रंथि दो प्रकार की होती है - १. बाह्य और २. आभ्यंतर। प्रस्तुत अध्ययन में बाह्य और आंतरिक दोनों प्रकार की गांठों का वर्णन है। परिजन, धन वैभव की बाह्य गांठ है और आसक्ति-मूर्च्छा की गांठ आंतरिक गांठ है। दोनों से मुक्त होकर विशुद्ध निर्ग्रन्थ भाव से कैसे स्थिर रहा जाय, यह प्रस्तुत अध्ययन का प्रतिपाद्य है। इसकी प्रथम गाथा इस प्रकार हैं -

अज्ञान, दुःख का कारण

जावंतऽविज्जा पुरिसा, सव्वे ते दुक्खसंभवा।
लुप्पंति बहुसो मूढा, संसारम्मि अणंतए॥१॥

कठिन शब्दार्थ - **जावंत** - जितने भी, **अविज्जा** - विद्या से रहित, **पुरिसा** - पुरुष, **दुक्खसंभवा** - दुःखों के संभव (दुःख को उत्पन्न करने वाले) हैं, **लुप्पंति** - लुप्त (द्ररितादि से पीड़ित) होते हैं, **बहुसो** - बार-बार, **मूढा** - मूढ, **संसारम्मि** - संसार में, **अणंतए** - अनन्त।

भावार्थ - जितने भी अविद्या वाले अज्ञानी पुरुष हैं, वे सभी दुःख भोगने वाले हैं। हिताहित के विवेक से रहित वे अज्ञानी अनन्त संसार में अनेक बार दरिद्रतादि दुःखों से पीड़ित होते हैं।

विवेचन - इस गाथा में स्पष्ट किया गया है कि संसार में समस्त दुःखों का मूल कारण अविद्या है। जो अविद्वान् - विद्या रहित पुरुष हैं, वे ही सब प्रकार के दुःखों के भाजन बनते हैं और चतुर्गति रूप संसार में शारीरिक और मानसिक दुःखों से पीड़ित होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समिक्ख पंडिए तम्हा, पास जाइपहे बहू।
अप्पणा सच्चमेसिज्जा, मित्तिं भूएहिं* कप्पए॥२॥

कठिन शब्दार्थ - **समिक्ख** - समीक्षा (विचार) कर, **पंडिए** - पण्डित, **तम्हा** - इसलिए, **पास** - पाश, **जाइपहे** - जाति पथों की, **बहू** - अनेक विध, **अप्पणा** - स्वयं, **सच्चं** - सत्य का, **एसिज्जा** - अन्वेषण करे, **मित्तिं** - मैत्री, **(भूएसु) भूएहिं** - सर्व जीवों के प्रति, **कप्पए** - आचरण करे।

भावार्थ - इसलिए हिताहित का विवेकी पंडित पुरुष बहुत-से पाश अर्थात् आत्मा को परवश बनाने वाले स्त्री आदि सम्बन्ध एकेन्द्रियादि जाति के कारण हैं ऐसा विचार कर आत्मा सत्य अर्थात् सदागम या संयमी की खोज करे और सभी प्राणियों के साथ मैत्रीभाव रखे।

विवेचन - पंडित पुरुष सांसारिक संबंधों को पाश रूप जान कर और उसके फलस्वरूप एकेन्द्रिय आदि मार्ग को समझ कर आत्मा के लिए सत्य की गवेषणा में प्रवृत होता हुआ संसार के समस्त छोटे बड़े प्राणियों से मैत्री का व्यवहार करे।

माया पिया णुसा भाया, भज्जा पुत्ता य ओरसा।
णालं ते मम ताणाय, लुप्पंतस्स सकम्मुणा॥३॥

कठिन शब्दार्थ - **माया** - माता, **पिया** - पिता, **णुसा** - पुत्रवधू, **भाया** - भ्राता, **भज्जा** - स्त्री-भार्या, **पुत्ता** - पुत्र, **ओरसा** - औरस, **णालं** - समर्थ नहीं है, **मम** - मेरे, **ताणाए** - रक्षण के लिए, **लुप्पंतस्स** - दुःख पाते हुए को, **सकम्मुणा** - अपने कर्मों से।

भावार्थ - विवेक पुरुष को ऐसा विचार करना चाहिए कि स्वकृत कर्मों से दुःखी होते हुए मेरी रक्षा करने के लिए माता-पिता, पुत्रवधू, भाई, स्त्री और औरस अर्थात् अपने अंग से उत्पन्न हुए पुत्र कोई भी समर्थ नहीं हैं अर्थात् कोई भी दुःखों से नहीं छुड़ा सकते हैं।

विवेचन - इस गाथा में स्पष्ट किया गया है कि परलोक में इस जीव का माता पिता आदि कोई भी संबंधी रक्षक नहीं हो सकता क्योंकि जो कर्म जिस आत्मा ने किए हैं उनका फल भी वही आत्मा भोगता है, दूसरा नहीं। अतः संबंधीजनों से किसी प्रकार का मोह नहीं रखना चाहिये और यदि कुछ है भी तो उसका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

---

* पाठान्तर - भूएसु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्यग्दृष्टि का कर्त्तव्य

एयमट्ठं सपेहाए, पासे समियदंसणे।
छिंद गेहिं सिणेहं च, ण कंखे पुव्वसंथवं॥४॥

कठिन शब्दार्थ - **एयं** - इस, **अट्ठं** - अर्थ को, **सपेहाए** - विचार करके, **पासे** - देखे, **समियदंसणे** - सम्यग्दृष्टि, **छिंद** - छेदन करे, **गेहिं** - गृद्धिभाव, **सिणेहं** - स्नेह को, **ण कंखे** - न चाहे, **पुव्वसंथवं** - पूर्व परिचय को।

भावार्थ - सम्यग्दृष्टि पुरुष, उपरोक्त विषय में अपनी बुद्धि से विचार कर देखे (निश्चय करे)। विषय भोगों में आसक्ति और स्नेह का छेदन करे और पहले के परिचय की इच्छा नहीं करे।

विवेचन - विवेकी पुरुष को सांसारिक विषयों में ममता और स्नेह का त्याग करके मैत्री भाव के द्वारा प्राणिमात्र पर समभाव रखना चाहिये।

शंका - स्नेह और मैत्री में क्या अंतर है?

समाधान - स्नेह और मैत्री में बहुत अंतर है। स्नेह राग-जन्य है और मैत्री समता - समभाव से उत्पन्न होने वाली वस्तु है। इसलिए स्नेह रागजन्य होने से कर्म बंध का हेतु है और मैत्री आत्मा की समभाव परिणति की एक अवस्था विशेष होने से कर्मों की निर्जरा का हेतु है।

परिग्रह त्याग का फल

गवासं मणिकुंडलं, पसवो दासपोरुसं।
सव्वमेयं चइत्ताणं, कामरूवी भविस्ससि॥५॥

कठिन शब्दार्थ - **गवासं** - गाय, घोड़ा, **मणि** - रत्नादि, **कुंडलं** - कुंडल, **पसवो** - पशु, **दास** - दास - नौकर, **पोरुसं** - पुरुषों का समूह, **सव्वं** - सर्व, **एयं** - यह, **चइत्ताणं**- छोड़ करके, **कामरूवी** - इच्छानुकूल रूप बनाने वाला, **भविस्ससि** - होगा।

भावार्थ - गाय, घोड़ा, मणि, कुंडल आदि सोना-चाँदी जवाहरात के आभूषण, पशु सेवक और सैनिक आदि पुरुषों का समूह, यह सभी छोड़ कर और संयम का पालन कर तुम इच्छानुसार वैक्रिय रूप बनाने वाले देव हो जाओगे।

विवेचन - इस गाथा में ऐहिक पदार्थों के त्याग का जो पारलौकिक फल है उसका

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दिग्दर्शन कराया गया है। यद्यपि त्याग का वास्तविक फल तो मोक्ष है परन्तु सराग - राग पूर्वक त्याग का फल देवलोक बताया गया है।

थावरं जंगमं चेव, धणं धण्णं उवक्खरं।
पच्चमाणस्स कम्मेहिं, णालं दुक्खाउ मोयणे॥६॥

कठिन शब्दार्थ - **थावरं** - स्थावर, **जंगमं** - जंगम - चल सम्पत्ति, **धणं** - धन, **धण्णं** - धान्य, **उवक्खरं** - उपस्कर - घर के उपकरण, **पच्चमाणस्स** - दुःख पाता हुआ, **कम्मेहिं** - कर्मों से, **दुक्खाओ** - दुःख से, **मोयणे** - छुड़ाने को।

भावार्थ - स्थावर और जंगम - चल सम्पत्ति धन, धान्य और घर के उपकरण, ये सभी अपने कर्मों से दुःख भोगते हुए प्राणी को दुःख से छुड़ाने में समर्थ नहीं है।

विवेचन - जब जीव अपने किए हुए कर्मों से दुःख को प्राप्त होता है। तब घर दुकान धन धान्य आदि कुछ भी सामग्री आदि सांसारिक पदार्थ उसके दुःख को मिटाने या कम करने की शक्ति नहीं रखता, अतः ममत्व बुद्धि का त्याग कर देना चाहिये।

अज्झत्थं सव्वओ सव्वं, दिस्स पाणे पियायए।
ण हणे पाणिणो पाणे, भय-वेराओ उवरए॥७॥

कठिन शब्दार्थ - **अज्झत्थं** - अध्यात्म, **दिस्स** - देख करके, **पाणे** - प्राणों को, **पियायए** - प्रिय स्वरूपों को, **ण हणे** - घात न करे, **पाणिणो** - प्राणी के, **वेराओ** - वैर से, **उवरए** - उपरत - निवृत्त।

भावार्थ - सभी प्रकार के इष्ट-अनिष्ट दोनों वस्तुओं के संयोग और वियोग से होने वाले, सभी आत्मा में होने वाले सुख दुःख को, प्रिय तथा अप्रिय रूप जान कर तथा 'प्राणियों को अपनी आत्मा प्यारी है' - ऐसा जान कर मुमुक्षु भय और वैर से निवृत्त होता हुआ प्राणियों के प्राणों की घात नहीं करे।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में सांसारिक पदार्थों से सम्बन्ध विच्छेद करने वाले सत्यान्वेषी पुरुष के कर्त्तव्य का कथन किया गया है।

आयाणं णरयं दिस्स, णायइज्ज तणामवि।
दोगुंछी अप्पणो पाए, दिण्णं भुंजिज्ज भोयणं॥८॥

कठिन शब्दार्थ - **आयाणं** - आदान - धन धान्यादि को, **णरयं** - नरक का, **दिस्सं** -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देख कर, **णायएज्ज** - ग्रहण न करे, **तणामवि** - तृण मात्र भी, **दोगुंछी** - जुगुप्सा करने वाला, **अप्पणो** - अपने, **पाए** - पात्र में, **दिण्णं** - दिया हुआ, **भुंजेज्ज** - खावे - ग्रहण करे, **भोयणं** - भोजन को।

भावार्थ - धन-धान्यादि परिग्रह को नरक का कारण जान कर तृण मात्र भी बिना आज्ञा ग्रहण नहीं करे, पाप से घृणा करने वाला आत्मार्थी पुरुष क्षुधा लगने पर अपने पात्र में गृहस्थ द्वारा दिया हुआ भोजन खावे॥८॥

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में साधु के विशिष्ट आचार का वर्णन करते हुए बिना आज्ञा कुछ भी वस्तु ग्रहण नहीं करने का उपदेश दिया गया है।

पूर्व की गाथाओं में पहले सत्य की गवेषणा करने का उपदेश दिया गया है इससे दूसरा महाव्रत प्रमाणित हुआ (गाथा २)। फिर किसी भी प्राणी का वध नहीं करना, इससे प्रथम महाव्रत का स्वरूप ज्ञात हुआ। (गाथा ७)। प्रस्तुत गाथा में अदत्तादान का प्रत्यक्ष निषेध किया गया है, जो कि तीसरा महाव्रत है। **गवासं मणिकुंडलं**.....(गाथा ५) में परिग्रह का निषेध किया है और इसी के अंतर्गत मैथुन की निवृत्ति है। इस प्रकार व्युत्क्रम से विधि निषेध के द्वारा पांचों ही महाव्रतों का अंगीकार और पांचों आस्रवों का निषेध किया गया है।

भ्रान्त मान्यताएं

इहमेगे उ मण्णंति, अप्पच्चक्खाय पावगं।
आयरियं विदित्ताणं, सव्वदुक्खा विमुच्चइ॥९॥

कठिन शब्दार्थ - **इहं** - इस संसार में, **एगे** - किसी एक मत के अनुयायी, **मण्णंति** - मानते हैं, **अप्पच्चक्खाय** - प्रत्याख्यान किये बिना, **पावगं** - पाप का, **आयरियं** - आचार को, **विदित्ताणं** - जानकर, **सव्वदुक्खा** - सभी दुःखों से, **विमुच्चइ** - छूट जाता है।

भावार्थ - यहाँ मुक्ति मार्ग के विषय में कई लोग मानते हैं कि पाप का त्याग किये बिना ही केवल आर्य-तत्त्व को जान कर यह आत्मा सभी दुःखों से छूट जाता है॥९॥

भणंता अकरिंता य, बंधमोक्खपइण्णिणो।
वायाविरियमित्तेणं, समासासेंति अप्पयं॥१०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **भणंता** - बोलते हुए, **अकरिंता** - क्रिया न करते हुए, **बंधमोक्खपइण्णिणो** - बंध और मोक्ष के संस्थापक, **वाया** - वचन, **विरिय** - वीर्य, **मित्तेणं** - मात्र से, **समासासेंति** - आश्वासन देते हैं, **अप्पयं** - आत्मा को।

भावार्थ - बंध और मोक्ष दोनों को मानने वाले ये वादी ज्ञान ही को मुक्ति का अंग कहते हुए और मुक्ति के लिए कोई उपाय न करते हुए केवल वाक्शक्ति से अपनी आत्मा को आश्वासन ही देते हैं॥१०॥

विवेचन - जो लोग केवलज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति मानते हैं और उसमें आस्रव-निरोध की आवश्यकता को स्वीकार नहीं करते, उनकी भ्रान्त धारणा का प्रस्तुत गाथाओं में खण्डन किया गया है और **'ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्षः'** सिद्धान्त को स्थिर किया है।

अतः ज्ञानमात्र से ही दुःख निवृत्ति या मोक्ष प्राप्ति की मान्यता भ्रान्त कल्पना है जो कि किसी भी प्रकार से भी विश्वास के योग्य प्रतीत नहीं होती।

ण चित्ता तायए भासा, कुओ विज्जाणुसासणं।
विसण्णा पावकम्मेहिं, बाला पंडियमाणिणो॥११॥

कठिन शब्दार्थ - **चित्ता** - नाना प्रकार की, **भासा** - भाषाएं, **ण तायए** - रक्षक नहीं है, **कुओ** - कहां से, **विज्जाणुसासणं** - विद्याओं का सीखना (अनुशासन), **विसण्णा** - विमग्न, **पावकम्मेहि** - पाप कर्मों से, **पंडिय** - पंडित, **माणिणो** - मानने वाले।

भावार्थ - अनेक प्रकार की संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाएँ अथवा ज्ञान से ही मुक्ति की प्राप्ति होती है, इस प्रकार के विविध वचन आत्मा की पापों से रक्षा नहीं करते। मंत्रादि विद्या की शिक्षा भी कैसे रक्षा कर सकेगी? नहीं कर सकती। पापकर्मों में विशेष रूप से फंसे हुए अपने की पंडित समझने वाले लोग वास्तव में बाल (अज्ञानी) ही हैं॥११॥

विवेचन - इस गाथा में यह बतलाया गया है कि संस्कृत, प्राकृत आदि आर्य और अनार्य भाषाओं का केवल मात्र ज्ञान प्राप्त कर लेने से इस जीव की रक्षा नहीं हो सकती तो सामान्य मंत्र विद्या रोहिणी और प्रज्ञप्त आदि विद्या तथा न्याय, मीमांसा आदि आडम्बर वर्द्धक शुष्क वाद विवाद की विद्या कहां से रक्षक बन सकेगी? ज्ञान के साथ सम्यक् चारित्र की महत्ता है। चारित्र बिना का ज्ञान प्राणशून्य शरीर की तरह निर्जीव है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शरीरासक्ति, दुःख का कारण

जे केइ सरीरे सत्ता, वण्णे रूवे य सव्वसो।
मणसा काय-वक्केणं, सव्वे ते दुक्खसंभवा॥१२॥

कठिन शब्दार्थ - सत्ता - आसक्त, **वण्णे** - वर्ण, **रूवे** - रूप, **कायवक्केणं** - काया और वचन से, **दुक्खसंभवा** - दुःखों के भाजन।

भावार्थ - जो कोई अज्ञानी जीव शरीर में गौर आदि वर्ण में और सुन्दर रूप में सब प्रकार से मन, काया और वचन से आसक्त हैं, वे सभी दुःख के भागी हैं, अर्थात् दुःख भोगने वाले हैं।

विवेचन - जो देहाध्यासी जीव हैं वे जितने भी शारीरिक और मानसिक दुःख हैं उन सब के भाजन बनते हैं। अतः मुमुक्षु को देहाध्यास की उपेक्षा कर देनी चाहिये।

अप्रमत्तता का उपदेश

आवण्णा दीहमद्धाणं, संसारम्मि अणंतए।
तम्हा सव्वदिसं पस्सं, अप्पमत्तो परिव्वए॥१३॥

कठिन शब्दार्थ - आवण्णा - प्राप्त हुआ, **दीहं** - दीर्घ, **अद्धाणं** - मार्ग को, **संसारम्मि** - संसार में, **अणंतए** - अनन्त, **सव्वदिसं** - सर्व दिशाओं को, **पस्स** - देख कर, **अप्पमत्तो** - अप्रमत्त, **परिव्वए** - विचरे।

भावार्थ - अज्ञानी जीव अनन्त संसार में दीर्घ-अनादि-अनन्त जन्म-मरण रूप मार्ग को प्राप्त हुए हैं, इसलिए मुमुक्षु सभी पृथ्वी, पानी आदि अठारह भाव दिशाओं को देखता हुआ उनकी विराधना न हो, इस प्रकार प्रमाद रहित होकर विचरे॥१३॥

विवेचन - प्रमादी जीव दिशाओं-विदिशाओं में निरन्तर भ्रमण करता है। अतः विवेकी पुरुष अप्रमत्त हो कर संयम में विचरण करे। शास्त्रकार फरमाते हैं कि -

"सव्वओ पमत्तस्स भयं सव्वओ अप्पमत्तस्स णत्थि भयं" जो प्रमादी पुरुष है उसी को भय है और जो प्रमाद से रहित है उसको किसी प्रकार का भय नहीं है।

बहिया उड्ढमादाय, णावकंखे कयाइ वि।
पुव्वकम्मक्खयट्ठाए, इमं देहं समुद्धरे॥१४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **बहिया** - बाहर, **उड्ढं** - ऊंचे को, **आदाय** - ग्रहण कर, **णावकंखे** - इच्छा न करे, **पुव्वकम्मक्खयट्ठाए** - पूर्व कर्मों का क्षय करने के लिए, **समुद्धरे** - पुष्ट करे (धारण करे)।

भावार्थ - संसार से बाहर सब से ऊपर रहे हुए मोक्ष को अपना उद्देश्य बना कर मुमुक्षु कभी भी विषयादि की इच्छा नहीं करे। इस शरीर को भी पूर्वकृत कर्म को क्षय करने के लिए उचित आहारादि द्वारा धारण करे।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में सूत्रकार ने मोक्ष का स्थान, उसके साधन और शरीर के पालन पोषण के उद्देश्य को स्पष्ट किया है।

विविच्च कम्मुणो हेउं, कालकंखी परिव्वए।
मायं पिंडस्स पाणस्स, कडं लद्धूण भक्खए॥१५॥

कठिन शब्दार्थ - **विविच्च** - दूर करके, **कम्मुणो** - कर्म के, **हेउं** - हेतु को, **कालकंखी** - कालकांक्षी (समयज्ञ), **मायं** - मात्रा, **पिंडस्स** - आहार की, **पाणस्स** - पानी की, **कडं** - किया हुआ, **लद्धुण** - प्राप्त करके, **भक्खए** - भक्षण करे।

भावार्थ - मुमुक्षु कर्म के हेतु मिथ्यात्व आदि को दूर कर के संयमानुष्ठान के अवसर की इच्छा रखता हुआ विचरे। गृहस्थों द्वारा अपने लिये बनाये हुए भोजन में से संयम योग्य, आहार, पानी की मात्रा गृहस्थों के यहाँ से प्राप्त कर खाये।

संग्रहवृत्ति का त्याग

सण्णिहिं च ण कुव्विज्जा, लेवमायाय संजए।
पक्खीपत्तं समायाय, णिरवेक्खो परिव्वए॥१६॥

कठिन शब्दार्थ - **सण्णिहिं** - सन्निधि (संचय), **कुव्विज्जा** - करे, **लेवमायाय** - लेप मात्र भी, **संजए** - साधु, **पक्खीपत्तं** - पक्षी पंख, **समायाय** - ग्रहण कर, **णिरवेक्खो** - अपेक्षा रहित होकर।

भावार्थ - साधु लेप (लेश) मात्र भी अन्न आदि का संचय नहीं करे। जैसे पक्षी पंख ग्रहण कर यानी केवल अपने पंखों के साथ ही अन्यत्र चला जाता है, उसी प्रकार साधु भी पात्रादि धर्मोपकरण ले कर स्थान आदि की आसक्ति न रखते हुए विचरे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - इस गाथा में साधु को खाने वाले किसी अन्नादि पदार्थ को दूसरे दिन के लिए रखने का निषेध किया गया है।

एषणा समिति का पालन

एसणासमिओ लज्जू, गामे अणियओ चरे।
अप्पमत्तो पमत्तेहिं, पिंडवायं गवेसए॥१७॥

कठिन शब्दार्थ - **एसणा समिओ** - एषणा समिति से युक्त, **लज्जू** - लज्जावान्, **गामे** - ग्राम में, **अणियओ** - अनियत (प्रतिबंध रहित) होकर, **चरे** - विचरे, **अप्पमत्तो** - अप्रमत्त - प्रमाद रहित, **पमत्तेहिं** - प्रमत्त-गृहस्थों से, **पिण्डवायं** - आहारादि की, **गवेसए** - गवेषणा करे।

भावार्थ - लज्जावंत संयमी साधु एषणा समिति का पालन करता हुआ ग्राम में अनियत वृत्ति वाला हो कर विचरे और प्रमाद रहित हो कर प्रमत्त यानी गृहस्थों के यहाँ से भिक्षा की गवेषणा करे।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में निर्ग्रन्थ और संयम का सामान्य रूप से स्वरूप बतलाया गया है। शुद्ध संयम का पालक साधु एषणा समिति से युक्त हो कर ग्राम या नगर आदि के प्रतिबंध रहित होकर विचरे तथा प्रमाद का त्याग करके प्रमादयुक्तों - गृहस्थों के घरों से विधि पूर्वक निर्दोष आहार की गवेषणा करे।

यद्यपि यहाँ एषणा समिति का उल्लेख किया गया है किन्तु इसमें ईर्या समिति आदि पांचों का ग्रहण कर लेना चाहिये।

उपसंहार

एवं से उदाहु अणुत्तरणाणी, अणुत्तरदंसी, अणुत्तर-णाणदंसणधरे अरहा णायपुत्ते भयवं वेसालीए वियाहिए ॥१८॥ त्ति बेमि॥

॥ छट्ठं अज्झयणं समत्तं॥

कठिन शब्दार्थ - **उदाहु** - कहा है, **अणुत्तरणाणी** - अनुत्तर (प्रधान) ज्ञानी, **अणुत्तरदंसी**- अनुत्तरदर्शी, **अणुत्तरणाणंदसणधरे** - अनुत्तर ज्ञान, दर्शनधारी, **अरहा** - अरहंत, **णायपुत्ते** -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञातपुत्र, **भयवं** - भगवान् ने, **वेसालिए** - वैशालिक - विशाल यशस्वी, **वियाहिए** - व्याख्या की है।

भावार्थ - अनुत्तर ज्ञानी - सर्वज्ञ, अनुत्तर दर्शन वाले, अनुत्तर ज्ञान और दर्शन के धारक विशाल तीर्थ के नायक देव और मनुष्यों की परिषद् के व्याख्याता, उन अरहन्त, ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर ने इस प्रकार फरमाया है। इस प्रकार मैं कहता हूँ।

विवेचन - श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जंबू स्वामी से कहते हैं कि हे जम्बू! भगवान् ज्ञातपुत्र महावीर स्वामी ने इस प्रकार उक्त अध्ययन की व्याख्या की है जो मैंने तुम्हें कहा है।

भगवान् सर्वोत्कृष्ट ज्ञान और दर्शन के धारक हैं तथा इन्द्रादि देवों के द्वारा पूजनीय होने से अर्हन् कहलाते हैं और ज्ञातवंशीय महाराजा सिद्धार्थ के पुत्र एवं महारानी त्रिशला के अंगजात हैं। जो विस्तृत कीर्ति वाले या विस्तार युक्त शिष्य समुदाय वाले होने से 'वैशालिक' कहे जाते हैं। उन्होंने देव और मनुष्यों की सभा में इस 'क्षुल्लक निर्ग्रन्थी' नामक अध्ययन का वर्णन किया है।

प्रस्तुत गाथा में भगवान् के गुणों का वर्णन इसलिए किया गया है कि निर्ग्रन्थ धर्म सर्वज्ञ भाषित है, मोक्ष का अत्यंत साधक है अतएव इसके सम्यग् आराधन से जीव अवश्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

॥ इति क्षुल्लक निर्ग्रन्थीय नामक छठा अध्ययन समाप्त ॥

* * * *

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एलयं णामं सत्तमं अज्झयणं

औरभ्रीय नामक सातवां अध्ययन

उत्थानिका - छठे अध्ययन में संक्षेप से निर्ग्रन्थ का स्वरूप वर्णन किया गया है। साधक जीवन का मूल लक्ष्य क्षणिक इन्द्रिय सुखों से विरक्त होकर आत्मरमण करते हुए मोक्ष सुखों को प्राप्त करना है। साधक इन सुखों के प्रलोभन में फंस कर अपने मूल लक्ष्य को न भूलें, इसे समझाने के लिए औरभ्रीय नामक इस सातवें अध्ययन में पांच दृष्टान्त दिये हैं। उनमें प्रथम एलक-बकरे का दृष्टान्त इस प्रकार हैं -

१. एलक दृष्टान्त

जहाऽएसं समुद्दिस्स, कोइ पोसेज्ज एलयं।
ओयणं जवसं देज्जा, पोसेज्जा वि सयंगणे॥१॥

कठिन शब्दार्थ - जहा - जिस प्रकार, **आएसं** - अतिथि - मेहमान को, **समुद्दिस्स** - उद्देश्य कर, **पोसेज्ज** - पालन (पोषण) करता है, **एलयं** - एलक (मेमने-बकरे) का, **ओयणं**- ओदन (चावल), **जवसं** - जौ, **देज्जा** - देता है, **पोसेज्जा** - पोषण करे, **सयंगणे** - अपने आंगन में।

भावार्थ - जिस प्रकार अतिथि-पाहुने को उद्देश्य कर कोई व्यक्ति बकरे अथवा भेड़ का पालन करता है और उसे खाने के लिए भात और जौ देता है तथा अपने ही आँगन में उसे पुष्ट बनाता है।

विवेचन - विषय भोगों के कटु परिणामों का दिग्दर्शन कराने के लिए सूत्रकार एलक का उदाहरण देते हैं।

यहाँ गाथा में 'पोषण' का दो बार उल्लेख आया है जिसका तात्पर्य है - विशेष रूप से पोषण करना।

सयंगणे - घर के आंगन में कहने का आशय - दृष्टि के सामने रखना और बहुत सावधानी से पालन पोषण करना है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तओ से पुट्ठे परिवूढे, जायमेए महोयरे।
पीणिए विउले देहे, आएसं परिकंखए॥२॥

कठिन शब्दार्थ - **पुट्ठे** - पुष्ट, **परिवूढे** - समर्थ, **जायमेए** - बढ़ी हुए मेद - चर्बी वाला, **महोयरे** - महान् उदर वाला, **पीणिए** - तृप्त, **विउले** - विपुल, **देहे** - देह, **आएसं** - आदेश-मेहमान की, **परिकंखए** - प्रतीक्षा करता है।

भावार्थ - इसके बाद जब वह बकरा पुष्ट, समर्थ, चर्बी वाला, बड़े पेट वाला और तृप्त हो कर स्थूल शरीर वाला हो जाता है तब उसका स्वामी पाहुने की प्रतीक्षा करता है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में बकरे की दशा का वर्णन किया गया है।

जाव ण एइ आएसे, ताव जीवइ से दुही।
अह पत्तम्मि आएसे, सीसं छेत्तूण भुज्जइ॥३॥

कठिन शब्दार्थ - **एइ** - आता, **जीवइ** - जीता है, **दुही** - दुःखी, **पत्तम्मि** - प्राप्त होने पर, **सीसं** - मस्तक को, **छेत्तुण** - छेदन करके, **भुज्जइ** - खाया जाता है।

भावार्थ - जब तक पाहुना नहीं आता है तब तक वह जीता है। इसके बाद पाहुने के आने पर उसे मस्तक काट कर खाया जाता है। तब वह दुःखी होता है।

दार्ष्टान्तिक (उपनय)

जहा से खलु ओरब्भे, आएसाए समीहिए।
एवं बाले अहम्मिट्ठे, ईहइ णरयाउयं॥४॥

कठिन शब्दार्थ - **ओरब्भे** - बकरा, **आएसाए** - मेहमान के लिए, **समीहिए** - समीहित (प्रकल्पित), **अहम्मिट्ठे** - अधर्मिष्ठ, **ईहइ** - इच्छा करता है, चाहता है, **णरयाउयं**- नरकायु की।

भावार्थ - जिस प्रकार निश्चय ही वह पुष्ट हुआ बकरा पाहुने के लिए इष्ट है और पाहुने के उद्देश्य से रखा गया है इसी प्रकार अधर्मिष्ठ, अज्ञानी जीव भी पापाचरण कर के नरकायु की इच्छा करता है अर्थात् नरक गति में जाता है।

विवेचन - जीव थोड़े से इन्द्रिय सुख के लिए अमूल्य आत्म-निधि को न भूले, इसके लिए सूत्रकार द्वारा दिया गया एलक दृष्टान्त और उसका दार्ष्टान्तिक इस प्रकार है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"एक व्यक्ति एक गाय-बछड़ा और बकरे - मेमने का पालन करता है। वह बकरे को अच्छा स्वादिष्ट एवं पोष्टिक भोजन खिलाता है। बकरा हृष्ट-पुष्ट होने लगा। वह व्यक्ति गाय और बछड़े को सूखी घास डालता है। बछड़ा अपने स्वामी के इस भेद पूर्ण व्यवहार को देख कर अपनी मां से शिकायत करता है - "माँ! यह स्वामी बकरे को कितना पौष्टिक आहार देता है, जबकि तुम इसे दूध देती हो तब भी तुम्हें सूखी घास देता है और मुझे तो वह भी पूरा नहीं देता है। यह भेद क्यों है?"

गाय अपने प्रिय बछड़े को समझा कर कहती है - "बेटा! अपने स्वामी के भेदभाव का कारण है - वह इस बकरे को अच्छा भोजन देता है, इसे मोटा-ताजा बना रहा है, इसका अर्थ है अब इस बकरे की मृत्यु निकट आ गई है। कुछ दिनों बाद तुम खुद अपने दिमाग से निर्णय कर लेना कि प्रतिदिन पौष्टिक भोजन खाने वाले की क्या दशा होती है?"

एक दिन उस स्वामी के यहाँ कुछ अतिथि मेहमान आ जाते हैं और उस बकरे को काटा जाता है। इस भयानक दृश्य को देखकर बछड़ा कांप उठता है। वह माँ से पूछता है - "माँ! क्या हमें भी अतिथि के स्वागत के लिए इस तरह से काटा जायेगा?"

माँ ने सहज मुस्कान के साथ उत्तर दिया - 'नहीं बेटा! हमने तो सूखी घास खाई है - हमारी यह स्थिति क्यों होगी?'

कहावत हैं - **"जो करेगा घटका वो सहेगा झटका"** जो नित्य प्रति माल मलीदे खाता है- गुलछर्रे उड़ाता है उसे ही इस तरह के दुःख पूर्ण झटके सहन करने पड़ते हैं। मनोज्ञ कामभोगों की आसक्ति साधक जीवन को इसी प्रकार से नष्टभ्रष्ट कर देती है।"

इस दृष्टान्त से यह सिद्ध होता है कि जो लोग अधर्माचरण में प्रवृत्त होते हुए रसों में अधिक आसक्ति - अधिक लम्पटता रखते हैं, वे निस्संदेह नरकादि गति की अशुभ आयु को बांधते हैं।

नरकायु के अनुकूल पापकर्म

हिंसे बाले मुसावाई, अद्धाणम्मि विलोवए।
अण्णदत्तहरे तेणे, माई कण्हु हरे सढे॥५॥
इत्थीविसयगिद्धे य, महारंभपरिग्गहे।
भुंजमाणे सुरं मंसं, परिवूढे परंदमे॥६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अयकक्करभोई य, तुंदिले चियलोहिए।
आउयं णरए कंखे, जहाएसं व एलए॥७॥

कठिन शब्दार्थ - **हिंसे** - हिंसा करने वाला, **बाले** - अज्ञानी, **मुसावाई** - मृषावादी, **अद्धाणंमि** - मार्ग में, **विलोवए** - लूटने वाला, **अण्णदत्तहरे** - बिना दिए वस्तु उठाने वाला, **तेणे** - चोर, **माई** - मायी - छल करने वाला, **हरे** - हरूँ, **सढे** - शठ - धूर्त।

इत्थीविसयगिद्धे - स्त्री के विषय में गृद्ध (आसक्त) **महारंभ परिग्गहे** - महा आरंभ परिग्रह वाला **भुंजमाणे** - खाता हुआ, **सुरं** - सुरा - मद्य, **मंसं** - मांस को, **परिवूढे** - समर्थ शरीर वाला, **परंदमे** - दूसरों का दमन करने वाला।

अयकक्करभोई - अज (बकरे) के कर्कर शब्द करने वाले मांस का भोजी, **तुंदिल्ले** - मोटी तोंद वाला, **चिय लोहिए** - चितलोहित - अधिक रक्त वाला, **आउयं** - आयुष्य की **णरए** - नरक के, **कंखे** - आकांक्षा करता है।

भावार्थ - नरक गति में जाने वाला जीव कैसे पाप-कर्म करता है, यह बात इन गाथाओं में बताई जाती है - अज्ञानी, हिंसा करने वाला, झूठ बोलने वाला, मार्ग में लूटने वाला, दूसरे की वस्तु बिना दिये लेने वाला, चोरी करने वाला, छल-कपट करने वाला, 'किसके यहाँ चोरी करूँ' इस प्रकार दुष्ट अध्यवसाय वाला, शठ (वक्र आचार वाला), स्त्री और विषयों में आसक्त बना हुआ और महाआरम्भ और परिग्रह वाला, मदिरा और मांस को खाने वाला, पुष्ट शरीर वाला तथा दूसरों का दमन करने वाला, खाने में कड़कड़ शब्द हो ऐसा भुना हुआ बकरे का मांस खाने वाला, बढ़ी हुई तोंद वाला अधिक रक्त वाला। सांसारिक सुखों के लिए इस प्रकार विविध पापाचरण करने वाला जीव, नरक की आयु की उसी प्रकार इच्छा करता है, जैसे बकरे के पुष्ट होने पर उसका स्वामी, पाहुने की इच्छा करता है॥५,६,७॥

विवेचन - उपरोक्त गाथाओं में जो जीव नरक की आयु को चाहने वाले होते हैं उनके लक्षणों-आचरणों का वर्णन किया गया हैं।

नरक के ४ हेतु हैं - १. महारंभ २. महापरिग्रह ३. मद्य मांस का सेवन और ४. पंचेन्द्रिय वध। नरक गति में जाने के इन कारणों (नरक योग्य कर्मों) का ही प्रस्तुत गाथाओं में दिग्दर्शन कराया गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पदार्थों के संग्रह एवं त्याग का फल

आसणं सयणं जाणं, वित्तं कामे य भुंजिया।
दुस्साहडं धणं हिच्चा, बहु संचिणिया रयं॥८॥
तओ कम्मगुरू जंतू, पच्चुप्पण्णपरायणे।
अयव्व आगयाएसे, मरणंतम्मि सोयइ॥९॥

कठिन शब्दार्थ - **आसणं** - आसन, **सयणं** - शयन-शय्या, **जाणं** - यान-सवारी आदि, **वित्तं** - धन, **कामे** - काम भोगों को, **भुंजिया** - भोग करके, **दुस्साहडं** - दुःख से एकत्रित किए हुए, **हिच्चा** - त्याग करके, **संचिणिया** - एकत्रित करके, **रयं** - कर्म रज को, **कम्मगुरू** - कर्म से भारी जंतु-जीव, **पच्चुप्पण्ण** - वर्तमान में, **परायणे** - तत्पर, **अयव्व** - बकरे की तरह, **आगयाएसे** - मेहमान के आने पर, **सोयइ** - शोक करता है।

भावार्थ - आसन, शय्या, वाहन, धन और पांच इन्द्रिय के विषय भोगों को भोग कर दुःख से इकट्ठे किये हुए धन को छोड़ कर और बहुत कर्मरज को एकत्रित कर के इसके पश्चात् वर्तमान काल का ही विचार करने वाला वह कर्मों से भारी बना हुआ प्राणी पाहुने के आने पर बकरे के समान मृत्यु के समीप आने पर शोक करता है।

विवेचन - आठवीं और नवमी गाथा में सांसारिक पदार्थों के भोग और उपभोगों की चर्चा के साथ, कष्ट से उपार्जन किए धन आदि का अंत में त्याग करके परलोक में गमन करने तथा अपने जीवनकाल में कर्मरज का संचय करने का उल्लेख किया गया है।

कर्ममल के संचय से भारी होने वाली आत्मा, वर्तमान काल के सुखों में निमग्न होकर अपने वास्तविक कर्त्तव्य को बिल्कुल भूल जाता है परन्तु मृत्यु के समीप आने पर उसकी वही दशा होती है जो मेहमान के आने पर उस हृष्ट पुष्ट बकरे की होती है।

जीव की भावी गति

तओ आउपरिक्खीणे, चुयादेहा विहिंसगा।
आसुरियं दिसं बाला, गच्छंति अवसा तमं॥१०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - परिक्खीणे - परिक्षय होने पर, **चुया** - छूटने पर, **देहा** - शरीर के, **विहिंसगा** - नाना प्रकार की हिंसा करने वाले, **आसुरीयं** - आसुरीय (नरक), **दिसं** - दिशा को, **अवसा** - कर्म के वश होकर, **तमं** - अंधकार युक्त।

भावार्थ - इसके बाद आयु के क्षीण हो जाने पर हिंसा करने वाले अज्ञानी जीव शरीर छोड़ कर कर्म के वश हो अन्धकार वाली आसुरी दिशा अर्थात् नरक गति में जाते हैं।

विवेचन - हिंसा आदि रौद्र कर्मों का आचरण करने वाले प्राणी कर्म के आधीन होकर नरक गति को प्राप्त होते हैं।

बकरे के दृष्टान्त का उल्लेख करने के बाद अब शास्त्रकार काकिणी और आम्रफल के दृष्टान्त का निरूपण करते हैं। यथा -

२-३. काकिणी और आम्रफल का उदाहरण

जहा कागिणीए हेउं, सहस्सं हारए णरो।
अपत्थं अंबगं भोच्चा, राया रज्जं तु हारए॥११॥

कठिन शब्दार्थ - कागिणिए - काकिणी के, **हेउं** - हेतु, **सहस्सं** - हजार मोहर को, **हारए** - हार देता है, **अपत्थं** - कुपथ्य, **अंबगं** - आम्रफल को, **भोच्चा** - खा करके, **राया**- राजा, **रज्जं** - राज्य को।

भावार्थ - जिस प्रकार कोई मनुष्य एक काकिणी (एक रूपये के अस्सीवें भाग को 'काकिणी' कहते हैं) के लिए हजार रुपयों को खो देता है और कोई राजा रोग से मुक्त हो कर अपथ्य आम खा कर मर जाता है फलस्वरूप राज्य ही खो देता है।

विवेचन - इस गाथा में निम्न दो दृष्टान्तों का वर्णन किया गया है -

१. **काकिणी का दृष्टान्त** - एक व्यक्ति ने बड़ी कठिनाई से श्रम करके एक हजार कार्षापण (प्राचीन काल का एक छोटा सिक्का जो बीस काकिणी के बराबर होता था) इकट्ठे किये। वह उन्हें लेकर अपने गांव लौट रहा था। मार्ग के किसी गांव में अपने भोजन की व्यवस्था के लिए उसने अतिरिक्त काकिणियों में से कुछ की भोजन सामग्री खरीदी। वहाँ वह एक काकिणी भूल कर आगे चला गया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मार्ग में चलते हुए उसे वह काकिणी याद आयी तो वह जंगल में कहीं जगह देख कर हजार कार्षापण छुपाकर वह काकिणी लेने को वापस लौट पड़ा परन्तु वह काकिणी उसे नहीं मिली। उसे किसी ने उठा लिया। वह निराश होकर पुनः वहाँ आया जहाँ उसने एक हजार कार्षापण छुपा कर रखे थे। किन्तु वहाँ आने पर उसे जब वह हजार कार्षापण की थैली नहीं मिली तो उसे महान् दुःख हुआ। क्योंकि उस थैली को छुपाते समय किसी ने देख लिया और उसके जाने के बाद छुप कर उस थैली को उठा लिया। वह व्यक्ति हजार कार्षापण के खो जाने से अत्यंत दुःखित होकर उस जंगल में विलाप करने लगा।

जो व्यक्ति थोड़े से इन्द्रियजन्य भौतिक सुखों के लिए मानव जीवन की बहुमूल्य संपदा को खो देता है उसे अंत में इसी प्रकार पश्चात्ताप करना पड़ता है।

२. आम्र का दृष्टान्त - एक बीमार नृप को चिकित्सक - वैद्य ने आम खाने का सर्वथा निषेध कर दिया। चिकित्सक-वैद्य ने उपचार इसी शर्त पर किया कि आम खाना तो दूर उसकी गंध से भी दूर रहा जाय। एक आम ही प्राणों को नष्ट करने वाला हो सकता है। राजा ने वैद्य की सभी शर्तें स्वीकार करके उपचार लिया और स्वस्थ हो गया।

कुछ वर्षों बाद राजा वन भ्रमण को निकला। मंत्री उसके साथ था। मंत्री के मना करने पर भी राजा एक आमवृक्ष के नीचे बैठ गया। पके हुए आमों की मीठी सुगंध ने उसके मन को आकर्षित कर लिया। राजा से नहीं रहा गया। उसने मंत्री के मना करने पर भी यह कहते हुए आम खा लिया कि एक आम से क्या होता है? राजा के लिए आम अपथ्य था। राजा वहीं मर गया। स्वाद के क्षणिक सुख के लिए राजा ने अपने अमूल्य प्राण गंवा दिये। यही भोगासक्त जीवों की स्थिति होती है।

एवं माणुस्सगा कामा, देवकामाण अंतिए।
सहस्स गुणिया भुज्जो, आउं कामा य दिव्विया॥१२॥

कठिन शब्दार्थ - माणुस्सगा - मनुष्य संबंधी, **देवकामाण** - देव संबंधी कामभोगों के, **अंतिए** - समक्ष, **सहस्स गुणिया** - सहस्र (हजार) गुणा, **भुज्जो** - बार-बार, **दिव्विया**- देव संबंधी।

भावार्थ - इसी प्रकार देव सम्बन्धी कामभोगों के सामने मनुष्य सम्बन्धी काम-भोग भी काकिणी और आम के समान तुच्छ है, देव सम्बन्धी काम भोग और दिव्य आयु (मनुष्य संबंधी, काम-भोग और आयु की अपेक्षा) अनेक हजार गुणा अधिक हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देव-मनुष्यायु

अणेग वासाणउया, जा सा पण्णवओ ठिई।
जाइं जीयंति दुम्मेहा, ऊणे वाससयाउए॥१३॥

कठिन शब्दार्थ - **अणेगवासाणउया** - वर्षों के अनेक नयुत, **पण्णवओ** - प्रज्ञावान्, **ठिई** - स्थिति, **जाइं** - उन वर्षों को, दिव्यसुखों को, **जीयंति** - हार जाते हैं, **दुम्मेहा** - दुर्बुद्धि, **ऊणे** - न्यून, **वाससयाउए** - सौ वर्ष की आयु वाले।

भावार्थ - प्रज्ञावान् अर्थात् ज्ञान और क्रियाशील पुरुष की देवगति में जो वह प्रसिद्ध अनेकों नयुत परिमाण वाली अर्थात् पल्योपम और सागरोपम की स्थिति होती है, उस दिव्य स्थिति के उन वर्षों को दुर्बुद्धि मनुष्य सौ वर्ष से भी कम आयु वाली छोटी-सी मनुष्यायु में हार जाते हैं।

विवेचन - उपर्युक्त गाथाओं में देवों और मनुष्यों के कामभोगों की तुलना की गयी है। देवों के दिव्य सुखों के सामने मनुष्यों के सुख क्षणिक और तुच्छ हैं।

नयुत एक संख्यावाचक शब्द है। चौरासी लाख वर्ष का एक पूर्वांग होता है। चौरासी लाख पूर्वांग का एक पूर्व होता है। चौरासी लाख पूर्व का एक नयुतांग और चौरासी लाख नयुतांग का एक नयुत होता है।

४. तीन वणिकों का दृष्टान्त

जहा य तिण्णि वाणिया, मूलं घेत्तूण णिग्गया।
एगोऽत्थ लहइ लाहं, एगो मूलेण आगओ॥१४॥

कठिन शब्दार्थ - **तिण्णि** - तीन, **वाणिया** - वणिक, **मूलं** - मूल धन, **घेत्तूण** - लेकर, **णिग्गया** - निकले, **एगो** - एक, **अत्थ** - उनमें से, **लहइ** - प्राप्त करता है, **लाहं** - लाभ को, **मूलेण** - मूल को लेकर, **आगओ** - आया।

भावार्थ - जिस प्रकार तीन वणिक मूल पूंजी लेकर व्यापार करने के लिए निकले, उनमें से एक लाभ प्राप्त कर के आया और एक मूल पूंजी ले कर लौट आया।

एगो मूलं वि हारित्ता, आगओ तत्थ वाणिओ।
ववहारे उवमा एसा, एवं धम्मे वियाणह॥१५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **हारित्ता** - गंवा कर, **ववहारे** - व्यवहार में, **उवमा** - उपमा, **एसा**- यह, **धम्मे** - धर्म में, **वियाणह** - जानो।

भावार्थ - उनमें से एक तीसरा वणिक मूल पूंजी भी खो कर आया। यह उपमा व्यवहार में है, इसी प्रकार धर्म में भी जानो।

माणुसत्तं भवे मूलं, लाभो देवगई भवे।
मूलच्छेएण जीवाणं, णरगतिरिक्खत्तणं धुवं॥ १६॥

कठिन शब्दार्थ - **माणुसत्तं** - मनुष्य पर्याय, **देवगई** - देवगति, **मूलच्छेएण** - मूल पूंजी का नष्ट होना, **जीवाणं** - जीवों को, **णरगतिरिक्खत्तणं** - नरक और तिर्यंच गति प्राप्त होना, **धुवं** - निश्चय ही।

भावार्थ - मनुष्य भव मूल पूंजी के समान है, देवगति लाभ के समान है। मूलपूंजी के नाश हो जाने से अर्थात् मनुष्य भव की हानि होने से जीवों को निश्चय ही नरक और तिर्यंच गति की प्राप्ति होती है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथाओं में तीन वणिक पुत्रों का दृष्टान्त संक्षेप में दिया गया है। इस दृष्टान्त के द्वारा मनुष्यत्व को मूल धन, देवत्व को लाभ और मनुष्यत्व रूप मूल धन खोने से नरक तिर्यंच गति रूप हानि का संकेत किया गया है।

दृष्टान्त - पिता के आदेश से तीन वणिक पुत्र व्यवसायार्थ विदेश गये। उनमें से एक पुत्र बहुत धन कमा कर लौटा। दूसरा पुत्र मूल पूंजी लेकर लौटा और तीसरा पुत्र जो पूंजी ले कर गया था, उसे भी खो आया।

मनुष्य भव में सज्जन के समान प्रणधारी होना मनुष्य गति रूप मूल धन की सुरक्षा है। व्रतधारी होकर देवगति पाना अतिरिक्त लाभ है। अज्ञानी - अव्रती रहना मूल धन को खोकर नरक तिर्यंच गति पाना है।

जैसे मूल पूंजी हो तो उससे व्यापार करने से उत्तरोत्तर लाभ में वृद्धि की जा सकती है उसी प्रकार मनुष्य गति रूप मूल पूंजी हो तो उसके द्वारा पुरुषार्थ करने पर उत्तरोत्तर स्वर्ग-अपवर्ग रूप लाभ की प्राप्ति की जा सकती है।

दुहओ गई बालस्स, आवइ वहमूलिया।
देवत्तं माणुसत्तं च, जं जिए लोलया सढे॥१७॥

कठिन शब्दार्थ - **दुहओ** - दो प्रकार की, **गई** - गति, **बालस्स** - बाल जीव की,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आवइ - प्राप्त होती है, **वहमूलिया** - वध मूलिका - महारंभ आदि जिसके मूल कारण है अथवा, वध - विनाश जिसके मूल में है, **लोलया** - लोलुपता, **सढे** - शठता।

भावार्थ - अज्ञानी जीव को दो प्रकार की अर्थात् नरक और तिर्यंच गति प्राप्त होती है। वे गतियाँ, वध-बन्धन आदि मूल वाली है अर्थात् वध-बन्धन आदि कारणों से ये गतियां प्राप्त होती है और इन गतियों में जीव वध-बन्धन आदि कष्ट प्राप्त करता है। क्योंकि मांसादि की लोलुपता और शठता-धूर्तता वाला वह प्राणी देवत्व और मनुष्यत्व को हार गया है।

दुर्गति में जाने वाले जीव

तओ जिए सइं होइ, दुविहं दुग्गइं गए।
दुल्लहा तस्स उम्मग्गा, अद्धाए सुइरादवि॥१८॥

कठिन शब्दार्थ - **जिए** - हारा हुआ, **सइं** - सदा, **दुग्गइं** - दुर्गति का, **गए** - प्राप्त, **उम्मग्गा** - निकलना, **अद्धाए** - दुर्गतियों में से, **सुइरादवि** - दीर्घकाल तक।

भावार्थ - इसके बाद देवत्व और मनुष्यत्व से हारा हुआ वह अज्ञानी जीव सदा के लिए दो प्रकार की दुर्गति (नरक और तिर्यंच गति) को प्राप्त होता है। उसका बहुत लम्बे काल में भी दुर्गतियों में से निकलना दुर्लभ है।

विवेचन - देवत्व और मनुष्यत्व से हारे हुए जीवों की दो प्रकार की गति होती है - १. नरक और २. तिर्यंच। दोनों ही दुर्गतियों में वध आदि अनेक प्रकार से दुःख हैं जिन्हें दीर्घकाल तक भुगतना पड़ता है।

मनुष्यत्व प्राप्त जीव

एवं जियं सपेहाए, तुलिया बालं च पंडियं।
मूलियं ते पविस्संति, माणुस्सं जोणिमिंति जे॥१९॥

कठिन शब्दार्थ - **सपेहाए** - सम्प्रेक्ष्य - सम्यक् प्रकार से देख विचार करके, **तुलिया** - तुलना करके, **मूलियं** - मूलपूंजी में, **पविस्संति** - प्रवेश करते हैं, **जोणिं** - योनि को, **इंति** - प्राप्त करते हैं।

भावार्थ - इस प्रकार देव और मनुष्य गति को हारे हुए अज्ञानी जीव की और देव और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य गति प्राप्त करने वाले, पंडित पुरुष की अपनी बुद्धि से तुलना करके जो पुरुष मनुष्य की योनि को प्राप्त करते हैं वे मूल पूंजी में प्रवेश करते हैं अर्थात् वे मूल पूंजी लेकर लौटने वाले वणिक के समान है।

मनुष्यत्व प्राप्त व्यक्ति की योग्यता

वेमायाहिं सिक्खाहिं, जे णरा गिहि-सुव्वया।
उविंति माणुसं जोणिं, कम्मसच्चा हु पाणिणो॥२०॥

कठिन शब्दार्थ - वेमायाहिं - विविध परिमाण वाली, **सिक्खाहिं** - शिक्षाओं से, **गिहि - सुव्वया** - घर में रहते हुए भी सुव्रती, **उविंति** - प्राप्त करते हैं, **कम्मसच्चा** - कर्म सत्य - स्वकृत कर्मों का फल पाते हैं।

भावार्थ - जो मनुष्य गृहस्थ होते हुए भी विविध प्रकार की शिक्षाओं द्वारा सुव्रत वाले अर्थात् प्रकृति-भद्रता आदि गुण वाले हैं वे मनुष्य योनि को प्राप्त करते हैं। क्योंकि प्राणी सत्य कर्म वाले होते हैं अर्थात् जैसा शुभ या अशुभ कर्म करते हैं वैसा ही शुभ अशुभ फल पाते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में प्रयुक्त **'वेमायाहिं सिक्खाहिं'** - त्रिमात्रा शिक्षा का अर्थ विविध मात्राओं अर्थात् परिणामों वाली शिक्षाएं हैं। जैसे - किसी गृहस्थ का प्रकृतिभद्रता आदि का अभ्यास कम होता है, किसी का अधिक और किसी का अधिकतर होता है।

'गिहिसुव्वया' (गृहिसुव्रता) के तीन अर्थ इस प्रकार मिलते हैं - १. गृहस्थों के सत्पुरुषोचित व्रतों - गुणों से युक्त २. गृहस्थ सज्जनों के प्रकृति भद्रता, प्रकृति विनीतता, सदयहृदयता एवं अभत्सरता आदि व्रतों-प्रतिज्ञाओं को धारण करने वाले ३. गृहस्थों में सुव्रत अर्थात् ब्रह्मचरणशील। इन तीन अर्थों में यहाँ दूसरा अर्थ सुसंगत है। यहाँ पर आया हुआ **'सुव्रत'** शब्द श्रावक के बारह व्रतों के अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ है। क्योंकि व्रतधारी श्रावकों की गति तो देवगति (वैमानिक देव) ही बंताई है। प्रस्तुत गाथा में सुव्रती का मनुष्य योनि में जाना बताया है। अतः सुव्रती का उपर्युक्त अर्थ समझना ही उचित है।

'कम्म सच्चा हु पाणिणो' की पांच व्याख्याएं - १. जीव के जैसे कर्म होते हैं तदनुसार ही उन्हें गति मिलती है इसलिए प्राणी वास्तव में कर्म सत्य हैं २. जीव जो कर्म करते हैं उन्हें भोगना ही पड़ता है बिना भोगे छुटकारा नहीं अतः जीवों को कर्म सत्य कहा है ३. जिनके कर्म (मानसिक, वाचिक, कायिक प्रवृत्तियाँ) सत्य - अविसंवादी होते हैं वे कर्म सत्य कहलाते हैं ४.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथवा जिनके कर्म अवश्य ही फल देने वाले होते हैं वे कर्म सत्य कहलाते हैं ५. अथवा कर्म-सक्त - संसारी जीव कर्मों में अर्थात् मनुष्य गति योग्य क्रियाओं में सक्त-आसक्त हैं अतएव वे कर्मसक्त हैं।

देवत्व प्राप्त व्यक्ति की योग्यता

जेसिं तु विउला सिक्खा, मूलियं ते अइच्छिया।
सीलवंता सविसेसा, अदीणा जंति देवयं॥२१॥

कठिन शब्दार्थ - **जेसिं** - जिनकी, **विउला** - विपुल, **सिक्खा** - शिक्षाएं, **अइच्छिया**- अतिक्रमण करके, **सीलवंता** - शीलवान्, **सविसेसा** - उत्तरोत्तर गुणों से युक्त **अदीणा** - अदीन - दीनता रहित।

भावार्थ - जिन के विपुल ग्रहण शिक्षा और आसेवन रूप शिक्षा होती है, सदाचारी उत्तरोत्तर गुण प्राप्त करने वाले, वे पुरुष मूलपूंजी अर्थात् मनुष्य-भव का अतिक्रमण करके दीनता रहित होकर देवगति को प्राप्त करते हैं।

विवेचन - **'विउला सिक्खा'** - विपुल शिक्षा। यहाँ शिक्षा का अर्थ ग्रहण रूप और आसेवन रूप शिक्षा-अभ्यास से है। ग्रहण का अर्थ है - शास्त्रीय सिद्धान्तों का अध्ययन करना-जानना और आसेवन का अर्थ है - ज्ञात आचार-विचारों को क्रियान्वित करना। इन्हें सैद्धान्तिक प्रशिक्षण और प्रायोगिक कह सकते हैं। सैद्धान्तिक ज्ञान के बिना आसेवन सम्यक् नहीं होता और आसेवन के बिना सैद्धान्तिक ज्ञान सफल नहीं होता। इसलिए ग्रहण और आसेवन दोनों शिक्षा को पूर्ण बनाते हैं।

'सीलवंता' - शीलवान् के अपेक्षा से तीन अर्थ होते हैं - १. अविरति सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा से सदाचारी २. विरताविरत की अपेक्षा से अणुव्रती और ३. सर्वविरत की अपेक्षा से महाव्रती।

एवमद्दीणवं भिक्खुं, अगारिं च वियाणिया।
कहण्णु जिच्चमेलिक्खं, जिच्चमाणो ण संविदे॥२२॥

कठिन शब्दार्थ - **अद्दीणवं** - दैन्य रहित, **अगारिं** - गृहस्थ को, **वियाणिया** - जान कर, **कहण्णु** - कैसे, **जिच्चं** - हार जाता है, **एलिक्खं** - देवगति रूप लाभ, **जिच्चमाणो** - हारता हुआ, **ण संविदे** - नहीं जानता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इस प्रकार ग्रहण रूप शिक्षा और आसेवन रूप शिक्षा से मनुष्य और देवगति को प्राप्त करने वाले दीनता रहित साधु और गृहस्थ को जान कर विवेकी पुरुष देवगति रूप लाभ किस प्रकार विषय-कषायादि वश हो कर हार जाता है और हारता हुआ भी नहीं जानता है।

कामभोगों की तुलना

जहा कुसग्गे उदगं, समुद्देण समं मिणे।
एवं माणुस्सगा कामा, देवकामाण अंतिए॥२३॥

कठिन शब्दार्थ - **कुसग्गे** - कुशाग्र - कुश के अग्रभाग पर, **उदगं** - पानी, **समुद्देण** - समुद्र के, **समं** - साथ, **मिणे** - मापे।

भावार्थ - जिस प्रकार कुशाग्र अर्थात् डाभ की नोक पर रहा हुआ, पानी यदि समुद्र के साथ नापा जाय तो उनमें महान् अंतर दिखाई देगा और समुद्र की तुलना में कुशाग्र स्थित जल-बिन्दु अत्यंत क्षुद्र दिखाई देगा इसी प्रकार देवों के शब्दादि काम-भोगों के सामने मनुष्य सम्बन्धी काम भोग भी अत्यंत तुच्छ हैं।

कुसग्गमित्ता इमे कामा, सण्णिरुद्धम्मि आउए।
कस्स हेउं पुरा काउं, जोगक्खेमं ण संविदे॥२४॥

कठिन शब्दार्थ - **कुसग्गमित्ता** - कुशाग्र मात्र, **सण्णिरुद्धम्मि** - संक्षिप्त-विघ्न बाधाओं से युक्त, **कस्स** - किस, **हेउं** - हेतु को, **पुराकाउं** - आगे करके, **जोगक्खेमं** - योग और क्षेम को।

भावार्थ - अत्यन्त संक्षिप्त एवं विविध विघ्नबाधाओं से परिपूर्ण इस मनुष्यायु में ये मनुष्य सम्बन्धी काम भोग समुद्र जैसे देवों के काम-भोगों के आगे कुशाग्र स्थित जल-बिन्दु के समान हैं फिर किस हेतु को आगे रख कर यह जीव धर्म सम्बन्धी योग और क्षेम को नहीं जानता अर्थात् अप्राप्त धर्म की प्राप्ति के लिए और प्राप्त धर्म की रक्षा के लिए प्रयत्न नहीं करता।

विवेचन - प्रस्तुत दोनों गाथाओं में पांचवां दृष्टान्त दिया गया है। इसमें मनुष्य जीवन के सुखों की ओस बिन्दुओं से तुलना करते हुए कहा गया है कि जैसे ओस बिन्दु की आभा एवं उसका स्थिरत्व क्षणिक होता है उसी प्रकार मानव जीवन भी क्षण भंगुर और अस्थिर - चंचल आभा वाला होता है जबकि दिव्य सुख विशाल जलधि के समान अधिक एवं चिर स्थायी होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कामभोगों से अनिवृत्ति-निवृत्ति का फल

इह कामाणियट्टस्स, अत्तट्ठे अवरज्झइ।
सोच्चा णेयाउयं मग्गं, जं भुज्जो परिभस्सइ॥२५॥

कठिन शब्दार्थ - **कामाणियट्टस्स** - कामभोगों से अनिवृत्त होने वाले का, **अत्तट्ठे** - आत्मार्थ, **अवरज्झइ** - नाश हो जाता है, **सोच्चा** - सुन कर, **णेयाउयं मग्गं** - न्याय युक्त मार्ग को, **परिभस्सइ** - परिभ्रष्ट हो जाता है।

भावार्थ - इस लोक में शब्दादि विषयों से निवृत्त न होने वाले का, आत्मा का अर्थ-स्वर्ग आदि नष्ट हो जाता है, जिससे न्याय युक्त सम्यग्दर्शनादि रूप मोक्षमार्ग को सुन कर भी पुनः उससे भ्रष्ट हो जाता है।

इह कामणियट्टस्स, अत्तट्ठे णावरज्झइ।
पूइदेहणिरोहेणं, भवे देवेत्ति मे सुयं॥२६॥

कठिन शब्दार्थ - **कामणियट्टस्स** - कामभोगों से निवृत्त जीव का, **पूइदेह** - मलिन औदारिक शरीर के।

भावार्थ - इस लोक में कामभोगों से निवृत्त होने वाले पुरुष के आत्मा के अर्थ - स्वर्गादि का नाश नहीं होता है, अपवित्र इस औदारिक शरीर का त्याग कर वह व्यक्ति देव होता है इस प्रकार मैंने सुना है।

इड्ढी जुई जसो वण्णो, आउं सुहमणुत्तरं।
भुज्जो जत्थ मणुस्सेसु, तत्थ से उववज्जइ॥२७॥

कठिन शब्दार्थ - **इड्ढी** - ऋद्धि, **जुई** - द्युति, **जसो** - यश, **वण्णो** - वर्ण, **सुहं** - सुख, **अणुत्तरं** - अनुत्तर (प्रधान), **उववज्जइ** - उत्पन्न होता है।

भावार्थ - फिर देवभव के बाद वह आत्मा जहाँ मनुष्यों में सर्व प्रधान ऋद्धि, द्युति, यश, वर्ण-श्लाघा आयु और सुख हों, वहाँ उत्पन्न होती है।

अज्ञानी जीव की गति

बालस्स पस्स बालत्तं, अहम्मं पडिवज्जिया।
चिच्चा धम्मं अहम्मिट्ठे, णरए उववज्जइ॥२८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **बालत्तं** - अज्ञानपना, **पस्स** - देख, **अहम्मं** - अधर्म को, **पडिवज्जिया** - ग्रहण करके, **चिच्चा** - छोड़ कर, **धम्मं** - धर्म को, **अहम्मिट्ठे** - अधर्मी।

भावार्थ - बाल अर्थात् अज्ञानी पुरुष की अज्ञानता देखो कि वह अधर्म को अंगीकार करके धर्म का त्याग कर बहुत ही अधर्मी होकर नरक में उत्पन्न होता है।

धीर जीव की गति

धीरस्स पस्स धीरत्तं, सव्वधम्माणुवत्तिणो।
चिच्चा अधम्मं धम्मिट्ठे, देवेसु उववज्जइ॥२९॥

कठिन शब्दार्थ - **धीरस्स** - धीर की, **धीरत्तं** - धैर्यता को, **सव्वधम्माणुवत्तिणो** - सर्व धर्मों का अनुवर्ती, **अधम्मं** - अधर्म को, **धम्मिट्ठे** - धर्मिष्ठ।

भावार्थ - क्षमादि सभी धर्मों का पालन करने वाले, धीर - बुद्धिशाली पुरुष की धीरता बुद्धिमत्ता को देखो कि वह अधर्म का त्याग कर अतिशय धर्मात्मा होकर, देवों में उत्पन्न होता है।

उपसंहार

तुलियाण बालभावं, अबाले चेव पंडिए।
चइऊण बालभावं, अबालं सेवए मुणि॥३०॥ त्ति बेमि॥

कठिन शब्दार्थ - **तुलियाण** - तुलना करके, **बालभावं** - बाल भाव को, **चइऊण** - छोड़ कर, **सेवए** - सेवन करे।

भावार्थ - पण्डित (विवेकशील) मुनि बालभाव (अज्ञानावस्था) तथा धीरता की तुलना करके अज्ञानता का त्याग करे और धीरता का सेवन करे। ऐसा मैं कहता हूँ।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में बाल भाव और पंडित भाव का स्वरूप जान लेने के बाद जीव के कर्त्तव्य का वर्णन किया गया है। बुद्धिमान् पुरुष का कर्त्तव्य है कि वह बाल भाव का त्याग कर पंडित भाव को ग्रहण करें।

॥ इति औरभ्रीय नामक सातवां अध्ययन समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कापिलीयं णामं अट्ठमं अज्झयणं

कापिलीय नामक आठवां अध्ययन

उत्थानिका - सातवें अध्ययन में विषय त्याग का वर्णन किया गया है। विषयों के त्याग के लिए निर्लोभता का होना आवश्यक है। अतः इस आठवें अध्ययन में निर्लोभता विषयक कपिल मुनि का वर्णन किया जाता है। इच्छाओं की अमरबेल किस प्रकार बढ़ती जाती है और किस प्रकार उसे क्षण भर में उखाड़ फैका जाता है, इसका जीवंत चित्रण प्रस्तुत अध्ययन में किया गया है। गाथाओं के माध्यम से उक्त विषय का वर्णन करने से पूर्व कपिल के जीवन वृत्तांत की जानकारी आवश्यक है अतः संक्षेप में कपिल-आख्यान इस प्रकार हैं -

कौशाम्बी नगरी के राज सम्मानित काश्यप का पुत्र कपिल पितृविहीन हो जाने पर माँ की प्रेरणा से अपने स्वर्गीय पिता के मित्र इन्द्रदत्त के यहाँ श्रावस्ती नगरी में अध्ययन करने हेतु गया। इन्द्रदत्त ने अपने मित्र-पुत्र को अध्ययन करवाना तो स्वीकार कर लिया किन्तु अपनी गरीबी के कारण ब्राह्मण-पुत्र कपिल के भोजन की व्यवस्था नहीं कर पा रहा था। संयोग से एक सेठ शालिभद्र ने कपिल की भोजन व्यवस्था करना स्वीकार कर लिया। उसने एक दासी की नियुक्ति कर दी जो प्रतिदिन उभयकाल कपिल के लिए भोजन बना दिया करती थी।

यौवनकाल, इन्द्रियों का आकर्षण और प्रतिदिन एकांत वास से दोनों ही एक दूसरे के प्रेमजाल-मोहजाल में फंस गए। धीरे-धीरे विद्या व्यसनी कपिल, दासी सेवक बनने लगा। पंडित इन्द्रदत्त ने कपिल को बहुत समझाने का प्रयास किया किन्तु कपिल पर छाया हुआ दासी-प्रेम का नशा नहीं उतरा। दासी त्याग के बदले कपिल ने विद्याभ्यास को ही तिलांजलि देदी। कुछ समय बाद उस दासी के गर्भ रह गया। कपिल को भरण पोषण की चिंता सताने लगी। अंत में दासी ने ही उसे उपाय बताते हुए कहा - इस नगर में एक धन नामक परम उदार सेठ रहता है जो प्रातःकाल सर्वप्रथम बधाई देने वाले व्यक्ति को दो मासा सोना देता है। अतः आप कल प्रातःकाल जल्दी उठ कर उसे बधाई दे कर दो मासा सोना ले आईए।

कपिल ने दासी की बात स्वीकार कर ली। उसने प्रातः शीघ्र ही धन सेठ के यहाँ जाने का विचार किया इस भय से कि कहीं दूसरा व्यक्ति उससे पहले सोना लेने न पहुँच जाय?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अतः वह अर्द्धरात्रि को ही घर से निकल पड़ा। नगर रक्षकों ने उसे चोर समझ कर कैद कर लिया। प्रातःकाल उसे राजा के समक्ष प्रस्तुत किया गया।

जब राजा ने कपिल से पूछताछ की तो उसने अपनी यथार्थ स्थिति स्पष्ट कर दी। राजा गरीब युवक कपिल की सत्यनिष्ठा से प्रसन्न हो गया और कहा - हे ब्राह्मण देव! तू जो कुछ मांगना चाहता है, मांग ले। कपिल ने विचार करने के लिए कुछ समय मांगा और समीप के उद्यान में चला गया। वह बहुत समय तक वहाँ सोचता रहा कि कितना और क्या मांगा जाय? क्यों नहीं दो स्वर्ण मुद्राएं.....यावत् हजार स्वर्ण मुद्राएं मांग लूं? इतने से भी क्या होगा? क्यों नहीं एक लाख.....नहीं, नहीं यह भी कम होगा। जब राजा इच्छानुसार मांगने को कह रहा है तो फिर मैं क्यों कृपणता रखूं? उसकी तृष्णा करोड़ों स्वर्ण मुद्राओं पर भी संतुष्ट नहीं हुई और वह सम्पूर्ण राज्य ही मागंने को उद्यत हो गया।

सहसा उसके मन ने एकदम पलटा खाया, चिंतन बदला। वह लोभ से अलोभ की ओर मुड़ गया। वह सोचने लगा - अहो! तृष्णा की विचित्रता! कहाँ दो मास सोना लेने आया था और कब करोड़ों पर भी संतोष नहीं। अरे इस दो मासा सोने के लोभ ने ही मुझे जेल की सजा दिला दी, फिर अधिक धन न जाने मुझे क्या क्या कष्ट देगा? चिंतन के इस शुभ प्रवाह से कपिल को जातिस्मरण ज्ञान हो गया। त्याग भावना बढ़ी और उसने वहाँ पर ही केशों का लोच किया तथा देव प्रदत्त वेश को धारण कर साधुवृत्ति को स्वीकार कर लिया। साधना के मार्ग पर निकल पड़े। राजा ने जब कपिल मुनि को जाते हुए देखा तो पूछ बैठे - 'अरे! आपने कुछ मांगा नहीं? क्या अभी तक आप किसी निश्चय तक नहीं पहुँच पाये हैं?'

द्रव्य और भाव से पूर्णतया निर्ग्रन्थ बने कपिल बोले - "राजन्! जो पाना था वह मैंने प्राप्त कर लिया है, अब मुझे कुछ भी नहीं मांगना है।"

ऐसा कह कर कपिल मुनि आगे चल दिये। संयम की निर्मल आराधना करते हुए छह मास पश्चात् घाती कर्मों को क्षय कर केवलज्ञान केवलदर्शन को प्राप्त कर लिया। अब कपिल मुनि, कपिल केवली बन गये। एक बार श्रावस्ती और राजगृही के मध्य जंगल में उन्हें ५०० चोरों ने घेर लिया। कपिल केवली ने उन्हें उद्‌बोधन देते हुए जो संसार की असारता और निर्लोभता का संदेश ध्रुवपद गीत में सुनाया उसी का सार रूप है यह आठवां अध्ययन, जिसकी प्रथम गाथा इस प्रकार है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दुर्गति निवारण का उपाय

अधुवे असासयम्मि, संसारम्मि दुक्खपउराए।
किं णाम होज्ज तं कम्मयं, जेणाहं दुग्गइं ण गच्छेज्जा॥१॥

कठिन शब्दार्थ - अधुवे - अध्रुव, असासयम्मि - अशाश्वत, संसारम्मि - संसार में, दुक्खपउराए - दुःख प्रचुर, किं णाम - कौनसा, कम्मयं - कर्म, जेण - जिससे, अहं - मैं, दुग्गइं - दुर्गति में, ण गच्छेज्जा - नहीं जाऊँ।

भावार्थ - एक जिज्ञासु ने पूछा कि भगवन्! अध्रुव (अस्थिर), अशाश्वत और प्रचुर दुःख वाले, इस संसार में कौनसा वह कर्म है, जिससे कि मैं दुर्गति में न जाऊँ।

विजहित्तु पुव्व संजोगं, ण सिणेहं कहिंचि कुव्विज्जा।
असिणेह सिणेह करेहि, दोस पओसेहिं मुच्चए भिक्खू॥२॥

कठिन शब्दार्थ - विजहित्तु - त्याग कर, पुव्व संजोगं - पूर्व संयोग को, सिणेहं - स्नेह, ण कुव्विज्जा - न करे, असिणेह - अस्नेह, दोस पओसेहिं - दोष प्रदोषों से, मुच्चए- मुक्त हो जाता है।

भावार्थ - माता-पिता आदि पूर्व संयोग को और सासू श्वसुर आदि पश्चात् संयोग को छोड़ कर किसी भी वस्तु में स्नेह नहीं करे। स्नेह करने वाले पुत्र-स्त्री आदि में भी स्नेह न रखता हुआ साधु, निरतिचार चारित्र वाला होकर दोष - शारीरिक और मानसिक संताप आदि और प्रदोष - दुर्गति गमन आदि से छूट जाता है।

विवेचन - कपिल केवली ने पांच सौ चोरों को उपदेश देते हुए दुर्गति निवारण का उपाय बताते हुए कहा कि - यह संसार अध्रुव, अशाश्वत और दुःखमय है। इस संसार में जितने भी कष्ट उत्पन्न होते हैं उन सब का मूल कारण स्नेह है। अतः स्नेह रहित जो कर्मानुष्ठान है, वही दुर्गति से इस जीव को बचाने वाला है।

तो णाण दंसण समग्गो, हिय णिस्सेसाए सव्वजीवाणं।
तेसिं विमोक्खणट्ठाए, भासइ मुणिवरो विगयमोहो॥३॥

कठिन शब्दार्थ - णाण-दंसण-समग्गो - ज्ञान दर्शन संयुक्त (परिपूर्ण), हिय - हित, णिस्सेसाए - निःश्रेयस मोक्ष के लिए, सव्वजीवाणं - सभी जीवों के लिए, विमोक्खणट्ठाए- मोक्ष के लिए भासइ - कहते हैं, विगयमोहो - मोह से रहित।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इसके बाद पूर्ण ज्ञान दर्शन से सहित और मोह-रहित मुनिवर सभी जीवों के हितकारी मोक्ष के लिए और उन्हें आठ कर्मों से छुड़ाने के लिए कहने लगे।

सव्वं गंथं कलहं च, विप्पजहे तहाविहं भिक्खू।
सव्वेसु कामजाएसु, पासमाणो ण लिप्पइ ताई॥४॥

कठिन शब्दार्थ - **गंथं** - ग्रन्थ - धनादि परिग्रह, **कलहं** - कलह, **विप्पजहे** - परित्याग करे, **तहाविहं** - तथाविध, **कामजाएसु** - कामभोगों में, **पासमाणो** - देखता हुआ, **ताई** - त्रायी-आत्मरक्षक मुनि, **ण लिप्पइ** - लिप्त नहीं होता।

भावार्थ - साधु तथाविध-कर्मबन्ध कराने वाले, सभी बाह्य और आभ्यंतर परिग्रह और क्लेश तथा अन्य कषायों को छोड़ देवे। ऐसा करने वाला छह काया का रक्षक मुनि सभी मनोज्ञ शब्दादि विषय समूह में कटुक फल देखता हुआ उनमें लिप्त नहीं होता।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में कपिल केवली ने कर्मों से मुक्त होने का उपाय बताते हुए फरमाया कि भिक्षु धन आदि बाह्य और मिथ्यात्व आदि आंतरिक तथा क्रोधादि कषायों को कर्म बंध का कारण जान कर उनका त्याग कर देवें। साथ ही सभी प्रकार के रूप, रस, गंध, शब्द स्पर्श आदि विषयों के कटु परिणामों को देखता हुआ उनको भी छोड़ देवें।

'ताई' शब्द की टीका करते हुए टीकाकार ने कहा है -

"**त्रायते रक्षति आत्मानं दुर्गतेरिति त्रायी**" - दुर्गति से आत्मा की रक्षा करने वाला 'त्रायी' कहलाता है।

भोगासक्त जीव की दशा

भोगामिसदोसविसण्णे, हिय-णिस्सेयसबुद्धि-वोच्चत्थे।
बाले य मंदिए मूढे, बज्झइ मच्छिया व खेलम्मि॥५॥

कठिन शब्दार्थ - **भोगामिस** - भोग रूप आमिष के, **दोस विसण्णे** - दोषों में निमग्न, **हिय** - हित, **णिस्सेयस** - निःश्रेयस (मोक्ष) में, **बुद्धिवोच्चत्थे** - विपरीत बुद्धि वाला, **मंदिए** - मंद मति, **मूढे** - मूढ, **खेलम्मि** - श्लेष्म (कफ) में, **मच्छिया** - मक्षिका, **बज्झइ**- बंध (फंस) जाता है।

भावार्थ - जैसे आमिष (मांस) रसलोलुप प्राणियों के लिए अत्यन्त गृद्धि एवं दोष का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कारण है, उसी प्रकार आत्मा को दूषित करने वाले अत्यन्त गृद्धि के हेतु रूप शब्दादि विषयों में फंसा हुआ एकान्त हितकारी मोक्ष के विषय में विपरीत बुद्धि रखने वाला धर्म में आलस्य करने वाला और मोह से व्याकुल चित्त वाला अज्ञानी जीव श्लेष्म में लिपटी मक्खी के समान संसार में फंस जाता है।

विवेचन - जो जीव ग्रन्थ आदि और इन्द्रिय विषयों का त्याग नहीं करते किन्तु उनमें ही अनुरक्त रहते हैं उनकी करुण दशा का चित्रण प्रस्तुत गाथा में किया गया है।

कामभोगों के त्याग की दुष्करता

दुप्परिच्चया इमे कामा, णो सुजहा अधीरपुरिसेहिं।
अह संति सुव्वया साहू, जे तरंति अतरं वणिया व॥६॥

कठिन शब्दार्थ - **दुप्परिच्चया** - दुस्त्यज, **सुजहा** - सुत्याज्य, **अधीरपुरिसेहिं** - अधीर पुरुषों के द्वारा, **सुव्वया** - सुव्रती, **तरंति** - तैरते हैं, **अतरं** - दुस्तर, **वणिया व** - वणिक की तरह।

भावार्थ - इन काम-भोगों का परित्याग करना बड़ा कठिन है। अधीर पुरुषों से ये सहज ही नहीं छोड़े जा सकते अथ (किन्तु) जो सुन्दर (निर्मल) व्रत वाले साधु हैं, वे कठिनता से पार किये जा सकने वाले इन विषयों के समूह को, व्यापारियों के समान पार कर जाते हैं। अर्थात् जैसे व्यापारी लोग जहाज आदि साधनों द्वारा दुस्तर समुद्र को पार करते हैं, वैसे ही धीर साधु भी व्रतादि साधनों द्वारा विषय रूप समुद्र से पार हो जाते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में कामभोगों के त्याग की कठिनता बताते हुए स्पष्ट किया है कि जो पुरुष अल्प सत्त्व वाले हैं उनके लिए ये कामभोग दुस्त्यज हैं किन्तु जो महासत्त्व वाले धैर्यादि गुणों से युक्त है वे इन कामभोगादि विषयों का त्याग करके इस संसार समुद्र से इस प्रकार पार हो जाते हैं जैसे जहाज के द्वारा कोई व्यापारी समुद्र को पार कर लेता है।

पाप श्रमणों की दुर्गति

समणा मु एगे वयमाणा, पाणवहं मिया अयाणंता।
मंदा णिरयं गच्छंति, बाला पावियाहिं दिट्ठीहिं॥७॥

कठिन शब्दार्थ - **समणा** - श्रमण, **मु** - हम, **वयमाणा** - बोलते हुए, **पाणवहं** -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

प्राणवध को, **मिया** - मृग, **अयाणंता** - न जानते हुए, **मंदा** - मंद मति, **णिरयं** - नरक को, **गच्छंति** - जाते हैं, **पावियाहिं** - पापकारी, **दिट्ठीहिं** - दृष्टियों से।

भावार्थ - 'हम साधु हैं' इस प्रकार कहते हुए और प्राणी-वध को नहीं जानते हुए अर्थात् कौन प्राणी हैं, उनके कौन-से प्राण हैं, किस प्रकार उनकी हिंसा होती है यह नहीं जानते हुए और इसी कारण प्राणी-हिंसा का त्याग नहीं करते हुए मृग के समान अज्ञानी मंद-बुद्धि वाले कई बाल जीव अपनी पापकारी दृष्टियों से नरक में जाते हैं।

विवेचन - जो अपनी पापमयी प्रवृत्ति का समर्थन करते हुए अपने आपको साधु कहलाने का गौरव प्राप्त करते हैं वे अपनी हिंसक पापमयी प्रवृत्तियों के कारण साधुता से गिर कर नरकादि दुर्गतियों में जाते हैं।

ण हु पाणवहं अणुजाणे, मुच्चेज्ज कयाइ सव्वदुक्खाणं।
एवं आयरिएहिं* अक्खायं, जेहिं इमो साहुधम्मो पण्णत्तो॥८॥

कठिन शब्दार्थ - **पाणवहं** - प्राणिवध का, **अणुजाणे** - अनुमोदक, **ण मुच्चेज्ज** - मुक्त नहीं हो सकता, **सव्वदुक्खाणं** - सर्व दुःखों से, **एवं** - इस प्रकार, **आयरिएहिं** - आचार्यों ने, **अक्खायं** - कहा है, **जेहिं** - जिन्होंने, **साहुधम्मो** - साधु धर्म की, **पण्णत्तो** - प्ररूपणा की है।

भावार्थ - जो पुरुष प्राणिवध का अनुमोदन भी करता है, करना-कराना तो दूर रहा वह कभी भी सभी दुःखों से नहीं छूट सकता, जिन्होंने यह साधु धर्म कहा है उन आर्य अर्थात् तीर्थंकर महापुरुषों ने अथवा आचार्यों ने इस प्रकार फरमाया है।

विवेचन - जो जीव हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह रूप आस्रवों का स्वयं सेवन करते हैं, दूसरों से करवाते हैं और करने वालों का अनुमोदन करते हैं, वे शारीरिक और मानसिक दुःखों से कभी भी मुक्त नहीं हो सकते हैं।

साधुजनोचित कर्त्तव्य

पाणे य णाइवाइज्जा, से समियत्ति वुच्चइ ताई।
तओ से पावयं कम्मं, णिज्जाइ उदगं व थलाओ॥९॥

---

* **पाठान्तर** - **आरिएहिं** - आर्य अर्थात् तीर्थंकरों ने।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - णाइवाइज्जा - अतिपात नहीं करता, **समियत्ति** - समिति-सम्यक् प्रवृत्ति वाला, **वुच्चइ** - कहा जाता है, **णिज्जाइ** - निकल जाता है, **उदगं** - पानी, **थलाओ** - स्थल से।

भावार्थ - जो पुरुष प्राणियों की हिंसा नहीं करता, वह छह काय का रक्षक पांच समिति का धारक कहा जाता है। इसके बाद उससे ऊँचे स्थान से जल के समान पाप कर्म निकल जाता है अर्थात् जैसे ऊँची-ढालू भूमि पर पानी नहीं ठहरता और बह कर चला जाता है, उसी प्रकार छह काया के रक्षक, समिति गुप्ति युक्त मुनि से भी पापकर्म अलग हो जाता है।

विवेचन - समिति युक्त आत्मा से पाप कर्म वैसे ही पृथक् हो जाते हैं जैसे ऊंचे स्थान से पानी चला जाता है इस प्रकार उक्त गाथा में पापकर्मों के पृथक् करने के कारणों का निर्देश किया गया है।

जगणिस्सिएहिं भूएहिं, तसणामेहिं थावरेहिं च।
णो तेसिमारभे दंडं, मणसा वयसा कायसा चेव॥१०॥

कठिन शब्दार्थ - जग - लोक के, **णिस्सिएहिं** - आश्रित, **भूएहिं** - जीवों में, **तसणामेहिं** - त्रसों में, **थावरेहिं** - स्थावरों में, **तेसिं** - उनका, **णो आरभे** - आरंभ नहीं करे, **दंडं** - दण्ड का।

भावार्थ - जगत् में रहे हुए उन त्रस नाम-कर्म का उदय वाले - त्रस और स्थावर नामकर्म का उदय वाले स्थावर प्राणियों की मन, वचन और काया से हिंसा का आरंभ नहीं करे। इसी प्रकार दूसरों से भी हिंसा का आरम्भ न करावें और करते हुए को भला भी न समझे।

विवेचन - विचारशील पुरुष इस लोक में रहने वाले त्रस और स्थावर सभी जीवों को मन, वचन और काया से कभी दण्ड न देवे। यानी अपने आत्म-परिणामों को किसी भी जीव के प्रतिकूल धारण न करे।

इस प्रकार कपिल केवली ने उपर्युक्त गाथाओं में मूल गुणों का वर्णन किया। अब वे उत्तर गुणों में सर्वप्रथम एषणा समिति का कथन करते हैं।

एषणा समिति

सुद्धेसणाओ णच्चा णं, तत्थ ठवेज्ज भिक्खू अप्पाणं।
जायाए घासमेसिज्जा, रसगिद्धे ण सिया भिक्खाए॥११॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **सुद्धेसणाओ** - शुद्ध एषणा को, **णच्चा णं** - जान कर, **ठवेज्ज** - स्थापित करे, **अप्पाणं** - अपनी आत्मा को, **जायाए** - संयम यात्रा के लिए, **घासं** - आहार की, **एसिज्जा** - गवेषणा करे, **रसगिद्धे** - रस में मूर्च्छित, **ण सिया** - नहीं होवें।

भावार्थ - साधु, उद्गम-उत्पादनादि दोषों से रहित शुद्ध एषणा को जान कर उसमें अपनी आत्मा को स्थापित करे अर्थात् एषणा के दोषों को टाल कर शुद्ध एषणा से आहार प्राप्त करे। भिक्षा से निर्वाह करने वाला साधु संयम-यात्रा का निर्वाह करने के लिए आहार की गवेषणा करे किन्तु रसों में गृद्धिभाव वाला न होवे।

विवेचन - इस गाथा में साधु की एषणा समिति का वर्णन किया गया है। साधु उद्गम, उत्पादना आदि के दोष रहित-निर्दोष भिक्षा का ग्रहण केवल संयम निर्वाहार्थ ही करे किन्तु शरीर को पुष्ट और बलवीर्य युक्त बनाने के लिए आहार का ग्रहण न करे तथा शुद्ध निर्दोष आहार के मिल जाने पर भी साधु उसके स्वादिष्ट रस आदि में भी मूर्च्छित न होवे किन्तु जैसे शकट (गाड़ी) के धुरा को भलीभांति चलाने के लिए तेल आदि चिकने पदार्थों को लगाते हैं और व्रण (घाव) आदि पर किसी औषधि विशेष का लेप करते हैं उसी प्रकार केवल शरीर को धर्म साधनार्थ टिकाए रखने के लिए स्वल्प आहार करे अर्थात् मनोहर आहार के मिल जाने पर उसमें मूर्च्छित होता हुआ अधिक आहार न करे।

इस विषयक आसक्ति के त्याग के पश्चात् साधु किस प्रकार के पदार्थों को ग्रहण करे। इसके विषय में कहते हैं -

संयमशील साधु का आहार

पंताणि चेव सेविज्जा, सीयपिंडं पुराण कुम्मासं।
अदु बुक्कसं पुलागं वा, जवणट्ठाए णिसेवए मंथुं॥१२॥

कठिन शब्दार्थ - **पंताणि** - नीरस आहार, **सेविज्जा** - सेवन करे, **सीयपिंडं** - शीत आहार, **पुराण** - पुराने, **कुम्मासं** - कुल्माषों का (मूंग, उड़द के बाकुले), **बुक्कसं** - बुक्कस - सारहीन भूसा (कोरमा), **पुलागं** - पुलाक-नीरस, **जवणट्ठाए** - संयम यात्रा के निर्वाह हेतु, **णिसेवए** - सेवन करे, **मंथुं** - बेर या सत्तु का चूर्ण का।

भावार्थ - प्रान्त (नीरस) आहार, ठंडा आहार और पुराने कुल्माष-उड़द आदि के बाकले

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथवा भूसा (कोरमा) नीरस चने आदि अथवा बोर आदि का चूर्ण गोचरी में आवे तो भी अपने शरीर निर्वाह के लिए साधु इनका सेवन करें।

साधुचर्या के विरुद्ध आचरण

जे लक्खणं सुविणं च, अंगविज्जं च जे पउंजंति।
ण हु ते समणा वुच्चंति, एवं आयरिएहिं अक्खायं॥१३॥

कठिन शब्दार्थ - लक्खणं - लक्षण, **सुविणं** - स्वप्न विद्या, **अंगविज्जं** - अंग विद्या, **पउंजंति** - प्रयोग करते हैं, **ण वुच्चंति** - नहीं कहे जाते, **आयरिएहिं** - आचार्यों ने, **अक्खायं**- कहा है।

भावार्थ - जो स्त्री-पुरुषों के शुभाशुभ लक्षण बताने वाले लक्षण विद्या का और स्वप्न का (शुभाशुभ फल बताने वाली स्वप्नविद्या का) और अंग-उपांग के स्फुरण का फल बताने वाली अंगविद्या का प्रयोग करते हैं, वे निश्चय ही साधु नहीं कहलाते हैं। इस प्रकार आचार्यों ने फरमाया है।

विवेचन - इस गाथा में साधु को सामुद्रिक स्वप्न और अंग स्फुरण आदि लौकिक शास्त्रों के उपयोग का निषेध किया गया है। यदि साधु इनका प्रयोग करता है तो आगमकारों की दृष्टि में वह साधु नहीं है क्योंकि वह तीर्थंकर भगवान् की आज्ञा के विरुद्ध आचरण कर रहा है। अतः संयमशील साधु इन विद्याओं का भी प्रयोग न करें।

लक्खणं (लक्षण विद्या) - स्त्री पुरुषों के लक्षणों - चिह्नों को देख कर उनका फल वर्णन करना। यथा - **'पद्म वज्रांकुश छत्र, शंख, मत्स्यादयस्तले पाणिपादेषु दृश्यन्ते यस्यासौ श्रीपतिर्भवेत्'**

अर्थात् जिसके हाथ और पैर में पद्म, वज्र, अंकुश, छत्र, शंख और मत्स्यादि के चिह्न हो, वह लक्ष्मीपति होता है आदि।

सुविणं (स्वप्न विद्या) - स्वप्न का शुभाशुभ फल कहना यथा -

दहि छत्त हेम चामर वन्न फलं च दीव तंबोल।
संखज्झाउय वंसहो दिट्ठो धणं देइ॥१॥
पढमंमि वासफलया, बीए जामंमि होंति छम्मासा।
तइयंमि ति सफला वरमे सज्जफला होंति॥२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् - स्वप्न में दही, छत्र, स्वर्ण, चामर, फलयुक्त वृक्ष, दीपक, ताम्बूल, शंख, ध्वजा और वृषभादि के देखने से धन की प्राप्ति होती है इत्यादि।

रात्रि के प्रथम प्रहर में देखा हुआ स्वप्न एक वर्ष में फल देता है, दूसरे प्रहर में देखा हुआ छह मास में, तीसरे प्रहर का तीन मास में और चौथे प्रहर में देखा हुआ स्वप्न तत्काल फल देने वाला होता है आदि।

अंगविज्जं (अंग विद्या) - शरीर के अंगों के स्फुरण का शुभाशुभ फल कथन करना। यथा -

सिर फुरणे किर रज्जं, पियमेलो होइ बाहु फुरणंमि।
अच्छि फुरणम्मि य पियं, अहरे पिय संगमो होइ॥

अर्थात् सिर के फुरने से राज्य की प्राप्ति होती है, भुजाओं के फुरने से प्रिय का मिलाप होता है, आंखों के स्फुरण से प्रिय वस्तु के दर्शन होते हैं और अधरों के स्फुरण से प्रिय का समागम होता है इत्यादि।

उक्त प्रकार की लौकिक विद्याओं का प्रयोग करने वाला साधु वास्तव में साधु कहलाने के योग्य नहीं है क्योंकि ये सब क्रियाएं साधु धर्म से सर्वथा बाहर हैं। अतः इन कर्मों से साधु को सर्वथा पृथक् रहना चाहिये।

उक्त क्रियाओं के अनुष्ठान करने वाले को किस फल की प्राप्ति होती है। अब सूत्रकार इस विषय में कहते हैं -

भ्रष्ट साधकों की गति-मति

इह जीवियं अणियमेत्ता, पब्भट्ठा समाहिजोएहिं।
ते कामभोगरसगिद्धा, उववज्जंति आसुरे काये॥१४॥

कठिन शब्दार्थ - इह - इस मनुष्य जन्म में, **जीवियं** - जीवितव्य को, **अणियमेत्ता** - बिना वश किए, **पब्भट्ठा** - भ्रष्ट होकर, **समाहिजोएहिं** - समाधि योगों से, **कामभोगरसगिद्धा**- कामभोग रस में गृद्ध, **उववज्जंति** - उत्पन्न होते हैं, **आसुरे काये** - आसुर काय में।

भावार्थ - इस जन्म में असंयम जीवन का नियंत्रण न कर जो समाधि और योग (चित्त की एकाग्रता तथा प्रतिलेखनादि व्यापारों) से भ्रष्ट हो गये हैं, वे काम-भोग और रस में आसक्त होकर, असुर सम्बन्धी काया में (असुरकुमारों में) उत्पन्न होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तत्तो वि य उवट्टित्ता, संसारं बहुं अणुपरियडंति।
बहुकम्मलेवलित्ताणं, बोही होइ सुदुल्लहा तेसिं॥१५॥

कठिन शब्दार्थ - **उवट्टित्ता** - निकल करके, **बहुं** - बहुत, **अणुपरियडंति** - परिभ्रमण करते हैं, **कम्मलेवलित्ताणं** - कर्म लेप से लिप्तों को, **बोही** - बोधि-धर्म की प्राप्ति, **सुदुल्लहा** - अति दुर्लभ।

भावार्थ - वहाँ असुर-निकाय में से निकल कर बहुत (विस्तृत) संसार में परिभ्रमण करते हैं। अतिशय कर्म-लेप से लिप्त हुए उन प्राणियों के लिए सम्यक्त्व की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ हो जाती है।

विवेचन - लक्षण स्वप्नादि लौकिक विद्याओं का उपयोग करने वाले, कामभोगों के रस में मूर्च्छित रहने वाले और तप संयम से अपने असंयमी जीवन को वश में नहीं करने वाले जीव असुरकाय में उत्पन्न होते हैं और वहाँ से निकल कर चौरासी लाख जीवयोनियों में बहुत काल तक परिभ्रमण करते रहते हैं। उनकी आत्मा पर कर्मों का अधिक लेप रहता है इसलिए उनको अत्यंत दुर्लभ इस बोधि धर्म की प्राप्ति होना बहुत कठिन हो जाता है।

तृष्णा की दुष्पूरता

कसिणं वि जो इमं लोयं, पडिपुण्णं दलेज्ज एगस्स।
तेणावि से ण संतुस्से, इइ दुप्पूरए इमे आया॥१६॥

कठिन शब्दार्थ - **कसिणं** - कृत्स्न-सम्पूर्ण, **लोयं** - लोक, **पडिपुण्णं** - प्रतिपूर्ण-धन धान्यादि से भरा हुआ, **दलेज्ज** - दे देवे, **एगस्स** - एक को, **ण संतुस्से** - संतुष्ट नहीं होता, **दुप्पूरए** - दुःख से पूर्ण करने योग्य, **आया** - आत्मा।

भावार्थ - धन-धान्यादि से भरा हुआ परिपूर्ण यह लोक यदि कोई सुरेन्द्रादि एक ही व्यक्ति को दे दे तो उससे भी वह आत्मा संतुष्ट नहीं होता है। इस प्रकार इस आत्मा का तृप्त होना अति ही कठिन है।

विवेचन - इस गाथा में तृष्णा की दुष्पूरता का वर्णन किया गया है। लोभग्रस्त आत्मा की संतुष्टि कभी नहीं होती है कहा है -

नवहि स्तृण काष्ठेषु नदीभिर्वा महोदधिः।
न चैवात्माऽर्थ सारेण शक्यस्तर्पयितुं क्वचित्॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् - जिस प्रकार अग्नि, तृण काष्ठ आदि से तृप्त नहीं होती और समुद्र नदियों से तृप्त नहीं होता उसी प्रकार यह आत्मा भी धन आदि बाह्य पदार्थों से कभी तृप्ति को प्राप्त नहीं होती है।

तृष्णा क्यों शांत नहीं होती?

जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवड्ढइ।
दो मासकयं कज्जं, कोडीए वि ण णिट्ठियं॥१७॥

कठिन शब्दार्थ - **लाहो** - लाभ, **लोहो** - लोभ, **पवड्ढइ** - बढ़ता है, **दो मासकयं** - दो मासे से होने वाला, **कज्जं** - कार्य, **कोडीए वि** - करोड़ों से भी, **ण णिट्ठियं** - निष्ठित-निष्पन्न नहीं हुआ।

भावार्थ - ज्यों-ज्यों लाभ होता जाता है त्यों-त्यों लोभ बढ़ता जाता है। लाभ से लोभ की वृद्धि होती है, कपिल मुनि का दो माशा सोने से होने वाला कार्य लोभ वश करोड़ मोहरों से भी पूरा नहीं हुआ।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में कपिल केवली ने अपने निजी वृत्तान्त का उदाहरण देकर आत्मा की दुष्पूर्णता - अतृप्ति का सुन्दर चित्रण किया है। लाभ से लोभ बढ़ता जाता है जो आत्मा यथालाभ में संतोष मान कर निश्चिंत रहते हैं वे ही वास्तव में सुखी हैं।

स्त्री संसर्ग त्याग

णो रक्खसीसु गिज्झेज्जा, गंडवच्छासुऽणेगचित्तासु।
जाओ पुरिसं पलोभित्ता, खेलंति जहा व दासेहिं॥१८॥

कठिन शब्दार्थ - **रक्खसीसु** - राक्षसियों में, **गिज्झेज्जा** - मूर्च्छित होवे, **गंडवच्छासु**- जिनके वक्ष (हृदय) पर पुष्ट स्तन हैं उनमें, **अणेग चित्तासु** - अनेक चित्त वाली, **पुरिसं** - पुरुष को, **पलोभित्ता** - प्रलोभन देकर, **खेलंति** - क्रीड़ा करती हैं, **दासेहिं** - दासों से।

भावार्थ - साधक को चाहिये कि पीनस्तन वाली चंचल-चित्त राक्षसी रूप स्त्रियों में मूर्च्छित (आसक्ति वाला) न होवे, जो मोहक हाव-भाव मधुर वाणी आदि से पुरुष को लुभा कर अपनी ओर आकृष्ट कर बाद में उनके साथ दासों के जैसा क्रीड़ा करती हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - जैसे राक्षसी मनुष्य का खून पी कर उसका जीवन हरण कर लेती है, इसी प्रकार चंचलचित्त कुलटा स्त्रियाँ भी पुरुष का स्वास्थ्य नष्ट कर उसे निःसत्व कर डालती हैं, यही नहीं ज्ञानादि स्वरूप तात्त्विक जीवन का भी ये नाश कर देती हैं। मोहक हाव-भाव तथा मधुर वचनों से पुरुष को लुभा कर अपने वश में कर लेती है और इसके बाद उसके साथ दास जैसा अपमानपूर्ण व्यवहार करती हैं।

इस गाथा में स्त्रियों को राक्षसी का उपमा दी गई है। इसके द्वारा उनकी निंदा नहीं करके वास्तविक स्थिति को प्रदर्शित किया गया है। स्त्रियाँ तो निमित्त मात्र हैं उनके उपलक्षण से विषयों की भयंकरता बताई गई है। पुरुषों का मन उनकी तरफ आकर्षित न हो इस उद्देश्य से स्त्रियों के लिए 'राक्षसी' विशेषण लगाया है। यदि स्त्रियों को राक्षसी कहा है तो पुरुष स्वतः राक्षस हो जाते हैं। अतः यहाँ पर स्त्री पुरुष दोनों की निंदा का आशय नहीं होकर विषयों से विरक्त होने का कथन किया गया है।

यहाँ पर सभी स्त्रियों के लिए राक्षसी विशेषण नहीं है। वासनाप्रधान, कपट की खान और चंचलचित्त नारी राक्षसीरूपा है। ब्रह्मचारी साधक उन्हें संयम के लिए भयस्थली समझ कर उनसे सावधान रहे। इसी दृष्टि से कथन किया है। वास्तव में जो महिलाएं शीलवती, व्रतधारी, सती एवं वैराग्यवती हैं, वे न तो वासनाप्रिय होती हैं, न ही अनेक चित्तवाली या कपट से युक्त। ऐसी महिलाओं के लिए यह कथन नहीं है।

णारीसु णोवगिज्झिज्जा, इत्थी विप्पजहे अणगारे।
धम्मं च पेसलं णच्चा, तत्थ ठवेज्ज भिक्खू अप्पाणं॥१६॥

कठिन शब्दार्थ - **णारीसु** - स्त्रियों में, **णोवगिज्झिज्जा** - मूर्च्छित न होवे, **विप्पजहे**- छोड़ देवे, **पेसलं** - सुंदर, **अप्पाणं** - अपनी आत्मा को।

भावार्थ - गृहस्थाश्रम को छोड़ कर संयमी बना हुआ भिक्षु स्त्रियों में कभी भी आसक्ति भाव न रखे किन्तु स्त्री संग त्याग कर उससे सदैव दूर ही रहे तथा इहलोक और परलोक में धर्म को ही हितकारी जान कर धर्म में अपनी आत्मा को स्थापित करे।

विवेचन - संयमशील साधु को ब्रह्मचर्य रूप सर्वोत्तम धर्म में ही अपनी आत्मा को सर्वथा स्थिर रख कर मोक्ष सुख की प्राप्ति में प्रयत्नशील बनना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उपसंहार

इइ एस धम्मे अक्खाए, कविलेणं च विसुद्ध पण्णेणं।
तरिहिंति जे उ काहिंति, तेहिं आराहिया दुवे लोग॥त्ति बेमि॥२०॥

॥ अट्ठमं अज्झयणं समत्तं॥

कठिन शब्दार्थ - **विसुद्धपण्णेणं** - निर्मल प्रज्ञा वाले ने, **तरिहिंति** - तर जायेंगे, **काहिंति** - करेंगे, **आराहिया** - आराधित किये, सफल कर लिये, **दुवे** - दोनों, **लोग** - लोक।

भावार्थ - इस प्रकार विशुद्ध प्रज्ञा वाले कपिल मुनि ने यह धर्म कहा है। जो इस धर्म का पालन करेंगे वे संसार-सागर से तिर जायेंगे, उक्त धर्म का पालन करने वालों ने ही दोनों लोकों की आराधना की है अर्थात् उन्हों ही इहलोक और परलोक को सफल किया है। इस प्रकार मैं कहता हूँ।

विवेचन - गाथा में स्पष्ट किया है कि धर्म का आराधन करने वाले इस लोक और परलोक दोनों में ही पूजनीय होते हैं।

इस प्रकार यति धर्म का स्वरूप केवली भगवान् कपिल ने वर्णन किया है। जिसे सुन कर पांच सौ चोर प्रतिबोध को प्राप्त हो गए। दीक्षा ग्रहण करके संयम व्रत का आराधन करते हुए वे सब सद्गति को प्राप्त हुए। **'त्ति बेमि'** का अर्थ पूर्ववत् है।

॥ इति कापिलीय नामक आठवाँ अध्ययन समाप्त॥

* * * *

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णमिपवज्जा णामं णवमं अज्झयणं

नमि प्रव्रज्या नामक नौवाँ अध्ययन

उत्थानिका - आठवें अध्ययन में कपिल के दृष्टान्त से निर्लोभता का वर्णन किया गया है। जो व्यक्ति निर्लोभी होता है वह देव और देवराज इन्द्र का भी पूज्य बन जाता है। इसी आशय से इस नववें अध्ययन में नमि राजर्षि के साथ देवराज इन्द्र के जो प्रश्नोत्तर हुए हैं उनका विस्तृत वर्णन किया गया है।

जीवन में कौनसा छोटा-सा क्षण निमित्त बन कर वैराग्य का कारण बन जाता है इस मर्मस्पर्शी घटना का चित्रण नमिराज के जीवन वृत्तांत में मिलता है। जो संक्षिप्त में इस प्रकार हैं-

मिथिला नरेश नमिराज के जीवन की यह घटना है। नमिराज एक बार दाह ज्वर की वेदना से पीड़ित हो गये। छह मास तक उन्हें भयंकर वेदना होती रही। वैद्यों के सभी उपचार निरर्थक सिद्ध हो रहे थे। अंत में वैद्यों ने सुझाव दिया कि गोशीर्ष (बावना) चंदन का लेप करने से इस दाह ज्वर की वेदना शांत हो सकती है।

शीघ्र ही गोशीर्ष (बावना) चंदन आ गया। अपने स्वामी की वेदना से दुःखित रानियाँ स्वयं अपने हाथों से चंदन घिसने लगी। चंदन घिसते समय रानियों के हाथों में पहने हुए कंकणों की आवाजें होने लगी। महाराजा नमि पहले से ही वेदना से व्याकुल हो रहे थे उन्हें यह शोरगुल अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कहा - 'यह इतनी तीव्र आवाज किसकी है?' मंत्री ने निवेदन किया- 'राजन्! चंदन घिसने से रानियों के हाथों के कंकणों की आवाज हो रही है।' राजा का संकेत पाते ही रानियों ने तुरन्त सौभाग्य सूचक एक-एक कंकण रख लिया और शेष कंकण उतार दिये और पुनः चंदन घिसने लग गयी।

शोरगुल बंद हो गया। नमिराज ने पूछा - 'क्या चंदन घिसने का कार्य बंद हो गया है?' मंत्री ने कहा - 'नहीं', फिर आवाज कैसे बंद हो गई? नमिराज के इस प्रश्न के उत्तर में मंत्री ने रानियों के एक-एक कंकण रखने की बात कही तो नमिराज के चिंतन ने गहरा मोड़ ले लिया और यह छोटी-सी घटना उनके आत्म-जागरण का कारण बन गयी।

नृप सोचने लगे कि - जहाँ अनेक हैं वही कलह हैं, शोरगुल हैं, द्वन्द्व, दुःख और संघर्ष हैं। जहाँ एक है वहाँ पूर्ण शांति है। राजा का विवेक जागृत हो गया। अंतर चेतना में वैराग्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भाव उमड़ पड़ा। विशुद्ध भावधारा से उन्हें जाति स्मरण ज्ञान हो गया। वे अपने पूर्व जन्म को हस्तामलकवत् देखने लग गये। बढ़ते हुए अंतरंग वैराग्य से उन्होंने शीघ्र ही राज्य सम्पदा और परिवार आदि का त्याग कर दीक्षित होने का निर्णय कर लिया।

नमिराज के दीक्षित होने का ज्ञान जब स्वर्ग के अधिपति देवेन्द्र को हुआ तो वह एक ब्राह्मण का रूप बना कर देखने के लिए आया कि नमिराज का यह वैराग्य क्षणिक आवेगमय है या चिर स्थायी? इन्द्र और नमिराज के बीच जो प्रश्नोत्तर हुए उसका वर्णन सूत्रकार इन गाथाओं में कर रहे हैं -

चइऊण देवलोगाओ, उववण्णो माणुसम्मि लोगम्मि।
उवसंतमोहणिज्जो, सरइ पोराणियं जाइं॥१॥

कठिन शब्दार्थ - **चइऊण** - चव कर, **देवलोगाओ** - देव लोक से, **उववण्णो** - उत्पन्न हुआ, **माणुसम्मि** - मनुष्य, **लोगम्मि** - लोक में, **उवसंत मोहणिज्जो** - जिसका मोहनीय कर्म उपशांत हो गया है, **सरइ** - स्मरण करता है, **पोराणियं** - पूर्व, **जाइं** - जाति को।

भावार्थ - जिसके चारित्र-मोहनीय कर्म (कषाय वेदमोहनीय आदि) उपशांत हो गया है ऐसे नमिराज का जीव सातवें देवलोक से चव कर मनुष्य-लोक में उत्पन्न हुआ और जातिस्मरण ज्ञान द्वारा पहले के जन्म का स्मरण करने लगा।

विवेचन - नमिराज का जीव सातवें देवलोक से च्यव कर यहाँ आया है। एक समय चिन्तन मनन करते हुए उनको जातिस्मरण पैदा हुआ। जिससे वे अपने पूर्वभवों को देखने लगे। जातिस्मरण, मतिज्ञान का भेद हैं। सम्यग्दृष्टि की मति मतिज्ञान कहलाता है तथा मिथ्यादृष्टि की मति, मतिअज्ञान कहलाता है। इसी प्रकार जातिस्मरण के भी दो भेद हैं। सम्यग्दृष्टि का जातिस्मरण 'जातिस्मरण ज्ञान' कहलाता है। मिथ्यादृष्टि का जातिस्मरण 'जातिस्मरण अज्ञान' कहलाता है। इस प्रकार जातिस्मरण सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनों को हो सकता है। ये दोनों मतिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से पैदा होते हैं। इस पर यह प्रश्न पैदा होता है कि इस गाथा में **"उवसंत मोहणिज्जो"** यह शब्द दिया है तो जातिस्मरण का मोहनीय से क्या सम्बन्ध है? इसका समाधान यह है कि -

यहाँ **"उवसंतमोहणिज्जो"** शब्द का अर्थ जिसके चारित्र मोहनीय कर्म (कषाय एवं वेद मोहनीय आदि) उपशांत (मन्द) हो गया है - ऐसे नमिराज का जीव करना उचित है। यहाँ पर प्रयुक्त **'उवसंतमोहणिज्जो'** शब्द में **'उवसंत'** शब्द 'औपशमिक' अर्थ में नहीं होकर 'मन्दता'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के अर्थ में प्रयुक्त हुआहै। जैसे कि भगवती सूत्र के शतक ५ उद्देशक ६ में अनुत्तर विमान के देवों के लिए **'उवसंतमोहा'** शब्द का प्रयोग होते हुए भी वहाँ पर ११ वें गुणस्थान के समान मोह उपशांत नहीं हैं। किन्तु उन देवों में मनोविकार आदि भी नहीं होने से 'मोह की मन्दता' की दृष्टि से 'उवसंतमोहा' कहा गया है।

इस अध्ययन में भी जातिस्मरण को औपशमिक ज्ञान नहीं कहा है। नन्दीसूत्र आदि से जाति स्मरण ज्ञान व अज्ञान का मतिज्ञान व मतिअज्ञान रूप होना स्पष्ट हो जाता है। अतः मतिज्ञान के भेदों में होने से जातिस्मरण ज्ञान भी क्षायोपशमिक ज्ञान है। यहाँ इस प्रसङ्ग में- चूड़ियों की खनखनाहट से अशान्त बने हुए नमिराजा ने चूड़ियों की आवाज के प्रति अरुचि प्रकट करने पर रानियाँ सौभाग्य सूचक एक-एक चूड़ी हाथों पर रख कर शेष सभी चूड़ियाँ उतार देती हैं। फिर चंदन घिसना बन्द कर दिया है क्या? ऐसा पूछने पर उत्तर मिला कि - 'घिसना चालू है पर हाथों में एक-एक चूड़ी ही होने से आवाज नहीं आ रही है।' इस उत्तर पर विचार करने से 'अकेले में ही सुख है। जहाँ अनेक हैं वहाँ संघर्ष हैं। ऐसा सोचकर नमिराजा राज्य से विरक्त हो जाते हैं। आसक्ति मन्द (कम) हो जाती है। इसी को बताने के लिए 'उपशांत मोहनीय' विशेषण दिया है। चारित्र मोह (कषाय एवं नोकषाय) के मन्द होने पर - "एकला (अकेलेपन) में ऐसी शान्ति मैंने अन्यत्र भी अनुभव की है।" इस पर ईहा, अपोह, मार्गणा, गवेषणा करते हुए नमिराजा को मतिज्ञान के भेद रूप क्षायोपशमिक जातिस्मरण ज्ञान हुआ। यह बात बतलाने के लिए शास्त्रकार ने **'उवसंत मोहणिजो'** शब्द दिया है।

नमिराज का अभिनिष्क्रमण

जाइं सरित्तु भयवं, सहसंबुद्धो अणुत्तरे धम्मे।
पुत्तं ठवित्तु रज्जे, अभिणिक्खमइ णमी राया॥२॥

कठिन शब्दार्थ - **जाइं** - पूर्व जन्म को, **सरित्तु** - स्मरण कर के, **भयवं** - भगवान्, **सहसंबुद्धो** - स्वयं सम्बुद्ध, **अणुत्तरे** - अनुत्तर, **धम्मे** - धर्म, **पुत्तं** - पुत्र को, **ठवित्तु** - स्थापित करके, **रज्जे** - राज्य में, **अभिणिक्खमइ** - दीक्षा के लिए निकलता है।

भावार्थ - पूर्वभव का स्मरण कर के भगवान् नमिराज स्वयमेव बोध को प्राप्त हुए और पुत्र को राज्यगद्दी पर स्थापित कर के सर्वश्रेष्ठ श्रुतचारित्र रूप धर्म के सम्मुख हो कर गृहस्थावस्था से निकले।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

विवेचन - नमिराजर्षि अपनी पिछली जाति को स्मरण करके अपने आप ही प्रतिबोध को प्राप्त हो गये अर्थात् सर्वोत्कृष्ट जो चारित्र रूप धर्म है उसके धारण करने की उनमें स्वयमेव रुचि उत्पन्न हो गई अतः पुत्र को राज्यपद में स्थापन करके स्वयं दीक्षा के लिए उद्यत हो गये।

सो देवलोगसरिसे, अंतेउरवरगओ वरे भोए।
भुंजित्तु णमी राया, बुद्धो भोगे परिच्चयइ॥३॥

कठिन शब्दार्थ - **देवलोगसरिसे** - देवलोक सदृश, **अंतेउरवर** - अन्तःपुर में (रानियों के साथ), **गओ** - प्राप्त हुए, **वरे** - प्रधान, **भोए** - भोगों को, **भुंजित्तु** - भोग कर, **बुद्धो** - प्रबुद्ध होकर, **भोगे** - भोगों को, **परिच्चयइ** - परित्याग करता है।

भावार्थ - उत्तम अन्तःपुर में रह कर देवलोक सरीखे श्रेष्ठ भोगों को भोग कर उन नमिराज ने बोध (तत्त्व ज्ञान) पा कर भोगों को छोड़ दिया।

अभिनिष्क्रमण कैसे हुआ?

मिहिलं सपुरजणवयं, बलमोरोहं च परियणं सव्वं।
चिच्चा अभिणिक्खंतो, एगंतमहिट्ठिओ भयवं॥४॥

कठिन शब्दार्थ - **मिहिलं** - मिथिला नगरी, **सपुरजणवयं** - नगर और जनपद सहित, **बलं** - सेना, **ओरोहं** - अन्तःपुर, **परियणं** - परिजन को, **चिच्चा** - छोड़ कर, **अभिणिक्खंतो**- अभिनिष्क्रमण, **एगंतं** - एकान्त-मोक्षमार्ग में, **अहिट्ठिओ** - अधिष्ठित हुआ।

भावार्थ - नगरों और जनपदों एवं प्रान्तों से जुड़ी हुई मिथिला नगरी चतुरंगिणी सेना अन्तःपुर और परिजन, दास-दासी आदि सभी को छोड़ कर भगवान् नमिराज प्रव्रज्या धारण करने के लिए घर से निकले और एकान्त का आश्रय लिया अर्थात् द्रव्य से उद्यान रूप एकान्त का और भाव से सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप मोक्ष का आश्रय लिया।

कोलाहलगभूयं आसी, मिहिलाए पव्वयंतम्मि।
तइया रायरिसिम्मि, णमिम्मि अभिणिक्खमंतम्मि॥५॥

कठिन शब्दार्थ - **कोलाहलगभूयं** - कोलाहलभूत शब्द, **आसी** - हुआ, **पव्वयंतम्मि**- दीक्षा लेने के समय, **रायरिसिम्मि** - राजर्षि, **णमिम्मि** - नमिराज के, **अभिणिक्खमंतम्मि** - घर से निकलने पर।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - उस समय राजर्षि नमिराज के गृहस्थावस्था से निकलने पर और प्रव्रज्या धारण करने के लिए घर से निकलने पर मिथिला नगरी में चारों ओर कोलाहल होने लगा।

विवेचन - शास्त्रकारों ने नमिराज को गृहस्थावस्था में भी 'राजर्षि' कहा है। इसका कारण यह है कि जो राजा न्यायी होता है और क्रोधादि छह अन्तरंग शत्रुओं को जीत लेता है, वह राजर्षि कहलाता है।

देवेन्द्र ब्राह्मण के रूप में

अब्भुट्ठियं रायरिसिं, पव्वज्जा ठाणमुत्तमं।
सक्को माहणरूवेण, इमं वयणमब्बवी॥६॥

कठिन शब्दार्थ - **अब्भुट्ठियं** - उद्यत हुए, **रायरिसिं** - राजर्षि को, **पव्वज्जा ठाणं** - दीक्षा स्थल के लिए, **उत्तमं** - उत्तम, **सक्को** - देवेन्द्र शक, **माहणरूवेण** - ब्राह्मण के वेश में, **इमं** - इस प्रकार, **वयणं** - वचन, **अब्बवी** - कहने लगा।

भावार्थ - उत्तम सम्यग्दर्शनादि गुणों के आधार रूप प्रव्रज्या-स्थान में, अभ्युद्यत (स्थित) राजर्षि नमिराज से ब्राह्मण का रूप धारण करके शक्रेन्द्र ने इस प्रकार वचन कहा (प्रश्न किया)।

प्रथम प्रश्न - मिथिला में कोलाहल क्यों?

किण्णु भो! अज्जमिहिलाए, कोलाहलग-संकुला।
सुव्वंति दारुणा सद्दा, पासाएसु गिहेसु य॥७॥

कठिन शब्दार्थ - **किण्णु** - क्यों?, **अज्ज** - आज, **कोलाहलग** - कोलाहल से, **संकुला** - व्याप्त, **सुव्वंति** - सुनाई दे रहे हैं, **दारुणा** - दारुण, **सद्दा** - शब्द, **पासाएसु** - प्रासादों में, **गिहेसु** - घरों में।

भावार्थ - हे नमिराजर्षि! आज मिथिला नगरी के प्रासादों (राजमहलों) में और घरों में कोलाहल से व्याप्त, हृदय को विदीर्ण करने वाले भयंकर विलाप आक्रन्दन आदि शब्द क्यों सुनाई देते हैं?

नमिराजर्षि का उत्तर

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी॥८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **एयं** - इस, **अट्ठं** - अर्थ को, **णिसामित्ता** - सुन कर, **हेउ** - हेतु, **कारण** - कारण, **चोइओ** - प्रेरित किये हुए, **देविंदं** - देवेन्द्र को, **इणं** - इस प्रकार, **अब्बवी** - कहा।

भावार्थ - शक्रेन्द्र का पूर्वोक्त अर्थ - प्रश्न सुन कर हेतु और कारण से प्रेरित हुए नमी राजर्षि देवेन्द्र से इस प्रकार कहने लगे।

विवेचन - **'हेउकारणचोइओ'** - हेतु और कारण से प्रेरित। हेतु का लक्षण है - साध्य के अभाव में जिसका अभाव निश्चित हो। जैसे इन्द्र का वाक्य है - "तुम्हारा अभिनिष्क्रमण अनुचित है क्योंकि उसके कारण समूची नगरी में हृदयद्रावक कोलाहल हो रहा है।" इसमें पहला अंश प्रतिज्ञावचन (पक्ष) है जो साध्य है तथा दूसरा अंश है - प्रतिज्ञावचन का हेतु, जो अभिनिष्क्रमण के अनौचित्य को सिद्ध करता है। इसी प्रकार कारण उसे कहते हैं - जिसके अभाव में कार्य की उत्पत्ति कथमपि संभव न हो, अर्थात् कार्य के संलग्न पूर्वक्षण में जो नियतरूप से विद्यमान हो। प्रस्तुत में इन्द्र ने कहा है - यदि तुम अभिनिष्क्रमण न करते तो इतना हृदयविदारक कोलाहल न होता। इस वाक्य में कोलाहल कार्य है और अभिनिष्क्रमण उसका कारण है (जो इन्द्र ने कहा)। इस हेतु और कारण से प्रेरित हुए थे - नमिराजर्षि।

मिहिलाए चेइए वच्छे, सीयच्छाए मणोरमे।
पत्त पुप्फफलोवेए, बहूणं बहुगुणे सया॥९॥

कठिन शब्दार्थ - **चेइए** - उद्यान में, **वच्छे** - वृक्ष, **सीयच्छाए** - शीतल छाया से युक्त, **मणोरमे** - मनोरम, **पत्तपुप्फफलोवेए** - पत्र, पुष्प और फलों से युक्त, **बहुगुणे** - बहुत उपकार करने वाला।

भावार्थ - मिथिला नगरी के उद्यान में पत्र-पुष्प और फलों से युक्त शीतल छाया वाला, सदा बहुत से पक्षी आदि प्राणियों को बहुत ही लाभ पहुँचाने वाला, चित्त को प्रसन्न करने वाला - मनोरम नामक एक वृक्ष था।

वाएण हीरमाणम्मि, चेइयम्मि मणोरमे।
दुहिया असरणा अत्ता, एए कंदंति भो! खगा॥१०॥

कठिन शब्दार्थ - **वाएण** - वायु से, **हीरमाणम्मि** - उखड़ जाने पर, **चेइयम्मि** - चैत्य के, **दुहिया** - दुःखी, **असरणा** - शरण रहित, **अत्ता** - आर्त्त (पीड़ित), **एए** - ये, **खगा** - पक्षी, **कंदंति** - क्रन्दन करते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - हे विप्र! वह मनोरम नाम वाला वृक्ष जब वायु से उखड़ गया तब उस पर निवास करने वाले ये प्रक्षी दुःखी, अशरण और पीड़ित होकर आक्रन्दन कर रहे हैं।

विवेचन - जिस प्रकार वृक्ष के गिर जाने पर, पक्षी अपने स्वार्थ का नाश हो जाने के कारण उस वृक्ष के लिए रोते चिल्लाते हैं, परन्तु वृक्ष को उनके रोने में कारण नहीं बनाया जा सकता और न उसे इसके लिए दोषी ही ठहराया जा सकता है, इसी प्रकार मेरे दीक्षा लेने के लिए घर से निकलने पर मिथिला के लोग अपने स्वार्थ के नष्ट हो जाने के कारण विलाप करते हैं। वास्तव में इनका विलाप अपने स्वार्थ के लिए हैं, मेरे लिए नहीं। अतएव इन कोलाहल पूर्ण शब्दों के लिए मुझे उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता।

देवेन्द्र द्वारा प्रस्तुति

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारण चोइओ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी॥११॥

कठिन शब्दार्थ - णमिं रायरिसिं - नमि राजर्षि से, देविंदो - देवेन्द्र।

भावार्थ - नमि राजर्षि के उत्तर देने के बाद पूर्वोक्त अर्थ सुन कर हेतु और कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमिराजर्षि से यह कहा।

द्वितीय प्रश्न - जलते हुए अंतःपुर को क्यों नहीं देखते?

एस अग्गी य वाऊ य, एयं डज्झइ मंदिरं।
भयवं अंतेउरं तेणं, कीस णं णावपेक्खह॥१२॥

कठिन शब्दार्थ - एस - यह, अग्गी - अग्नि, वाऊ - वायु, डज्झइ - जल रहा है, मंदिरं - मन्दिर (राज भवन), अंतेउरं - अंतःपुर को, कीस णं - किस कारण से, ण - नहीं, अवपेक्खह - देखते।

भावार्थ - वायु से प्रेरित हुई यह अग्नि आपके इस भवन को जला रही है अतः हे भगवन्! आप अपने अंतःपुर की ओर क्यों नहीं देखते हैं?

नमिराजर्षि का उत्तर

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी॥१३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - शक्रेन्द्र का पूर्वोक्त अर्थ - प्रश्न सुन कर हेतु और कारण से प्रेरित हुए नमी राजर्षि देवेन्द्र से इस प्रकार कहने लगे।

सुहं वसामो जीवामो, जेसिं मो णत्थि किंचणं।
मिहिलाए डज्झमाणीए, ण मे डज्झइ किंचणं॥१४॥

कठिन शब्दार्थ - **सुहं वसामो** - सुख से रहता हूँ, **जीवामो** - जीता हूँ, **मो** - मेरा, **णत्थि** - नहीं, **किंचणं** - कुछ भी, **डज्झमाणीए** - जलने से।

भावार्थ - हे ब्राह्मण! इनमें हमारी कोई वस्तु नहीं हैं इसलिए मैं सुख पूर्वक रहता हूँ और सुखपूर्वक ही जीता हूँ। मिथिला नगरी के जल जाने पर मेरा कुछ भी नहीं जलता हैं।

विवेचन - आत्मा अकेला है। अकेला ही जन्म धारण करता है और अकेला ही मरता है। वस्तुतः अन्तःपुर आदि कुछ भी मेरा नहीं है और न मेरा इनमें ममत्व ही रहा हुआ है। इसलिए मिथिला नगरी के जलने पर मेरा कुछ भी नहीं जलता।

नमि राजर्षि की सांसारिक पदार्थों में निर्ममत्व भाव की परीक्षा करने के लिए इन्द्र ने यह प्रश्न किया है, जिसका उपरोक्त उत्तर देकर नमि राजर्षि ने यह स्पष्ट कहा है कि इन सांसारिक पदार्थों में मेरा किंचित्मात्र भी मोह और ममत्व नहीं है।

चत्तपुत्तकलत्तस्स, णिव्वावारस्स भिक्खुणो।
पियं ण विज्जइ किंचि, अप्पियं पि ण विज्जइ॥१५॥

कठिन शब्दार्थ - **चत्तपुत्तकलत्तस्स** - पुत्र, कलत्र के त्यागी, **णिव्वावारस्स** - व्यापार रहित, **भिक्खुणो** - भिक्षु को, **पियं** - प्रिय, **ण विज्जइ** - नहीं है, **अप्पियं** - अप्रिय।

भावार्थ - पुत्र और स्त्रियों का त्याग करने वाले, कृषि पशु पालन आदि सभी प्रकार के व्यापार से निवृत्त साधु के लिए न तो कोई वस्तु प्रिय है और न अप्रिय ही है अर्थात् भिक्षु का सभी वस्तुओं में समभाव रहता है।

बहुं खु मुणिणो भद्दं, अणगारस्स भिक्खुणो।
सव्वओ विप्पमुक्कस्स, एगंतमणुपस्सओ॥१६॥

कठिन शब्दार्थ - **भद्दं** - भद्र (सुख), **सव्वओ** - सर्व प्रकार से, **विप्पमुक्कस्स** - विमुक्त-बंधनों से रहित, **एगंतमणुपस्सओ** - एकान्त देखने वाले - एकान्तदर्शी को।

भावार्थ - सभी प्रकार के बाह्य और आभ्यंतर बन्धनों से मुक्त होकर 'मैं अकेला हूँ,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मेरा कोई भी नहीं हैं' इस प्रकार एकत्व-भावना का, विचार करने वाले तथा भिक्षा से निर्वाह करने वाले गृहत्यागी साधु के लिए निश्चय ही बहुत कल्याण (सुख) है।

तीसरा प्रश्न - नगर की सुरक्षा की चिंता क्यों नहीं?

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी॥१७॥

भावार्थ - नमि राजर्षि के उत्तर देने के बाद पूर्वोक्त अर्थ सुन कर हेतु और कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमिराजर्षि से यह कहा।

पागारं कारइत्ताणं, गोपुरट्टालगाणि य।
उस्सूलग-सयग्घीओ, तओ गच्छसि खत्तिया॥१८॥

कठिन शब्दार्थ - **पागारं** - प्राकार (कोट), **कारइत्ताणं** - करवा कर, **गोपुरट्टालगाणि**- गोपुर (नगर द्वार) अट्टालिकाएं, **उस्सूलग** - कोट (दुर्ग) की खाई, **सयग्घीओ** - शतघ्नी शतमारक (तोप) आदि शस्त्र, **खत्तिया** - हे क्षत्रिय?

भावार्थ - हे क्षत्रिय! प्राकार (कोट) और दरवाजे तथा अट्टालिका अर्थात् कोट पर युद्ध करने के लिए बुर्ज, कोट के चारों ओर खाई और सैकड़ों शत्रुओं का हनन करने वाली तोप आदि यंत्र करवा कर उसके बाद तुम दीक्षित होना।

नमि राजर्षि का उत्तर

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी॥१९॥

भावार्थ - शक्रेन्द्र का पूर्वोक्त अर्थ प्रश्न सुन कर हेतु और कारण से प्रेरित हुए नमी राजर्षि देवेन्द्र से इस प्रकार कहने लगे।

सद्धं णगरं किच्चा, तव-संवर-मग्गलं।
खंतिं णिउणपागारं, तिगुत्तं दुप्पधंसयं॥२०॥

कठिन शब्दार्थ - **सद्धं** - श्रद्धा रूप, **णगरं** - नगर, **तवसंवर** - तप और संवर को, **अग्गलं** - अर्गला, **किच्चा** - बना कर, **खंतिं** - क्षमा को, **णिउणपागारं** - निपुण प्राकार, **तिगुत्त** - तीन गुप्ति से, **दुप्पधंसयं** - दुष्प्रध्वंस्य - अजेय।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

भावार्थ - श्रद्धा रूप नगर, क्षमा आदि दस धर्म रूप दृढ़ कोट और तप-संवर रूप अर्गला (भोगला) बना कर कर्म रूप शत्रुओं से दुर्जेय तीन गुप्तियों से उस कोट की रक्षा करनी चाहिए।

विवेचन - नमि राजर्षि कहते हैं कि हे विप्र! मैंने श्रद्धा रूप नगर बनाया है। प्रशम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा, आस्था ये पांच उस नगर के द्वार हैं। क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि दस धर्म रूपी दृढ़ कोट बनाया है। अनशन आदि छह प्रकार का बाह्य तप तथा आस्रव निरोध रूप संवर को उसके लिए आगल सहित किंवाड़ बनाये हैं। मनगुप्ति वचनगुप्ति कायगुप्ति रूप बुर्ज, खाई और तोपें तैयार की हैं। इस प्रकार मेरा नगर दुर्जेय है। कर्मरूपी शत्रु मेरे नगर में प्रवेश नहीं कर सकते।

धणुं परक्कमं किच्चा, जीवं च ईरियं सया।
धिइं च केयणं किच्चा, सच्चेण पलिमंथए॥२१॥

कठिन शब्दार्थ - **धणुं** - धनुष, **परक्कमं** - पराक्रम रूप, **जीवं** - जीवा (प्रत्यंचा), **ईरियं** - ईर्यासमिति रूप, **धिइं** - धृति रूप, **केयणं** - केतन (मूठ), **सच्चेण** - सत्य से, **परिमंथए** - बांधे।

भावार्थ - उक्त नगर की रक्षा के लिए साधु को सदा पराक्रम रूपी धनुष और ईर्यासमिति को धनुष की डोरी बना कर और धीरज को केतन अर्थात् धनुष के मध्य में पकड़ने का काष्ठ का मुठिया करके सत्य द्वारा उसे बांधना चाहिये।

तवणारायजुत्तेणं, भित्तूणं कम्मकंचुयं।
मुणी विगयसंगामो, भवाओ परिमुच्चए॥२२॥

कठिन शब्दार्थ - **तवणारायजुत्तेणं** - तप रूपी बाण से युक्त, **भित्तूणं** - भेदन करके, **कम्मकंचुयं** - कर्म रूपी कवच को, **विगयसंगामो** - बाह्य संग्राम से रहित होकर, **भवाओ** - संसार से, **परिमुच्चए** - मुक्त हो जाता है।

भावार्थ - उक्त पराक्रम रूप धनुष में तप रूप बाण चढ़ा कर और कर्म रूप कवच का भेदन करके मुनि संग्राम से निवृत्त होकर संसार से मुक्त हो जाता है।

विवेचन - नमि राजर्षि कहते हैं कि हे ब्राह्मण! कर्मरूपी शत्रुओं का नाश करने के लिए मैंने पराक्रम रूपी धनुष पर छह प्रकार का आभ्यंतर तप रूपी बाण चढ़ा रखा है। कर्म शत्रुओं का नाश करने पर फिर कोई युद्ध करना शेष नहीं रहता। फिर शीघ्र ही मोक्ष की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्राप्ति हो जाती है। इसलिए हे ब्राह्मण! जो तुमने कोट-किले आदि बनाने का कहा है वे सब मैंने पहले ही बना रखे हैं। इस प्रकार के कोट-किलों से शारीरिक और मानसिक समस्त दुःखों से शीघ्र मुक्ति हो सकती है। किन्तु तुम्हारे कथनानुसार कोट किले आदि बनवाने से मुक्ति नहीं हो सकती।

चौथा प्रश्न - प्रासाद, गृहादि निर्माण विषयक

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउ कारण चोइओ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी॥२३॥

भावार्थ - नमि राजर्षि के उत्तर देने के बाद पूर्वोक्त अर्थ सुन कर हेतु और कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमिराजर्षि से यह कहा।

पासाए कारइत्ताणं, वद्धमाणगिहाणि य।
वालग्गपोइयाओ य, तओ गच्छसि खत्तिया॥२४॥

कठिन शब्दार्थ - **पासाए** - प्रासाद को, **कारइत्ताणं** - बनवा कर, **वद्धमाण गिहाणि**- वर्द्धमान गृह, **वालग्गपोइयाओ** - वलभी (चन्द्रशालाएं) बनवा कर।

भावार्थ - हे क्षत्रिय! प्रासाद (भवन) और वास्तुशास्त्र में बतलाये हुए अनेक प्रकार के छोटे बड़े घर और जलक्रीड़ा करने के लिए तालाब के बीच में क्रीड़ागृह आदि बनवा कर उसके बाद प्रव्रज्या धारण करना तुम्हें योग्य है।

विवेचन - **वालग्गपोइयाओ** - 'वालग्गपोइया' देशी शब्द है उसका 'वलभी' अर्थ टीकाकारों ने किया है। वर्तमान् में उसे चन्द्रशाला या तालाब के मध्य में निर्मित छोटा महल, जल महल या हवा महल कह सकते हैं।

नमि राजर्षि का उत्तर

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी॥२५॥

भावार्थ - शक्रेन्द्र का पूर्वोक्त अर्थ - प्रश्न सुन कर हेतु और कारण से प्रेरित हुए नमी राजर्षि, देवेन्द्र से इस प्रकार कहने लगे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संसयं खलु सो कुणइ, जो मग्गे कुणइ घरं।
जत्थेव गंतुमिच्छेज्जा, तत्थ कुव्विज्ज सासयं॥२६॥

कठिन शब्दार्थ- संसयं - संशय, **कुणइ** - करता है, **जत्थेव** - जहाँ पर, **गंतुं** - जाने की, **कुव्विज्ज** - घर बनावे, **सासयं** - शाश्वत।

भावार्थ - जो पुरुष संशय करता है कि 'मैं गन्तव्य स्थान तक पहुँचूंगा या नहीं' वही पुरुष मार्ग में घर बनाता है, किन्तु मेरे मन में संदेह नहीं हैं, क्योंकि सम्यग् ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप रत्न-त्रय से अवश्य मोक्ष होता है, ऐसा मुझे निश्चय है और मैं इसका पालन कर रहा हूं। मेरा नियत स्थान मोक्ष है। बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि जहाँ पर जाने की इच्छा हो वहीं पर अपना स्थायी घर बनावें।

विवेचन - नमिराज ब्राह्मण से कहते हैं कि आपने मुझे विविध प्रासाद आदि बनाने के लिए कहा। किन्तु मेरा यहाँ रहना तो मार्ग के पड़ाव के समान है। मेरा गन्तव्य शाश्वत स्थान तो मुक्ति है। रास्ते में पड़ाव के स्थान पर घर बनाना बुद्धिमत्ता नहीं है। बुद्धिमान् को तो अपने इष्ट स्थान पर पहुँच कर घर बनाना चाहिये, जहाँ उसे सदा रहना है।

पांचवां प्रश्न - नगर की सुरक्षा विषयक

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी॥२७॥

भावार्थ - नमि राजर्षि के उत्तर देने के बाद पूर्वोक्त अर्थ सुन कर हेतु और कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमिराजर्षि से यह कहा।

आमोसे लोमहारे य, गंठिभेए य तक्करे।
णगरस्स खेमं काऊणं, तओ गच्छसि खत्तिया॥२८॥

कठिन शब्दार्थ - **आमोसे** - चोरी करने वाले, **लोमहारे** - प्राणघात करने वाले, **गंठिभेए** - गांठ कतरने वाले, **तक्करे** - तस्करों, **णगरस्स** - नगर के, **खेमं** - क्षेम - अमनचैन, **काऊणं** - करके।

भावार्थ - डाका डालने वाले और निर्दयता पूर्वक लोगों को मार कर उनका सर्वस्व लूटने वाले, गांठ कतरने वाले और चोर (गुप्त रूप से धन हरण करने वाले), इनको दण्ड द्वारा वश में करके और इनसे नगर की सुरक्षा कर के हे क्षत्रिय! इसके बाद तुम दीक्षा लेना।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नमि राजर्षि का उत्तर

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।

तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी॥२९॥

भावार्थ - शक्रेन्द्र का पूर्वोक्त अर्थ - प्रश्न सुन कर हेतु और कारण से प्रेरित हुए नमी राजर्षि देवेन्द्र से इस प्रकार कहने लगे।

असइं तु मणुस्सेहिं, मिच्छादंडो पउंजइ।

अकारिणोऽत्थ बज्झंति, मुच्चइ कारओ जणो॥३०॥

कठिन शब्दार्थ - **असइं** - अनेक बार, **मणुस्सेहिं** - मनुष्यों के द्वारा, **मिच्छादंडो** - मिथ्या दण्ड का, **पउंजइ** - प्रयोग किया जाता है, **अकारिणो** - अपराध न करने वाले, **बज्झंति** - बांधे जाते हैं, **अत्थ** - यहाँ (लोक में), **मुच्चइ** - छूट जाते हैं, **कारओ** - अपराधी, **जणो** - जन।

भावार्थ - इस लोक में मनुष्यों से अनेक बार मिथ्या दंड का प्रयोग किया जाता है अर्थात् अज्ञानादि वश लोग निरपराधी को दण्ड देते हुए दिखाई देते हैं, अपराध न करने वाले निर्दोष व्यक्ति बांधे जाते हैं और अपराध करने वाला पुरुष छोड़ दिया जाता है।

छठा प्रश्न - शत्रु राजाओं को जीतने विषयक

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।

तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी॥३१॥

भावार्थ - नमि राजर्षि के उत्तर देने के बाद पूर्वोक्त अर्थ सुन कर हेतु और कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमिराजर्षि से यह कहा।

जे केइ पत्थिवा तुज्झं, णाणमंति णराहिवा।

वसे ते ठावइत्ताणं, तओ गच्छसि खत्तिया॥३२॥

कठिन शब्दार्थ - **जे** - जो, **केइ** - कोई, **पत्थिवा** - राजा (पार्थिव), **णाणमंति** - नमस्कार नहीं करते, **णराहिवा** - नराधिप, **वसे** - वश में, **ठावइत्ताणं** - स्थापन करके।

भावार्थ - हे नरेन्द्र! जो कोई राजा तुम्हारी अधीनता स्वीकार कर तुम्हें नमन नहीं करते, उन्हें वश में करके, हे क्षत्रिय! इसके बाद तुम प्रव्रज्या धारण करना।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - नमिराजर्षि के अन्तःकरण में द्वेष है या नहीं, इस बात की परीक्षा करने के लिए इन्द्र ने प्रश्न किया है कि हे राजन्! जो राजा तुम्हारी आज्ञा नहीं मानते, उन्हें वश में कर के पीछे दीक्षा लेना तुम्हें योग्य है। अन्यथा वे शत्रु राजा तुम्हारे राज्य को छिन्न-भिन्न कर देंगे अथवा तुम्हारे पुत्र को अपने अधीन बना लेंगे। इससे अच्छा यही है कि तुम पहले शत्रु राजाओं को अपने वश में कर लो, क्योंकि भरत आदि राजाओं ने भी शत्रुओं को अपने वश में कर के पीछे दीक्षा ली है। अतः तुम्हें भी ऐसा ही करना चाहिए।

नमि राजर्षि का उत्तर

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी॥३३॥

भावार्थ - शक्रेन्द्र का पूर्वोक्त अर्थ - प्रश्न सुन कर हेतु और कारण से प्रेरित हुए नमि राजर्षि देवेन्द्र से इस प्रकार कहने लगे।

जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिणे।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ॥३४॥

कठिन शब्दार्थ - सहस्सं सहस्साणं - हजार को हजार से गुणा करने पर (दस लाख), **संगामे** - संग्राम में, **दुज्जए** - दुर्जय, **जिणे** - जीतता है, **एगं** - एक, **जिणेज्ज** - जीत ले, **अप्पाणं** - आत्मा को, **परमो जओ** - परम विजय।

भावार्थ - जो पुरुष दुर्जय संग्राम में दस लाख सुभटों पर विजय प्राप्त करता है और एक महात्मा अपनी आत्मा को जीतता है। इन दोनों में उस महात्मा की यह विजय ही श्रेष्ठ विजय है।

विवेचन - अन्य शत्रु राजाओं को जीतने की अपेक्षा आत्मा को जीतना ही वीरता है। जिसने दूसरों को जीत लिया, किन्तु अपनी आत्मा को नहीं जीता, वह सच्चा वीर नहीं हैं, क्योंकि विषय-कषायादि में प्रवृत्त हुई आत्मा ही दुःख का कारण है, दूसरे पदार्थ नहीं।

अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झओ।
अप्पाणमेव अप्पाणं, जिणित्ता सुहमेहए॥३५॥

कठिन शब्दार्थ - अप्पाणं - आत्मा के साथ, **एव** - ही, **जुज्झाहि** - युद्ध करो, **जुज्झेण**- युद्ध से, **बज्झओ** - बाहर के, **जिणित्ता** - जीत कर, **सुहं** - सुख को, **एहए** - पाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

भावार्थ - आत्मा के साथ ही युद्ध करना चाहिए, बाहर के युद्ध से तुम्हें क्या लाभ है? केवल अपनी आत्मा द्वारा आत्मा को जीतने से सच्चा सुख प्राप्त होता है।

पंचिंदियाणि कोहं, माणं मायं तहेव लोहं च।
दुज्जयं चेव अप्पाणं, सव्वमप्पे जिए जियं॥३६॥

कठिन शब्दार्थ - **पंचिंदियाणि** - पांचों इन्द्रियाँ, **कोहं** - क्रोध, **माणं** - मान, **मायं**- माया, **तहेव** - तथा, **लोहं** - लोभ, **दुज्जयं** - दुर्जय, **अप्पे जिए** - आत्मा को जीत लेने पर, **जियं** - जीत लिए जाते हैं।

भावार्थ - पांच इन्द्रियाँ क्रोध, मान, माया और इसी प्रकार लोभ तथा दुर्जय आत्मा ये सब अपनी आत्मा को जीत लेने पर स्वतः जीत लिए जाते हैं।

सातवां प्रश्न - यज्ञ ब्राह्मण भोजन आदि के संबंध में

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी॥३७॥

भावार्थ - नमि राजर्षि के उत्तर देने के बाद पूर्वोक्त अर्थ सुन कर हेतु और कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमिराजर्षि से यह कहा।

जइत्ता विउले जण्णे, भोइत्ता समणमाहणे।
दच्चा भोच्चा य जिट्ठा य, तओ गच्छसि खत्तिया॥३८॥

कठिन शब्दार्थ - **जइत्ता** - करवा कर, **विउले** - विपुल, **जण्णे** - यज्ञ को, **भोइत्ता**- भोजना करा कर, **समण** - श्रमणों, **माहणे** - ब्राह्मणों को, **दच्चा** - दान देकर, **भोच्चा** - भोग भोग कर, **जिट्ठा** - स्वयं यज्ञ करके।

भावार्थ - हे क्षत्रिय! बड़े बड़े महायज्ञ करवा कर, श्रमण और ब्राह्मणों को भोजन करा कर, दान देकर और भोग भोग कर तथा स्वयं यज्ञ करके उसके बाद हे क्षत्रिय! दीक्षा धारण करना तुम्हें योग्य है।

नमि राजर्षि का उत्तर

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी॥३९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

भावार्थ - शक्रेन्द्र का पूर्वोक्त अर्थ - प्रश्न सुन कर हेतु और कारण से प्रेरित हुए नमि राजर्षि देवेन्द्र से इस प्रकार कहने लगे।

जो सहस्सं सहस्साणं, मासे मासे गवं दए।

तस्सावि संजमो सेओ, अदिंतस्स वि किंचणं॥४०॥

कठिन शब्दार्थ - **मासे मासे** - प्रतिमास, **गवं** - गायों का, **दए** - दान करता है, **तस्सावि** - उससे भी, **संजमो** - संयम, **सेओ** - श्रेयस्कर, **अदिंतस्स** - दान न करे, **किंचणं** - किंचित् मात्र भी।

भावार्थ - जो पुरुष प्रतिमास दस लाख गायों का दान करता है उसकी अपेक्षा कुछ भी दान नहीं करने वाले मुनि का संयम अधिक श्रेष्ठ है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में सावद्य और निरवद्य वृत्ति का स्पष्टीकरण किया गया है।

आठवां प्रश्न-गृहस्थाश्रम का त्याग कर संन्यास क्यों?

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।

तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी॥४१॥

भावार्थ - नमि राजर्षि के उत्तर देने के बाद पूर्वोक्त अर्थ सुन कर हेतु और कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमिराजर्षि से यह कहा।

घोरासमं चइत्ताणं, अण्णं पत्थेसि आसमं।

इहेव पोसहरओ, भवाहि मणुयाहिवा॥४२॥

कठिन शब्दार्थ - **घोरासमं** - घोराश्रम-गृहस्थाश्रम को, **चइत्ताणं** - छोड़ कर, **अण्णं**- अन्य, **पत्थेसि** - इच्छा करते हो, **आसमं** - आश्रम की, **इहेव** - यहीं पर ही, **पोसहरओ** - पौषध में रत, **भवाहि** - हो जाओ, **मणुयाहिवा** - मनुजाधिप (नरनाथ)।

भावार्थ - मनुष्यों के अधिपति हे राजन्! आप घोर गृहस्थाश्रम का त्याग कर अन्य संन्यास आश्रम की इच्छा कर रहे हैं, यह आप जैसे वीर क्षत्रियों के योग्य नहीं है। आप यहीं गृहस्थाश्रम में रह कर ही पौषध आदि व्रतों में रत रहो।

विवेचन - गृहस्थाश्रम छोड़ कर संन्यास लेने की अपेक्षा आपके लिए यह अधिक उपयुक्त होगा कि आप गृहस्थावास में रह कर ही पौषध आदि धर्मानुष्ठानों का आचरण करें।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नमि राजर्षि का उत्तर

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी॥४३॥

भावार्थ - शक्रेन्द्र का पूर्वोक्त अर्थ - प्रश्न सुन कर हेतु और कारण से प्रेरित हुए नमि राजर्षि देवेन्द्र से इस प्रकार कहने लगे।

मासे मासे उ जो बालो, कुसग्गेणं तु भुंजए।
ण सो सुअक्खायधम्मस्स, कलं अग्घइ सोलसिं॥४४॥

कठिन शब्दार्थ - मासे मासे - महीने महीने के, **बालो** - बाल (अज्ञानी), **कुसग्गेणं**- कुशाग्र मात्र, **भुंजए** - आहार करता है, **सुअक्खाय** - सुविख्यात, **धम्मस्स** - धर्म की, **कलं** - कला को भी, **ण अग्घइ** - प्राप्त नहीं होता, **सोलसिं** - सोलहवीं।

भावार्थ - जो अज्ञानी पुरुष प्रतिमास यानी एक एक मास का अनशन कर पारणे के दिन कुशाग्र परिमाण आहार करता है, वह पुरुष तीर्थंकर देव द्वारा प्ररूपित चारित्र धर्म की सोलहवीं कला के समान भी नहीं है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में नमि राजर्षि ने स्वाख्यात मुनिधर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है। क्योंकि जिसमें साधु धर्म स्वीकार करने की शक्ति न हो, वही गृहस्थ में रहता हुआ श्रावक धर्म अंगीकार करता है, परन्तु साधु धर्म के आगे गृहस्थाश्रम का त्याग अत्यन्त न्यून है।

नववां प्रश्न-हिरण्यादि भंडार की वृद्धि करने के संबंध में

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी॥४५॥

भावार्थ - नमि राजर्षि के उत्तर देने के बाद पूर्वोक्त अर्थ सुन कर हेतु और कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमिराजर्षि से यह कहा।

हिरण्णं सुवण्णं मणिमुत्तं, कंसं दूसं च वाहणं।
कोसं च वड्ढावइत्ताणं*, तओ गच्छसि खत्तिया॥४६॥

---

* पाठान्तर - वड्ढइत्ताणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

कठिन शब्दार्थ - **हिरण्णं** - चांदी-स्वर्ण के आभूषण, **सुवण्णं** - सोना, **मणिमुत्तं** - मणि मोती, **कंसं** - कांसी के भाजन, **दूसं** - वस्त्र, **वाहणं** - वाहन, **कोसं** - कोश - भण्डार को, **वड्ढावइत्ताणं (वड्ढइत्ताणं)** - बढा करके।

भावार्थ - चांदी-स्वर्ण के आभूषण सोना, मणि और मोती, काँसी के बरतन, वस्त्र और हाथी-घोड़ा-रथ आदि वाहन तथा भण्डार इन्हें बढ़ा कर हे क्षत्रिय! उसके बाद तुम प्रव्रज्या धारण करना।

विवेचन - इस प्रश्न से इन्द्र, नमिराजर्षि की लोभ की परीक्षा करता है।

नमि राजर्षि का उत्तर

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।

तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी॥४७॥

भावार्थ - शक्रेन्द्र का पूर्वोक्त अर्थ - प्रश्न सुन कर हेतु और कारण से प्रेरित हुए नमि राजर्षि देवेन्द्र से इस प्रकार कहने लगे।

सुवण्ण रुव्वस्स उ पव्वया भवे, सिया हु केलाससमा असंखया।

णरस्स लुद्धस्स ण तेहिं किंचि, इच्छा हु आगाससमा अणंतिया॥४८॥

कठिन शब्दार्थ - **सुवण्ण रुव्वस्स** - सोने और चांदी के, **पव्वया** - पर्वत, **सिया** - कदाचित्, **केलाससमा** - कैलाश के समान, **असंखया** - असंख्यात, **णरस्स** - मनुष्य की **लुद्धस्स** - लोभी, **इच्छा** - तृष्णा, **आगाससमा** - आकाश के समान, **अणंतिया** - अनन्त।

भावार्थ - यदि कैलाश पर्वत के समान सोने चांदी के असंख्य पर्वत हों, फिर भी लोभी मनुष्य को उन पर्वतों से भी कुछ संतोष नहीं होता निश्चय ही इच्छा आकाश के समान अनन्त है।

विवेचन - धन परिमित है और इच्छा अनन्त है, इसलिए उसका पूर्ण होना असंभव है। केवल संतोष धारण करने से ही इच्छा की निवृत्ति हो सकती है।

यहाँ पर जो कैलाश पर्वत का नाम आया है वह हिमालय पर्वत की महादेव जी के रहने की पर्वत श्रृंखला का नाम समझना चाहिए। लौकिक उपमा से समझाने के लिए कैलाश पर्वत का नाम बताया गया है। मेरु पर्वत को यहाँ नहीं समझना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुढवी साली जवा चेव, हिरण्णं पसुभिस्सह।
पडिपुण्णं णालमेगस्स, इइ विज्जा तवं चरे॥४९॥

कठिन शब्दार्थ - **पुढवी** - समग्र पृथ्वी, **साली** - शाली - चावल, **जवा** - जौ, **हिरण्णं** - स्वर्ण, **पसुभिस्सह** - पशुओं सहित, **पडिपुण्णं** - परिपूर्ण करने में, **णालं** - समर्थ नहीं है, **इइ** - इस प्रकार, **विज्जा** - जान कर, **तवं** - तप का, **चरे** - आचरण करे।

भावार्थ - चावल, जौ और सोना तथा पशुओं आदि से परिपूर्ण यह सारी पृथ्वी यदि किसी एक व्यक्ति को दे दी जाय तो भी उसकी इच्छा पूर्ण होना कठिन है, इस प्रकार जान कर बुद्धिमान् पुरुष तप का आचरण करे।

विवेचन - राजर्षि नमि कहते हैं कि संसार के पदार्थों में तृष्णा की पूर्ति करने का सामर्थ्य नहीं है। जैसे अग्नि की ज्वाला घृत डालने से शांत होने की बजाय तीव्र होती है उसी प्रकार संसार के पदार्थों से भी तृष्णा घटने के स्थान पर बढ़ती है। अतएव लोभी पुरुष को धन धान्यादि से परिपूर्ण सारा भूमंडल भी दे दिया जावे तो भी उसकी तृष्णा शांत होने के बजाय और अधिक प्राप्त करने के लिए दौड़ेगी।

दसवां प्रश्न - प्राप्त काम भोगों को छोड़ कर अप्राप्त की इच्छा क्यों?

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी॥५०॥

भावार्थ - नमि राजर्षि के उत्तर देने के बाद पूर्वोक्त अर्थ सुन कर हेतु और कारण से प्रेरित हुए देवेन्द्र ने नमिराजर्षि से यह कहा।

अच्छेरगमब्भुदए, भोए चयसि पत्थिवा!।
असंते कामे पत्थेसि, संकप्पेण विहम्मसि॥५१॥

कठिन शब्दार्थ - **अच्छेरगं** - आश्चर्य है, **अब्भुदए** - अद्भुत, **भोए** - भोगों को, **चयसि** - त्यागते हो, **पत्थिवा** - पार्थिव-राजा, **असंते** - असत्-अप्राप्त, **कामे** - कामभोगों की, **पत्थेसि** - इच्छा करते हो, **संकप्पेण** - संकल्प से ही, **विहम्मसि** - पीड़ित होते हो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - हे राजन्! आश्चर्य है कि आप प्राप्त हुए इन अद्भुत भोगों को छोड़ रहे हैं और अविद्यमान दिव्य काम भोगों की अभिलाषा कर रहे हैं। कहीं ऐसा न हो कि अदृष्ट भोगों के न मिलने से संकल्प-विकल्पों के वशीभूत होकर तुम्हें पश्चात्ताप करना पड़े।

नमि राजर्षि का उत्तर

एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी॥५२॥

भावार्थ - शक्रेन्द्र का पूर्वोक्त अर्थ - प्रश्न सुन कर हेतु और कारण से प्रेरित हुए नमि राजर्षि देवेन्द्र से इस प्रकार कहने लगे।

सल्लं कामा विसं कामा, कामा आसीविसोवमा।
कामे य पत्थेमाणा, अकामा जंति दुग्गइं॥५३॥

कठिन शब्दार्थ - **सल्लं** - शल्य रूप, **कामा** - काम भोग, **विसं** - विष रूप, आसीविसोवमा - आशीविष सर्प के समान, पत्थेमाणा - अभिलाषा करते हुए, **अकामा** - काम रहित, **दुग्गइं** - दुर्गति को, **जंति** - जाते हैं।

भावार्थ - काम भोग शल्य रूप हैं। काम भोग विष रूप हैं। काम भोग आशीविष सर्प के समान हैं। काम-भोगों की अभिलाषा करने वाले पुरुष काम-भोग का सेवन न करते हुए भी केवल संकल्प मात्र से ही दुर्गति प्राप्त करते हैं।

विवेचन - नमिराजर्षि कहते हैं कि हे ब्राह्मण ! जैसे शरीर में लगा हुआ शल्य (बाण का अग्रभाग) दुःख देता है, इसी प्रकार ये काम-भोग दुःखदायी हैं। जैसे तालपुट विष खाने में मीठा लगता है, किन्तु अन्त में मृत्यु के मुख में पहुँचा देता है, इसी प्रकार ये कामभोग, भोगते समय मनोहर प्रतीत होते हैं, किन्तु अन्त में अनेक दुःखों को उत्पन्न करते हैं। जैसे विषधर सर्प फण ऊँचा कर के नाचते समय अच्छा मालूम होता है, परन्तु डस लेने पर प्राण संकट में पड़ जाते हैं। इसी प्रकार काम-भोग पहले तो मनोहर और सुखप्रद मालूम होते हैं किन्तु सेवन करने के बाद अनेक भयंकर दुःख देते हैं। ऐसे काम-भोगों का सेवन करना तो दूर रहा, किन्तु इनकी इच्छा करने से ही मनुष्य नरक आदि दुर्गतियों को प्राप्त होता है। इसलिए हे विप्र! मैंने उत्तम कामभोग पाने की इच्छा से वर्तमान में प्राप्त हुए भोगों का त्याग नहीं किया है, किन्तु वर्तमान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और भावी विषयों में निस्पृह हो कर विषयभोग का त्याग किया है। मुमुक्ष को किसी भोग पदार्थ की अभिलाषा नहीं होती।

अहे वयइ कोहेणं, माणेणं अहमा गई।
माया गइपडिग्घाओ, लोहाओ दुहओ भयं॥५४॥

कठिन शब्दार्थ - **अहे** - नीच (नरक गति) में, **वयइ** - जाता है, **कोहेणं** - क्रोध से, **माणेणं** - मान से, **अहमा** - अधर्म, **गई** - गति, **माया** - माया से, **गइपडिग्घाओ** - सद्गति का विनाश, **लोहाओ** - लोभ से, **दुहओ** - दोनों लोकों में, **भयं** - भय।

भावार्थ - क्रोध करने से जीव नरक गति में जाता है, मान से नीच गति प्राप्त होती है, माया से शुभ गति का नाश होता है और लोभ से इस लोक और परलोक का भय प्राप्त होता है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में नमि राजर्षि ने चारों कषायों के दुष्परिणामों का कथन किया है।

इन्द्र का असली रूप में प्रकट होना

अवउज्झिऊण माहणरूवं, विउव्विऊण इंदत्तं।
वंदइ अभित्थुणंतो, इमाहिं महुराहिं वग्गूहिं॥५५॥

कठिन शब्दार्थ - **अवउज्झिऊण** - छोड़कर, **माहणरूवं** - ब्राह्मण का रूप, **विउव्विऊण**- वैक्रिय शक्ति से धारण करके, **इंदत्तं** - इन्द्र रूप को, **वंदइ** - वंदना करता है, **अभित्थुणंतो**- स्तुति करता हुआ, **महुराहिं** - मधुर, **वग्गूहिं** - वचनों से।

भावार्थ - इस प्रकार दस प्रश्न करके अनेक उपायों से जब देवेन्द्र नमि राजर्षि को अपने धर्म से लेश मात्र भी नहीं डिगा सका तब देवेन्द्र ने ब्राह्मण का रूप त्याग किया और विक्रिया द्वारा अपना इन्द्र का रूप बना कर इन आगे कहे जाने वाले मधुर वचनों से नमिराज की स्तुति करता हुआ वंदना नमस्कार करने लगा।

विवेचन - इस गाथा में धर्म पर दृढ़ रहने वाले आस्तिक पुरुषों को अन्त में देवता तक भी वंदन करते हैं, यह भाव ध्वनित किया गया है।

जब देवेन्द्र किसी भी प्रकार से नमि राजर्षि को अपने विशुद्ध भावों से रत्ती भर भी विचलित नहीं कर सका तब उसने उत्तर वैक्रिय रूप लब्धि के द्वारा अपने नकली ब्राह्मण वेष का त्याग करके असली इन्द्र रूप को धारण कर लिया और आगे लिखे मधुर वचनों से स्तुति करते हुए नमि राजर्षि को वंदन किया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अहो ते णिज्जिओ कोहो, अहो माणो पराइओ।
अहो ते णिरक्किया माया, अहो लोहो वसीकओ॥५६॥

कठिन शब्दार्थ - अहो - आश्चर्य है, **णिज्जिओ** - जीत लिया, **कोहो** - क्रोध को, **माणो** - मान को, पराइओ - पराजित किया, **णिरक्किया** - निराकृत (दूर) किया, **माया** - माया को, **लोहो** - लोभ को, **वसीकओ** - वश में किया।

भावार्थ - हे नमिराज! आश्चर्य है कि आपने क्रोध को जीत लिया है। आश्चर्य है कि आपने मान को पराजित कर दिया है। आश्चर्य है कि आपने माया को दूर कर दिया है। आश्चर्य है कि आपने लोभ को वश कर लिया है।

विवेचन - इन्द्र नमि राजर्षि से कहने लगा कि हे भगवन्! मुझे आश्चर्य है कि आपने प्रबल क्रोध को जीत लिया है, क्योंकि मैंने पहले आप को शत्रु राजाओं को वश में करने के लिए कहा था, किन्तु आपने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया कि आत्मा को वश में करना ही सर्वोत्तम है, दूसरों को वश में करने से कोई लाभ नहीं होता। अतएव मुझे निश्चय हो गया है कि आपने क्रोध-शत्रु को जीत लिया है। हे नमिराज! मुझे आश्चर्य होता है कि आपने मान(अहंकार) को भी जीत लिया है। मैंने आपसे कहा था कि आपके अन्तःपुर तथा महल आदि को अग्नि भस्म कर रही है, इसको शान्त करना आपका कर्त्तव्य है। इस बात को सुन कर आपको यह अहंकार नहीं आया कि 'मेरे जीते जी मेरे अन्तःपुर आदि को कौन जला सकता है।' किन्तु आपने इसका शान्तिपूर्वक उत्तर दिया कि 'मेरा ज्ञान, दर्शन, चारित्र मेरे पास है। नगर में मेरा कुछ भी नहीं है।' आप के इस उत्तर को सुन कर मुझे निश्चय हो गया है कि आपमें अहंकार नहीं है। महात्मन्! मुझे आश्चर्य होता है कि आपने माया का भी तिरस्कार कर दिया है, क्योंकि नगर की रक्षा के लिए कोट किला आदि बनाने के लिए मैंने आपसे कहा था, किन्तु आपने कहा कि धर्म की ही रक्षा करनी चाहिये। इससे मुझे निश्चय हो गया कि आप माया-रहित हैं। हे महात्मन्! मुझे आश्चर्य होता है कि आपने लोभ का भी नाश कर दिया है, क्योंकि मैंने आपसे कहा था कि मणि मोती सोना चांदी आदि से कोष की वृद्धि करने के पश्चात् दीक्षा लेनी चाहिए। आपने उत्तर दिया कि तृष्णा आकाश के समान अनन्त है, इसका पूर्ण होना असंभव है। एक संतोष ही तृष्णा को पूर्ण कर सकता है। इससे मुझे निश्चय हो गया कि आपने लोभ को भी जीत लिया है। उपरोक्त उत्तरों से मुझे दृढ़ विश्वास हो गया है कि आपने क्रोध, मान, माया और लोभ - इन चारों को जीत लिया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अहो ते अज्जवं साहु, अहो ते साहु मद्दवं।
अहो ते उत्तमा खंती, अहो ते मुत्ति उत्तमा॥५७॥

कठिन शब्दार्थ - **अज्जवं** - ऋजुता (सरलता), **साहु** - श्रेष्ठ है, **मद्दवं** - मृदुता, **उत्तमा** - उत्तम, **खंती** - क्षान्ति (क्षमा), **मुत्ति** - मुक्ति (निर्लोभता)।

भावार्थ - अहो! आपकी ऋजुता - सरल स्वभाव श्रेष्ठ है। अहो! आपकी मृदुता-निरभिमानता श्रेष्ठ है। अहो! आपकी क्षमा उत्तम है और अहो! आपकी निर्लोभता उत्तम है।

विवेचन - जिस प्रकार क्रोधादि चारों दुर्गुण इस आत्मा के निकटवर्ती बलवान् शत्रु हैं उसी प्रकार आर्जवादि सद्गुण इस आत्मा के अत्यंत हितकारी-मित्र हैं।

इन्द्र द्वारा स्तुति

इहंसि उत्तमो भंते, पेच्चा होहिसि उत्तमो।
लोगुत्तमुत्तमं ठाणं, सिद्धिं गच्छसि णीरओ॥५८॥

कठिन शब्दार्थ - **इहं** - इस लोक में, **पच्छा** - परलोक में भी, **होहिसि** - होंगे, **लोगुत्तमुत्तमं** - लोकोत्तर उत्तम, **ठाणं** - स्थान को, **सिद्धिं** - सिद्धि को, **णीरओ** - नीरज-कर्म रज से रहित होकर।

भावार्थ - हे भगवन्! इस लोक में आप उत्तम हैं और पर लोक में उत्तम होंगे। कर्मरज रहित हो कर आप लोक में उत्तमोत्तम (सर्वोत्तम) सिद्धि स्थान में जायेंगे।

एवं अभित्थुणंतो रायरिसिं उत्तमाए सद्धाए।
पयाहिणं करेंतो, पुणो पुणो वंदइ सक्को॥५९॥

कठिन शब्दार्थ - **अभित्थुणंतो** - स्तुति करता हुआ, **सद्धाए** - श्रद्धा से, **पयाहिणं** - प्रदक्षिणा, **करेंतो** - करते हुए, **पुणो पुणो** - बार बार, **वंदइ** - वंदना करता है, **सक्को** - शक्र (इन्द्र)।

भावार्थ - इस प्रकार इन्द्र उत्तम श्रद्धा और भक्तिपूर्वक नमि राजर्षि की स्तुति करता हुआ और प्रदक्षिणा करता हुआ बार-बार उन्हें वन्दना नमस्कार करने लगा।

विवेचन - गुणों के द्वारा मनुष्य, सर्वत्र और सबका पूज्य बन जाता है। सद्गुणी पुरुषों का साधारण मनुष्य तो क्या, देवता तक भी आदर करते हैं। इसी भाव से प्रेरित होकर इन्द्र ने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नमि राजर्षि को बारबार वंदन किया और स्तुति तथा प्रदक्षिणा के द्वारा अपनी असीम श्रद्धा भक्ति का विशिष्ट परिचय दिया।

इन्द्र का गमन

तो वंदिऊण पाए, चक्कंकुस लक्खणे मुणिवरस्स।
आगासेणुप्पइओ, ललिय-चवल-कुंडल-तिरीडी॥६०॥

कठिन शब्दार्थ - **वंदिऊण** - वंदना करके, **पाए** - चरणों को, **चक्कंकुस लक्खणे** - चक्र और अंकुश के चिह्न युक्त, **मुणिवरस्स** - मुनिवर के, **आगासेण** - आकाश मार्ग से, **उप्पइओ** - चला गया, **ललिय** - ललित (सुंदर), **चवल** - चपल, **कुंडल** - कुण्डल, **तिरीडी** - मुकुट का धारक (इन्द्र)।

भावार्थ - इसके बाद सुन्दर और चपल कुंडल तथा मुकुट धारण करने वाला इन्द्र मुनिवर नमिराज के चक्र एवं अंकुश चिह्न वाले चरणों में वंदना कर आकाश मार्ग से ऊपर देवलोक में चला गया।

विवेचन - गाथा १ से लेकर ६० तक के वर्णन में नमि राजर्षि का आपने घर से अभिनिष्क्रमण है। अभी तक दीक्षा नहीं ली है। इसीलिए ब्राह्मण रूपधारी इन्द्र ने **'तओ गच्छसि खत्तिया'** अर्थात् 'क्षत्रिय' शब्द से सम्बोधित किया है। ६१ वीं गाथा में नमि राजर्षि की दीक्षा हुई है, ऐसा वर्णन है।

अर्थात् ६०वीं गाथा के वर्णन तक नमि राजर्षि भाव दीक्षित (भावों से वैराग्य के परिणामों वाले) थे। इसके बाद ६१ वीं गाथा में उनके संयम वेश धारण करके भाव दीक्षा के साथ द्रव्य दीक्षा (साधु वेश ग्रहण) का वर्णन किया गया है।

णमी णमेइ अप्पाणं, सक्कं सक्केण चोइओ।
चइऊण गेहं वइदेही, सामण्णे पज्जुवट्ठिओ॥६१॥

कठिन शब्दार्थ - **णमेइ** - नमाता है, **सक्खं** - साक्षात्, **सक्केण** - इन्द्र से, **चोइओ**- प्रेरित हुआ, **चइऊण** - छोड़ कर, **गेहं** - घर को, **वइदेही** - विदेही-विदेह देश के अधिपति, **सामण्णे** - श्रमण भाव - साधुता में, **पज्जुवट्ठिओ** - प्रतिष्ठित (सुस्थिर) हो गया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - घर बार कुटुम्ब एवं राज्यादि को छोड़ कर श्रमण बने हुए विदेह देश के अधिपति नमिराजर्षि की साक्षात् इन्द्र ने परीक्षा की, किन्तु वे संयम से लेशमात्र भी विचलित नहीं हुए और साक्षात् इन्द्र को अपने चरणों में वंदना करते हुए देख कर भी उन्होंने गर्व नहीं किया, प्रत्युत अपनी आत्मा को विशेष नम्र बनाया।

विवेचन - सच्चे महात्मा पुरुष किसी बड़े पुरुष की वंदन स्तुति से अभिमान में आने की बजाय और भी विनम्र हो जाते हैं। यही उनके आत्मिक गुणों के उत्तरोत्तर विकास का हेतु है इसी कारण देवेन्द्र की स्तुति प्रार्थना से अपनी आत्मा में किसी प्रकार का भी अभिमान न लाते हुए राजर्षि नमि ने अपनी आत्मा को पहले से भी अधिक नम्र बना दिया।

उपसंहार

एवं करेंति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा।
विणियट्टंति भोगेसु, जहा से णमी रायरिसी॥६२॥ त्ति बेमि॥

॥ णमिपव्वज्जा णामं णवम अज्झयणं समत्तं॥

कठिन शब्दार्थ - **संबुद्धा** - संबुद्ध (तत्त्ववेत्ता - ज्ञानीजन), **पंडिया** - पंडित, **पवियक्खणा** - विचक्षण साधक, **विणियट्टंति** - निवृत्त होते हैं, **भोगेसु** - कामभोगों से।

भावार्थ - तत्त्व को जानने वाले विचक्षण पंडित पुरुष नमिराजर्षि के समान संयम पालने में निश्चल रहते हैं और काम भोगों से निवृत्त होते हैं, जैसे वे नमिराजर्षि भोग-विलास से निवृत्त हुए थे। ऐसा मैं कहता हूँ।

विवेचन - जो पुरुष संयम ग्रहण करने के बाद अपने आध्यात्मिक विचारों को पूर्ण रूप से पुष्ट करते हुए तदनुकूल आचरण करने में निःशंक और निर्भय होते हैं उनको निर्वाण पद की प्राप्ति अवश्यंभावी होती है। यही इस गाथा का फलितार्थ है।

इस प्रकार श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं इत्यादि पूर्वानुसार समझ लेना चाहिये।

॥ इति नमि प्रव्रज्या नामक नौवाँ अध्ययन समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दुमपत्तयं णामं दसमं अज्झयणं

द्रुमपत्रक नामक दसवां अध्ययन

उत्थानिका - नवमें अध्ययन में चारित्र निष्ठा का वर्णन किया गया परन्तु चारित्रिक दृढ़ता गुरु भगवंतों की शिक्षाओं पर ही निर्भर है। अतः इस दशवें अध्ययन में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अपने शिष्य गौतम स्वामी को विभिन्न रूपकों के द्वारा शिक्षा देते हुए प्रतिपल प्रतिक्षण जागृत रहने का संदेश दिया है। प्रभु महावीर ने इस छोटे से अध्ययन में एक बार नहीं ३६ बार इस बात को दोहराया है कि समय मात्र - क्षण मात्र का प्रमाद मत करो। इस प्रकार गौतम को संबोधित कर जीवन को ओस बिन्दु एवं पीले पत्ते की तरह क्षण भंगुर समझ कर सदैव आत्मा के मूल लक्ष्य के प्रति प्राणी मात्र को सदैव जागृत रहने का उपदेश (उद्‌बोधन) दिया गया है। द्रुमपत्रक नामक इस अध्ययन की प्रथम गाथा इस प्रकार हैं -

जीवन की क्षणभंगुरता

दुम पत्तए पंडुयए जहा, णिवडइ राइगणाण अच्चए।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम! मा पमायए॥१॥

कठिन शब्दार्थ - **दुमपत्तए** - वृक्ष का पत्र, **पंडुयए** - पीला, **णिवडइ** - गिर जाता है, **राइगणाण** - रात्रि के गण (समूह), **अच्चए** - अतिक्रम होने - बीत जाने पर, **मणुयाण-जीवियं** - मनुष्यों का जीवन, **समयं** - क्षण मात्र भी, **गोयम** - हे गौतम!, **मा पमायए** - प्रमाद मत कर।

भावार्थ - जिस प्रकार रात्रि और दिनों के गण अर्थात् समूह बीत जाने पर वृक्ष का पत्ता, अवस्था अथवा रोगादि कारणों से पीला हो कर नीचे गिर पड़ता है, इस प्रकार मनुष्यों का जीवन है अतएव हे गौतम! समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

विवेचन - इस गाथा में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने गौतम को संबोधन करते हुए अपने कर्त्तव्यों के प्रति पूर्णतया सजग रहने का उपदेश दिया है।

जो कल बालक था वह आज युवा दिखाई देता है और जो जवान था वह बूढ़ा हो गया। कल जो पत्र वृक्ष के साथ लगे हुए उसकी शोभा बढ़ा रहे थे आज वे उससे गिर कर (अलग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हो कर) भूमितल में पैरों से मसले जा रहे हैं। यह दशा संसार के प्रत्येक पदार्थ की है। कोई भी वस्तु स्थिर नहीं है ऐसा सोच कर मनुष्य को अपने स्वल्प जीवन में अपने कर्त्तव्यों में किंचित् भी प्रमाद नहीं करना चाहिए।

आयु की अस्थिरता

कुसग्गे जह ओस-बिंदुए, थोवं चिट्ठइ लंबमाणए।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम! मा पमायए॥२॥

कठिन शब्दार्थ - **कुसग्गे** - कुश के अग्र भाग पर, **जह** - जैसे, **ओस-बिंदुए** - ओस की बिन्दु, **थोवं** - थोड़े काल, **चिट्ठइ** - ठहरती है, **लंबमाणए** - लटकती हुई।

भावार्थ - जिस प्रकार कुश (घास) के अग्र भाग पर लटकती हुई वायु से प्रेरित होती हुई ओस की बूंद थोड़े समय तक ठहरती है और फिर नीचे गिर पड़ती है। इसी प्रकार मनुष्यों का जीवन भी अस्थिर है न मालूम कब समाप्त हो जाय। अतएव हे गौतम! समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

विवेचन - कुश के अग्रभाग पर टिकी हुई ओस बिन्दु के समान क्षण मात्र स्थायी यह मनुष्य जीवन है अतः बुद्धिमान् पुरुष को धर्मानुष्ठान में क्षण मात्र भी प्रमाद नहीं करना चाहिये।

इइ इत्तरियम्मि आउए, जीवियए बहुपच्चवायए।
विहुणाहि रयं पुराकडं, समयं गोयम! मा पमायए॥३॥

कठिन शब्दार्थ - **इत्तरियम्मि** - अल्प कालीन, **आउए** - आयु में, **जीवियए** - जीवन, **बहु** - अनेक, **पच्चवायए** - विघ्नों से परिपूर्ण, **विहुणाहि** - दूर कर, **रयं** - कर्म रज को, **पुराकडं** - पूर्व कृत संचित।

भावार्थ - इस प्रकार थोड़े काल की आयु वाले और उसमें भी अनेकों विघ्न वाले जीवन में पूर्वकृत कर्म रज को आत्मा से दूर करो। अतएव हे गौतम! समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

विवेचन - जीवों की आयु दो प्रकार की कही गई है -

१. **सोपक्रम आयु** - जो किसी बाह्य निमित्त के मिलने से अपनी नियत मर्यादा को पूर्ण किए बिना बीच में ही टूट जावे, उसे व्यवहार नय की अपेक्षा सोपक्रम आयु कहते हैं।

२. **निरुपक्रम आयु** - जो किसी प्रकार के निमित्त से न टूटे किन्तु अपनी नियत मर्यादा को पूर्ण करके ही समाप्त हो, वह निरुपक्रम आयु है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संसार में बहुत अधिक संख्या सोपक्रमी आयु वाले जीवों की है, निरुपक्रमी आयु वाले जीव तो बहुत थोड़े हैं। सोपक्रम आयु वाले जीवों को लक्ष्य में रख कर प्रभु फरमाते हैं कि हे गौतम! आयु बहुत अल्प है उसमें भी अनेक प्रकार के विघ्न हैं यानी आयु को बीच में ही तोड़ देने वाले अनेकविध आतंक (भयानक रोग) शस्त्र, जल, अग्नि, विष, भय और शोक आदि अनेक विघ्न विद्यमान है। पता नहीं किस समय इन उपद्रवों के द्वारा इस जीवन का अंत हो जावे अतः बुद्धिमान् पुरुष को समय मात्र का भी प्रमाद नहीं करना चाहिये तभी वह अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगा, अन्यथा नहीं।

मनुष्य जन्म की दुर्लभता

दुल्लहे खलु माणुसे भवे, चिरकालेण वि सव्वपाणिणं।
गाढा य विवाग कम्मुणो, समयं गोयम! मा पमायए॥४॥

कठिन शब्दार्थ - **दुल्लहे** - दुर्लभ, **माणुसे भवे** - मनुष्यभव, **चिरकालेण** - चिरकाल में, **सव्वपाणिणं** - सभी प्राणियों को, **गाढा** - प्रगाढ, **विवाग** - विपाक, **कम्मुणो** - कर्मों का।

भावार्थ - सुदीर्घ काल में भी, सभी प्राणियों के लिए, मनुष्य का भव प्राप्त होना निश्चय ही दुर्लभ है क्योंकि, मनुष्य गति के घातक कर्मों के विपाक अत्यन्त दृढ़ होते हैं, उनका नाश होना सहज नहीं है। अतएव हे गौतम! समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

विवेचन - प्रभु फरमाते हैं कि जिन आत्माओं ने सुकृत का उपार्जन नहीं किया उन्हें चिरकाल तक भी मनुष्य जन्म का प्राप्त होना अत्यंत कठिन है।

तीव्र कषाय के उदय से कर्मों का इतना गाढ बंध हो जाता है कि जीव मानव भव को प्राप्त नहीं कर पाता है किन्तु पुण्य विशेष के उदय से यह मनुष्य जन्म मिल गया है अतः इसको प्राप्त करके धर्माराधन में समय मात्र का भी प्रमाद करना योग्य नहीं है।

पृथ्वीकायिक जीवों की कायस्थिति

पुढवीकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं संखाईयं, समयं गोयम! मा पमायए॥५॥

कठिन शब्दार्थ - **पुढवीकायं** - पृथ्वीकाय में, **अइगओ** - गया हुआ, **उक्कोसं** - उत्कृष्ट, **संवसे** - रहता है, **कालं** - काल, **संखाईयं** - संख्यातीत-असंख्य।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - पृथ्वीकाय में गया हुआ जीव इस काय में उत्कृष्ट संख्यातीत अर्थात् असंख्यात काल तक रहता है अतएव हे गौतम! समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

विवेचन - इस गाथा में पृथ्वी के जीव की कायस्थिति का वर्णन किया गया है। पृथ्वीकाय का जीव मर कर वापिस उसी काय में पैदा हो जाय उसे कायस्थिति कहते हैं। यानी पृथ्वी का जीव मर कर पृथ्वी में ही उत्पन्न होता रहे इस क्रम से उसकी उत्कृष्ट स्थिति असंख्यात काल पर्यन्त रहती है। पृथ्वी ही जिस जीव का काय (शरीर) है उसको 'पृथ्वीकाय' कहते हैं अतः उत्कृष्ट दशा में यह जीव असंख्यात काल तक पृथ्वी में जन्म मरण कर सकता है। ऐसी अवस्था में गया हुआ जीव संसार के आवागमन चक्र में फंस जाता है और वहाँ से उसका निकलना अत्यन्त कठिन हो जाता है। अतः मनुष्य जन्म प्राप्त किये हुए प्राणियों को समय मात्र भी धर्मकृत्यों में प्रमाद नहीं करना चाहिये।

उक्त गाथा में आये हुए संख्यातीत शब्द का अर्थ असंख्यात काल पर्यन्त होता है। पण्णवणा सूत्र के अठारहवें पद में लिखा है कि -

पुढवीकाइए कालओ केवचिर होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं असंखेज्जाओ उस्सप्पिणिओ कालओ खेत्तओ असंखेज्जा लोगा एवं तेउ वाउ काइयावि।

अर्थात् - गौतम स्वामी प्रश्न करते हैं कि - हे भगवन्! पृथ्वीकाय में जीव कब तक रह सकता है?

भगवान् फरमाते हैं - हे गौतम! जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट असंख्यात काल अर्थात् काल से असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणियों के समय प्रमाण और क्षेत्र से असंख्यात लोक के जितने आकाश प्रदेश हैं उनके प्रमाण, इसी प्रकार अप्काय, तेउकाय और वायुकाय के विषय में भी समझना चाहिये।

अप्काय की कायस्थिति

आउक्कायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं संखाईयं, समयं गोयम! मा पमायए॥६॥

कठिन शब्दार्थ - आउक्कायं - अप्काय में।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

भावार्थ - अप्काय में गया हुआ जीव इस काय में उत्कृष्ट संख्यातीत अर्थात् असंख्यात काल तक रहता है, अतएव हे गौतम! समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

विवेचन - इस गाथा में स्पष्ट किया गया है कि यदि जीव अप्काय में चला गया और उसी में जन्म मरण करने लग गया तो असंख्यात काल पर्यन्त उसी में जन्म मरण करता रहता है। अतः इस मनुष्य जन्म को प्राप्त करके धर्माचरण के लिए पुरुषार्थ करते रहना चाहिये और समय मात्र का भी प्रमाद नहीं करना चाहिये।

तेजस्काय की कायस्थिति

तेउक्कायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं संखाईयं, समयं गोयम! मा पमायए॥७॥

कठिन शब्दार्थ - तेउक्कायं - तेजस्काय में।

भावार्थ - तेउकाय में गया हुआ जीव इसी काय में उत्कृष्ट संख्यातीत अर्थात् असंख्यात काल तक रहता है। अतएव हे गौतम! समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

विवेचन - तेजस्काय में दाहकत्व शक्ति गुण होने से जीवत्व - जीवपन भी प्रमाण सिद्ध है। यदि उसमें जीवत्व न होवे तो दाहकता भी न होवेगी और दाहकत्व गुण से ही तेजस्कायरूपता की स्थिति है। यह तेजस्काय असंख्यात जीवों का पिण्ड रूप - समूह रूप होता है। सूक्ष्म और बादर तेजस्काय की जो असंख्यात काल की स्थिति वर्णन की गई है, उसमें बादर तेजस्काय तो केवल अढाई द्वीप प्रमाण में ही होती है जबकि सूक्ष्म तेजस्काय तो सारे लोक में व्याप्त है।

वायुकाय की कायस्थिति

वाउक्कायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं संखाईयं, समयं गोयम! मा पमायए॥८॥

कठिन शब्दार्थ - वाउक्कायं - वायुकाय में।

भावार्थ - वायुकाय में गया हुआ जीव इसी काय में उत्कृष्ट संख्यातीत अर्थात् असंख्यात काल तक रहता है। अतएव हे गौतम! समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

विवेचन - वायुकाय की कायस्थिति भी उत्कृष्ट असंख्यात काल की कही गई है। जो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीव वायुकाय में जन्म मरण के चक्र को प्राप्त हो चुके हैं उनका वहाँ से निकलना बहुत ही कठिन हो जाता है अतएव बुद्धिमान् पुरुष धर्माचरण में कभी प्रमाद न करे।

वायु का रूप यद्यपि चक्षुःप्रत्यक्ष नहीं तथापि स्पर्शनेन्द्रिय के द्वारा ग्राह्य एवं आगम और युक्ति से वह सिद्ध अवश्य है।

वनस्पतिकाय की कायस्थिति

वणस्सइकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालमणंत दुरंतं, समयं गोयम! मा पमायए॥६॥

कठिन शब्दार्थ - **वणस्सइकायं** - वनस्पतिकाय में, **अणंत** - अनन्त, **दुरंतं** - दुःख से जिसका अंत हो सके।

भावार्थ - वनस्पतिकाय में गया हुआ जीव इसी काय में उत्कृष्ट दुःख से अन्त होने वाले अनन्त काल तक (अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी प्रमाण काल तक) रहता है, अतएव हे गौतम! समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

विवेचन - कर्मवश वनस्पतिकाय को प्राप्त हुआ जीव इसमें अनन्तकाल तक निवास कर सकता है और वहाँ से इसका निकलना बहुत ही कठिन हो जाता है।

प्रज्ञापना सूत्र के अठारहवें कायस्थिति पद में लिखा है -

सुहुम वणस्सइक्काइए सुहुमणिगोएवि जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखेज्जकाल असंखेज्जाओ उस्सप्पिणीओ कालओ खेत्तओ असंखेज्जा लोगा।

बायर वणस्सइक्काइए बायर पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखेज्जकालं जाव खेत्तओ अंगुलस्स असंखेज्जइ भागं।

पत्तेय सरीर बायर वणस्सइक्काइयाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सत्तरिकोडाकोडीओ।

णिगोदेणं भंते! णिगोदे जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं अणंताओ ओसप्पिणीओ कालओ खेत्तओ अढाइज्जा पोग्गल परियट्टा।

बायर निगोदेणं भंते! बायर पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सत्तरि कोडाकोडीओ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसका भावार्थ यह है कि सूक्ष्म और बादर वनस्पतिकाय में असंख्यात काल पर्यन्त यह जीव रह सकता है और निगोद में अनंतकाल पर्यन्त रहता है। बादर निगोद में ७० कोटाकोटि सागरोपम काल पर्यन्त रहता है। अतः यदि यह जीव निगोद में चला गया तो अनंत काल पर्यन्त उसे वहीं रहना होगा। वहाँ से निकलना बहुत ही कठिन और दुःखपूर्वक है इसीलिए गाथा में "**दुरंतं**" विशेषण दिया गया है।

बेइन्द्रिय की कायस्थिति

बेइंदियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं संखिज्ज सण्णियं, समयं गोयम! मा पमायए॥१०॥

कठिन शब्दार्थ - **बेइंदियकायं** - द्वीन्द्रियकाय में, **संखिज्ज** - संख्येय, **सण्णियं** - संज्ञक।

भावार्थ - द्वीन्द्रिय जीवों की काया में गया हुआ जीव इसी काय में उत्कृष्ट संख्यात संज्ञा वाले काल तक (संख्यात हजार वर्ष तक) रहता है। अतएव हे गौतम! समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

विवेचन - जिन जीवों के स्पर्शन और जिह्वा - ये दो इन्द्रियाँ होती हैं, वे द्वीन्द्रिय जीव कहलाते हैं जैसे - सीप, शंख आदि। दो इन्द्रिय वाले जीवों में यदि जीव जन्म-मरण करने लग जाय तो उत्कृष्ट संख्यात वर्ष सहस्र काल पर्यन्त वह उसी काय में जन्म मरण करता रहता है। अतः मनुष्य जन्म को प्राप्त करके धर्मानुष्ठान में कभी प्रमाद नहीं करना चाहिये।

तेइन्द्रिय जीवों की कायस्थिति

तेइंदियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं संखिज्ज सण्णियं, समयं गोयम! मा पमायए॥११॥

कठिन शब्दार्थ - **तेइंदियकायं** - तेइन्द्रिय - तीन इन्द्रिय वाले काय में।

भावार्थ - त्रीन्द्रिय जीवों की काय में गया हुआ जीव इसी काय में उत्कृष्ट संख्यात संज्ञा वाले काल तक (संख्यात हजार वर्ष तक) रहता है। अतएव हे गौतम! समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

विवेचन - जिन जीवों के स्पर्शन, जिह्वा और घ्राण - ये तीन इन्द्रियाँ होती हैं, वे तेइन्द्रिय कहलाते हैं, जैसे - कीड़ी आदि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यदि जीव तेइन्द्रिय काय में चला जाय तो वहाँ पर वह उत्कृष्ट संख्यात सहस्र वर्षों तक जन्म मरण करता है। अतः विचारशील पुरुषों को धर्मकार्यों के संपादन में समय मात्र भी प्रमाद नहीं करना चाहिये।

चउरिन्द्रिय जीवों की कायस्थिति

चउरिंदियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं संखिज्ज सण्णियं, समयं गोयम! मा पमायए॥१२॥

कठिन शब्दार्थ - चउरिंदियकाय - चतुरिन्द्रियकाय में।

भावार्थ - चतुरिन्द्रिय काय में गया हुआ जीव इसी काय में उत्कृष्ट संख्यात संज्ञा वाले काल तक (संख्यात हजार वर्ष तक) रहता है। अतएव हे गौतम! समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

विवेचन - स्पर्श, जिह्वा, घ्राण और चक्षु, इन चार इन्द्रियों वाले जीव चउरिन्द्रिय कहलाते हैं। जैसे मक्खी, मच्छर आदि कर्मवश चतुरिन्द्रिय भाव को प्राप्त जीव संख्यात सहस्रों वर्षों तक इसी में जन्म मरण धारण करता है इसलिए इस दुर्लभ मनुष्य जन्म को प्राप्त करके धर्मकृत्य के अनुष्ठान में लेश मात्र भी प्रमाद नहीं करना चाहिये।

पंचेन्द्रिय जीवों की कायस्थिति

पंचिंदियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
सत्तट्ठ भवग्गहणे, समयं गोयम! मा पमायए॥१३॥

कठिन शब्दार्थ - **पंचिंदिय कायं** - पंचेन्द्रिय काय में, **सत्तट्ठभव** - सात आठ भव, **गहणे** - करता है।

भावार्थ - तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवनिकाय में गया हुआ जीव इसी काय में उत्कृष्ट सात आठ भव ग्रहण करने तक रहता है। अतएव हे गौतम! समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

विवेचन - तिर्यंच और मनुष्य मर कर अगले जन्म में फिर तिर्यंच और मनुष्य के रूप में जन्म ले सकते हैं इसलिए उनकी कायस्थिति होती है। पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय के जीव लगातार असंख्यात काल अर्थात् असंख्यात अवसर्पिणी उत्सर्पिणी काल तक तथा वनस्पति काय के जीव अनंत काल तक अपने अपने उन्हीं स्थानों में जन्म-मरण करते रह सकते हैं। बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय जीव हजारों वर्षों तक अपने-अपने जीवनिकायों में जन्म-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मरण कर सकते हैं। तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य मर कर उन्हीं स्थानों में उत्कृष्ट आठ भव कर सकते हैं। ऐसा भगवती सूत्र के चौबीसवें शतक में बताया गया है। इस अध्ययन की चौथी गाथा के अनुसार मनुष्य भव की दुर्लभता बताई जा रही है तथा चौदहवीं गाथा में देव और नारकी जीवों का कथन है। इस तेरहवीं गाथा में यद्यपि **'पंचिंदिय कायं'** यह शब्द दिया है परन्तु यहाँ पंचेन्द्रिय शब्द से तिर्यंच पंचेन्द्रिय ही समझना चाहिये। तिर्यंच पंचेन्द्रिय मरकर फिर तिर्यंच पंचेन्द्रिय बने, इस तरह आठ भव कर सकता है। उसकी उत्कृष्ट स्थिति बने तो ७ भव तो कर्म भूमि के एक करोड़ पूर्व-एक करोड़ पूर्व के कर सकता है और आठवाँ भव तीन पल्योपम की स्थिति वाला युगलिक का कर सकता है। इस प्रकार तिर्यंच पंचेन्द्रिय की उत्कृष्ट कायस्थिति सात करोड़ पूर्व अधिक तीन पल्योपम की बन सकती है।

प्रश्न - इस गाथा में तिर्यंच पंचेन्द्रिय के आठ भव न देकर सात आठ ऐसा क्यों दिया है?

उत्तर - तिर्यंच पंचेन्द्रिय की उत्कृष्ट स्थिति बतलाने के लिए 'सात भव कर्म भूमि के और आठवाँ भव युगलिक का' यह बतलाने के लिए **'सत्तट्ठ'** शब्द का प्रयोग किया गया है।

प्रश्न - यदि ऐसा है तो आठ ही भव युगलिक के कर लेवे तो कायस्थिति बहुत उत्कृष्ट बन सकती है?

उत्तर - नहीं, ऐसा नहीं हो सकता है क्योंकि युगलिक मर कर तो देव ही होता है इसलिए युगलिक की कायस्थिति नहीं बन सकती है। युगलिक की जो भवस्थिति है वही उसकी कायस्थिति है। देव, नारक की तरह युगलिक मरकर युगलिक नहीं होता है।

देव और नैरयिक की स्थिति

देवे णेरइए य अइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
इक्केक्क-भवग्गहणे, समयं गोयम! मा पमायए॥१४॥

कठिन शब्दार्थ - देवे - देव, णेरइए - नरक गति को - नैरयिकों में, इक्केक्क - एक-एक, भवग्गहणे - भव करता है।

भावार्थ - देव और नरक गति को प्राप्त हुआ जीव वहाँ उत्कृष्ट एक ही भव तक रहता है, अतएव हे गौतम! समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

विवेचन - यदि यह जीव देव बन गया अथवा नरक में चला गया तो अधिक से अधिक एक ही भव कर सकता है क्योंकि देवता मर कर देवता नहीं बनता और नारकी जीव मर कर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नरक में नहीं जाता किन्तु वहाँ से निकल कर मनुष्य या तिर्यंच योनि को प्राप्त होता है। देव तथा नैरयिक की उत्कृष्ट आयु ३३ सागरोपम की है। अतः भगवान् फरमाते हैं कि विचारशील पुरुष को कर्म के क्षय करने में अणुमात्र भी प्रमाद का सेवन नहीं करना चाहिये।

एवं भव संसारे, संसरइ सुहासुहेहिं कम्मेहिं।
जीवो पमाय बहुलो, समयं गोयम! मा पमायए॥१५॥

कठिन शब्दार्थ - भव संसारे - जन्म मरण रूप संसार में, **संसरइ** - परिभ्रमण करता है, **सुहासुहेहिं** - शुभाशुभ, **कम्मेहिं** - कर्मों से, **पमाय बहुलो** - बहुत प्रमाद वाला।

भावार्थ - इस प्रकार बहुत प्रमाद वाला जीव अपने शुभ-अशुभ कर्मों के अनुसार नरक तिर्यंच आदि भव रूप संसार में भ्रमण करता है। इसलिए हे गौतम! एक समय का भी प्रमाद मत कर।

विवेचन - इस अध्ययन की गाथा नं० ४ में मनुष्य भव की दुर्लभता बतायी है। मनुष्य भव दुर्लभ क्यों है? इसका कारण बताते हुए शास्त्रकार ने फरमाया है कि-मनुष्य भव को प्राप्त करने में बाधक कारण बहुत हैं। गाथा ५ वीं से लेकर चौदहवीं गाथा तक ग्यारह बाधक कारण बताये हैं। जिनको ग्रन्थकारों ने 'घाटियाँ' (पहाड़ियाँ) बतलाई हैं। वे ये हैं - १. पृथ्वीकाय २. अप्काय ३. तेउकाय ४. वायुकाय ५. वनस्पतिकाय ६. बेइन्द्रिय ७. तेइन्द्रिय ८. चतुरिन्द्रिय ९. तिर्यंचपंचेन्द्रिय १०. देव ११. नरक। इस प्रकार इन ग्यारह घाटियों का उल्लंघन करने के बाद कर्मों की विशुद्धि होते-होते जब महान् पुण्य का उदय होता है तब मनुष्य भव की प्राप्ति होती है। इसीलिए कहा गया है -

मानव भव दुर्लभ अति, पुण्य योग से पाय।
घाटी ग्यारह उल्लंघ कर, अवसर पुगो आय॥

किसी स्तवन में नौ घाटियों का ही उल्लेख है किन्तु इस आगम प्रमाण से ग्यारह घाटी ही कहना उचित है।

आर्य देश की दुर्लभता

लद्धूण वि माणुसत्तणं, आरियत्तणं पुणरावि दुल्लहं।
बहवे दसुया मिलक्खुया, समयं गोयम! मा पमायए॥१६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **लद्धूण** - प्राप्त कर, **माणुसत्तणं** - मनुष्य जन्म के, **आरियत्तणं** - आर्यत्व - आर्य देश का मिलना, **पुणरावि** - फिर भी, **दुल्लहं** - दुर्लभ, **दसुया** - चोर, **मिलक्खुया** - म्लेच्छ।

भावार्थ - उपरोक्त प्रकार से अति दुर्लभ मनुष्य भव प्राप्त कर के भी आर्य अवस्था (आर्य देश में जन्म प्राप्त होना), फिर भी कठिन है क्योंकि मनुष्यों में भी बहुत से चोर और म्लेच्छ होते हैं, जिन्हें धर्म-अधर्म का विवेक नहीं होता। अतएव हे गौतम! एक समय का भी प्रमाद मत कर।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में यह स्पष्ट किया गया है कि यदि पुण्य उदय से किसी को मनुष्य-जन्म मिल भी गया तो उसको आर्यदेश का मिलना अति दुर्लभ है, क्योंकि आर्य देशों का प्रमाण साढे पच्चीस देशों का ही है। इसके बाहर के मनुष्य अनार्य संज्ञा वाले हैं। अनार्य मनुष्यों का जीवन प्रायः आर्य-धर्म के अनुकूल नहीं है। अतः मनुष्य-जन्म प्राप्त कर धर्म में प्रमाद नहीं करना चाहिये।

सम्पूर्णेन्द्रियता की दुर्लभता

लद्धूण वि आरियत्तणं, अहीण पंचिंदियया हु दुल्लहा।
विगलिंदियया हु दीसइ, समयं गोयम! मा पमायए॥१७॥

कठिन शब्दार्थ - **अहीण** - सम्पूर्ण, **पंचेंदियया** - पंचेन्द्रियपन, **विगलिंदियया** - विकलेन्द्रियपन, **दीसइ** - देखा जाता है।

भावार्थ - मनुष्य भव और आर्यदेश में जन्म प्राप्त कर के भी पांचों इन्द्रियों का पूर्ण होना निश्चय ही दुर्लभ है, क्योंकि बहुत से मनुष्यों में भी इन्द्रियों की विकलता देखी जाती है और इस कारण वे धर्माचरण करने में असमर्थ रहते हैं। अतएव हे गौतम! एक समय का भी प्रमाद मत कर।

विवेचन - मनुष्य भव में प्रथम तो इन्द्रियों की सम्पूर्णता मिलनी ही कठिन है और यदि वह मिल भी जावे तो फिर रोगादि विशेष से इसके उपघात होने का भय है अतः जिन पुण्यवान् जीवों को यह सामग्री मिल गई है उन्हें तो कदापि प्रमाद का सेवन नहीं करना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धर्म श्रवण की दुर्लभता

अहीण पंचिंदियत्तं वि से लहे, उत्तम धम्मसुई हु दुल्लहा।
कुतित्थिणिसेवए जणे, समयं गोयम! मा पमायए॥१८॥

कठिन शब्दार्थ - **उत्तम धम्मसुई** - उत्तम धर्म की श्रुति, **कुतित्थिणिसेवए** - कुतीर्थ के सेवन करने वाले, **जणे** - जन।

भावार्थ - इस आत्मा को पूर्ण पांच इन्द्रियाँ भी प्राप्त हो जाय, फिर भी श्रुत चारित्र रूप उत्तम धर्म का श्रवण निश्चय ही दुर्लभ है, क्योंकि बहुत से लोग कुतीर्थियों की सेवा करने वाले हैं और उन्हें उत्तम धर्म को श्रवण करने का सुयोग ही प्राप्त नहीं होता। अतएव हे गौतम! एक समय का भी प्रमाद मत कर।

विवेचन - जो नास्तिक मत वाला अर्थात् जो आत्मा के अस्तित्त्व को स्वीकार नहीं करता अथवा विषय वासना के पोषण मात्र का उपदेष्टा हो तथा कुदेव, कुगुरु और कुधर्म की आराधना में तल्लीन हो, उसे 'कुतीर्थ' कहते हैं अथवा ३६३ पाषण्ड मत भी कुतीर्थ कहे जाते हैं। कुतीर्थ की सेवा करने वाले संसार में अधिक देखे जाते हैं।

कुतीर्थ की सेवा से यह जीव उत्तम धर्म की प्राप्ति से वंचित रह जाता है और विषय वासना में लिप्त हो कर फिर से जन्म-मरण रूप संसार में परिभ्रमण करने लग जाता है अतः विवेकी पुरुष को धर्म में सदैव सावधान रहना चाहिये।

श्रद्धा की दुर्लभता

लद्धूण वि उत्तमं सुइं, सद्दहणा पुणरावि दुल्लहा।
मिच्छत्त णिसेवए जणे, समयं गोयम! मा पमायए॥१९॥

कठिन शब्दार्थ - **सद्दहणा** - तत्त्व श्रद्धा, **मिच्छत्त** - मिथ्यात्व का, **णिसेवए** - सेवन करने वाले।

भावार्थ - उत्तम धर्म का श्रवण प्राप्त कर के भी उस पर श्रद्धा (रुचि होना) और भी कठिन है, क्योंकि अनादिकालीन अभ्यास वश, मिथ्यात्व का सेवन करने वाले बहुत से मनुष्य दिखाई देते हैं। अतएव हे गौतम! एक समय का भी प्रमाद मत कर।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा का भाव यह है कि **अनादिकाल की** मिथ्यात्व वासना के कारण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बहुत से जीवों को मोहनीय कर्म का विशिष्ट उदय होने से तत्त्वश्रद्धा नहीं हो पाती है, अतः धर्मकार्य में कभी प्रमाद नहीं करना चाहिये।

धर्माचरण की दुर्लभता

धम्मं पि हु सद्दहंतया, दुल्लहया काएण फासया।
इहकाम-गुणेहिं मुच्छिया, समयं गोयम! मा पमायए॥२०॥

कठिन शब्दार्थ - **सद्दहंतया** - श्रद्धा करता हुआ, **काएण** - काया से, **फासया** - स्पर्श करना, **कामगुणेहिं** - काम गुणों में, **मुच्छिया** - मूर्च्छित।

भावार्थ - धर्म पर श्रद्धा रखते हुए भी शरीर एवं मन, वचन से आचरण करने वाले निश्चय ही दुर्लभ हैं (विरले ही मिलते हैं) क्योंकि अधिकांश मनुष्य यहाँ शब्दादि काम-गुणों में मूर्च्छित हैं। अतएव हे गौतम! एक समय का भी प्रमाद मत कर।

विवेचन - प्रभु फरमाते हैं कि बहुत से जीव सर्वज्ञ कथित धर्म में श्रद्धा रखते हुए भी उसका आचरण नहीं कर सकते क्योंकि जीव कामगुणों से अधिक मूर्च्छित हो रहे हैं। अतः धर्म के आचरण में वे उद्यत नहीं होते।

इन्द्रिय बलों की क्षीणता

परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते।
से सोय-बले य हायइ, समयं गोयम! मा पमायए॥२१॥

कठिन शब्दार्थ - **परिजूरइ** - जीर्ण होता है, **केसा** - केश, **पंडुरया** - श्वेत, **हवंति** - होते हैं, **सोयबले** - श्रोत्रेन्द्रिय का बल, **हायइ** - हीन (क्षीण) होता जा रहा है।

भावार्थ - वृद्धावस्था अथवा रोगादि कारणों से तुम्हारा शरीर जीर्ण हो रहा है। तुम्हारे केश श्वेत (सफेद) हो रहे हैं और वह श्रोत्रेन्द्रिय का बल (श्रवण-शक्ति) क्षीण होता जा रहा है। अतएव हे गौतम! एक समय का भी प्रमाद मत कर।

विवेचन - गौतम स्वामी को लक्ष्य में रख कर प्राणी मात्र की शरीर की अनित्यता का प्रतिपादन करते हुए प्रभु फरमाते हैं कि - हे गौतम! तेरा शरीर सर्व प्रकार से जीर्ण हो रहा है क्योंकि क्य की हानि प्रति समय हो रही है अतएव जो केश पहले काले थे वे अब श्वेत हो गये और श्रोत्रेन्द्रिय बल (सुनने की शक्ति) भी क्षीण होता जा रहा है अतः प्रमाद नहीं करना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते।
से चक्खु-बले य हायइ, समयं गोयम! मा पमायए॥२२॥

कठिन शब्दार्थ - **चक्खुबले** - चक्षुओं का बल।

भावार्थ - तुम्हारा शरीर वृद्धावस्था और रोगादि कारणों से जीर्ण हो रहा है। तुम्हारे केश श्वेत (सफेद) हो रहे हैं और वह आँखों की शक्ति क्षीण होती जा रही हैं। अतएव हे गौतम! एक समय का भी प्रमाद मत कर।

विवेचन - श्रोत्रेन्द्रिय बल के बाद इस गाथा में चक्षुओं के बल की क्षीणता का वर्णन किया गया है। जैसे श्रोत्रबल के क्षीण होने से धर्म का श्रवण नहीं हो सकता उसी प्रकार नेत्र बल क्षीण होने से धर्म कार्य का सम्पादन नहीं हो सकता है।

परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते।
से घाण-बले य हायइ, समयं गोयम! मा पमायए॥२३॥

कठिन शब्दार्थ - **घाणबले** - घ्राणबल।

भावार्थ - तुम्हारा शरीर जरा (बुढ़ापा) अथवा रोगादि कारणों से जीर्ण हो रहा है। तुम्हारे केश श्वेत (सफेद) हो रहे हैं और वह नासिका की घ्राणशक्ति का ह्रास होता जा रहा है। अतएव हे गौतम! एक समय का भी प्रमाद मत कर।

विवेचन - घ्राणेन्द्रिय की हानि भी ज्ञान की अपूर्णता में सहायक है क्योंकि सुगंध और दुर्गन्ध की परीक्षा में उसका ही विशेष उपयोग होता है अतः घ्राणेन्द्रिय की निर्बलता से इन्द्रियजन्य ज्ञान में न्यूनता अवश्य रहती है।

परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते।
से जिब्भ-बले य हायइ, समयं गोयम! मा पमायए॥२४॥

कठिन शब्दार्थ - **जिब्भबले** - जिह्वा का बल।

भावार्थ - तुम्हारा शरीर जीर्ण हो रहा है। तुम्हारे केश श्वेत (सफेद) हो रहे हैं और वह जीभ अर्थात् रसना की आस्वादन शक्ति क्षीण होती जा रही है। अतएव हे गौतम! एक समय का भी प्रमाद मत कर।

विवेचन - यदि रसनेन्द्रिय का बल क्षीण हो जावे तो शास्त्र स्वाध्याय में बहुत कमी हो जाती है। शब्दों का उच्चारण भी भली प्रकार से नहीं हो सकता। अतः जिन जीवों को रसनेन्द्रिय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

का बल मिला है वे उसे वश में रखने का प्रयत्न करे और जीवन के अमूल्य समय को प्रमाद में न खोकर शास्त्र स्वाध्याय में लगावे।

परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते।
से फास-बले य हायइ, समयं गोयम! मा पमायए॥२५॥

कठिन शब्दार्थ - फासबले - स्पर्श बल।

भावार्थ - तुम्हारा शरीर जरा (बुढ़ापा) एवं रोगादि कारणों से जीर्ण हो रहा है। तुम्हारे केश धवल (सफेद) हो रहे हैं और वह शरीर की स्पर्शन शक्ति क्षीण होती जा रही है। अतएव हे गौतम! एक समय का भी प्रमाद मत कर।

विवेचन - शरीर का बल जैसा युवावस्था में होता है वैसा वृद्धावस्था के आगमन में नहीं रहता तथा रोगादि के होने पर वह भी क्षीण हो जाता है अतः जब तक यह शरीर बलवान् है तब तक धर्माराधन कर लेना चाहिये।

सर्व शरीर की निर्बलता

परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते।
से सव्वबले य हायइ, समयं गोयम! मा पमायए॥२६॥

कठिन शब्दार्थ - सव्वबले - सर्वबल।

भावार्थ - जरा (बुढापा) अथवा रोगादि कारणों से तुम्हारा शरीर जीर्ण होता जा रहा है तुम्हारे केश श्वेत, होते जा रहे हैं और वह हाथ-पांव आदि वयवों की अथवा मन-वचन-काया की सभी शक्ति घटती जा रही है। अतएव हे गौतम! एक समय का भी प्रमाद मत कर।

विवेचन - वृद्धावस्था में शरीर के सारे अवयव निर्बल हो जाते हैं अतः जब तक जरा अवस्था का आगमन नहीं होता तब तक अप्रमत्त भाव से धर्मआराधन करना चाहिये ताकि पुण्ययोग से प्राप्त मानव भव को सार्थक किया जा सके।

रोगों के द्वारा निर्बलता

अरई गंडं विसूइया, आयंका विविहा फुसंति ते।
विहडइ विद्धंसइ ते सरीरयं, समयं गोयम! मा पमायए॥२७॥

कठिन शब्दार्थ - अरई - अरति-चित्त का उद्वेग, **गंडं** - स्फोटक, **विसूइया** -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विशूचिका, **आयंका** - आतंक-रोग, **विविहा** - नाना प्रकार के, **फुसंति** - स्पर्श करते हैं, **विहडइ** - बल गिरता है, **विद्धंसइ** - विध्वंस होता है, **सरीरयं** - शरीर।

भावार्थ - मानसिक उद्वेग गाँठ-फोड़े-फुन्सी अजीर्ण अथवा विशूचिका (हैजा) और अनेक प्रकार के तत्काल घात करने वाले रोग तुम्हें लग रहे हैं। ये रोग तुम्हारे शरीर को बलहीन करते हैं और नाश कर देते हैं। अतएव हे गौतम! एक समय का भी प्रमाद मत कर।

विवेचन - रोगों के आक्रमण से शरीर अत्यन्त निर्बल हो जाता है और जीवन से भी रहित हो जाता है अतः जब तक किसी भयंकर रोग का आक्रमण नहीं होता तब तक पूरी सावधानी से धर्म कार्य में लगे रहना चाहिये।

स्नेह परित्याग

वुच्छिंद सिणेहमप्पणो, कुमुयं सारइयं व पाणियं।
से सव्वसिणेह-वज्जिए, समयं गोयम! मा पमायए॥२८॥

कठिन शब्दार्थ - **वुच्छिंद** - दूर कर, **सिणेहं** - स्नेह को, **अप्पणो** - अपनी आत्मा से, **कुमुयं** - कुमुद - चन्द्र विकासी कमल, **सारइयं** - शरद ऋतु में होने वाला, **पाणियं** - जल को छोड़ कर, **सव्व** - सभी, **सिणेहवज्जिए** - स्नेह वर्जित।

भावार्थ - शरद ऋतु में होने वाला चन्द्र विकासी कमल, जल में उत्पन्न हो कर और बढ़ कर भी जैसे जल से पृथक् रहता है उसी प्रकार मोहक पदार्थ एवं स्वजनादि विषयक, स्नेह को अपनी आत्मा से हटा दो और सभी प्रकार के स्नेह को दूर हटाने में हे गौतम! एक समय के लिए भी प्रमाद मत कर।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में जो शरद्ऋतु के कमल की उपमा दी है, उसका आशय यह है कि शरद् ऋतु का जल अत्यंत शीतल, निर्मल और मनोहर होता है किन्तु कमल उससे भी पृथक् रहता अर्थात् उसमें लिप्त नहीं होता। उसी प्रकार स्नेह को दूर करके कमल की भांति पृथक् रहने का यत्न करना चाहिये क्योंकि स्नेह - राग मोक्ष का प्रतिबंधक होता है।

यद्यपि गौतम स्वामी पदार्थों में मूर्च्छित नहीं थे, न विषय भोगों में उनकी आसक्ति थी, उन्हें सिर्फ भगवान् के प्रति स्नेह - अनुराग था और वह प्रशस्त राग था। वीतराग भगवान् नहीं चाहते थे कि कोई उनके प्रति स्नेह बंधन से बद्ध रहे। अतः भगवान् ने गौतम स्वामी को उस स्नेह तंतु को विच्छिन्न करने के उद्देश्य से उपदेश दिया हो, ऐसा प्रतीत होता है। भगवती सूत्र शतक १४ उद्देशक ७ में भी इस स्नेह बंधन का भगवान् ने उल्लेख किया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

त्याग की दृढ़ता

चिच्चाण धणं च भारियं, पव्वइओ हि सि अणगारियं।
मा वंतं पुणो वि आविए, समयं गोयम! मा पमायए॥२९॥

कठिन शब्दार्थ - **चिच्चाण** - छोड़ कर, **धणं** - धन, **भारियं** - भार्या को, **पव्वइओ सि**- प्रव्रजित हुआ है, **अणगारियं** - अनगारपन को, **वंतं** - वमन किये हुए को, **पुणो** - पुनः, **आविए** - पी।

भावार्थ - निश्चय ही धन और भार्या का त्याग कर के साधुत्व की तुमने दीक्षा धारण की है। अतएव वमन किये हुए विषयों का तुम पुनः पान न करो (पुनः भोग न करो) हे गौतम! समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

विवेचन - जैसे वमन किये हुए पदार्थ को फिर से कोई मनुष्य ग्रहण नहीं करता उसी प्रकार जिन धन, धान्य और स्त्री पुत्र आदि का त्याग कर प्रव्रज्या ग्रहण की है उन त्यागे हुए पदार्थों को फिर से ग्रहण करने का कभी विचार न कर।

अवउज्झिय मित्तबंधवं, विउलं चेव धणोह-संचयं।
मा तं बिइयं गवेसए, समयं गोयम! मा पमायए॥३०॥

कठिन शब्दार्थ - **अवउज्झिय** - त्याग कर, **मित्तबंधवं** - मित्र और बांधवों को, **विउलं** - विपुल, **धणोह** - धन राशि के, **संचयं** - संचय को, **बिइयं** - दूसरी बार, **गवेसए** - गवेषण कर।

भावार्थ - मित्र एवं बन्धुजनों को तथा विपुल एकत्रित धन को छोड़कर, हे गौतम! दूसरी बार फिर उसकी गवेषणा मत कर अर्थात् पुनः प्राप्त करने की इच्छा मत कर। त्याग को स्थिर रखने में समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में त्यागे हुए मित्र, बंधु और धन समूह को पुनः प्राप्त करने के प्रयत्न का निषेध किया गया है।

मोक्ष मार्ग

ण हु जिणे अज्ज दीसइ, बहुमए दीसइ मग्गदेसिए।
संपइ णेयाउए पहे, समयं गोयम! मा पमायए॥३१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - जिणे - जिन भगवान्, **अज्ज** - आज, **दीसइ** - दिखाई देते हैं, **बहुमए** - बहुत से मत, **मग्गदेसिए** - मार्गदर्शक, **संपइ** - वर्तमान काल में, **णेयाउए** - न्याय युक्त, **पहे** - मार्ग में।

भावार्थ - आज वर्तमान समय में निश्चय ही जिनेश्वर देव दिखाई नहीं देते हैं किन्तु उनका बताया हुआ, मोक्ष तक पहुँचाने वाला ज्ञान-दर्शन-चारित्रात्मक मोक्ष-मार्ग दिखाई देता है। इस प्रकार विचार कर भविष्य में आत्मार्थी पुरुष जिनमत में संदेह रहित हो कर संयम में स्थिर रहेंगे। फिर इस समय साक्षात् मुझ तीर्थंकर के होते हुए, हे गौतम! न्याय युक्त निश्चय ही मोक्ष प्राप्त कराने वाले इस मुक्तिमार्ग में एक समय के लिए भी प्रमाद मत कर।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में वर्तमान काल में उपलब्ध न्याय युक्त मार्ग-मोक्ष मार्ग में किसी भी प्रकार का प्रमाद नहीं करने का उपदेश दिया गया है।

'ण हु जिणे अज्ज दीसइ' व्याख्या एवं उसका आशय - प्रश्न होता है कि भगवान् महावीर जब प्रत्यक्ष विराजमान थे, तब यह कैसे कहा गया कि 'आज जिन नहीं दिख रहे हैं? इसका समाधान यह है कि सूत्र त्रिकालविषयी होता है, इसलिए यह सूत्र-पंक्ति भावी भव्यों को उपदेश देने के लिए है। इसलिए इस पंक्ति के पूर्व इस वाक्य का अध्याहार करना चाहिए कि "भविष्य में भव्य लोग कहेंगे कि आज जिन नहीं दिख रहे हैं किन्तु जिनोपदिष्ट मार्ग दिखाई दे रहा है, जिन भगवान् ने जो सातिशय श्रुतज्ञान-दर्शन-चारित्रात्मक मुक्तिमार्ग प्रतिपादित (देशित) किया था वह आज भी मौजूद है।

अवसोहिय कंटगापहं, ओइण्णो सि पहं महालयं।
गच्छसि मग्गं विसोहिया, समयं गोयम! मा पमायए॥३२॥

कठिन शब्दार्थ - अवसोहिय - दूर करके, **कंटगापहं** - कण्टक युक्त मार्ग को, **ओइण्णो सि** - प्रविष्ट हो गया है, **पहं** - भाव मार्ग में, **महालयं** - बड़े विस्तार वाले, **मग्गं** - मार्ग को, **विसोहिया** - शुद्ध करके।

भावार्थ - कुतीर्थ रूप कांटों से कंटीले मार्ग को छोड़ (दूर) कर तीर्थंकरादि महापुरुषों द्वारा सेवित विशाल मुक्ति के राजमार्ग में प्रवेश किया है। अब यहीं पर विश्राम न कर। हे गौतम! पूर्ण आस्था रख कर इस मुक्ति, मार्ग में बढ़ते जाओ और समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में भगवान् ने कण्टक युक्त मार्ग का परित्याग करके विशुद्ध राजमार्ग में चलने का उपदेश दिया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चार्वाक आदि का कथन किया हुआ मार्ग मिथ्या होने से, रागद्वेषादि भाव कंटकों से व्याप्त है। उस पर चलने से भव्य जीवों का कल्याण नहीं हो सकता किन्तु जो सम्यग्दर्शनादि रूप मोक्ष मार्ग है वह निष्कंटक और सरल है जिस पर चलने से एक न एक दिन मोक्ष की प्राप्ति अवश्यंभावी है।

अबले जह भारवाहए, मा मग्गे विसमेऽवगाहिया।
पच्छा पच्छाणुतावए, समयं गोयम! मा पमायए॥३३॥

कठिन शब्दार्थ - **अबले** - निर्बल, **भारवाहए** - भारवाहक, **विसमे** - विषम, **अवगाहिया** - ग्रहण करके, **पच्छा** - पीछे, **पच्छाणुतावए** - पश्चात्ताप करने वाला होता है।

भावार्थ - जिस प्रकार भार उठाने वाला निर्बल पुरुष विषम मार्ग में पहुँच कर धैर्य खो देता है और खिन्न होकर अपना बहुमूल्य भार वहीं छोड़ देता है और बाद में अपने घर पहुँच कर गरीबी से पीड़ित होकर पश्चात्ताप करता है इसी प्रकार हे गौतम! तुम भी कहीं प्रमाद वश स्वीकृत संयम भार को छोड़ नहीं देना, इसलिए हे गौतम! समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

विवेचन - भारवाहक का दृष्टान्त देकर प्रभु उत्तम शिक्षा फरमाते हैं कि यदि किसी कारण से संयम में अरुचि उत्पन्न हो जावे तो भी संयम त्याग करने के भाव कदापि न होने चाहिये अपितु सम्मुख आए हुए कष्टों को पूर्वकृत अशुभ कर्मों का विपाक जान कर धीरता पूर्वक सहन करना चाहिये।

संसार सागर को शीघ्र पार करने का निर्देश

तिण्णो हु सि अण्णवं महं, किं पुण चिट्ठसि तीरमागओ।
अभितुर पारं गमित्तए, समयं गोयम! मा पमायए॥३४॥

कठिन शब्दार्थ - **तिण्णो सि** - पार कर गया है, **हु** - निश्चय ही, **महं अण्णवं** - विशाल संसार समुद्र को, **किं पुण** - फिर क्यों, **चिट्ठसि** - खड़ा है, **तीरं** - तीर के निकट, **आगओ** - आया हुआ, **अभितुर** - शीघ्रता कर, **पारं** - पार, **गमित्तए** - जाने को।

भावार्थ - हे गौतम! निश्चय ही तुम संसार रूप महान् समुद्र को तिर गये हो। फिर किनारे पर पहुँच कर क्यों खड़े हो संसार रूप समुद्र के पार (मुक्ति की ओर) जाने के लिए शीघ्रता करो और इसमें समय मात्र भी प्रमाद मत करो।

विवेचन - भगवान् ने गौतम को लक्ष्य कर सभी भव्य जीवों को उपदेश देते हुए कहा है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कि संसार समुद्र का तीर जो मोक्ष है उसको प्राप्त करने के लिए शीघ्र तैयारी करो। एतदर्थ (इस कार्य की सिद्धि में) किंचिन्मात्र भी प्रमाद सेवन मत करो।

अप्रमाद का फल

अकलेवरसेणिमूसिया, सिद्धिं गोयम लोयं गच्छसि।
खेमं च सिवं अणुत्तरं, समयं गोयम! मा पमायए॥३५॥

कठिन शब्दार्थ - **अकलेवर** - शरीर रहित, **सेणिं** - श्रेणि को, **ऊसिया** - ऊंची करके, **सिद्धिंलोयं** - सिद्ध लोक को, **गच्छसि** - जावेगा, **खेमं** - क्षेम, **सिवं** - शिव-कल्याण रूप, **अणुत्तरं** - अनुत्तर-सर्वोत्कृष्ट।

भावार्थ - हे गौतम! सिद्धिपद की सीढ़ी रूप क्षपक-श्रेणी पर उत्तरोत्तर चढ़ कर उपद्रव रहित, कल्याणकारी और सर्व प्रधान सिद्धि लोक को प्राप्त करेगा। अतएव हे गौतम! समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

विवेचन - इस गाथा में बताया गया है कि जैसे शरीर रहित सिद्धों की श्रेणी है उसी के समान जब यह आत्मा क्षपक श्रेणि पर आरूढ़ होता है तब उसके भाव संयम में विशिष्ट शुद्धि होती है। जैसे सिद्धों की श्रेणी ऊँची है उसी प्रकार क्षपक श्रेणी को प्राप्त करके यह जीव सिद्ध लोक को चला जाता है। सिद्ध लोक स्वचक्र और परचक्रादि के भयों से रहित होने के कारण परम कल्याण रूप और सर्वोत्कृष्ट है।

सिद्धि का उपाय

बुद्धे परिणिव्वुडे चरे, गाम गए णगरे व संजए।
संतिमग्गं च वूहए, समयं गोयम! मा पमायए॥३६॥

कठिन शब्दार्थ - **बुद्धे** - बुद्ध, **परिणिव्वुडे** - निवृत्त होकर, **चरे** - संयम मार्ग में चले, **गामगए** - ग्राम में गया हुआ, **णगरे** - नगर में, **संजए** - संयत, **संतिमग्गं** - शांति मार्ग को, **वूहए** - बढ़ा।

भावार्थ - हे गौतम! ग्राम में, नगर में अथवा अरण्यादि में गया हुआ तू तत्त्वों को जान कर कषायाग्नि का उपशम करने के कारण सब प्रकार से शान्त एवं संयत बन कर मुनि-धर्म का पालन कर तथा उपदेशादि द्वारा दशविध यति-धर्म रूप शान्ति-मार्ग की वृद्धि कर, इसमें एक समय के लिए भी प्रमाद मत कर।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - ग्राम और नगरादि में विचरण करता हुआ साधु अपने संयम मार्ग में दृढ़ होकर सर्वत्र शांति का - क्षमा प्रधान रूप धर्म का उपदेश करे। क्षमा धर्म के अनुष्ठान से यह जीव परम शांति रूप निर्वाण पद को प्राप्त कर लेता है।

उपसंहार

बुद्धस्स णिसम्म भासियं, सुकहियमट्ठ पओवसोहियं।
रागं दोसं च छिंदिया, सिद्धिगइं गए गोयमे॥३७॥त्ति बेमि॥

कठिन शब्दार्थ - **बुद्धस्स** - बुद्ध के, **णिसम्म** - सुन कर, **भासियं** - भाषण को, **सुकहियं** - सुकथित, **अट्ठ** - अर्थ, **पओवसोहियं** - पदों से उपशोभित, **रागं** - राग को, दोसं - द्वेष को, **छिंदिया** - छेदन करके, **सिद्धिगइं** - सिद्धि गति को, **गए** - प्राप्त हो गए।

भावार्थ - सर्वज्ञ देव श्री भगवान् महावीर स्वामी का सुन्दर ढंग से विस्तार पूर्वक कहा हुआ अर्थ प्रधान पदों से उपशोभित भाषण सुन कर गौतम स्वामी राग और द्वेष का नाश करके सिद्धिगति को प्राप्त हुए॥३७॥ इस प्रकार मैं कहता हूँ।

विवेचन - भगवान् का जो उपदेश है वह परम शांत और सर्व प्रकार के उपद्रवों से रहित परम सुख रूप मोक्ष को देने वाला है और निर्वाण साधक वीतरागता की प्राप्ति ही उसका मुख्य प्रयोजन है।

जिस प्रकार भगवान् के उपदेश से गौतम स्वामी निर्वाण को प्राप्त हुए उसी प्रकार भगवान् के उपदेशानुसार आचरण करके प्रत्येक विचारशील पुरुष को मोक्ष पद का अधिकारी बनना चाहिये।

इस गाथा में "**सिद्धिगइं गए गोयमे**" अर्थात् 'गौतम स्वामी सिद्धि गति को प्राप्त हो गये।' यह कथन 'नैगम नय' की अपेक्षा से है। अर्थात् गौतम स्वामी इसी भव से मोक्ष चले जायेंगे। इस प्रकार निकट भविष्य में मोक्ष में चले जाने के कारण मोक्ष में चले गये, ऐसा कह दिया गया है। जब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अपने आयुष्य के समाप्ति के पहले उत्तराध्ययन सूत्र फरमाया था उस समय गौतम स्वामी मौजूद थे।

॥ इति द्रुमपत्रक नामक दसवाँ अध्ययन समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बहुस्सुयपूजा णामं इक्कारसमं अज्झयणं

बहुश्रुतपूजा नामक ग्यारहवां अध्ययन

उत्थानिका - दसवें अध्ययन में प्रमाद रहित होने का उपदेश किया गया है। इस उपदेश को विवेकी आत्मा ही ग्रहण करती है। विवेक की उत्पत्ति का आधार बहुश्रुत की पूजा - सेवा पर अवलम्बित है। अतः प्रस्तुत अध्ययन में बहुश्रुत के गुणों का वर्णन किया गया है। इसकी प्रथम गाथा इस प्रकार हैं -

संजोगा विप्पमुक्कस्स, अणगारस्स भिक्खुणो।
आयारं पाउक्करिस्सामि, आणुपुव्विं सुणेह मे॥१॥

कठिन शब्दार्थ - **संजोगा** - संयोग (बाह्य और आभ्यंतर) से, **विप्पमुक्कस्स** - मुक्त हुए, **अणगारस्स** - गृहत्यागी, **भिक्खुणो** - भिक्षु का, **आयारं** - आचार, **पाउकरिस्सामि** - प्रकट करूँगा, **आणुपुव्विं** - अनुक्रम से, **सुणेह** - सुनो, **मे** - मुझ से।

भावार्थ - बाह्य और आभ्यंतर संयोग से मुक्त हुए गृहत्यागी भिक्षु का आचार (विनय) अनुक्रम से प्रकट करूँगा, उसे मुझ से सुनो।

विवेचन - बाह्य और आभ्यंतर संयोगों का विवरण प्रथम अध्ययन की प्रथम गाथा के अर्थ में किया गया है।

'आयारं' - आचार शब्द यहाँ उचित क्रिया या विनय के अर्थ में है।

अबहुश्रुत के लक्षण

जे यावि होइ णिव्विज्जे, थद्धे लुद्धे अणिग्गहे।
अभिक्खणं उल्लवइ, अविणीए अबहुस्सुए॥२॥

कठिन शब्दार्थ - **जे** - जो, **णिव्विज्जे** - निर्विद्य - सम्यक् शास्त्र ज्ञान रूप विद्या से विहीन, **थद्धे** - अहंकारी, **लुद्धे** - लुब्ध (गृद्ध), **अणिग्गहे** - अजितेन्द्रिय, **अभिक्खणं** - बार-बार, **उल्लवइ** - असम्बद्ध बोलता (बकता) है, **अविणीए** - अविनीत, **अबहुस्सुए** - अबहुश्रुत।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - जो विद्या रहित है और विद्या-सहित भी है एवं अभिमानी रसादि में गृद्ध अजितेन्द्रिय, अविनीत है तथा बार-बार असम्बद्ध भाषण करता है, वह अबहुश्रुत है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में अबहुश्रुत का स्वरूप बताया गया है। यहाँ **अवि** - अपि शब्द के आधार पर विद्यावान् का भी उल्लेख किया गया है अर्थात् विद्यावान् होते हुए भी स्तब्धता, लुब्धता, अजितेन्द्रियता, असंबद्ध भाषिता एवं अविनीतता आदि दोषों से जो युक्त है वह भी 'अबहुश्रुत' कहा गया है अर्थात् विनयादि गुण न होने से विद्यावान् को भी यहाँ 'अबहुश्रुत' कहा गया है।

शिक्षा प्राप्त नहीं होने के कारण

अह पंचहिं ठाणेहिं, जेहिं सिक्खा ण लब्भइ।
थंभा कोहा पमाएणं, रोगेणालस्सेण य॥३॥

कठिन शब्दार्थ - **पंचहिं** - पांच, **ठाणेहिं** - स्थानों (कारणों) से, **जेहिं** - इन, **सिक्खा** - शिक्षा, **ण लब्भइ** - प्राप्त नहीं होती, **थंभा** - मान, **कोहा** - क्रोध, **पमाएणं** - प्रमाद से, **रोगेण** - रोग से, **आलस्सेण** - आलस्य से।

भावार्थ - मान, क्रोध, प्रमाद, रोग और आलस्य इन पांच कारणों से शिक्षा प्राप्त नहीं होती।

विवेचन - इस गाथा में शिक्षा प्राप्त नहीं होने के पांच कारण बतायें गये हैं - १. अभिमान २. क्रोध ३. प्रमाद ४. रोग और ५. आलस्य। प्रमाद के मुख्य ५ भेद हैं - मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा। यों तो आलस्य का भी प्रमाद में समावेश है किन्तु यहाँ आलस्य-लापरवाही, उपेक्षा या उत्साह हीनता के अर्थ में है। कुछ भी कार्य नहीं करते हुए निरर्थक समय को गंवाना 'आलस्य' कहलाता है। संसार संबंधी किसी भी कार्यों में प्रवृत्ति करना 'प्रमाद' कहलाता है।

शिक्षा दो प्रकार की कही गयी हैं - १. ग्रहण शिक्षा - गुरु से शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त करना और २. आसेवन शिक्षा - गुरु के सान्निध्य में रह कर तदनुसार आचरण एवं अभ्यास करना। अभिमान आदि उपर्युक्त पांच कारण इन दोनों शिक्षाओं की प्राप्ति में बाधक है। जो शिक्षाशील होता है वही बहुश्रुत होता है। अतः आगे की गाथाओं में शिक्षा शील के आठ स्थानों (कारणों) का वर्णन किया जाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बहुश्रुतता की प्राप्ति के कारण

अह अट्ठहिं ठाणेहिं, सिक्खासीलेत्ति वुच्चइ।
अहस्सिरे सया दंते, ण य मम्म-मुदाहरे॥४॥
णासीले ण विसीले, ण सिया अइलोलुए।
अकोहणे सच्चरए, सिक्खासीले त्ति वुच्चइ॥५॥

कठिन शब्दार्थ - **अट्ठहिं** - आठ, **सिक्खासीले** - शिक्षाशील - शिक्षा में जिसकी रुचि हो अथवा जो शिक्षा का अभ्यास करता हो, **अहस्सिरे** - अकारण या कारण उपस्थित होने पर भी जिसका स्वभाव हंसी मजाक करने का न हो, **सया** - सदा, **दंते** - दान्त इन्द्रियों और मन का दमन करने वाला, **मम्म-मुदाहरे** - मर्मोद्घाटन करने वाला, **णासीले** - अशील न हो, **ण विसीले** - विशील-अतिचारों से कलंकित चारित्र वाला न हो, **अइलोलुए** - अति लोलुप, **अकोहणे** - क्रोध रहित, **सच्चरए** - सत्यरत, **वुच्चइ** - कहलाता है।

भावार्थ - आठ स्थानों से यह आत्मा शिक्षाशील (शिक्षा के योग्य) कहा जाता है, अधिक नहीं हंसने वाला, इन्द्रियों का दमन करने वाला और मर्म वचन न कहने वाला, सर्वतः चारित्र की विराधना न करने वाला (चारित्र धर्म का पालन करने वाला सदाचारी), देशतः भी चारित्र की विराधना नहीं करने वाला अर्थात् व्रतों का निरतिचार पालन करने वाला और जो अतिशय लोलुप नहीं है तथा जो क्रोध-रहित और सत्यानुरागी (सत्यनिष्ठ) है, वह शिक्षाशील कहा जाता है।

विवेचन - उपर्युक्त दोनों गाथाओं में शिक्षाशील के आठ स्थान बतलाये गये हैं - १. जो सदा हंसी मजाक न करे २. जो दान्त हो ३. जो दूसरों का मर्मोद्घाटन नहीं करे ४. जो सर्वथा चारित्रहीन न हो ५. जो दोषों - अतिचारों से कलंकित व्रत-चारित्र वाला न हो ६. जो अत्यंत रसलोलुप न हो ७. जो निरपराध या अपराधी पर भी क्रोध न करता हो ८. जो सत्य (संयम) में रत हो।

इन आठ गुणों से युक्त शिक्षाशील कहलाता है।

अविनीत का लक्षण

अह चोद्दसहिं ठाणेहिं, वट्टमाणे उ संजए।
अविणीए वुच्चइ सो उ, णिव्वाणं च ण गच्छइ॥६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अभिक्खणं कोही हवइ, पबंधं च पकुव्वइ।
मित्तिज्जमाणो वमइ, सुयं लद्धूण मज्जइ॥७॥

कठिन शब्दार्थ - **चोद्दसहिं** - चौदह, **वट्टमाणे** - वर्तमान, **संजए** - संयत, **अविणीए**- अविनीत, **णिव्वाणं** - निर्वाण, **कोही** - क्रोधी, **पबंधं** - प्रबंध - अविच्छिन्न रूप से प्रवर्त्तन, विकथा आदि में निरन्तर प्रवृत्त, **मित्तिज्जमाणो** - मित्रता होते हुए भी मित्रता को, **वमइ** - छोड़ देता है, **सुयं** - श्रुत, **लद्धूण** - प्राप्त कर, **मज्जइ** - अभिमान करता है।

भावार्थ - चौदह स्थानों में वर्तमान संयत (संयति) अविनीत कहा जाता है और वह निर्वाण प्राप्त नहीं करता।

जो निरंतर क्रोध करने वाला होता है अर्थात् निमित्त वश या बिना किसी निमित्त के भी क्रोध करता है और प्रबंध करता है (क्रोध को दीर्घ काल तक बनाये रखता है और विकथा आदि में निरन्तर प्रवृत्त रहता है) मित्रता होते हुए भी मित्रों को छोड़ देता है (मित्रता निभाता नहीं तथा मित्रों का उपकार नहीं मानता) और शास्त्र-ज्ञान पा कर अभिमान करता है।

अवि पावपरिक्खेवी, अवि मित्तेसु कुप्पइ।
सुप्पियस्सावि मित्तस्स, रहे भासइ पावगं॥८॥
पइण्णवाई दुहिले, थद्धे लुद्धे अणिग्गहे।
असंविभागी अवियत्ते, अविणीएत्ति वुच्चइ॥९॥

कठिन शब्दार्थ - **पाव परिक्खेवी** - पाप परिक्षेपी, **कुप्पइ** - कोप करता है, **सुप्पियस्स**- अतिशय प्रिय, **मित्तस्स** - मित्र की, **भासइ** - कहता है, **पावगं** - बुराई, **पइण्णवाई** - प्रकीर्णवादी - प्रतिज्ञावादी, **दुहिले** - मित्रद्रोही, **असंविभागी** - संविभाग नहीं करने वाला, **अवियत्ते**- अप्रीतिकर, **अविणीए** - अविनीत।

भावार्थ - जो आचार्यादि द्वारा समिति गुप्ति आदि में स्खलना रूप पाप हो जाने पर उनका भी तिरस्कार करने वाला होता है, अथवा अपने दोषों को दूसरों पर डालता है, मित्रों पर भी कोप करता है तथा अतिशय प्रिय मित्र की भी एकांत में (पीठ पीछे) बुराई कहता है।

जो असम्बद्ध वचन कहने वाला, पात्र अपात्र का विचार न करते हुए शास्त्रों के गूढ़ रहस्यों को बतलाने वाला अथवा सर्वथा एकांत पक्ष को लेकर बोलने वाला, मित्रद्रोही, अभिमानी रसादि में गृद्ध, इन्द्रियों को वश में नहीं करने वाला, आहारादि का संविभाग न करने वाला और सभी को अप्रीति उत्पन्न करने वाला अविनीत कहलाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - उपर्युक्त चार गाथाओं में अविनीत के चौदह लक्षण बताये गये हैं जो इस प्रकार हैं - १. जो बार बार क्रोध करता है २. जो क्रोध को निरन्तर लम्बे समय तक बनाये रखता है ३. जो मित्रता किये जाने पर भी उसे ठुकरा देता है ४. जो शास्त्रज्ञान प्राप्त करके अहंकार करता है ५. जो स्खलना रूप पाप को ले कर आचार्य आदि की निन्द्रा करता है ६. जो मित्रों पर भी क्रोध करता है ७. जो अत्यंत प्रिय मित्र का भी अवर्णवाद बोलता है ८. जो प्रकीर्णवादी - असंबद्धभाषी है ९. द्रोही है १०. अभिमानी है ११. रसलोलुप है १२. अजितेन्द्रिय है १३. असंविभागी है - आहारादि का विभाग नहीं करता है १४. जो अप्रीतिकर, अप्रीति उत्पन्न करने वाला है।

अब सुविनीत के लक्षण बतलाते हैं

सुविनीत कौन?

अह पण्णरसहिं ठाणेहिं, सुविणीएत्ति वुच्चइ।
णीयावित्ती अचवले, अमाई अकुऊहले॥१०॥
अप्पं च अहिक्खिवइ, पबंधं च ण कुव्वइ।
मित्तिज्जमाणो भयइ, सुयं लद्धुं ण मज्जइ॥११॥
ण य पावपरिक्खेवी, ण य मित्तेसु कुप्पइ।
अप्पियस्सावि मित्तस्स, रहे कल्लाणं भासइ॥१२॥
कलह डमर वज्जिए, बुद्धे अभिजाइए।
हिरिमं पडिसंलीणे, सुविणीएत्ति वुच्चइ॥१३॥

कठिन शब्दार्थ - पण्णरसहिं - पन्द्रह, सुविणीए - सुविनीत, **णीयावित्ती** - नीचैर्वृत्ति-नम्र व्यवहार करने वाला, **अचवले** - अचपल - चपलता रहित, **अमाई** - अमायी - माया रहित, **अकुअहले** - अकुतुहल-कुतूहल रहित, खेल तमाशों में अनुत्सुक, **अप्पं अहिक्खिवइ**-तिरस्कार नहीं करने वाला, **भयइ** - निभाता है, **अप्पियस्स** - अप्रिय, **कल्लाणं** - भलाई, **कलह** - क्लेश, **डमरवज्जिए** - दंगे से बचा हुआ, **अभिजाइए** - अभिजातिक - कुलीन, **हिरिमं** - ह्रीमान्-लज्जावान्, **पडिसंलीणे** - प्रतिसंलीन - इन्द्रियों को वश में रखने वाला।

भावार्थ - अथ, पन्द्रह स्थानों से (पन्द्रह गुण वाला व्यक्ति) सुविनीत कहलाता है - नम्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वृत्ति वाला, गति, स्थान, भाषा और भाव विषयक चपलता रहित, माया रहित तथा खेल-तमाशा आदि में कुतूहल रहित अर्थात् कुतूहल में रुचि न रखने वाला।

जो किसी का भी तिरस्कार नहीं करता और प्रबन्ध (विकथा नहीं करता या क्रोध को चिर काल तक नहीं रखता, शीघ्र ही शान्त हो जाता है) मित्रता किये जाने पर मित्रता को निभाता है और मित्र का कृतज्ञ रहता है एवं मित्र के प्रति उपकार करता है तथा शास्त्रज्ञान प्राप्त कर अभिमान नहीं करता है।

और जो गुरुओं द्वारा समिति-गुप्ति आदि में भूल हो जाने पर भी उनका तिरस्कार नहीं करता अथवा अपना दोष दूसरों पर नहीं डालता और मित्रों पर कोप नहीं करता है तथा अप्रिय मित्र की भी पीठ पीछे भलाई ही कहता है (उसके गुणों की ही प्रशंसा करता है)।

जो क्लेश और दंगे से बचा रहता है, कुलीन (उठाये हुए भार को सफलता पूर्वक निभाने में समर्थ होता है) तथा लज्जावान् और इन्द्रियों का गोपन करने वाला होता है। ऐसा तत्त्वज्ञ साधु सुविनीत कहा जाता है।

विवेचन - उपर्युक्त चार गाथाओं में सूत्रकार ने सुविनीत के पन्द्रह लक्षण बताएं हैं जो इस प्रकार हैं - १. जो नम्र होकर रहता है २. जो चंचल (चपल) नहीं है ३. जो अमायी - निश्छल है ४. जो अकुतूहली है ५. जो किसी का तिरस्कार नहीं करता है ६. जो क्रोध को लम्बे काल तक टिकाए नहीं रखता है ७. मित्र के प्रति कृतज्ञ रहता है ८. शास्त्रज्ञान का मद नहीं करता है ९. जो स्खलना होने पर दूसरों की निन्दा नहीं करता १०. जो मित्रों पर कोप नहीं करता है ११. अप्रिय मित्र का भी एकान्त में गुणानुवाद करता है १२. जो लड़ाई झगड़े से दूर रहता है १३. जो कुलीन होता है १४. जो लज्जाशील होता है १५. जो अंगोपांगों का गोपन करने वाला होता है।

शिक्षा प्राप्त करने का अधिकारी

वसे गुरुकुले णिच्चं, जोगवं उवहाणवं।
पियंकरे पियंवाई, से सिक्खं लद्धुमरिहइ॥१४॥

कठिन शब्दार्थ - **वसे** - रहता है, **गुरुकुले** - गुरुकुल में, **जोगवं** - योगवान्-समाधिमान् अथवा प्रशस्त मन, वचन और काया के योग-व्यापार से युक्त, **उवहाणवं** - उपधान तप करने वाला, **पियंकरे** - प्रिय करने वाला, **पियंवाई** - प्रियभाषी, **अरिहइ** - योग्य होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - जो शिष्य सदा गुरुकुल में (गुरु के गच्छ में-गुरु की आज्ञा में) रहता है तथा जो समाधि वाला, उपधान तप का आचरण करने वाला (अंग-उपांग सूत्र सीखते हुए शास्त्रोक्त यथायोग्य आयंबिल आदि उपधान तप का सेवन करने वाला) सभी के लिए प्रिय अर्थात् अनुकूल कार्य करने वाला और प्रिय भाषण करने वाला है, वह विनीत शिष्य शिक्षा प्राप्त करने के योग्य होता है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में बताया गया है कि वही शिष्य शिक्षा प्राप्त करने का अधिकारी होता है - १. जो सदा गुरुकुल - गुरु आज्ञा में रहता है २. जो योगवान् होता है ३. जो उपधान - शास्त्राध्ययन से संबंधित विशिष्ट तप करने वाला होता है ४. जो प्रिय करता है ५. जो प्रियभाषी है।

'वसे गुरुकुले णिच्चं' अर्थात् सदैव गुरुओं-आचार्यों के कुल-गच्छ में रहे। यहाँ गुरुकुलवास का अर्थ गुरु आज्ञा में रहने का है। उत्तराध्ययन चूर्णि में कहा है -

णाणस्स होइ भागी थिरयरओ दंसणे चरित्ते य।
धण्णा आवकहाए, गुरुकुलवासं न मुंचंति॥

अर्थात् गुरुकुल में रहने से साधक ज्ञान का भागी होता है। दर्शन और चारित्र में स्थिरतर होताहै अतः वे धन्य हैं जो जीवन पर्यंत गुरुकुल नहीं छोड़ते।

बहुश्रुत का स्वरूप और माहात्म्य

१. शंख की उपमा

जहा संखम्मि पयं णिहियं, दुहओ वि विरायइ।
एवं बहुस्सुए भिक्खू, धम्मो कित्ती तहा सुयं॥१५॥

कठिन शब्दार्थ - **संखम्मि** - शंख में, **पयं** - दूध, **णिहियं** - रखा हुआ, **दुहओ वि**- दोनों प्रकार से, **विरायइ** - सुशोभित होता है, **धम्मो** - धर्म, **कित्ती** - कीर्ति, **सुयं** - श्रुत।

भावार्थ - जैसे शंख में रखा हुआ दूध दोनों प्रकार से (अपनी श्वेतता और मधुरता आदि गुणों से) शोभा पाता है (दूध शंख में रह कर विकृत नहीं होता, किन्तु विशेष उज्ज्वल दिखाई देता है) इसी प्रकार बहुश्रुत भिक्षु में धर्म, कीर्ति तथा श्रुत शोभा पाते हैं अर्थात् ये गुण स्वयं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शोभित हैं और बहुश्रुत में रहे हुए ये गुण विकार प्राप्त नहीं करते, किन्तु उत्तरोत्तर विशेष निर्मल होते जाते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में प्रयुक्त **'दुहओ वि विरायइ'** की व्याख्या इस प्रकार है - शंख में रखा हुआ दूध निज गुण से और शंख संबंधी गुण से - दोनों प्रकार से शोभा पाता है। दूध स्वयं स्वच्छ होता है जब वह शंख जैसे स्वच्छ पात्र में रखा जाता है तब वह और अधिक स्वच्छ प्रतीत होता है। शंख में रखा हुआ दूध न तो खट्टा होता है और न झरता है।

यों तो धर्म, कीर्ति और श्रुत ये तीनों स्वयं ही निर्मल होने से सुशोभित होते हैं तथापि मिथ्यात्व आदि कालुष्य दूर होने से निर्मलता आदि गुणों से शंख के समान उज्ज्वल बहुश्रुत के आश्रय में रहे हुए ये गुण विशेष प्रकार से सुशोभित होते हैं।

२. आकीर्ण अश्व की उपमा

जहा से कंबोयाणं, आइण्णे कंथए सिया।
आसे जवेण पवरे, एवं हवइ बहुस्सुए॥१६॥

कठिन शब्दार्थ - **कंबोयाणं** - कम्बोज देश में उत्पन्न घोड़ों, **आइण्णे** - आकीर्ण (जातिमान्), **कंथए** - कंथक, **आसे** - अश्व, **जवेण** - वेग (स्फूर्ति) में, **पवरे** - श्रेष्ठ।

भावार्थ - जिस प्रकार कम्बोज देश के घोड़ों में शीलादि गुणों से युक्त घोड़ा प्रधान होता है तथा वेग में (तेज चाल में) श्रेष्ठ होता है, इसी प्रकार बहुश्रुत साधु सभी साधुओं में श्रुत-शील आदि गुणों से श्रेष्ठ होने से प्रधान होता है।

विवेचन - कम्बोज देश के घोड़े अश्व जाति में श्रेष्ठ माने जाते हैं किन्तु उनमें भी विशिष्ट शीलादि गुण सम्पन्न आकीर्ण अश्व प्रधान होता है और चाल का भी बहुत तेज होता है। इसी प्रकार मनुष्यों में जिन-धर्म स्वीकार करने वाले सभी व्रतों में श्रेष्ठ होते हैं और उनमें भी बहुश्रुत साधु श्रुत-शील आदि गुणों की अपेक्षा विशेष श्रेष्ठ होता है, अतएव उनमें प्रधान माना जाता है।

३. शूरवीर की उपमा

जहाऽऽइण्ण-समारूढे, सूरे दढपरक्कमे।
उभओ णंदिघोसेणं, एवं हवइ बहुस्सुए॥१७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **आइण्ण** - आकीर्ण, **समारूढे** - सवार हुआ, **सूरे** - शूरवीर, **दढपरक्कमे** - दृढ़ पराक्रम वाला, **उभओ** - दोनों ओर से, **णंदिघोसेणं** - नंदीघोष से।

भावार्थ - जिस प्रकार आकीर्ण जाति के उत्तर घोड़े पर सवार हुआ दृढ़ पराक्रम वाला वीर योद्धा दोनों ओर (दाहिनी और बांयी और अथवा आगे और पीछे) वाद्य ध्वनि से अथवा आशीर्वचन एवं जयनाद से शोभा पाता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी दिन-रात स्वाध्याय-ध्वनि एवं स्व-पर पक्ष की जयनाद से शोभित होता है।

विवेचन - जैसे अतिशय पराक्रमी शूरवीर योद्धा, आकीर्ण जाति के उत्तम अश्व पर सवार हुआ किसी भी समर्थ शत्रु से भयभीत नहीं होता और किसी से भी पराजित नहीं होता किन्तु सर्वत्र विजयी होता है, इसी प्रकार जिन-प्रवचन रूप अश्व का आश्रय लेने वाला बहुश्रुत किसी भी समर्थ वादी को देख कर घबराता नहीं है। बहुश्रुत उससे शास्त्रार्थ कर जय प्राप्त करता है और जिन-प्रवचन की महती प्रभावना करता है। जैसे उक्त समर्थ योद्धा के दोनों ओर बाजे-बजते हैं और बन्दीजनों के आशीर्वचन और जयनाद के बीच वह शोभा पाता है, उसी प्रकार उक्त बहुश्रुत दिन-रात स्वाध्याय ध्वनि एवं स्व-पर पक्ष के जयनाद तथा आशीर्वचनों से शोभा प्राप्त करता है।

८. हाथी की उपमा

जहा करेणु परिकिण्णे, कुंजरे सट्ठि-हायणे।
बलवंते अप्पडिहए, एवं हवइ बहुस्सुए॥१८॥

कठिन शब्दार्थ - **करेणु** - हथिनियों से, **परिकिण्णे** - घिरा हुआ, **कुंजरे** - हाथी, **सट्ठिहायणे** - साठ वर्ष की अवस्था का, **बलवंते** - बलवान्, **अप्पडिहए** - अप्रतिहत - पराभूत नहीं होता।

भावार्थ - जिस प्रकार हथिनियों से घिरा हुआ साठ वर्ष की अवस्था का बलवान् हाथी दूसरे हाथियों से पराभूत नहीं हो सकता इसी प्रकार परिपक्व बुद्धि वाला बहुश्रुत मुनि किसी से भी पराभूत नहीं होता अर्थात् हथिनियों की भांति औत्पात्तिकी आदि बुद्धि एवं विविध विद्याओं से युक्त तथा वयोवृद्ध होने से स्थिरबुद्धि वाले बहुश्रुत भी ज्ञान की अपेक्षा महा बलशाली होते हैं। विपक्षी उन्हें शास्त्रार्थ में पराभूत नहीं कर सकते।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में **'कुंजरे सट्ठिहायणे'** - साठ वर्ष का हाथी कहने का अभिप्राय यह है कि साठ वर्ष की आयु तक हाथी का बल प्रति वर्ष उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है उसके पश्चात् कम होने लगता है। अतः यहाँ हाथी की पूर्ण बलवत्ता बताने के लिए, **सट्ठिहायणे**- षष्ठी वर्ष का उल्लेख किया गया है।

५ वृषभ की उपमा

जहा से तिक्खसिंगे, जायक्खंधे विरायइ।
वसहे जूहाहिवई, एवं हवइ बहुस्सुए॥१९॥

कठिन शब्दार्थ - **तिक्खसिंगे** - तीक्ष्ण सींग वाला, **जायक्खंधे** - जात स्कन्ध - जिस वृषभ का कंधा अत्यंत पुष्ट हो गया हो, **विरायइ** - सुशोभित होता है, **वसहे** - सांड, **जूहाहिवई** - यूथ का अधिपति।

भावार्थ - जिस प्रकार वह प्रसिद्ध तीक्ष्ण सींग वाला पुष्ट स्कन्ध वाला (वृषभ) सांड, समूह का नायक होकर विशेष शोभा पाता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी स्व-पर सिद्धांत रूप सींगों वाला और गच्छ की धुरा को धारण करने में समर्थ होता है तथा समुदाय का नायक (आचार्य हो कर शोभा पाता) है।

६. सिंह की उपमा

जहा से तिक्खदाढे, उदग्गे दुप्पहंसए।
सीहे मियाण पवरे, एवं हवइ बहुस्सुए॥२०॥

कठिन शब्दार्थ - **तिक्खदाढे** - तीक्ष्ण दाढों वाला, **उदग्गे** - उत्कट-प्रचंड पूर्ण युवावस्था को प्राप्त, **दुप्पहंसए** - दुष्प्रधर्ष - किसी से न दबने वाला - अपराजेय, **सीहे** - सिंह, **मियाण** - मृगों-वन्य प्राणियों में।

भावार्थ - जिस प्रकार वह प्रसिद्ध तीखी दाढों वाला किसी से न दबने वाला प्रचंड सिंह, मृगों में (समस्त वनचारी पशुओं में) श्रेष्ठ होता है। इसी प्रकार बहुश्रुत साधु भी श्रेष्ठ होता है। अर्थात् परपक्ष को पराजित करने में समर्थ, नैगमादि नय रूप तीखी दाढ़ों वाला प्रखर प्रतिभा सम्पन्न बहुश्रुत भी अन्यतीर्थियों में प्रधान होता है। वह उनके लिए अजेय होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७ वासुदेव की उपमा

जहा से वासुदेवे, संख-चक्क-गदाधरे।
अप्पडिहय-बले जोहे, एवं हवइ बहुस्सुए॥२१॥

कठिन शब्दार्थ - **संख-चक्क-गदाधरे** - शंख, चक्र और गदा का धारण करने वाला, **वासुदेवे** - वासुदेव, **अप्पडिहय बले** - अप्रतिहत बल वाला, **जोहे** - योद्धा।

भावार्थ - जिस प्रकार शंख, चक्र और गदा को धारण करने वाला वह वासुदेव अप्रतिहत बल वाला योद्धा होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत साधु भी अहिंसा, संयम और तप से शोभित होता है।

विवेचन - जैसे वासुदेव स्वभावतः शक्ति-सम्पन्न होता है और शस्त्र धारण कर के तो वह शत्रुओं के लिए विशेष रूप से अजेय हो जाता है। उसी प्रकार बहुश्रुत भी स्वाभाविक प्रतिभा से सम्पन्न होता है और सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप विशिष्ट आध्यात्मिक शक्तियों से सम्पन्न हो कर अन्यतीर्थी और कर्म-वैरियों के लिए वासुदेव के समान अजेय योद्धा बन जाता है।

८. चक्रवर्ती की उपमा

जहा से चाउरंते, चक्कवट्टी महिड्ढिए।
चोद्दस-रयणाहिवई, एवं हवइ बहुस्सुए॥२२॥

कठिन शब्दार्थ - **चाउरंते** - चातुरन्त, **चक्कवट्टी** - चक्रवर्ती, षट्खण्डों का अधिपति, **महिड्ढिए** - महान् ऋद्धिमान्, **चोद्दस-रयणाहिवई** - चौदह रत्नों का अधिपति (स्वामी)।

भावार्थ - जिस प्रकार चक्रवर्ती चारों दिशाओं में भरतक्षेत्र के अन्त तक राज्य करने वाला अथवा हाथी, घोड़े, रथ और पैदल रूप चतुरंगिणी सेना से शत्रुओं का नाश करने वाला, महा ऋद्धिशाली तथा चौदह रत्नों का स्वामी होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत होता है। अर्थात् चक्रवर्ती के समान बहुश्रुत की कीर्ति चारों दिशाओं में अन्त तक व्याप्त होती है। वह भी दान, शील, तप और भावना रूप धर्म से कर्म-शत्रुओं का नाश करने वाला होता है, आमर्ष औषधि आदि अनेक ऋद्धियों से संपन्न और चौदह पूर्वों के ज्ञान का स्वामी होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - चक्रवर्ती चौदह रत्नों का स्वामी होता है वे चौदह रत्न इस प्रकार हैं - १. सेनापति २. गाथापति ३. बढ़ई ४. पुरोहित ५. स्त्री ६. अश्व ७. गज ८. चक्र ९. छत्र १०. चर्म ११. दण्ड १२. खड्ग १३. मणि और १४. काकिणी।

९. इन्द्र की उपमा

जहा से सहस्सक्खे, वज्जपाणी पुरंदरे।
सक्के देवाहिवई, एवं हवइ बहुस्सुए॥२३॥

कठिन शब्दार्थ - **सहस्सक्खे** - सहस्राक्ष - हजार नेत्र वाला, **वज्जपाणी** - वज्रपाणि, **पुरन्दरे** - पुरन्दर, **सक्के** - शक्र, **देवाहिवई** - देवाधिपति।

भावार्थ - जिस प्रकार सहस्र (हजार) नेत्र वाला - हाथ में वज्र धारण करने वाला, पुर नामक दैत्य या नगर का दारण करने वाला तथा देवों का स्वामी वह प्रसिद्ध शक्र (इन्द्र) शोभित होता है, इसी प्रकार बहुश्रुत साधु शोभित होता है। अर्थात् इन्द्र के समान बहुश्रुत भी विशिष्ट श्रुतज्ञान रूप सहस्र नेत्र वाला, हाथ में वज्र चिह्न वाला, विशिष्ट तप द्वारा पुर अर्थात् शरीर को कृश करने वाला पुरन्दर देवों का पूज्य होता है।

१०. सूर्य की उपमा

जहा से तिमिर-विद्धंसे, उच्चिट्ठंते दिवायरे।
जलंते इव तेएण, एवं हवइ बहुस्सुए॥२४॥

कठिन शब्दार्थ - **तिमिर विद्धंसे** - अंधकार का विध्वंसक, **उच्चिट्ठंते** - उदीयमान, **दिवायरे** - दिवाकर, **जलंते** - देदीप्यमान्, **तेएण** - तेज से।

भावार्थ - जिस प्रकार अन्धकार का नाश करने वाला उगता हुआ (आकाश में ऊपर की ओर चढ़ता हुआ) दिवाकर (सूर्य) तेज से देदीप्यमान होता हुआ शोभित होता है इसी प्रकार आत्मज्ञान के तेज से दीप्त, बहुश्रुत ज्ञानी शोभित होता है।

विवेचन - **सहस्सक्खे** - सहस्राक्ष - इन्द्र के पांच सौ देव मंत्री होते हैं। राजा मंत्री की आँखों से देखता है, अर्थात् - इन्द्र उनकी दृष्टि से अपनी नीति निर्धारित करता है, इसलिए वह 'सहस्राक्ष' कहलाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

११. चन्द्रमा की उपमा

जहा से उडुवई चंदे, णक्खत्त परिवारिए।
पडिपुण्णे पुण्णमासीए, एवं हवइ बहुस्सुए॥२५॥

कठिन शब्दार्थ - **उडुवई** - नक्षत्रों का अधिपति, **चंदे** - चन्द्रमा, **णक्खत्तपरिवारिए** - नक्षत्रों से परिवृत्त हुआ, **पुण्णमासीए** - पूर्णिम को।

भावार्थ - जिस प्रकार उडुपति, नक्षत्रों का स्वामी चन्द्रमा, ग्रह-नक्षत्रों से घिरा हुआ तथा पूर्णिमा के दिन सोलह कलाओं से पूर्ण हो कर शोभित होता है, इसी प्रकार आत्मिक शीतलता से बहुश्रुत साधु भी शोभित होता है।

१२. कोष्ठागार की उपमा

जहा से सामाइयाणं, कोट्ठागारे सुरक्खिए।
णाणा-धण्ण-पडिपुण्णे, एवं हवइ बहुस्सुए॥२६॥

कठिन शब्दार्थ - **सामाइयाणं** - सामाजिकों (किसानों, व्यापारियों आदि) का, **कोट्ठागारे**- कोष्ठागार, **सुरक्खिए** - सुरक्षित, **णाणा-धण्ण-पडिपुण्णे** - नाना प्रकार के धान्यों से परिपूर्ण।

भावार्थ - जिस प्रकार सामाजिक अर्थात् संचयवृत्ति वाले लोगों का धान्यादि का कोठा, चूहे, चोर आदि से सुरक्षित होता है और अनेक प्रकार के धान्यों से भरा हुआ होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत साधु होता है अर्थात् धान्य के उक्त कोठे के समान बहुश्रुत भी गच्छ के लिए उपयोगी अंग-उपांग-प्रकीर्णक आदि विविध श्रुतज्ञान से पूर्ण होता है और प्रवचन का आधारभूत होने से संघ द्वारा सुरक्षित होता है।

१३. जम्बू वृक्ष की उपमा

जहा सा दुमाण पवरा, जंबू णाम सुदंसणा।
अणाढियस्स देवस्स, एवं हवइ बहुस्सुए॥२७॥

कठिन शब्दार्थ - **दुमाण** - वृक्षों में, **पवरा** - श्रेष्ठ, **जंबू** - जम्बू वृक्ष, **सुदंसणा णाम** - सुदर्शन नामक, **अणाढियस्स** - अनादृत, **देवस्स** - देवता के।

भावार्थ - जिस प्रकार अनादृत नामक व्यंतर देव से अधिष्ठित सुदर्शन नाम वाला जम्बू

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वृक्ष सभी वृक्षों में प्रधान (श्रेष्ठ) होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत साधु भी सभी साधुओं में श्रेष्ठ होता है। अर्थात् सुदर्शन नामक जम्बू वृक्ष के समान बहुश्रुत भी देवों का पूज्य होता है और सभी साधुओं में प्रधान होता है।

विवेचन - अनादृत देव के नाम का अर्थ इस प्रकार किया गया है - जिसने अपनी ऋद्धि, सत्ता आदि से जम्बूद्वीपवर्ती सभी देवों को अनादृत-तिरस्कृत कर दिया है। अर्थात् जम्बूद्वीप में रहने वाले सभी देवों में यह देव सबसे ज्यादा महर्द्धिक कहा गया है।

१४ सीता नदी की उपमा

जहा सा णईण पवरा, सलिला सागरंगमा।
सीया णीलवंतपवहा, एवं हवइ बहुस्सुए॥२८॥

कठिन शब्दार्थ - **णईण** - नदियो में, **सलिला** - नदी, **सागरंगमा** - सागरगामिनी, **सीया** - सीता, **णीलवंतपवहा** - नीलवंत से उत्पन्न (निकली) हुई।

भावार्थ - जैसे नीलवान् पर्वत से निकलने वाली और समुद्र में जा कर मिलने वाली वह सीता नामक नदी दूसरी नदियों में प्रधान (श्रेष्ठ) है। इसी प्रकार बहुश्रुत साधु भी प्रधान होता है।

विवेचन - सीता नदी नीलवान् पर्वत से निकलती है, इसी प्रकार बहुश्रुत भी महान् उच्च कुल में जन्म धारण करता है। सीता नदी में निर्मल जल भरा रहता है उसी प्रकार बहुश्रुत भी निर्मल ज्ञान रूपी जल से परिपूर्ण होता है। सीता नदी बीच ही में नष्ट न होकर ठेट समुद्र में जा कर मिलती है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी चरम गति रूप मुक्ति की ओर ही बढ़ता रहता है। सीता नदी सभी नदियों में श्रेष्ठ होती है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी सभी साधुओं में प्रधान होता है।

१५ मंदर पर्वत की उपमा

जहा से णगाण पवरे, सुमहं मंदरे गिरी।
णाणोसहि पज्जलिए, एवं हवइ बहुस्सुए॥२९॥

कठिन शब्दार्थ - **णगाण** - पर्वतों में, **सुमहं** - अतिशय महान्, **मंदरेगिरी** - मंदर पर्वत, **णाणोसहि** - नाना प्रकार की औषधियों से, **पज्जलिए** - प्रज्वलित।

भावार्थ - जिस प्रकार वह प्रसिद्ध सुमेरु पर्वत अन्य पर्वतों में प्रधान है। अतिशय महान्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(बहुत ऊँचा) है और नाना प्रकार की औषधियों एवं जड़ी-बूटियों से प्रज्वलित रहता है। उसी प्रकार बहुश्रुत साधु होता है।

१६. स्वयंभूरमण समुद्र की उपमा

जहा सयंभूरमणे, उदही अक्खओदए।
णाणा रयण-पडिपुण्णे, एवं हवइ बहुस्सुए॥३०॥

कठिन शब्दार्थ - **सयंभूरमणे** - स्वयंभूरमण, **उदही** - समुद्र, **अक्खओदए** - अक्षय उदक (जल) को धारण करने वाला, **णाणारयणपडिपुण्णे** - नाना प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण।

भावार्थ - जिस प्रकार स्वयंभूरमण समुद्र अक्षय जल वाला और नाना प्रकार के रत्नों से भरा हुआ है, इसी प्रकार बहुश्रुत साधु होता है अर्थात् स्वयंभूरमण समुद्र के समान बहुश्रुत अक्षय (अखूट) ज्ञान-दर्शन-चारित्र से सम्पन्न और विविध अतिशय रूप रत्नों से शोभित होता है।

बहुश्रुतता का फल

समुद्द-गंभीर-समा दुरासया, अचक्किया केणइ दुप्पहंसया।
सुयस्स पुण्णा विउलस्स ताइणो, खवित्तु कम्मं गइमुत्तमं गया॥३१॥

कठिन शब्दार्थ - **समुद्दगंभीरसमा** - समुद्र के समान गंभीर, **दुरासया** - दुष्पराजेय - अभिभूत न होने वाला, **अचक्किया** - अचक्रिता - अविचलित (अपराजित), **केणइ** - किसी से भी, **दुप्पहंसया** - नहीं जीता जा सकने वाला, **सुयस्स** - श्रुत से, **पुण्णा** - पूर्ण, **विउलस्स** - विपुल, **ताइणो**- त्राता-रक्षक, **कम्मं** - कर्मों का, **खवित्तु** - क्षय करके, **उत्तमं**- उत्तम, **गइं** - गति को, **गया** - प्राप्त हुआ।

भावार्थ - समुद्र के समान गंभीर वाद में किसी से न जीते जा सकने वाले त्रास-भय रहित, किसी भी परीषह आदि से अभिभूत न होने वाले विपुल श्रुतज्ञान से पूर्ण छह काया के रक्षक इन गुणों से सम्पन्न बहुश्रुत अन्त में ज्ञानावरणीयादि सभी कर्मों का क्षय कर उत्तम प्रधान गति (मोक्ष) को प्राप्त हुए हैं और होते हैं।

विवेचन - इस प्रकार उपर्युक्त गाथाओं में सोलह प्रकार की उपमाओं से उपमित करके आगमकार ने बहुश्रुत के विशिष्ट गुणों का वर्णन किया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रुताभ्यास की प्रेरणा/उपसंहार

तम्हा सुयमहिट्ठिज्जा, उत्तमट्ठ गवेसए।
जेणऽप्पाणं परं चेव, सिद्धिं संपाउणिज्जासि॥ त्ति बेमि॥३२॥

कठिन शब्दार्थ - **तम्हा** - इसलिए, **सुयं** - श्रुत (शास्त्र) का, **अहिट्ठिज्जा** - अध्ययन करे, **उत्तमट्ठ** - उत्तम अर्थ - मोक्ष की, **गवेसए** - गवेषणा करने वाला, **जेण** - जिससे कि, **अप्पाणं** - अपने आपको, **परं** - दूसरे को, **सिद्धिं** - सिद्धि को, **संपाउणिज्जासि** - सम्प्राप्त करा सके।

भावार्थ - इसलिए उत्तम अर्थ (मोक्ष) की गवेषणा करने वाला साधक, अध्ययन श्रवणचिन्तनादि द्वारा श्रुतज्ञान का आश्रय ग्रहण करे जिससे अपने आप को और दूसरों को मुक्ति की सम्यक् प्रकार से प्राप्ति करावे। इस प्रकार मैं कहता हूँ।

विवेचन - बहुश्रुत होने का अंतिम फल मोक्ष की प्राप्ति है। जो बहुश्रुत हैं वे कर्मों का क्षय करके उत्तम गति-मोक्ष में जाते हैं। उपलक्षण से उक्त गुणों को धारण करने वाले अन्य पुरुष भी कर्मों का क्षय करके मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

॥ इति बहुश्रुतपूजा नामक ग्यारहवाँ अध्ययन समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हरिएसिज्जं णामं बारहं अज्झयणं

हरिकेशीय नामक बारहवां अध्ययन

उत्थानिका - ग्यारहवें अध्ययन में बहुश्रुत की पूजा का वर्णन किया गया है। बहुश्रुत को भी तप का अनुष्ठान करना परम आवश्यक है। इसलिए इस प्रस्तुत बारहवें अध्ययन में तप की महिमा बतलाते हुए परम तपस्वी हरिकेश बल का जीवन वृत्तांत दिया गया है।

टीकाकार ने हरिकेश बल साधु का पूर्व जीवन वर्णन इस प्रकार किया है -

जातिमद के कारण हरिकेश बल का जन्म एक चाण्डाल के घर में हुआ। जाति, रूप संबंधी अहंकार के कारण उसका तन सौभाग्य और रूप रहित था। उसकी प्रकृति भी अत्यंत कठोर थी। अपनी दैहिक कुरूपता एवं क्रोधी झगडालु स्वभाव के कारण वह पास पड़ौसियों का ही नहीं अपितु स्वयं अपने परिवार वालों का भी प्रिय नहीं रहा। उसके साथी बालक उसके शरीर की आकृति देख कर उससे घृणा करते थे। इस प्रकार घर बाहर सभी की उपेक्षा के कारण वह अधिक कठोर बनता चला गया।

एक बार नगर के बाहर सभी चांडाल जाति के लोग कोई उत्सव मनाने हेतु एकत्रित हुए। हरिकेश बल भी उस उत्सव में गया किन्तु उसकी आकृति एवं प्रकृति के कारण कोई भी उसके साथ क्रीड़ा करने अथवा बातचीत करने को तैयार नहीं था। वह अकेला एकान्त में बैठा हुआ उत्सव में चल रहे आमोद-प्रमोद को टुकर-टुकर देख रहा था। उसे अपनी इस दयनीय दशा पर अत्यंत दुःख हो रहा था। अचानक वहाँ एक सर्प-सांप आ निकला। उसको अति भयंकर विषधर समझ कर वहाँ पर एकत्रित चाण्डालों ने उसे मार डाला। कुछ समय बाद ही वहाँ पर एक बड़ी लम्बी गोह-अलशिक (दो मुंही) आ निकली। लोगों ने उसे निर्विष समझ कर उसे मारा नहीं किन्तु उसकी पूजा करने लगे।

कुछ दूरी पर खड़ा हरिकेश बल भी यह सब दृश्य देख रहा था। एक समान दिखने वाले दोनों प्राणियों के साथ किये गये भिन्न-भिन्न व्यवहार को देख कर वह चिंतन करने लगा कि वास्तव में प्राणी अपने ही दोषों से सर्वत्र तिरस्कार का पात्र बनता है। मैं भी सांप के समान क्रोध रूप विष से भरा हुआ हूँ। इसीलिए ये लोग मेरा तिरस्कार कर रहे हैं और यदि मैं दो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुंही के समान निर्विष होता तो मेरा कोई भी अनादर नहीं करता। इस प्रकार सोचते-सोचते उसे जाति स्मरण ज्ञान हो गया। पूर्व जन्मों की स्मृति जागृत होते ही उसने जाति मद आदि के फल श्रमण जीवन की उत्तम साधना और देवोचित सुखों की विनश्वरता का चिंतन किया और संसार को तुच्छ समझ कर वैराग्यपूर्वक संयम अंगीकार कर लिया।

चांडाल कुलोत्पन्न हरिकेशबल श्रमण बन गए और दीक्षा लेते ही तप संयम में लीन हो गए। उग्र तपश्चरण के कारण उन्होंने शरीर को ही नहीं कषायों को भी कृश कर लिया।

किसी समय वे वाराणसी नगर पहुँचे और वहाँ पर किसी उद्यान में रुके। उसी उद्यान में तिंदुक वृक्ष पर रहा हुआ एक यक्ष मुनि की तप साधना से अत्यंत प्रभावित हुआ और वह उनकी सेवा उपासना करने लगा। एक बार वाराणसी नरेश कौशलिक की पुत्री भद्रा अपने दास दासियों सहित उस उद्यान में यक्ष पूजन हेतु आयी। वहाँ उसने शरीर से वीभत्स एवं मलिन वस्त्र युक्त मुनि को देखा तो वह मुनि की कृश देह कुरूपता से घृणा करने लगी और उसने मुनि पर थूक दिया।

महान् तपोधनी मुनि का राजकुमारी द्वारा किया गया यह अपमान यक्ष सहन नहीं कर सका। मुनि तो अपनी साधना में लीन थे किन्तु यक्ष ने राजकुमारी को यथा योग्य शिक्षा देने के लिए और मुनिप्रवर के अपमान का बदला लेने के लिए राजकुमारी को रुग्ण बना दिया और अपनी दैविक शक्ति के द्वारा दास-दासियों सहित उद्यान से उठा कर राजमहल में ले जा कर पटक दिया। पूरे राजमहल में कोलाहल मच गया। राजकुमारी की ऐसी दशा देख कर सम्पूर्ण अंतःपुर ही नहीं स्वयं राजा भी अत्यंत चिंतित हो उठा। अनेक वैद्यों को बुलाकर उपचार कराया गया। किन्तु सब कुछ निरर्थक सिद्ध हुआ। अंत में यक्ष स्वयं राजकुमारी के शरीर में प्रवेश कर कहने लगा इन कन्या ने मेरे यक्षायतन में ठहरे हुए संयमशील महातपस्वी मुनि का घोर अपमान किया है अतः मैंने इसकी यह दशा की है। अब तो मैं इसे तब ही रोग मुक्त करूँगा जब यह उस मुनि से विवाह की स्वीकृति दे।

राजा और राजकुमारी ने यक्ष की बात स्वीकार की तो राजकुमारी को पूर्व की तरह स्वस्थ बना कर यक्ष चला गया। राजा अपने पूरे ऐश्वर्य के साथ राजकुमारी को साथ लेकर यक्षायतन में उस तपोधनी महाश्रमण की सेवा में उपस्थित हुआ। मुनि से क्षमायाचना करते हुए राजा ने कहा - 'हे मुने! मैं अपनी कन्या के अपराध की आपसे क्षमा मांगता हूँ। आप इस अबोध बाला को क्षमा करें और इसके साथ विवाह करके हमें कृतार्थ करें।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हरिकेशबल मुनि ने राजा को स्पष्ट करते हुए कहा - 'मेरा कोई अपमान नहीं हुआ है। मैं संयमशील साधु हूँ। मैंने तीन करण तीन योग से मैथुन के त्याग किये हैं अतः मैं विवाह नहीं कर सकता।'

मुनि के इन वचनों को सुन कर राजा अपनी राजकुमारी के साथ निराश होकर महलों में लौट गया। ब्राह्मण को ऋषि का रूप मान कर राजकुमारी भद्रा का विवाह राजपुरोहित रुद्रदेव के साथ कर दिया।

किसी समय रुद्रदेव पुरोहित ने एक विशाल यज्ञ करवाया यज्ञशाला में अनेकों युवा वृद्ध यज्ञपाठी ब्राह्मण उपस्थित हुए और प्रचुर मात्रा में भोज्य सामग्री बनाई गयी। मुनि हरिकेशबल अपने मासखमण तप के पारणे में भिक्षा हेतु उस यज्ञ मंडप में उपस्थित हुए। मुनि का ब्राह्मणों के साथ जो वार्तालाप हुआ उसी का दिग्दर्शन इस बारहवें अध्ययन में कराया गया है जो कि बहुत ही रोचक एवं शिक्षाप्रद है। यथा -

हरिकेश मुनि का परिचय

सोवाग-कुल संभूओ, गुणुत्तरधरो मुणी।
हरिएस-बलो णाम, आसी भिक्खू जिइंदिओ॥१॥

कठिन शब्दार्थ - **सोवागकुल** - श्वपाक - चांडाल कुल में, **संभूओ** - उत्पन्न हुआ, **गुणुत्तरधरो**- प्रधान गुणों का धारक, **मुणी** - मुनि, **हरिएस-बलो** - हरिकेश बल, **आसि** - हुआ, **भिक्खू** - भिक्षु, **जिइंदिओ** - जितेन्द्रिय।

भावार्थ - श्वपाक (जो कुत्ते के मांस को भी खा जाय ऐसे) चाण्डाल कुल में उत्पन्न हुए, ज्ञानादि उत्तम गुणों के धारक भिक्षा से निर्वाह करने वाले पांच इन्द्रियों को जीतने वाले हरिकेश बल नाम वाले एक मुनि थे अर्थात् उनके हरिकेशी और बल ये दो नाम थे, किन्तु वे हरिकेशी नाम से ही प्रसिद्ध थे।

विवेचन - हरिकेशी का जन्म चाण्डाल कुल में हुआ था, अतः वे जाति के चाण्डाल थे। 'हरिकेश' उनका गोत्र था और 'बल' नाम था।

इस गाथा से स्पष्ट है कि नीच कुल में उत्पन्न होने पर भी गुणों की विशिष्टता से यह आत्मा उच्च कुल वालों का पूजनीय हो सकता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हरिकेशी मुनि के गुण

इरिएसण-भासाए, उच्चार-समिइसु य।
जओ आयाणणिक्खेवे, संजओ सुसमाहिओ॥२॥

कठिन शब्दार्थ - ईर्या समिति, एषणा समिति, भाषा समिति, **उच्चार समिइसु** - उच्चार प्रस्रवल खेल जल्ल सिंघाण परिस्थापनिका समिति, **जओ** - यत्नशील, **आयाणणिक्खेवे** - आदान निक्षेप, **संजओ** - संयमी, **सुसमाहिओ** - श्रेष्ठ समाधिवान्।

भावार्थ - मुनि ईर्यासमिति, एषणा समिति, भाषा समिति, उच्चार-प्रस्रवण-खेल-जल्ल-सिंघाण-परिस्थापनिका समिति और आदान-भंड-मात्र-निक्षेपणा समिति में, यतनावान् संयमवन्त श्रेष्ठ समाधि वाले थे।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में मुनि के गुणों का वर्णन करते हुए पांचों समितियों का उल्लेख किया है। पांच समिति का विशेष वर्णन उत्तराध्ययन सूत्र के चौबीसवें अध्ययन में किया जायेगा।

भिक्षार्थ गमन

मणगुत्तो वयगुत्तो, कायगुत्तो जिइंदिओ।
भिक्खट्ठा बंभइज्जम्मि, जण्णवाडमुवट्ठिओ॥३॥

कठिन शब्दार्थ - **मणगुत्तो** - मन गुप्त, **वयगुत्तो** - वचन गुप्त, **कायगुत्तो** - काय गुप्त, **जिइंदिओ** - जितेन्द्रिय, **भिक्खट्ठा** - भिक्षा के लिए, **बंभइज्जमि** - ब्राह्मणों के यज्ञ में, **जण्णवाडे** - यज्ञवाट में, **उवट्ठिओ** - उपस्थित हुए।

भावार्थ - मन गुप्ति वाले, वचन गुप्ति वाले, काय गुप्ति वाले और इन्द्रियों को जीतने वाले वे मुनि भिक्षा के लिए ब्राह्मणों का जहाँ यज्ञ हो रहा था वहाँ यज्ञशाला में आये।

विवेचन - इन्द्रियों को सर्वथा वश में रखने वाले वे मुनि भिक्षार्थ भ्रमण करते हुए ब्राह्मणों के द्वारा संपादित होने वाले यज्ञ में उपस्थित हुए। वे मुनि मन, वचन और काया इन तीनों गुप्तियों से गुप्त थे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

याज्ञिकों द्वारा उपहास

तं पासिऊणं एज्जंतं, तवेण परिसोसियं।
पंतोवहि-उवगरणं, उवहसंति अणारिया॥४॥

कठिन शब्दार्थ - **पासिऊणं** - देख कर, **एज्जंतं** - आते हुए, **तवेण** - तप से, **परिसोसियं** - परिशुष्क (कृश) हुए, **पंतोवहि** - प्रान्त उपधि, **उवगरणं** - उपकरण वाले, **उवहसंति** - उपहास करने लगे, **अणारिया** - अनार्य।

भावार्थ - तप से शुष्क (कृश) शरीर वाले प्रान्त (असार, जीर्ण और मलिन) उपधि (उपकरण) वाले उन मुनि को आते हुए देख कर अनार्य के समान वे ब्राह्मण हंसने लगे।

विवेचन - हरिकेश मुनि के शरीर की बाह्य आकृति, अत्यंत जीर्ण व मलिन उपधि तथा तपस्या से अत्यंत कृश शरीर को देखकर वे याज्ञिक हंसने लगे।

जाइमयपडिथद्धा, हिंसगा अजिइंदिया।
अबंभचारिणो बाला, इमं वयणमब्बवी॥५॥

कठिन शब्दार्थ - **जाइमय** - जातिमद से, **पडिथद्धा** - अहंकार युक्त, **हिंसगा** - हिंसक, **अजिइंदिया** - अजितेन्द्रिय, **अबंभचारिणो** - अब्रह्मचारी - मैथुन सेवन करने वाले, **बाला** - अज्ञानी, **इमं** - इस प्रकार के, **वयणं** - वचन, **अब्बवी** - कहने लगे।

भावार्थ - जातिमद से अहंकारी बने हुए हिंसक अजितेन्द्रिय, अब्रह्मचारी वे ज्ञानी मुनि के प्रति इस प्रकार वचन बोलने लगे।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों के स्वरूप का वर्णन किया गया है। जब उन्होंने उक्त मुनि को देखा तो वे हंसने लगे क्योंकि उनको "हम ब्राह्मण हैं" इस प्रकार के जाति मद का गर्व था।

कयरे आगच्छइ दित्तरूवे, काले विकराले फोक्कणासे।
ओमचेलए पंसुपिसायभूए, संकर-दूसं परिहरिय कंठे॥६॥

कठिन शब्दार्थ - **कयरे** - कौन, **आगच्छइ** - आता है, **दित्तरूवे** - दैत्य रूप, **काले**-काले वर्ण वाला (कलूटा), **विकराले** - विकराल, **फोक्कणासे** - ऊंची (बैडोल) नाक वाला, **ओमचेलए** - अल्प और जीर्ण वस्त्रों वाला, **पंसुपिसायभूए** - धूलि - धूसरित होने से पिशाच (भूत) के समान, **संकरदूसं** - फटा चिथड़ा, **परिहरिय** - धारण किये हुए, **कंठे** - गले में।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

भावार्थ - अत्यन्त बीभत्स रूप वाला काले रंग का भयावना चपटी नासिका वाला असार (जीर्ण) वस्त्र वाला, धूल से पिशाच-सा बना हुआ और गले में उकरडी पर डाले वैसा गन्दा वस्त्र पहना हुआ यह कौन आ रहा है?

हरिकेशमुनि से पृच्छा

कयरे तुमं इय अदंसणिज्जे, काए व आसा इहमागओ सि।
ओमचेलया पंसु-पिसायभूया, गच्छ-क्खलाहि! किमिहं ठिओ सि?॥७॥

कठिन शब्दार्थ - **अदंसणिज्जे** - अदर्शनीय, **काए** - किस, **आसा** - आशा, **इहं** - यहाँ, **आगओ सि** - आया है, **ओमचेलया** - जीर्ण वस्त्रधारी, **गच्छ** - चले जाओ, **क्खलाहि** - हमारी दृष्टि से परे, **ठिओसि** - खड़े हो।

भावार्थ - असार (जीर्ण-शीर्ण) वस्त्र वाला धूल से पिशाच-सा बना हुआ, इस प्रकार अदर्शनीय तू कौन है तथा किस आशा से यहाँ आया है? चला जा, निकल जा, यहाँ क्यों खड़ा है?

यक्ष द्वारा शरीर पर प्रभाव

जक्खो तहिं तिंदुगरुक्खवासी, अणुकंपओ तस्स महामुणिस्स।
पच्छायइत्ता णियगं सरीरं, इमाइं वयणाइं उदाहरित्था॥८॥

कठिन शब्दार्थ - **जक्खो** - यक्ष, **तहिं** - उस समय, **तिंदुयरुक्खवासी** - तिन्दुक वृक्ष में रहने वाला, **अणुकंपओ** - अनुकम्पा करने वाला, **पच्छायइत्ता** - प्रच्छन्न (छिपा) करके, **णियगं** - अपने, **उदाहरित्था** - बोलने लगा।

भावार्थ - उस समय उस महामुनि पर अनुकम्पा करने वाला (भक्तिभाव वाला) तिंदुक वृक्ष पर रहने वाला यक्ष अपना शरीर छिपा कर अर्थात् मुनि के शरीर में प्रवेश कर के ये आगे कहे जाने वाले वचन कहने लगा।

विवेचन - उन ब्राह्मणों के तिरस्कार युक्त वचनों को सुनकर वे मुनि तो मौन रहे किन्तु उनकी सेवा में रहने वाले यक्ष ने उन याज्ञिकों से वार्तालाप किया। इससे यह सिद्ध होता है कि धर्मात्मा और गुणीजनों की पूजा मनुष्य तो क्या देवता भी करते हैं। दशवैकालिक सूत्र अ० १ गाथा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१ से भी यह पूर्णतया स्पष्ट है - "देवा वि तं णमंसंति जस्स धम्मे सया मणो" ऐसे प्रसंग पर भी मुनि का मौन रहना उनकी आक्रोश परीषह पर पूर्ण विजयशीलता का परिचायक है।

यक्ष और याज्ञिकों का संवाद

समणो अहं संजओ बंभयारी, विरओ धण-पयण-परिग्गहाओ।
परप्पवित्तस्स उ भिक्ख-काले, अण्णस्स अट्ठा इहमागओ मि।।९।।

कठिन शब्दार्थ - **समणो** - श्रमण, **अहं** - मैं, **संजओ** - संयत, **बंभयारी** - ब्रह्मचारी, **विरओ**- विरत (निवृत्त), **धण** - धन, **पयण** - पचन-अन्न के पकाने से, **परिग्गहाओ**- परिग्रह से, **परप्पवित्तस्स** - दूसरों के लिए निष्पन्न, **भिक्खकाले** - भिक्षा के समय, **अण्णस्स**- अन्न (आहार) के, **अट्ठा** - लिए, **इहमागओ** - यहाँ आया हूँ।

भावार्थ - मैं, श्रमण तपस्वी, संयति और ब्रह्मचारी हूँ तथा धन, भोजन पकाने और परिग्रह से निवृत्त हुआ हूँ, अतएव भिक्षा के समय दूसरों द्वारा उनके लिए बनाये हुए अन्न के लिए यहाँ आया हूँ।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में यक्ष ने मुनि के शरीर में प्रवेश कर ब्राह्मणों के दो प्रश्नों-१. तू कौन है? और २. तू किस लिये यहाँ पर आया है? का उत्तर दिया है।

वियरिज्जइ खज्जइ भुज्जइ य, अण्णं पभूयं भवयाणमेयं।
जाणाहि मे जायण-जीविणुत्ति, सेसावसेसं लहओ तवस्सी।।१०।।

कठिन शब्दार्थ - **वियरिज्जइ** - वितीर्ण किया जाता है, **खज्जइ** - खाया जाता है, **भुज्जइ** - भोगा जाता है, **पभूयं** - प्रभूत (प्रचुर), **भवयाणं** - आपके यहाँ, **जाणाहि** - जानते हो, **जायण** - याचना से, **जीविणु** - जीवन है, **सेस** - शेष, **अवसेसं** - अवशेष (बचे हुए), **लहओ** - मिल जाए।

भावार्थ - आप लोगों का यह बहुतसा अन्न दीन-अनाथजनों को बांटा जा रहा है, खाया जा रहा है और भोगा जा रहा है। मैं भिक्षावृत्ति से आजीविका करने वाला हूँ ऐसा जान कर मुझ तपस्वी को बचा हुआ (अन्तप्रान्त) आहार देकर लाभ प्राप्त करो।

उवक्खडं भोयण माहणाणं, अत्तट्ठियं सिद्ध-मिहेगपक्खं।
ण उ वयं एरिसमण्णपाणं, दाहामु तुज्झं किमिहं ठिओ सि?।।११।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

कठिन शब्दार्थ - उवक्खडं - उपस्कृत - संस्कारित किया हुआ, भोयण - भोजन, माहणाणं - ब्राह्मणों के लिए, अत्तट्ठियं - आत्मार्थक - अपने लिए ही, सिद्धं - पकाया (बनाया) गया, इह - इस, एगपक्खं - एक पक्ष का, एरिसं - इस प्रकार का, अण्णपाणं- अन्नपान, तुज्झं - तुम को, किं - क्यों, ठिओसि - खड़ा है।

भावार्थ - मसाले आदि से उत्तम रीति से संस्कार किया गया, यह भोजन ब्राह्मणों के अपने लिए ही तैयार हुआ है और यहाँ यज्ञ में ब्राह्मण रूप एक पक्ष वाला है अर्थात् यहाँ जो तैयार किया जाता है वह ब्राह्मणों के सिवाय किसी दूसरे को नहीं दिया जाता, इस प्रकार के अन्न-पानी को हम लोग तुझे नहीं देंगे, फिर यहाँ क्यों खड़ा है?

थलेसु बीयाइं ववंति कासया, तहेव णिण्णेसु य आससाए।
एयाइ सद्धाइ दलाह मज्झं, आराहए पुण्णमिणं खु खित्तं॥१२॥

कठिन शब्दार्थ - थलेसु - स्थलों में, बीयाइं - बीजों को, ववंति - बोते हैं, कासया - किसान, णिण्णेसु - नीचे स्थलों (खेतों) में, आससाए - आशा से, सद्धाए - श्रद्धा से, दलाह - देदो, मज्झं - मुझे, आराहए - आराधन कर लो, पुण्णं - पुण्य रूप, खित्तं - क्षेत्र को।

भावार्थ - किसान लोग आशंसा से स्थल (ऊंची भूमि पर) और इसी प्रकार नीची भूमि पर बीज बोते हैं। अर्थात् किसान ऊँची और नीची दोनों भूमि में इस आशा से बीज बोते हैं कि यदि अधिक वर्षा हुई तो ऊँची भूमि पर और कम वर्षा हुई तो नीची पृथ्वी पर लाभ होगा। अर्थात् दो में से एक स्थान पर तो अवश्य खेती सफल होगी, इसी श्रद्धा से आप लोग मुझे दो यह क्षेत्र निश्चय ही पुण्य की प्राप्ति करावेगा अर्थात् मुझे दान देने से निश्चय ही आप को पुण्य की प्राप्ति होगी।

विवेचन - ब्राह्मणों के उत्तर को सुन कर यक्ष कटाक्ष रूप से बोला - जैसे किसान फल की आशा से स्थल और निम्न स्थानों में मूंग आदि धान्य के बीजों का वपन करते हैं क्योंकि यदि वर्षा समय पर अच्छी हो गई तब तो स्थल में धान्योत्पत्ति हो जायेगी और यदि कम हुई तो निम्न स्थानों में बोए हुए बीज फल दे जावेंगे। तात्पर्य यह है कि किसान की दोनों ही प्रकार की आशा रहती है इसी प्रकार आप भी मुझे इसी आशा और श्रद्धा से भिक्षा दो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

खित्ताणि अम्हं विइयाणि लोए, जहिं पकिण्णा विरुहंति पुण्णा।
जे माहणा जाइ-विज्जोववेया, ताइं तु खित्ताइं सुपेसलाइं॥१३॥

कठिन शब्दार्थ - **खित्ताणि** - क्षेत्र, **अम्हं** - हमने, **विइयाणि** - जान लिये हैं, लोए- लोक में, **जहिं** - जहां, **पकिण्णा** - बोए हुए, **विरुहंति** - उग जाते हैं, **पुण्णा** - पूर्ण रूप से, **जाइ** - जाति, **विज्जोववेया** - विद्या से सम्पन्न, **सुपेसलाइं** - मनोहर उत्तम।

भावार्थ - लोक में जहाँ दिये गये अन्नादि पुण्य उत्पन्न करते हैं, वे क्षेत्र अर्थात् दान के पात्र हमें मालूम हैं जो जाति और विद्या सम्पन्न ब्राह्मण हैं, वे क्षेत्र निश्चय ही उत्तम हैं।

विवेचन - यक्ष के कथन को सुन कर वे ब्राह्मण बोले - जो व्यक्ति जन्म से ब्राह्मण और वेदादि विद्याओं में निपुण हो वही परम सुंदर क्षेत्र है। अतः क्षुद्र कुलोत्पन्न पुण्य क्षेत्र नहीं हो सकते।

कोहो य माणो य वहो य जेसिं, मोसं अदत्तं च परिग्गहं च।
ते माहणा जाइ-विज्जाविहूणा, ताइं तु खित्ताइं सुपावयाइं॥१४॥

कठिन शब्दार्थ - **वहो** - वध (हिंसा), **मोसं** - झूठ (मृषा), **अदत्तं** - अदत्त (चोरी), **परिग्गहं** - परिग्रह, **सुपावयाइं** - अतिशय पाप रूप।

भावार्थ - ब्राह्मणों की यह बात सुन कर यक्षाधिष्ठित मुनि ने कहा जिन लोगों में क्रोध और मान और माया तथा लोभ हैं और जिनके हिंसा, झूठ तथा चोरी और मैथुन तथा परिग्रह हैं, वे ब्राह्मण जाति और विद्या से हीन हैं और वे क्षेत्र निश्चय ही अतिशय पापकारी हैं।

विवेचन - चार कषाय और पांच आस्रवों से जो निवृत्त है वही वास्तव में पुण्य क्षेत्र है इसके अतिरिक्त लौकिक शास्त्रों का वेत्ता भी हो तो भी यदि उसमें आस्रवों और कषायों की प्रधानता है तो वह पाप रूप क्षेत्र ही है।

तुब्भेत्थ भो! भारहरा गिराणं, अट्ठं ण याणाह अहिज्ज वेए।
उच्चावयाइं मुणिणो चरंति, ताइं तु खित्ताइं सुपेसलाइं॥१५॥

कठिन शब्दार्थ - **तुब्भं** - तुम, **इत्थ** - इस लोक में, **भारहरा** - भार उठाने वाले, **गिराणं** - वेद रूप वाणी के, **अट्ठं** - अर्थ को, **ण याणाह** - नहीं जानते हो, **अहिज्ज** - पढ़ कर, **वेए** - वेदों को, **उच्चावयाइं** - ऊंच नीच कुलों में, **मुणिणो** - मुनि, **चरंति** - विचरते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - अरे! तुम लोग यहाँ शब्दों के (वेद वचनों के) भार ढोने वाले हो, क्योंकि वेद पढ़ कर भी तुम उनका अर्थ नहीं जानते हो। मुनि लोग भिक्षा के लिए ऊंच-नीच कुलों में भ्रमण करते हैं, वे ही अर्थात् पंच महाव्रतधारी मुनि ही सुन्दर (शोभनीय) क्षेत्र (दान के पात्र) हैं।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में स्पष्ट किया गया है कि जो लोग केवल शास्त्रों का पाठ मात्र रट लेते हैं और उनके अर्थों का विचार नहीं करते, वे लोग वास्तव में शास्त्रज्ञ नहीं होते।

अज्झावयाणं पडिकूल-भासी, पभाससे किण्णु सगासि अम्हं।
अवि एयं विणस्सउ अण्णपाणं, ण य णं दाहामु तुम णियंठा!॥१६॥

कठिन शब्दार्थ - **अज्झावयाणं** - अध्यापकों के, **पडिकूलभासी** - प्रतिकूल बोलने वाले, **पभाससे** - बोलता है, **सगासि** - सामने, **विणस्सउ** - विनष्ट हो जाए, **दाहामु** - देंगे, **णियंठा** - हे निर्ग्रन्थ!

भावार्थ - यक्ष के उक्त बचन सुनकर छात्र कहने लगे - अध्यापकों के विरुद्ध बोलने वाले तुम हम लोगों के सामने यह क्या असह्य बात कर रहे हो, भले ही यह आहार-पानी नष्ट हो जाय किन्तु हे निर्ग्रन्थ! इसे तुझे कभी नहीं देंगे।

विवेचन - इस गाथा में अन्य प्रतिपाद्य विषय के साथ इस भाव को भी व्यक्त किया गया है कि प्रतिकूल बोलने वाले को अपने अभिलषित कार्य में सफलता प्राप्त नहीं होती। मुनि के प्रतिकूल भाषण को सुन कर उससे उत्तेजित हो, वे याज्ञिक बोले - 'हे निर्ग्रन्थ! अन्नादि पदार्थ सड़ जावें - नष्ट हो जावें परन्तु तुमको नहीं देंगे।'

समिईहिं मज्झं सुसमाहियस्स, गुत्तीहि गुत्तस्स जिइंदियस्स।
जइ मे ण दाहित्थ अहेसणिज्जं, किमज्ज जण्णाण लहित्थ लाहं?॥१७॥

कठिन शब्दार्थ - **समिईहिं** - समितियों से युक्त, **मज्झं** - मुझ, **सुसमाहियस्स** - सुंदर समाधि वाले, **गुत्तीहि** - गुप्तियों से, **गुत्तस्स** - गुप्त, **जिइंदियस्स** - जितेन्द्रिय को, **ण दाहित्थ** - नहीं दोगे, **अह** - यह, **एसणिज्जं** - एषणीय आहार, **किं** - क्या, **अज्ज** - आज, **जण्णाणं** - यज्ञों का, **लहित्थ** - प्राप्त करेंगे, **लाहं** - लाभ को।

भावार्थ - छात्रों की बात सुन कर यक्ष कहने लगा-'पांच समिति से सुसमाधि वाले मुझे तथा तीन गुप्तियों से गुप्त इन्द्रियों को जीतने वाले मुझे यदि यह एषणीय आहार नहीं दोगे तो हे आर्यों! तुम लोग यज्ञ का क्या लाभ प्राप्त करोंगे?'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - जैसे मधु घृत आदि पदार्थ किसी सुंदर और स्वच्छ पात्र में डाले हुए ही सुरक्षित और अपने रूप में रह सकते हैं। उसी प्रकार सुपात्र को दिया हुआ दान ही फलीभूत होता है, कुपात्र को नहीं। जो साधु पांच समितियों से समित, तीन गुप्तियों से गुप्त तथा इन्द्रियों का निग्रह करने वाला है वही सुपात्र है। यक्ष ने उन छात्रों को कहा कि मैं सुपात्र के गुणों से युक्त हूँ और तुम यज्ञ कर रहे हो अतः सुपात्र को दान दे कर ही तुम इस आरंभ से किये हुए यज्ञ को सफल कर लो।

के इत्थ खत्ता उवजोइया वा, अज्झावया वा सह खंडिएहिं।
एयं खु दंडेण फलेण हंता, कंठम्मि घित्तूण खलिज्ज जो णं॥१८॥

कठिन शब्दार्थ - **के** - कौन, **इत्थ** - यहाँ पर, **खत्ता** - क्षत्रिय, **उवजोइया** - उपज्योतिष्क-अग्नि के पास रहने वाले, **अज्झावया** - अध्यापक, **सह** - साथ, **खंडिएहिं** - छात्रों के, **दंडेण** - दण्ड (डंडे) से, **फलेण** - फल से अथवा काष्ठ के पहिये से, **हंता** - मार कर, **कंठम्मि** - कंठ से, **घित्तूण** - पकड़ कर, **खलिज्ज** - निकाल दो।

भावार्थ - उपरोक्त बात सुन कर यज्ञ के प्रधान अध्यापक ने कहा यहाँ कोई क्षत्रिय अथवा अग्नि के पास रहने वाले छात्रों सहित, कोई अध्यापक है, यदि कोई हो तो इस साधु को डंडे से और फल से अथवा मुष्टि प्रहार से मार कर तथा कंठ पकड़ कर बाहर निकाल दो।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा से यह स्पष्ट होता है कि क्रोध के वशीभूत होकर योग्य मनुष्य भी अयोग्य काम करने को उद्यत हो जाता है।

छात्रों द्वारा तांड़व

अज्झावयाणं वयणं सुणित्ता, उद्धाइया तत्थ बहू कुमारा।
दंडेहिं वित्तेहिं कसेहिं चेव, समागया तं इसिं तालयंति॥१९॥

कठिन शब्दार्थ - **उद्धाइया** - दौड़ते हुए, **दंडेहिं** - डंडों से, **वित्तेहिं** - बैंतों से, **कसेहिं** - कसों (चाबुकों) से, **समागया** - आए, **तं** - उस, **इसिं** - मुनि को, **तालयंति** - पीटने लगे।

भावार्थ - अध्यापक का वचन सुन कर बहुत-से कुमार वहाँ तेजी से दौड़ आये और आये हुए वे सभी मिल कर उस मुनि को डंडों से बेंतों से और चाबुकों से मारने लगे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भद्रा राजकुमारी का प्रयास

रण्णो तहिं कोसलियस्स धूया, भद्दत्ति णामेण अणिंदियंगी।
तं पासिया संजय हम्ममाणं, कुद्धे कुमारे परिणिव्ववेइ॥२०॥

कठिन शब्दार्थ - **रण्णो** - राजा, **कोसलियस्स** - कौशलिक की, **धूया** - पुत्री, **अणिंदियंगी** - सुंदर अंगों वाली - अनिन्द्य सुंदरी, **संजयं** - संयमी को, **हम्ममाणं** - मारते हुए, **कुद्धे** - कुपित हुए, **परिणिव्ववेइ** - सर्व प्रकार से शांत करने लगी।

भावार्थ - वहाँ उस साधु को मारते हुए देख कर भद्रा नाम वाली अनिन्दितांगी (सुन्दर अंग वाली) कोशल देश के राजा की पुत्री कुपित हुए उन कुमारों को शांत करने लगी।

मुनि का तपोबल माहात्म्य

देवाभिओगेण णिओइएणं, दिण्णा मु रण्णा मणसा ण झाया।
णरिंद देविंदऽभिवंदिएणं, जेणामि वंता इसिणा स एसो॥२१॥

कठिन शब्दार्थ - **देवाभिओगेण** - देवता के अभियोग से, **णिओइएणं** - प्रेरणा से, **दिण्णा मु** - मैं दी गई थी, **मणसा** - मन से भी, **ण झाया** - इच्छा नहीं की, **णरिंद** - राजा, **देविंद** - इन्द्र के, **अभिवंदिएणं** - वंदनीय, **जेण** - जिन, **वंता** - त्याग दिया, **इसिणा** - ऋषि ने।

भावार्थ - देव के अभियोग से प्रेरित हुए कोशल देश के राजा द्वारा मैं इन मुनि को दी गई थी, किन्तु इन मुनि ने मुझे मन से भी नहीं चाहा। नरेन्द्र और देवेन्द्र से नमस्कार किये गये जिन ऋषि द्वारा मैं त्यागी गई थी वे ये ही मुनिराज हैं।

विवेचन - राजकुमारी भद्रा के कहने का अभिप्राय यह है कि आप लोग इस मुनि का इस प्रकार से जो अपमान कर रहे हो वह सर्वथा अयोग्य है। जिसने मेरी जैसी सुन्दरी को अति तुच्छ समझ कर त्यागते हुए अपनी संयमनिष्ठा की दृढ़ता का प्रत्यक्ष परिचय दिया हो ऐसे निस्पृह और शांत महात्मा की आशातना करना इससे अधिक और कौनसा जघन्य काम है अतः इस मुनि का अपमान करने के बदले इनकी अधिक से अधिक सेवा भक्ति करनी चाहिये।

एसो हु सो उग्गतवो महप्पा, जिइंदिओ संजओ बंभयारी।
जो मे तया णेच्छइ दिज्जमाणिं, पिउणा सयं कोसलिएण रण्णा॥२२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **उग्गतवो** - उग्र तप वाला, **महप्पा** - महात्मा, **णेच्छइ** - नहीं चाहते, **दिज्जमाणिं** - दी हुई को, **पिउणा** - पिता द्वारा, **सयं** - स्वयं।

भावार्थ - ये वे ही उग्र तप करने वाले जितेन्द्रिय संयत (संयति), ब्रह्मचारी महात्मा हैं, जिन्होंने उन समय स्वयं कोशल देश के राजा मेरे पिताजी द्वारा दी जाती हुई मुझे अंगीकार नहीं की एवं मन से भी चाहना न की।

महाजसो एस महाणुभागो, घोरव्वओ घोर-परक्कमो य।
मा एयं हीलेह अहीलणिज्जं, मा सव्वे तेएण भे णिद्दहिज्जा॥२३॥

कठिन शब्दार्थ - **महाजसो** - महान् यश वाला, **महाणुभागो** - महाप्रभावशाली, **घोरव्वओ** - घोर व्रत वाला, **य** - और, **घोरपरक्कमो** - घोर पराक्रम वाला, **हीलेह** - हीलना करो, **अहीलणिज्जं** - अहीलनीय - हीलना के योग्य नहीं, **तेएण** - तेज से, **मा णिद्दहिज्जा** - भस्म न कर दें।

भावार्थ - ये घोर व्रत वाले विषय कषाय आदि जीतने के लिए घोर पराक्रम करने वाले महायशस्वी और महा प्रभावशाली महात्मा हैं। ये हीलना करने योग्य नहीं हैं, इनकी अवहेलना मत करो, कहीं ये आप सभी को अपने तेज से भस्म न कर दें।

एयाइं तीसे वयणाइं सुच्चा, पत्तीइ भद्दाइ सुभासियाइं।
इसिस्स वेयावडियट्ठयाए, जक्खा कुमारे विणिवारयंति॥२४॥

कठिन शब्दार्थ - **पत्तीइ** - पत्नी, **सुभासियाइं** - सुभाषित, **वेयावडियट्ठयाए** - वैयावृत्य करने के लिए, **विणिवारयंति** - रोकने लगे।

भावार्थ - यज्ञशाला के अधिपति की पत्नी उस भद्रा के इन सुभाषित वचनों को सुन कर ऋषि की वैयावृत्य करने के लिए यक्ष उन ब्राह्मण कुमारों को रोकने लगे।

यक्ष द्वारा कुमारों की दुर्दशा

ते घोररूवा ठिय अंतलिक्खे, असुरा तहिं तं जणं तालयंति।
ते भिण्णदेहे रुहिरं वमंते, पासित्तु भद्दा इणमाहु भुज्जो॥२५॥

कठिन शब्दार्थ -**घोररूवा** - भयानक रूप वाले, **ठिय** - स्थिति, **अंतलिक्खे** - अन्तरिक्ष (आकाश) में, **असुरा** - असुर भारापन्न, **जणं** - जनों को, **भिण्णदेहे** - भिन्न शरीर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वाले, **रुहिरं** - रुधिर का, **वमंते** - वमन करने को, **पासित्तु** - देख कर, **भद्दा** - भद्रा, **इणं**- इस प्रकार, **आहु** - कहने लगी।

भावार्थ - रौद्र रूप धारण किये हुए असुरभाव वाले वे यक्ष आकाश में रह कर वहां यज्ञशाला में उस कुमार वर्ग को मारने लगे। यक्षों के प्रहारों से भिन्न-देह वाले रुधिर का वमन करते हुए उन कुमारों को देख कर भद्रा ने पुनः यह कहा।

मुनि की आशातना का दुष्परिणाम

गिरिं णहेहिं खणह, अयं दंतेहिं खायह।
जायतेयं पाएहिं हणह, जे भिक्खुं अवमण्णह॥२६॥

कठिन शब्दार्थ - **गिरिं** - पर्वत को, **णहेहिं** - नखों से, **खणह** - खोदते हो, **अयं** - लोहे को, **दंतेहिं** - दांतों से, **खायह** - चबाते हो, **जायतेयं** - अग्नि को, **पाएहिं** - पैरों से, **हणह** - कुचलते हो, **अवमण्णह** - अपमान करते हो।

भावार्थ - तो तुम लोग भिक्षु का अपमान कर रहे हो मानो पर्वत को नखों से खोद रहे हो लोहे को दांतों से चबा रहे हो और अग्नि को पांवों से कुचल रहे हो।

विवेचन - जैसे नखों से पहाड़ नहीं खोदा जा सकता, किन्तु नख ही टूट जाते हैं। दाँतों से लोह चबाने का प्रयास करने में दांत ही टूट जाते हैं और अग्नि को पाँवों से रौंदने से पाँव जल जाते हैं, इसी प्रकार भिक्षु का अपमान तुम्हीं लोगों के लिये दुःखकारी है।

महर्षि का गुणानुवाद

आसीविसो उग्गतवो महेसी, घोरव्वओ घोरपरक्कमो य।
अगणिं व पक्खंद पयंगसेणा, जे भिक्खुयं भत्तकाले वहेह॥२७॥

कठिन शब्दार्थ - **आसीविसो** - आशीविष लब्धि वाले, **उग्गतवो** - उग्र तपस्वी, **घोरव्वओ** - घोरव्रती, **घोरपरक्कमो** - घोर पराक्रमी, **अगणिं** - अग्नि में, **पक्खंद** - कूदते हैं, **पयंगसेणा** - पतंग सेना-पतंगो का दल, **भत्तकाले** - भिक्षा काल में, **वहेह** - मारते हैं।

भावार्थ - ये महर्षि आशीविष लब्धि वाले, कठोर तप करने वाले, दुष्कर व्रत वाले और घोर पराक्रम वाले हैं, जो तुम भिक्षा के समय इस भिक्षुक को मार रहे हो सो मानो अपने ही नाश के लिए पतंगों के झुण्ड के समान अग्नि में गिर रहे हो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - भद्रा ने कहा कि यह मुनि आशीविष लब्धि से युक्त है अर्थात् जैसे आशीविष नाम का सर्प महा भयंकर होता है उसी प्रकार ये महर्षि भी लब्धि संपन्न होने से शाप देने और अनुग्रह करने में समर्थ है। घोर व्रतों के आचरण करने वाले घोर, पराक्रम शाली, महातपस्वी महान् पुण्य के उदय से भिक्षा के लिए यहां उपस्थित हुए हैं। अतः इन्हें भिक्षा देने के स्थान पर तुम इन्हें मार रहे हो। तुम्हारा यह प्रयास ठीक वैसा ही है जैसा कि पतंगों की सेना का अग्नि में कूद कर उसको बुझाने के लिए प्रयास करना अर्थात् जिस प्रकार पतंगे अग्नि में गिर कर उसको बुझाने के बदले स्वयं ही जल जाते हैं उसी प्रकार आप लोग भी मुनि को क्या मारोगे, आप स्वयं नष्ट हो जाओगे।

सीसेण एयं सरणं उवेह, समागया सव्वजणेण तुब्भे।
जइ इच्छह जीवियं वा धणं वा, लोगं वि एसो कुविओ डहेज्जा॥२८॥

कठिन शब्दार्थ - **सीसेण** - मस्तक से, **सरणं** - शरण, **उवेह** - ग्रहण करो, **समागया** - इकट्ठे होकर, **सव्वजणेण** - सब लोगों के साथ, **इच्छह** - चाहते हो, **जीवियं** - जीवन, **धणं** - धन, **कुविओ** - कुपित होने पर, **डहेज्जा** - जलाने में समर्थ है।

भावार्थ - यदि तुम जीवन अथवा धन चाहते हो तो सभी मनुष्यों के साथ आये हुए वे सब मिल कर मस्तक झुका कर प्रणाम करते हुए इनकी शरण ग्रहण करो, क्योंकि कुपित हुआ यह महर्षि लोक को भी जला सकता है।

विवेचन - भद्रा के उपर्युक्त कथन का रहस्य यह है कि यह मुनि शांति का अगाध समुद्र है, परम निस्पृही है अतः इसकी शरण में जाने से तुम्हारे जीवन और धन की रक्षा होने के अलावा तुमको परम शांति और अभीष्ट सिद्धि का भी लाभ होगा।

छात्रों की दुर्दशा का वर्णन

अवहेडिय-पिट्ठिसउत्तमंगे, पसारिया बाहू अकम्मचिट्ठे।
णिब्भेरियच्छे रुहिरं वमंते, उड्ढं मुहे णिग्गय जीहणेत्ते॥२९॥
ते पासिया खंडिय कट्ठभूए, विमणो विसण्णो अह माहणो सो।
इसिं पसाएइ सभारियाओ, हीलं च णिंदं च खमाह भंते!॥३०॥

कठिन शब्दार्थ - **अवहेडिय** - नीचे गिरा हुआ, **पिट्ठि** - पीठ पर्यन्त, **सउत्तमंगे** -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मस्तक, **पसारिया** - फैली हुई, **बाहू** - भुजाएं, **अकम्मचिट्ठे** - क्रिया चेष्टा रहित, **णिब्भेरियच्छे** - फटी हुई आंखें, **रुहिरं वमंते** - मुख से रुधिर निकल रहा था, **उड्ढं मुहे** - ऊपर की ओर मुंह किये हुए, **णिग्गयजीहणेत्ते** - निकली हुई जीभ और आंखें, **कट्ठभूए** - काष्ट की तरह-निश्चेष्ट, **विमणो** - मन उदास, **विसण्णो** - विषाद युक्त, **माहणो** - ब्राह्मण, **पसाएइ** - प्रसन्न करने लगा, **सभारियाओ** - पत्नी सहित, **हीलं** - हीलना, **णिंदं** - निंदा, **खमाह** - क्षमा करे।

भावार्थ - जिनके सुन्दर मस्तक पीठ की ओर नीचे झुका दिये गये थे, जिनकी भुजाएं फैली हुई थी जो कर्मचेष्टा से शून्य हो गये थे, जो आँखें फाड़े हुए थे, जो ऊपर की ओर मुंह किये हुए थे, जिनकी जीभ और आँखें निकली हुई थीं, ऐसे रुधिर का वमन करते हुए उन छात्रों को काष्ठवत् निश्चेष्ट, देख कर इसके बाद शून्य चित्त और खेदखिन्न हुआ वह यज्ञवाट का अधिपति रुद्रदेव ब्राह्मण अपनी भार्या के साथ ऋषि को प्रसन्न करने लगा और कहने लगा, हे भगवन्! हमसे की गई अवज्ञा और निंदा के लिए आप क्षमा कीजिये।

विवेचन - यक्ष के कोप से उन कुमारों की जो दशा हो रही थी उसी का दिग्दर्शन इस गाथा में किया गया है।

सोमदेव ने जब उन कुमारों की ऐसी दशा देखी तो उन्हें बहुत पश्चात्ताप हुआ और अपनी भार्या भद्रा को साथ में लेकर ऋषि को प्रसन्न करने के लिए अपने अपराधों की क्षमा मांगने लगा।

बालेहि मूढेहि अयाणएहिं, जं हीलिया तस्स खमाह भंते!।
महप्पसाया इसिणो हवंति, ण हु मुणी कोवपरा हवंति॥३१॥

कठिन शब्दार्थ - **बालेहि** - बालकों ने, **मूढेहि** - मूढों ने, **अयाणएहिं** - अज्ञानियों ने, **हीलिया** - अवहेलना की है, **महप्पसाया** - महा प्रसन्नचित्त, **कोवपरा** - कोप युक्त।

भावार्थ - हे भगवन्! इन मूढ अज्ञानी बालकों ने जो आपकी अवहेलना की है उसके लिए क्षमा कीजिये। ऋषि तो अति प्रसन्नचित्त एवं कृपालु होते हैं, मुनि निश्चय ही कोप करने वाले नहीं होते।

पुव्विं च इण्हिं च अणागयं च, मणप्पओसो ण मे अत्थि कोई।
जक्खा हु वेयावडियं करेंति, तम्हा हु एए णिहया कुमारा॥३२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **पुव्विं** - पहले, **इण्हिं** - अब, **अणागयं** - अनागत, **मणप्पओसो**- मन में द्वेष, **वेयावडियं** - वैयावृत्य (सेवा), **णिहया** - प्रताड़ित किये गये हैं।

भावार्थ - मुनि कहने लगे - पहले और इस समय तथा आगे भविष्य में किसी प्रकार का मेरे मन में द्वेष नहीं था, न अभी है और न आगे होगा किन्तु यक्ष मेरी वैयावृत्य करता है। इसी से उसी के द्वारा ये कुमार मारे गये हैं एवं काठ के समान निश्चेष्ट किये गये हैं।

विवेचन - मुनि ने ब्राह्मणों से कहा - मैं तो शत्रु और मित्र दोनों पर समभाव रखने वाला हूँ। अतः मैंने इन कुमारों का किसी प्रकार का अनिष्ट नहीं किया, किन्तु मेरी सेवा में रहने वाले यक्ष का यह कोप अवश्य है और उसी के द्वारा कुमारों की यह दशा हुई है। इस प्रकार मुनि ने ब्राह्मणों की शंका का समाधान किया।

अत्थं च धम्मं च वियाणमाणा, तुब्भे ण वि कुप्पह भूइपण्णा।
तुब्भं तु पाए सरणं उवेमो, समागया सव्वजणेण अम्हे॥३३॥

कठिन शब्दार्थ - **अत्थं** - अर्थ को, **धम्मं** - धर्म को, **वियाणमाणा** - यथार्थ रूप से जानने वाले, **भूइपण्णा** - भूतिप्रज्ञ - रक्षा करने की बुद्धि से युक्त, **अम्हे** - हम, **पाए** - चरणों में, **उवेमो** - ग्रहण करते हैं।

भावार्थ - ब्राह्मण कहने लगे - शास्त्रों के अर्थ और धर्म को जानते हुए मंगलकारी प्रज्ञा वाले आप कभी कुपित नहीं होते। अतएव हम सभी लोग मिल कर आप ही के चरणों की शरण में आये हैं।

विवेचन - अध्यापकों ने मुनि चरणों में शरण पाने की इच्छा से कहा कि - 'आप सब का कल्याण चाहते हैं, किसी का विनाश नहीं, आप में सब के लिए रक्षा की बुद्धि है अतः हम सब मिल कर आप की शरण में आये हैं।'

आहारग्रहण की प्रार्थना

अच्चिमो ते महाभाग, ण ते किंचि ण अच्चिमो।
भुंजाहि सालिमं कूरं, णाणावंजण-संजुयं॥३४॥

कठिन शब्दार्थ - **अच्चिमो** - पूजा (अर्चना) करते हैं, **ण अच्चिमो** - अर्चन योग्य न हो, **भुंजाहि** - भोजन करिये, **सालिमं कूरं** - शालिमय चावलों का, **णाणावंजण** - नाना प्रकार के व्यंजनों से, **संजुयं** - संयुक्त।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

भावार्थ - हे महाभाग! आपकी हम पूजा करते हैं आपकी कोई भी वस्तु (चरण-रज तक) ऐसी नहीं है जिसे हम न पूजते हों। हे भगवन्! नाना प्रकार के व्यंजनों से युक्त शालि से बना हुआ भात का आप भोजन कीजिये।

इमं च मे अत्थि पभूयमण्णं, तं भुंजसु अम्ह अणुग्गहट्ठा।
बाढं त्ति पडिच्छइ भत्त-पाणं, मासस्स उ पारणए महप्पा॥३५॥

कठिन शब्दार्थ - **पभूयं** - प्रभूत (प्रचुर), **अण्णं** - अन्न, **भुंजसु** - भोजन करिये, **अणुग्गहट्ठा** - अनुग्रहार्थ, **बाढं** - स्वीकार है, **पडिच्छइ** - ग्रहण करता है, **भत्तपाणं** - आहार पानी को, **मासस्स** - मासखमण के, **पारणए** - पारणे में, **महप्पा** - महात्मा।

भावार्थ - यह सामने मेरा बहुत-सा भोजन है। हम पर अनुग्रह करने के लिए इसका आप भोजन कीजिये। ब्राह्मण के यह कहने पर वे महात्मा 'ठीक है' इस प्रकार कह कर मासखमण तप के पारणे में वे आहार-पानी ग्रहण करते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में सोमदेव की प्रार्थना पर हरिकेश बल मुनि द्वारा भिक्षा ग्रहण करने का उल्लेख किया गया है।

आहार दान का प्रभाव

तहियं गंधोदय-पुप्फवासं, दिव्वा तहिं वसुहारा य वुट्ठा।
पहयाओ दुंदुहीओ सुरेहिं, आगासे अहोदाणं च घुट्ठं॥३६॥

कठिन शब्दार्थ - **तहियं** - उस समय, **गंधोदय** - गन्धोदक, **पुप्फवासं** - पुष्पों की वर्षा, **दिव्वा** - प्रधान, **तहिं** - वहाँ, **वसुहारा** - द्रव्य की, **वुट्ठा** - वर्षा हुई, **पहयाओ** - बजाई, **दुंदुहीओ** - दुंदुभियाँ, **सुरेहिं** - देवों ने, **आगासे** - आकाश में, **अहोदाणं**- अहोदान का, **घुट्ठं** - घोष किया।

भावार्थ - उस समय मुनि के आहार लेने पर देवों ने सुगन्धित जल और पुष्पों की वर्षा की और वहाँ देवों ने दिव्य (श्रेष्ठ) धन की धाराबद्ध वर्षा की देवों ने दुंदुभियाँ तथा अन्य बाजे बजाये और उन्होंने आकाश में 'अहो दान! अहो दान! आश्चर्यकारी दान!' इस प्रकार घोषणा की।

विवेचन - सुपात्रदान के प्रभाव से देवों द्वारा पंच दिव्यों का प्रकटीकरण किया गया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तप का माहात्म्य

सक्खं खु दीसइ तवो विसेसो, ण दीसइ जाइविसेस कोई।
सोवागपुत्तं हरिएस साहुं, जस्सेरिसा इड्ढि महाणुभागा॥३७॥

कठिन शब्दार्थ - **सक्खं** - साक्षात्, **दीसइ** - दिखाई देता है, **तवो विसेसो** - तप का विशेष, **जाइविसेस** - जाति का विशेष, **जस्स** - जिसकी, **एरिसा** - इस प्रकार की, **इड्ढि** - ऋद्धि, **महाणुभागा** - माहात्म्य।

भावार्थ - निश्चय ही साक्षात् तप का महात्म्य दिखाई देता है जाति की विशेषता कुछ भी दिखाई नहीं देती चांडाल के पुत्र हरिकेश मुनि को देखो जिनकी इस प्रकार की महाप्रभावशाली ऋद्धि है।

विवेचन - मुनि के तपोबल की प्रत्यक्ष महिमा को देख कर ब्राह्मण जाति का नहीं गुणों का महत्त्व समझ गये।

जैन धर्म का उद्घोष है कि किसी भी वर्ण, जाति, देश, वेष या लिंग का व्यक्ति हो अगर वह रत्नत्रय (सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यक् चारित्र) की निर्मल साधना करता है तो उसके लिए मोक्ष के द्वार खुले हैं। यही इस गाथा का आशय है।

हरिकेशबल मुनि का उपदेश

किं माहणा जोइ-समारभंता, उदएण-सोहिं बहिया विमग्गहा।
जं मग्गहा बाहिरियं विसोहिं, ण तं सुदिट्ठं कुसला वयंति॥३८॥

कठिन शब्दार्थ - **माहणा** - ब्राह्मणों, **जोइसमारंभता** - अग्नि का समारंभ करते हुए, **उदएण** - जल से, **सोहिं** - शुद्धि को, **बहिया** - बाह्य (बाहर से) **मग्गहा** - खोजते हो, **विसोहिं** - विशुद्धि को, **सुदिट्ठं** - सुदृष्ट, **कुसला** - कुशल पुरुष, **वयंति** - कहते हैं।

भावार्थ - मुनि कहने लगे कि - हे ब्राह्मणो! आप अग्नि का आरम्भ करते हुए जल से बाह्य शुद्धि की क्यों खोज करते हो? अर्थात् आप लोग यज्ञ और स्नान से बाह्य शुद्धि क्यों चाहते हो? जो आप बाह्य विशुद्धि की खोज करते हो वह सुदृष्ट नहीं है अर्थात् महात्मा लोगों ने अपनी ज्ञान-दृष्टि में उसे अच्छा नहीं समझा है, ऐसा तत्त्व-ज्ञान में कुशल व्यक्ति कहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - मुनि ने ब्राह्मणों को विनीत और उपशांत जान कर हितकारी उपदेश देते हुए कहा कि बाह्य शुद्धि से अंतरंग शुद्धि की इच्छा रखना भूल है।

कुसं च जूवं तण-कट्ठ-मग्गिं, सायं च पायं उदयं फुसंता।
पाणाइ भूयाइ विहेडयंता, भुज्जो वि मंदा पगरेह पावं॥३९॥

कठिन शब्दार्थ - कुसं - कुश (डाभ), जूवं - यूप-यज्ञस्तंभ, तण - तृण, कट्ठं - काष्ठ, अग्गिं - अग्नि, सायं - संध्या, पायं - प्रातःकाल, उदयं - जल को, फुसंता - स्पर्श करते हुए, पाणाइ - प्राणी, भूयाइ - भूतों का, विहेडयंता - विनाश करते हुए, भुज्जो - पुनः पुनः, मंदा - मंदबुद्धि, पगरेह - करते हो, पावं - पाप को।

भावार्थ - हे मन्दबुद्धि वालो! कुश (डाभ), यज्ञ-स्तम्भ तृण, काष्ठ और अग्नि, इन्हें ग्रहण करते हुए तथा प्रातःकाल और संध्या समय पानी का स्पर्श करते हुए और प्राणी तथा भूतों की हिंसा करते हुए आपकी शुद्धि होना तो दूर रहा किन्तु और भी पाप का संचय करते हो।

विवेचन - बाह्य यज्ञादि क्रियाओं से प्राण, भूत, जीव, सत्त्व का विनाश होने से जीव पाप कर्मों का संचय करता है।

यज्ञ विषयक जिज्ञासा

कहं चरे भिक्खु वयं जयामो, पावाइं कम्माइं पणुल्लयामो।
अक्खाहि णे संजय! जक्ख-पूइया!, कहं सुजट्ठं कुसला वयंति?॥४०॥

कठिन शब्दार्थ - जयामो - यज्ञ करें, पावाइं कम्माइं - पापकर्मों को, पणुल्लयामो - दूर करें, अक्खाहि - कहो, णे - हम को, जक्खपूइया - यक्ष पूजित।

भावार्थ - हे भिक्षुक! हम लोग किस प्रकार प्रवृत्ति करें और कैसे यज्ञ करें, जिससे कि पाप कर्मों को दूर कर सकें, हे यक्ष से पूजित! हे संयत (संयति)! हमें कहिये कि कुशल तत्त्वज्ञ पुरुष किस प्रकार सुन्दर यज्ञ का प्रतिपादन करते हैं।

विवेचन - इस गाथा में यज्ञ के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिये ब्राह्मणों ने मुनि से प्रश्न किया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुनि का समाधान

छज्जीवकाए असमारभंता, मोसं अदत्तं च असेवमाणा।
परिग्गहं इत्थिओ माण-मायं, एयं परिण्णाय चरंति दंता॥४१॥

कठिन शब्दार्थ - **छज्जीवकाए** - छह जीव काय के जीवों का, **असमारंभता** - समारम्भ नहीं करते, **मोसं** - मृषावाद, **अदत्तं** - चोरी का, **असेवमाणा** - सेवन नहीं करते हुए, **परिग्गहं** - परिग्रह को, **इत्थिओ** - स्त्रियाँ, **परिण्णाय** - जान कर, **दंता** - इन्द्रियों का करने वाले।

भावार्थ - इन्द्रियों का दमन करने वाले महात्मा, षड्जीवनिकाय की हिंसा नहीं करते हुए और झूठ तथा अदत्तादान का सेवन नहीं करते हुए परिग्रह स्त्रियाँ मान, माया, क्रोध और लोभ इन्हें ज्ञ परिज्ञा से जान कर तथा प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्याग कर प्रवृत्ति करते हैं। इसी प्रकार आप लोगों को भी प्रवृत्ति करनी चाहिये।

सुसंवुडो पंचहिं संवरेहिं, इह जीवियं अणवकंखमाणो।
वोसट्ठ-काओ सुइ-चत्तदेहो, महाजयं जयइ जण्णसिट्ठं॥४२॥

कठिन शब्दार्थ - **सुसंवुडो** - सुसंवृत, **पंचहिं** - पांच, **संवरेहिं** - संवरों से, **अणवकंखमाणो** - आकांक्षा नहीं करते हुए, **वोसट्ठकाओ** - व्युत्सृष्ट काय - शरीर की आसक्ति का त्याग कर चुका है, **सुइचत्तदेहो** - शुचित्यक्तदेहाः शुचि, देहासक्ति का त्यागी, **महाजयं** - कर्म शत्रुओं पर विजय पाने वाले, **जण्ण** - यज्ञ, **सिट्ठं** - श्रेष्ठ।

भावार्थ - पांच संवर द्वारा भलीभांति आस्रव का निरोध करने वाला, यहाँ मनुष्य जीवन में असंयमी जीवन नहीं चाहने वाला, शरीर का त्याग किया हुआ अर्थात् शरीर की परवाह न करके परीषह (उपसर्ग) सहने वाला, निर्मल व्रत वाला, शरीर का त्याग करने वाला अर्थात् शरीर पर ममत्व न रखने वाला महात्मा महान् जय वाले, श्रेष्ठ यज्ञ का अनुष्ठान करता है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में श्रेष्ठ यज्ञ की विधि करने वालों का कथन किया गया है। मुनि फरमाते हैं कि जिन पुरुषों ने संवर द्वारा हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह रूप आस्रवों का निरोध किया है, जो इस जन्म में असंयत जीवन जीने की इच्छा नहीं रखते हैं, शीतोष्ण आदि परीषहों को सहन करने के लिए जिन्होंने शरीर के ममत्व का त्याग कर दिया है, जो कषायों के त्याग और व्रतों के पालन से पवित्र हो रहे हैं तथा देहादि के लिए किसी प्रकार का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अभिमान न होने से जो त्यक्त देह कहलाते हैं वे ही पुरुष कर्म रूप वैरियों के विनाश करने वाले परम श्रेष्ठ आध्यात्मिक यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले हैं।

यज्ञ के साधन

के ते जोई के य ते जोइठाणा, का ते सुया किं च ते कारिसंगं?
एहा य ते कयरा संति भिक्खू?, कयरेण होमेण हुणासि जोइं?॥४३॥

कठिन शब्दार्थ - जोई - ज्योति - अग्नि, **जोइठाणा** - अग्नि का स्थान (अग्नि कुण्ड), **सुया** - स्त्रोता (घी आदि डालने की कुड़छी) **कारिसंगं** - अग्नि प्रदीप्त करने का साधन, **एहा** - समिधा (ईधन) **संति** - शांति पाठ, **होमेण** - होम से, **हुणासि** - हवन करते हैं।

भावार्थ - हे भिक्षु! आपके अग्नि कौनसी है और आपके अग्नि का स्थान कौनसा हैं? आपके कुड़छी कौनसी है और आपके अग्नि को प्रज्वलित करने के लिए कंडा कौनसा है? आपके लकड़ियाँ और पाप का शमन करने वाला शान्ति-पाठ कौनसा हैं तथा किस होम से अर्थात् किस वस्तु की आहूति देकर आप अग्नि को प्रसन्न करते हो?

तवो जोई जीवो जोइठाणं, जोगा सुया सरीरं कारिसंगं।
कम्मेहा संजम-जोग-संती, होमं हुणामि इसिणं पसत्थं॥४४॥

कठिन शब्दार्थ - तवो - तप, **जोगा** - योग, **कम्मेहा** - कर्म समिधा है, **संजमजोग**- संयम की प्रवृत्ति, **इसिणं** - ऋषियों के लिए, **पसत्थं** - प्रशस्त।

भावार्थ - तप रूप अग्नि है। जीव अग्नि का स्थान है। मन, वचन और काया के शुभ व्यापार कुड़छी रूप है। शरीर तप रूप अग्नि को उद्दीपन करने के लिए कंडा रूप है। अष्ट कर्म लकड़ी रूप है। संयम के व्यापार पाप शमन के लिए शान्ति-पाठ रूप हैं। इस प्रकार मैं ऋषियों द्वारा, प्रशंसा किया गया सम्यक् चारित्र रूप होम करता हूँ अर्थात् सम्यक् चारित्र रूप हवन-वस्तु से तप रूप अग्नि को प्रसन्न करता हूँ।

विवेचन - मुनि ने अहिंसामय आध्यात्मिक यज्ञ के विषय में पूछे गये ब्राह्मणों के प्रश्नों के क्रमशः जो उत्तर दिये हैं। वे इस प्रकार हैं -

प्रश्न - आपके यज्ञ में अग्नि क्या है?

उत्तर - तप रूप अग्नि है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

प्रश्न - अग्नि कुण्ड कौनसा है?

उत्तर - जीवात्मा।

प्रश्न - अग्निकुण्ड में जिसके द्वारा चरु आदि की आहुति दी जाती है वह स्रुव-स्रोआ कौन सा है?

उत्तर - मन, वचन और काया रूप योग।

प्रश्न - यज्ञ की सामग्री कौनसी है?

उत्तर - शरीर।

प्रश्न - यज्ञ के लिए समिधा कौन-सी है?

उत्तर - शुभाशुभ कर्म।

प्रश्न - शांति पाठ कौनसा है?

उत्तर - संयम व्यापार।

प्रश्न - किस हवन से अग्नि को प्रसन्न करते हो?

उत्तर - उक्त प्रकार के हवन से अग्नि को प्रसन्न करते हैं जो ऋषियों के लिए प्रशस्त है।

यज्ञ के स्वरूप का निश्चय करने के बाद अब ब्राह्मण लोग स्नानादि क्रिया के विषय में पूछते हैं -

के ते हरए के य ते संति-तित्थे?, कहंसि ण्हाओ व रयं जहासि?।
आइक्ख णे संजय! जक्ख-पूइया!, इच्छामो णाउं भवओ सगासे॥४५॥

कठिन शब्दार्थ - हरए - ह्रद (जलाशय), संतितित्थे - शांति तीर्थ, ण्हाओ - स्नान करते हुए, रयं - कर्म रज को, जहासि - छोड़ते हो, आइक्ख - बताइये, जक्खपूइया- हे यक्ष पूजित, इच्छामो - चाहते हैं, णाउं - जानने को, भवओ - आपके, सगासे - समीप।

भावार्थ - आपके स्नान करने के लिए जलाशय कौनसा है और आपके शान्ति तीर्थ अर्थात् पापों को शांत करने वाला तीर्थ कौनसा है अथवा कहाँ स्नान करके आप कर्म-रज का त्याग करते हो? हे यक्षों से पूजित! संयत (संयति) हमें बतलाइये हम आपके पास से जानना चाहते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में ब्राह्मणों ने मुनि से तीन प्रश्न पूछे हैं - १. जलाशय २. शांतिरूप तीर्थ और ३. स्नान करने का स्थान कौनसा है? मुनि द्वारा दिया गया उत्तर इस प्रकार है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धम्मे हरए बंभे संति-तित्थे, अणाविले अत्त-पसण्णलेसे।
जहिंसि ण्हाओ विमलो विसुद्धो, सुसीइभूओ पजहामि दोसं॥४६॥

कठिन शब्दार्थ - धम्मे - धर्म, बंभे - ब्रह्मचर्य, अणाविले - अनाविल - निर्मल-कलुष भाव से रहित, अत्तपसण्णलेसे - आत्मा प्रसन्न लेश्या है, विमलो - विमल-भावमल से रहित, विसुद्धो - विशुद्ध - कर्म कलंक रहित, सुसीइभूओ - सुशीतीभूत - अत्यंत शीतल होकर, पजहामि - दूर करता है, दोसं - दोष को।

भावार्थ - मिथ्यात्वादि से जो अकलुषित है तथा जहाँ प्राणियों को प्रसन्न (शुभ) लेश्या की प्राप्ति होती है ऐसा धर्म रूप जलाशय है और ब्रह्मचर्य रूप शांति-तीर्थ है जहाँ पर स्नान करके विमल (कर्ममल रहित), विशुद्ध एवं कषायाग्नि के शान्त हो जाने से अत्यन्त शीतल हुआ मैं दोष (पाप) को दूर करता हूँ।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में आध्यात्मिक स्नान और उसके साधनों की जानकारी दी गई है जो प्रश्नोत्तर रूप में इस प्रकार है -

प्रश्न - स्नान के लिए जलाशय कौनसा है?

उत्तर - अहिंसा रूप धर्म।

प्रश्न - उस जलाशय का तीर्थ-सौपान कौन है?

उत्तर - ब्रह्मचर्य और शांति।

प्रश्न - किसमें स्नान करने से कर्म रज दूर होता है?

उत्तर - ब्रह्मचर्य और शांति तीर्थ में स्नान करने से कर्म रज से रहित हुआ यह आत्मा प्रसन्न लेश्या वाला होता है।

प्रश्न - क्या इस जलाशय में स्नान करने से आत्मा निर्मल शुद्ध हो जाता है?

उत्तर - हाँ, इसी जलाशय में स्नान करने से आत्मा कर्ममल से रहित होकर विशुद्ध हो जाता है।

प्रश्न - आप किस जलाशय में स्नान करके परमशांति को प्राप्त होते हुए कर्म मल को छोड़ते हैं?

उत्तर - मैं उक्त अहिंसा धर्म रूप जलाशय में स्नान करके अत्यंत शांति को प्राप्त होता हुआ कर्मरज को दूर करता हूँ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हम किस जलाशय में स्नान करें?

उत्तर - तुम भी इसी जलाशय में स्नान करके कर्ममल से रहित होने का प्रयत्न करो।

उपसंहार

एयं सिणाणं कुसलेहि दिट्ठं, महासिणाणं इसिणं पसत्थं।
जहिंसि ण्हाया विमला विसुद्धा, महारिसी उत्तमं ठाणं पत्ते॥४७॥ त्ति बेमि॥

॥ हरिएसिज्जं बारहं अज्झयणं समत्तं॥

कठिन शब्दार्थ - **कुसलेहि** - कुशल पुरुषों ने, **दिट्ठं** - देखा है, **महासिणाणं** - महा स्नान, **महारिसी** - महर्षि, **उत्तमं** - उत्तम, **ठाणं** - स्थान को, **पत्ते** - प्राप्त हो गए।

भावार्थ - तत्त्वज्ञान में कुशल पुरुषों ने अपने ज्ञान में कर्ममल को दूर करने वाला यह स्नान देखा है, यही महा-स्नान है और ऋषियों द्वारा इसकी प्रशंसा की गई है। जिस स्नान द्वारा स्नान करने वाले महर्षि लोग कर्म-मल रहित और विशुद्ध होकर उत्तम स्थान (मोक्ष को) प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार मैं कहता हूँ।

विवेचन - जिस स्नान को ब्राह्मणों ने उत्तम समझा है वह स्नान, कर्म मल को दूर करने में समर्थ नहीं किन्तु प्रस्तुत आध्यात्मिक स्नान ही उत्तम और महास्नान है। अतएव इसी स्नान के द्वारा महर्षि लोग उत्तम स्थान मोक्ष को प्राप्त हुए हैं।

॥ इति हरिकेशीय नामक बारहवाँ अध्ययन समाप्त॥

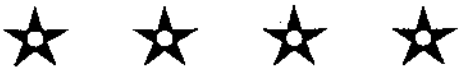

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चित्तसंभूइज्जं तेरहमं अज्झयणं

चित्तसंभूतीय नामक तेरहवां अध्ययन

उत्थानिका - बारहवें अध्ययन में श्रुत और तप का महत्त्व बताया गया है। श्रुत और तप, तब तक शुद्ध रहते हैं जब तक की निदान न किया जाय, क्योंकि निदान का फल अशुभ होता है। इस तेरहवें अध्ययन में आगमकार ने चित्त और संभूत का उदाहरण देकर निदान करने वाले और निदान नहीं करने वाले का प्रत्यक्ष फल प्रदर्शित किया है। यथा -

संभूत एवं चित्त का परिचय

जाइपराइओ खलु, कासी णियाणं तु हत्थिण-पुरम्मि।
चुलणीए बंभदत्तो, उववण्णो पउमगुम्माओ॥१॥
कंपिल्ले संभूओ चित्तो, पुण जाओ पुरिमतालम्मि।
सेट्ठि कुलम्मि विसाले, धम्मं सोऊण पव्वइओ॥२॥

कठिन शब्दार्थ - **जाइपराइओ** - जाति से पराजित, **णियाणं** - निदान, **हत्थिणपुरम्मि**- हस्तिनापुर में, **चुलणीए** - चूलनी की कुक्षि में, **बंभदत्तो** - ब्रह्मदत्त, **उववण्णो** - उत्पन्न हुए, **पउमगुम्माओ** - पद्म गुल्म विमान से, **कंपिल्ले** - कांपिल्य नगर में, **संभूओ** - संभूत, **चित्तो** - चित्त, **पुण** - फिर, **जाओ** - उत्पन्न हुआ, **पुरिमतालम्मि** - पुरिमताल नगर में, **विसाले** - विशाल, **धम्मं** - धर्म को, **सोऊण** - सुनकर, **पव्वइओ** - दीक्षित हो गया।

भावार्थ - संभूत ने पूर्वभव में हस्तिनापुर नगर में चाँडाल जाति के कारण अपमानित एक चक्रवर्ती की ऋद्धि देख कर 'मुझे भी मेरे तप के फलस्वरूप चक्रवर्ती की ऋद्धि प्राप्त हो इस प्रकार निश्चय ही निदान किया था। इस निदान के फलस्वरूप वह सौधर्म नामक पहले देवलोक के पद्मगुल्म विमान से चव कर कांपिल्य नगर में चुलनी रानी के यहाँ ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती हो कर उत्पन्न हुआ और संभूत का पूर्वभव का भाई चित्त पुरिमताल नगर में विशाल सेठ के कुल में उत्पन्न हुआ तथा धर्म को श्रवण कर प्रव्रज्या धारण की।

विवेचन - चांडाल भव में संभूत और चित्त दोनों भाई थे। यहाँ पूर्वभव के नाम से ही

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहे गये हैं। इस भव में संभूत का नाम ब्रह्मदत्त है और चित्त का नाम गुणसार है जो कि पुरिमताल नगर के सेठ धनसार का पुत्र है।

दोनों का मिलन

कंपिल्लम्मि य णयरे, समागया दो वि चित्त-संभूया।
सुह-दुह-फल-विवागं, कहेंति ते इक्कमिक्कस्स॥३॥

कठिन शब्दार्थ - समागया - इकट्ठे मिले, सुह - सुख, दुह - दुःख, फलविवागं - फल विपाक को, कहेंति - कहने लगे, इक्कमिक्कस्स - परस्पर एक दूसरे को।

भावार्थ - कंपिलपुर नगर में चित्त और संभूत दोनों ही एकत्रित हुए और वे परस्पर एक दूसरे को अच्छे बुरे कर्मों के सुख-दुख फल-विपाक कहने लगे।

चक्कवट्टी महिड्ढिओ, बंभदत्तो महायसो।
भायरं बहुमाणेणं, इमं वयणमब्बवी॥४॥

कठिन शब्दार्थ - चक्कवट्टी - चक्रवर्ती, महिड्ढिओ - महार्द्धिक महान् ऋद्धि वाले, महायसो - महान् यशस्वी, भायरं - भाई का, बहुमाणेणं - बहुमान पूर्वक, इमं - इस प्रकार, वयणं - वचन, अब्बवी - कहे।

भावार्थ - महा ऋद्धिशाली, महातपस्वी ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती बहुमानपूर्वक अपने पूर्व-भव के भाई चित्त को इस प्रकार वचन कहने लगा।

आसीमो भायरा दो वि, अण्णमण्णवसाणुगा।
अण्णमण्णमणुरत्ता, अण्णमण्णहिएसिणो॥५॥

कठिन शब्दार्थ - आसि - थे, इमो - हम, अण्णमण्णवसाणुगा - परस्पर (एक दूसरे के) वशवर्ती, अण्णमण्णमणुरत्ता - परस्पर अनुरक्त, अण्णमण्णहिएसिणो - परस्पर हितैषी।

भावार्थ - अपन दोनों ही एक दूसरे के वश रहने वाले, एक-दूसरे से प्रेम करने वाले और एक-दूसरे का हित चाहने वाले भाई थे।

दासा दसण्णे आसी, मिया कालिंजरे णगे।
हंसा मयंगतीराए, सोवागा कासिभूमिए॥६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ- **दासा** - दासपुत्र, **दसण्णे** - दर्शाण देश में, **मिया** - मृग, **कालिंजरे णगे** - कालिंजर पर्वत पर, **हंसा** - हंस, **मयंगतीराए** - मृत गंगा के किनारे, **सोवागा** - चांडाल, **कासिभूमिए** - काशी भूमि में।

भावार्थ - दशार्ण देश में अपन दोनों दास थे, दूसरे भव में कालिंजर पर्वत पर मृग थे। तीसरे भव में मृतगंगा नदी के तीर पर हंस थे, चौथे भव में काशी देश में चांडाल थे।

देवा य देवलोगम्मि, आसी अम्हे महिड्ढिया।
इमा णो छट्ठिया जाई, अण्णमण्णेण जा विणा॥७॥

कठिन शब्दार्थ - **देवलोगम्मि** - देवलोक में, **छट्ठिया** - छठी, **जाई** - जाति (जन्म), **अण्णमण्णेण** - एक दूसरे के स्नेह से, **विणा** - रहित।

भावार्थ - पांचवें भव में अपन दोनों सौधर्म देवलोक में महाऋद्धि सम्पन्न देव थे और यह अपनी छठी जाति (भव) है जो एक दूसरे से पृथक् उत्पन्न हुए हैं।

कम्मा णियाण-प्पगडा, तुमे राय! विचिंतिया।
तेसिं फलविवागेण, विप्पओग-मुवागया॥८॥

कठिन शब्दार्थ - **कम्मा** - कर्मों का, **णियाणप्पगडा** - निदान रूपकृत, **विचिंतिया** - विशेष रूप से चिंतन किया, **फलविवागेण** - फल विपाक से, **विप्पओगं** - वियोग को, **उवागया** - प्राप्त हुए।

भावार्थ - चक्रवर्ती का उक्त कथन सुन कर मुनि ने कहा - हे राजन्! आपने निदान के वश होकर आर्त्तध्यानादि युक्त कर्मों का चिन्तन किया था उन्हीं कर्मों के फल के उदय आने से हम वियोग को प्राप्त हुए हैं।

विवेचन - मुनि ने राजा से कहा - तुमने भोगादि की आशा से निदान पूर्वक कर्म किया और उसके लिए आर्त्तध्यानादि का विशेष रूप से चिंतन किया अतः उन्हीं कर्मों के फल विपाक से तेरा और मेरा इस छठे भव में वियोग हो गया।

जिसके द्वारा तप आदि क्रियाएं खंडित हो उसे निदान कहते हैं - "**नितरां दीयंते खंडयन्ते तपः प्रभृतीन्यनेनेति निदानम्**"। अब चक्रवर्ती पुनः पूछता है -

सच्च-सोयप्पगडा, कम्मा मए पुरा कडा।
ते अज्ज परिभुंजामो, किण्णु चित्ते वि से तहा॥९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - सच्चसोयप्पगडा - सत्य-शौच-प्रकर्षता से, **मए** - मैंने, **पुराकडा** - पूर्व जन्म में किए, **अज्ज** - आज, **परिभुंजामो** - सर्व प्रकार से भोगता हूँ।

भावार्थ - मुनि का कथन सुन कर ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती कहने लगा कि मैंने पूर्वभव में सत्य और शौच युक्त अनुष्ठान वाले कर्म किये थे उन्हें आज (इस भव में) भोग रहा हूँ, क्या चित्त तुम भी उन्हें उसी प्रकार भोग रहे हो?

विवेचन - ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के कहने का आशय यह है कि हे चित्त! तुमने भी मेरे साथ शुभ कर्मों का उपार्जन किया था किन्तु तुम्हारे वे कर्म निष्फल हो गये? तुम्हें उनका फल नहीं मिला।

सव्वं सुचिण्णं सफलं णराणं, कडाण कम्माण ण मोक्ख अत्थि।
अत्थेहि कामेहि य उत्तमेहिं, आया ममं पुण्णफलोववेए॥१०॥

कठिन शब्दार्थ - सव्वं - सभी, **सुचिण्णं** - सुचीर्ण - अच्छा किया हुआ कर्म, **सफलं**- सफल, **णराणं** - नरों का, **कडाण** - किए हुए, **कम्माण** - कर्मों के, **मोक्खो** - मोक्ष, **ण अत्थि** - नहीं, **अत्थेहि** - धन से, **कामेहि** - कामभोगों से, **उत्तमेहिं** - उत्तम, **आया** - आत्मा, **ममं** - मेरा, **पुण्ण** - पुण्य रूप, **फलोववेए** - फल से उपपेत।

भावार्थ - चित्त मुनि कहने लगे कि - हे ब्रह्मदत्त! मनुष्यों के सभी तप आदि शुभ अनुष्ठान फल सहित होते हैं। फल भोगे बिना किये हुए कर्मों से छुटकारा नहीं होता अर्थात् शुभाशुभ कर्म अवश्य ही अपना फल देते हैं। मेरी आत्मा भी उत्तम द्रव्य और मनोज्ञ शब्दादि काम-भोगों से युक्त एवं पुण्य के फलस्वरूप शुभ-कर्मों के फल से युक्त थी।

विवेचन - जो कर्म किए गए हैं उनको भोगे बिना मोक्ष छुटकारा किसी जीव का भी नहीं होता।

जाणासि संभूय! महाणुभागं, महिड्ढियं पुण्णफलोववेयं।
चित्तं वि जाणाहि तहेव रायं, इड्ढी जुई तस्स वि य प्पभूया॥११॥

कठिन शब्दार्थ - जाणासि - जानते हो, **महाणुभागं** - महानुभाग, **महिड्ढियं** - महर्द्धिक, **पुण्णफलोववेयं** - पुण्य फल से युक्त, **जाणाहि** - समझो, **प्पभूया** - प्रचुर, **इड्ढी**- ऋद्धि, **जुई** - द्युति।

भावार्थ - हे संभूत-ब्रह्मदत्त! आप अपने को जिस प्रकार महाप्रभावशाली, महा ऋद्धिसम्पन्न एवं पुण्य (शुभकर्मों के श्रेष्ठ) फल से युक्त जानते हैं, हे राजन्! चित्त को भी अर्थात् मुझे भी उसी प्रकार जानो, क्योंकि उसके भी अर्थात् मेरे भी ऋद्धि और द्युति प्रचूर थी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महत्थरूवा वयणप्पभूया, गाहाणुगीया णरसंघ-मज्झे।
जं भिक्खुणो सीलगुणोववेया, इहं जयंते समणो म्हि जाओ॥१२॥

कठिन शब्दार्थ - महत्थरूवा - महार्थ रूप वाली, **वयणप्पभूया** - अल्प अक्षरों वाली, **गाहाणुगीया** - गाथा गाई, **णरसंघमज्झे** - जनसमुदाय में, **सीलगुणोववेया** - शील गुण से युक्त होकर, **जयंते** - अर्जित करते हैं, **समणो** - श्रमण।

भावार्थ - जिस गाथा को सुन कर भिक्षु शील गुण से (ज्ञान और चारित्र से) युक्त होकर इस जिन-शासन में यत्नवंत होते हैं ऐसी महान् अर्थ वाली और थोड़े अक्षरों वाली गाथा का स्थविर मुनियों ने जनसमुदाय में प्रतिपादन किया। उसी गाथा को सुन कर मैं साधु हुआ हूँ।

विवेचन - चित्त मुनि कहते हैं मैंने किसी दुःख से व्याप्त होकर दीक्षा अंगीकार नहीं की किन्तु इन लौकिक सुखों की अपेक्षा विशेष अधिक और अविनाशी मोक्ष सुख की अभिलाषा से इनका त्याग किया है।

चक्रवर्ती का समृद्धि वर्णन

उच्चोयए महु कक्के य बंभे, पवेइया आवसहा य रम्मा।
इमं गिहं चित्त! धणप्पभूयं, पसाहि पंचाल-गुणोववेयं॥१३॥

कठिन शब्दार्थ - उच्चोयए - उच्च उदक, **महु** - मधु, **कक्के** - कर्क, **बंभे** - ब्रह्म, **पवेइया** - कहे गए हैं, **आवसहा** - आवास, प्रासाद, **रम्मा** - रमणीय, **गिहं** - घर, **धणप्पभूयं** - धन से प्रभूत, **पंचाल गुणोववेयं** - पांचाल देश के गुणों से युक्त, **पसाहि** - स्वीकार करो।

भावार्थ - ब्रह्मदत्त कहने लगा कि उच्च+उदक, मधु, कर्क और मध्य तथा ब्रह्म ये पांच प्रकार के प्रासाद (भवन) कहे गये हैं, वे मेरे यहाँ हैं तथा मेरे और भी रमणीय भवन हैं। हे चित्त! इन्हें तथा प्रचुर धन से युक्त और पांचाल देश के विशिष्ट शब्दादि गुण युक्त इस भवन का तुम उपभोग करो।

चक्रवर्ती द्वारा मुनि को भोगों का आमंत्रण

णट्टेहिं गीएहि य वाइएहिं, णारी-जणाहिं परिवारयंतो।
भुंजाहि भोगाइ इमाइ भिक्खू!, मम रोयइ पव्वज्जा हु दुक्खं॥१४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - णट्टेहिं - नाटकों से, **गीएहि** - गीतों से, **वाइएहिं** - वाद्यों से, **णारीजणाहिं** - नारी जनों के, **परिवारयंतो** - परिवार से घिरे हुए, **भुंजाहि** - भोगों, **मम** - मुझे, **रोयइ** - रुचता है, **पव्वज्जा** - प्रव्रज्या, **दुक्खं** - दुःख रूप।

भावार्थ - हे भिक्षुक! नाट्य अथवा नृत्य, गीत और वादित्र में दक्ष ऐसी स्त्रियों के परिवार से युक्त होकर इन भोगों का उपभोग करो। प्रव्रज्या मुझे निश्चय ही दुःखकारी प्रतीत होती है।

विवेचन - ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती चित्तमुनि से कहते हैं कि - हे मुने! आप इन कामभोगों को भोगो। ये मुझे रुचते है किन्तु आपका प्रव्रज्या ग्रहण करना मुझे अत्यन्त दुःख रूप प्रतीत होता है।

इस प्रकार विषयजन्य लौकिक सुखों के लिए स्नेह पूर्वक आमंत्रित करने पर उक्त मुनि ने जो प्रवृत्ति अंगीकार की, अब उसी का सूत्रकार दिग्दर्शन कराते हैं -

तं पुव्वणेहेण कयाणुरागं, णराहिवं कामगुणेसु गिद्धं।
धम्मस्सिओ तस्स हियाणुपेही, चित्तो इमं वयण-मुदाहरित्था॥१५॥

कठिन शब्दार्थ - पुव्वणेहेण - पूर्व स्नेह से, **कयाणुरागं** - कृतानुराग-अनुरक्त, **णराहिवं**- नराधिप को, **कामगुणेसु** - काम गुणों में, **गिद्धं** - गृद्ध (आसक्त) **धम्मस्सिओ** - धर्म में स्थिर, **हियाणुपेही** - हितानुप्रेक्षी - हित की चाहना करने वाला, **वयणं** - वचन, **उदाहरित्था**- कहने लगा।

भावार्थ - पूर्वजन्म के स्नेह वश अनुराग करने वाले और शब्दादि काम-गुणों में आसक्ति वाले उस चक्रवर्ती से धर्म में स्थित और उस चक्रवर्ती का हित चाहने वाले चित्त मुनि इस प्रकार वचन कहने लगे।

विवेचन - यद्यपि ब्रह्मदत्त विषयों में अति मूर्च्छित हो रहा है और इसीलिए वीतराग के धर्म में दीक्षित होने को वह दुःख रूप समझ रहा है फिर भी पूर्व भव के स्नेह से और हित बुद्धि से वह धर्मात्मा मुनि उसके लिए उपदेश करने में प्रवृत्त हुआ। इसमें मुनि का परहित कांक्षा और दृढ़तर धर्मनिष्ठा का जो शब्दचित्र सूत्रकार ने खींचा है वह वर्तमान के मुनिजनों के लिए अधिक मननीय है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुनि द्वारा भोगों को छोड़ने का उपदेश

सव्वं विलवियं गीयं, सव्वं णट्टं विडंबियं।
सव्वे आभरणा भारा, सव्वे कामा दुहावहा॥१६॥

कठिन शब्दार्थ - **सव्वं** - सर्व, **विलवियं** - विलाप रूप, **गीयं** - गीत, **णट्टं** - नाटक, **विडंबियं** - विडम्बना, **आभरणा** - आभरण - आभूषण, **भारा** - भार रूप, **कामा**- कामभोग, **दुहावहा** - दुःखावहा - दुःखों के देने वाले।

भावार्थ - हे राजन्! सभी गीत विलाप रूप हैं। सभी नाट्य-नृत्य विडम्बना है। सभी आभूषण भार रूप हैं और सभी पांच इन्द्रियों के मनोज्ञ विषय दुःख प्राप्त कराने वाले हैं।

विषयजन्य सुख की लघुता

बालाभिरामेसु दुहावहेसु, ण तं सुहं कामगुणेसु रायं।
विरत्तकामाण तवोधणाणं, जं भिक्खूणं सीलगुणे रयाणं॥१७॥

कठिन शब्दार्थ - **बालाभिरामेसु** - बाल जीवों को प्रिय लगने वाले, **दुहावहेसु** - दुःखों के देने वाले, **ण तं सुहं**- वह सुख नहीं, **विरत्तकामाण** - कामभोगों से विरक्त, **तवोधणाणं**- तपोधनों को, **सीलगुणे** - शील गुणों में, **रयाणं** - रत।

भावार्थ - हे राजन्! बाल-अज्ञानी जीवों को प्रिय लगने वाले किन्तु अन्त में दुःख प्राप्त कराने वाले मनोज्ञ शब्दादि काम-गुणों में वह सुख नहीं है जो काम-भोगों से विरक्त शील और गुण में रत रहने वाले तप रूप धन वाले भिक्षुओं को होता है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में त्यागशील और मननशील साधु पुरुषों और विषयजन्य सुख की लालसा रखने वाले संसारी पुरुषों के सुख में जो अन्तर है उसका दिग्दर्शन कराया गया है।

णरिंद! जाई अहमा णराणं, सोवागजाई दुहओ गयाणं।
जहिं वयं सव्वजणस्स वेस्सा, वसीअ सोवाग णिवेसणेसु॥१८॥

कठिन शब्दार्थ - **णरिंदे** - हे नरेन्द्र!, **अहमा** - अधम, **णराणं** - नरों में, **सोवागजाई**- श्वपाक - चांडाल जाति में, **दुहओ** - दोनों, **गयाणं** - गये, **जहिं** - जहां पर, **वयं** - हम, **सव्वजणस्स** - सर्वजन को, **वेस्सा** - द्वेष के कारण, **वसीअ** - बसे, **सोवाग णिवेसणेसु** - श्वपाक - चांडाल के घर में।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - हे नरेन्द्र! पूर्वभव में हम दोनों को जो (श्वपाक) चांडाल जाति प्राप्त हुई थी, वह मनुष्यों में अधम जाति थी, जहाँ हम सभी लोगों के द्वेष पात्र (अप्रीति भाजन) थे और श्वापक अर्थात् चांडाल के घरों में रहते थे।

विवेचन - चित्त मुनि कहते हैं कि जाति का अभिमान व्यर्थ है क्योंकि यह प्राणी जिस प्रकार के कर्म करता है उसी के अनुसार वह शुभाशुभ फल को भोगता है परन्तु हीन जाति में उत्पन्न होकर भी मनुष्य यदि शुभ कर्म करे तो वह निंदनीय नहीं होता।

तीसे य जाईए उ पावियाए, वुच्छामु सोवाग-णिवेसणेसु।
सव्वस्स लोगस्स दुगुंछणिज्जा, इहं तु कम्माइं पुरेकडाइं॥१९॥

कठिन शब्दार्थ - **जाईए** - जाति में, **पावियाए** - पाप रूप में, **वुच्छामु** - बसे (रहते थे), **दुगुंछणिज्जा** - निंदनीय, **कम्माइं** - कर्मों का, **पुरेकडाइं** - पूर्व जन्म में किये हुए।

भावार्थ - उस पापकारी जाति में श्वपाक अर्थात् चांडाल के घरों में अपन दोनों रहते थे तथा सभी लोगों के लिए जुगुप्सनीय (घृणा योग्य) थे, यहाँ उस चांडाल जाति की हीन स्थिति की अपेक्षा जो विशेषता दिखाई देती है वह तो पूर्वकृत कर्म ही हैं अर्थात् पूर्वजन्म में किये हुए शुभ कर्मों के फलस्वरूप ही हमें यह विशेषता प्राप्त हुई है।

सो दाणिसिं राय! महाणुभागो, महिड्ढिओ पुण्णफलोववेओ।
चइत्तु भोगाइं असासयाइं, आयाणहेउं अभिणिक्खमाहि॥२०॥

कठिन शब्दार्थ - **दाणिसिं** - इस समय, **राय** - राजा, **चइत्तु** - छोड़कर, **असासयाइं**- अशाश्वत, **भोगाइं** - भोगों को, **आयाणहेउं** -, चारित्र के हेतु, **अभिणिक्खमाहि** - घर से निकल जाओ।

भावार्थ - हे राजन्! जो तुम पूर्वभव में संभूत नामक चांडाल थे और अनगार बन कर धर्मक्रिया का आचरण करके तुमने शुभ कर्मों का उपार्जन किया, उन्हीं शुभ कर्मों के फलस्वरूप तुम इस समय महाप्रभावशाली, महाऋद्धि सम्पन्न और पुण्य-फल से युक्त हो। इस प्रकार धर्म का फल प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है अतएव अशाश्वत भोगों को छोड़ कर चारित्र के लिए निकल जाओ - प्रव्रज्या धारण करो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धर्माचरण न करने वालों के लिए हानि

इह जीविए राय! असासयम्मि, धणियं तु पुण्णाइं अकुव्वमाणो।
से सोयइ मच्चुमुहोवणीए, धम्मं अकाऊण परम्मि लोए॥२१॥

कठिन शब्दार्थ - जीविए - जीवन में, राय - हे राजन्!, असासयम्मि - अशाश्वत, धणियं - अधिक, पुण्णाइं - पुण्य कर्म, अकुव्वमाणो - नहीं करता हुआ, सोयइ - शोक करता है, मच्चु - मृत्यु के, मुहोवणीए - मुख में पहुँचने पर, धम्मं - धर्म के, अकाऊण - बिना किये, परम्मि लोए - परलोक में।

भावार्थ - हे राजन्! इस अशाश्वत जीवन में जो व्यक्ति अतिशय रूप से पुण्य कर्म नहीं करने वाला है वह धर्म का आचरण न कर मृत्यु मुख में प्राप्त हो कर परलोक विषयक शोक करता है कि हाय! मैंने धर्म का आचरण नहीं किया, इसी प्रकार दुर्गति में दुःख भोगते हुए भी उसे धर्माचरण न करने के लिए सदा पश्चात्ताप होता रहता है।

विवेचन - इस अशाश्वत मानव जीवन में धर्म नहीं करने वाला व्यक्ति मृत्यु के आगमन पर और परलोक में पश्चात्ताप करता है।

मृत्यु के समय कोई रक्षक नहीं

जहेह सीहो व मियं गहाय, मच्चू णरं णेइ हु अंतकाले।
ण तस्स माया व पिया व भाया, कालम्मि तम्मंसहरा हवंति॥२२॥

कठिन शब्दार्थ - जहा - जैसी, इह - इस लोक में, सीहो - सिंह, मियं - मृग को, गहाय - पकड़ कर, मच्चू - मृत्यु, णरं - मनुष्य को, णेइ - ले जाती है, अंतकाले - अंत समय में, माया - माता, पिया - पिता, भाया - भाई, कालम्मि - अंत समय में, अंसहरा - अंशधर।

भावार्थ - जिस प्रकार यहाँ लोक में सिंह, मृग को पकड़ कर ले जाता है इसी प्रकार अंत समय में मृत्यु भी मनुष्य को निश्चय ही परलोक में ले जाती है अर्थात् जैसे मृग, सिंह से पकड़ा जाने पर अपने को नहीं बचा सकता, उसी प्रकार मृत्यु का ग्रास होने पर मनुष्य भी अपने को नहीं बचा सकता, उस समय उसके माता अथवा पिता अथवा भाई उसके जीवन की रक्षा के लिए अपने जीवन का अंश देने वाले नहीं होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ण तस्स दुक्खं विभयंति णाइओ, ण मित्तवग्गा ण सुया ण बंधवा।
इक्को सयं पच्चणु होइ दुक्खं, कत्तारमेव अणुजाइ कम्मं॥२३॥

कठिन शब्दार्थ - **ण विभयंति** - विभाग नहीं कर सकते, **दुक्खं** - दुःख का, **णाइओ**- ज्ञाति जन, **ण मित्तवग्गा** - न मित्र वर्ग, **ण सुया** - न पुत्र, **ण बंधवा** - न बंधु, **एक्को** - अकेला, **सयं** - स्वयं, **पच्चणु होइ** - भोगता है, **कत्तारमेव** - कर्त्ता का ही, **अणुजाइ** - अनुसरण करता है।

भावार्थ - उस पापी जीव के दुःख को जाति वाले नहीं बंटा सकते, न मित्र-मंडली न पुत्र न बन्धु लोग ही उसके दुःख में भाग ले सकते हैं। वह स्वयं अकेला ही दुःख भोगता है, क्योंकि कर्म कर्त्ता का ही अनुसरण करता है (कर्त्ता को ही कर्मों का फल भोगना पड़ता है)।

विवेचन - जैसे हजारों गौओं में से बछड़ा अपनी माता को ढूंढ़ लेता है अथवा जैसे पुरुष की छाया पुरुष के पीछे ही जाती है उसी प्रकार कर्म भी कर्त्ता के पीछे ही जाता है अर्थात् जिसने कर्म किए हैं वह जीव अकेला ही अपने किये हुए कर्म के फलस्वरूप दुःख का स्वयमेव अनुभव करता है। ज्ञातिजन आदि कोई भी उसके दुःखों का विभाग नहीं कर सकता है।

एकत्व भावना

चिच्चा दुपयं च चउप्पयं च, खेत्तं गिहं धण्णधणं च सव्वं।
सकम्मबीओ अवसो पयाइ, परं भवं सुंदर पावगं वा॥२४॥

कठिन शब्दार्थ - **चिच्चा** - छोड़ कर, **दुपयं** - द्विपद को, **चउप्पयं** - चतुष्पद को, **खेत्तं** - क्षेत्र को, **गिहं** - गृह को, **धण्ण** - धान्य, **धणं** - धन को, **सकम्मबीओ** - कर्म सहित दूसरा, **अवसो** - परवशता से, **पयाइ** - प्राप्त करता है, **परं भव** - परभव को, **सुंदर**- सुन्दर, **पावगं** - असुंदर (पाप युक्त)।

भावार्थ - यह आत्मा द्विपद और चतुष्पद, क्षेत्र, घर, धान्य और धन और वस्त्रादि इन सभी को यहीं छोड़ कर परवश होकर अपने शुभाशुभ कर्मों के साथ सुन्दर स्वर्गादि अथवा पापकारी नरकादि रूप परभव में जाता है।

विवेचन - जिन पदार्थों पर इस जीव का अत्यंत प्रेम था मृत्यु के समय उन सब को छोड़ कर परवश होकर आत्मा स्वकृत कर्म के अनुसार अकेली ही उत्तम या अधम गति को प्राप्त कर लेती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मृत्यु के पश्चात् शरीर की गति

तं इक्कगं तुच्छ - सरीरगं से, चिइगयं दहिउं पावगेणं।
भज्जा य पुत्ता वि य णायओ य, दायार-मण्णं अणुसंकमंति॥२५॥

कठिन शब्दार्थ - **इक्कगं** - एकाकी, **तुच्छ** - तुच्छ, **सरीरगं** - शरीर को, **चिइगयं** - चिता पर रखे हुए, **दहिउं** - जल कर, **पावगेणं** - अग्नि से, **भज्जा** - भार्या, **पुत्तावि** - पुत्र भी, **णायओ** - जाति के लोग, **अण्णं**- अन्य, **दायारं** - दातार-आश्रय दाता का, **अणुसंकमंति**- अनुसरण करते हैं।

भावार्थ - उस परभव में गये हुए जीव के अकेले (जीव रहित हुए) उस असार शरीर को चिता में रख कर और पावक अर्थात् अग्नि के द्वारा जला कर ज्ञाति वाले स्त्री और पुत्र भी दूसरे दाता का अर्थात् इष्ट वस्तुओं का संपादन एवं स्वार्थ की पूर्ति कराने वाले व्यक्ति का अनुसरण करते हैं और मृतात्मा को याद तक नहीं करते।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में संसार की अनित्यता, स्वार्थ परायणता और इस शरीर की अंतिम दशा का बहुत ही सुंदर चित्रण किया गया है।

धर्माचरण का उपदेश

उवणिज्जइ जीवियमप्पमायं, वण्णं जरा हरइ णरस्स रायं!
पंचालराया! वयणं सुणाहि, मा कासी कम्माइं महालयाइं॥२६॥

कठिन शब्दार्थ - **उवणिज्जइ** - चला जा रहा है, **जीवियं** - जीवन, **अप्पमायं** - अप्रमाद - प्रमाद रहित, **वण्णं** - वर्ण का, **जरा** - वृद्धावस्था, **हरइ** - हरण करती है, **वयणं** - वचन को, **सुणाहि** - सुन, **महालयाइं** - महाहिंसक।

भावार्थ - चित्त मुनि कहते हैं कि हे राजन्! यह जीवन बिना प्रमाद के अर्थात् आवीचिमरण द्वारा निरन्तर मृत्यु के समीप ले जाया जा रहा है अर्थात् हम प्रतिक्षण मृत्यु के अधिकाधिक समीप पहुँच रहे हैं। बुढ़ापा मनुष्य का वर्ण (शरीर की कान्ति का) हरण करता है, शरीर की कान्ति को क्षीण करता है)। हे पांचाल देश के राजन्! मेरा वचन सुनो और महान् कर्म बंध कराने वाले महारम्भ आदि कर्म मत करो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - जितना समय व्यतीत हो चुका है उतनी ही इस जीव की मृत्यु निकट आ गई। काल का चक्र निरन्तर चल रहा है, आयु प्रतिक्षण क्षय होती जा रही है। शरीर में जरा के आगमन से दुर्बलता और क्षीणता का समावेश होता चला जा रहा है। अतः हे राजन्! मेरे वचनों को श्रद्धा पूर्वक सुन कर तुम महाहिंसक कर्म का त्याग क्यों नहीं कर देते?

अहं वि जाणामि जहेह साहू, जं मे तुमं साहसि वक्कमेयं।
भोगा इमे संगकरा हवंति, जे दुज्जया अज्जो! अम्हारिसेहिं॥२७॥

कठिन शब्दार्थ - **जाणामि** - जानता हूँ, **जहा** - जैसे, **इह** - इस संसार में, **साहसि**- कहे हैं, **वक्कं** - वाक्य, **संगकरा** - बंधन कारक, **हवंति** - होते हैं, **अज्जो** - आर्य, **अम्हारिसेहिं** - हमारे जैसों को तो, **दुज्जया** - दुर्जय।

भावार्थ - मुनि का उपदेश सुन कर चक्रवर्ती बोले - हे साधो! जिस प्रकार इस संसार में होता है और यह वचन, जो आप मुझे कह रहे हो उसे मैं भी जानता हूँ किन्तु हे आर्य! ये भोग (शब्दादि विषय) मेरे लिए, प्रतिबंध उत्पन्न करने वाले हो रहे हैं, जो मुझ जैसे लोगों के लिए दुर्जय हैं (इन भोगों पर विजय पाना मेरे लिए दुष्कर है)। मैं इन काम भोगों का त्याग करने में असमर्थ हूँ।

विवेचन - चित्त मुनि का उपदेश सुन कर ब्रह्मदत्त अपनी विवशता (असमर्थता) प्रकट करते हुए कहते हैं कि - 'मैं इन विषयभोगों की असारता, दुष्टता और मोहकता को जानता हुआ भी इनका परित्याग करने में समर्थ नहीं हूँ, ये काम भोग मेरे लिए दुर्जय है।'

निदान की भयंकरता

हत्थिणपुरम्मि चित्ता!, दट्ठूणं णरवइं महिड्ढियं।
कामभोगेसु गिद्धेणं, णियाणमसुहं कडं॥२८॥

कठिन शब्दार्थ - **हत्थिणपुरम्मि** - हस्तिनापुर में, **दट्ठूणं** - देख कर, **णरवइं** - नरपति (चक्रवर्ती), **गिद्धेणं** - आसक्त होकर, **णियाणं** - निदान, **असुहं** - अशुभ, **कडं** - किया था।

भावार्थ - हे चित्त! हस्तिनापुर में महाऋद्धिशाली सनत्कुमार नामक चक्रवर्ती को तथा उसकी ऋद्धि एवं उसकी श्रीदेवी को देख कर काम भोगों में आसक्त बने हुए मैंने अशुभ निदान किया था।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तस्स मे अपडिक्कंतस्स, इमं एयारिसं फलं।

जाणमाणो वि जं धम्मं, कामभोगेसु मुच्छिओ॥२९॥

कठिन शब्दार्थ - अपडिक्कंतस्स - अप्रतिक्रान्त - प्रतिक्रमण नहीं करने से, एयारिसं - ऐसा, फलं - फल, जाणमाणो वि - जानता हुआ भी, मुच्छिओ - मूर्च्छित।

भावार्थ - उस निदान का प्रतिक्रमण न करने से मुझे यह इस प्रकार का फल प्राप्त हुआ है कि जो मैं धर्म को जानता हुआ भी काम-भोगों में आसक्त बना हुआ हूँ।

विवेचन - चक्रवर्ती ने अपनी भूल स्वीकार करते हुए मुनि से कहा कि पूर्वभव में मैंने जो निदान किया था उसी का दुष्ट परिणाम है कि अब मेरे लिए इस विषय भोगों का त्याग अत्यंत कठिन हो रहा है।

हाथी का दृष्टान्त

णागो जहा पंकजलावसण्णो, दट्ठुं थलं णाभिसमेइ तीरं।

एवं वयं कामगुणेसु गिद्धा, ण भिक्खुणो मग्गमणुव्वयामो॥३०॥

कठिन शब्दार्थ - णागो - नाग - हस्ती, पंक - कीचड़ वाले, जलावसण्णो - जल में फंसा हुआ, थलं - स्थल को, णाभिसमेइ - प्राप्त नहीं होता, मग्गं - मार्ग को, अणुव्वयामो - अनुसरण करता।

भावार्थ - जिस प्रकार कीचड़ में फंसा हुआ हाथी स्थल को देख कर भी तीर पर नहीं आ सकता इसी प्रकार शब्दादि कामगुणों में आसक्त हुआ मैं साधु के मार्ग को जानता हुआ भी उसका अनुसरण नहीं कर सकता है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में कामभोगों को दलदल के समान, उनमें आसक्ति रखने वालों को हस्ती के समान तथा साधुमार्ग को स्थल के सदृश बतलाया है।

दलदल में फंसा हाथी वहाँ से निकलने का प्रयत्न तो बहुत करता है और चाहता है कि कीचड़ में से निकल कर स्थल प्रदेश में चला जाऊँ किन्तु वह निकल नहीं सकता, उसी प्रकार कामभोगों में आसक्त पुरुष भी उनसे निकलने की कोशिश करते हैं परन्तु सफल मनोरथ नहीं होते।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कामभोगों की अनित्यता

अच्चेइ कालो तूरंति राइओ, ण यावि भोगा पुरिसाण णिच्चा।
उविच्च भोगा पुरिसं चयंति, दुमं जहा खीणफलं व पक्खी॥३१॥

कठिन शब्दार्थ - **अच्चेइ** - व्यतीत हो रहा है, **तूरंति** - शीघ्र जा रही है, **राइओ** - रात्रियाँ, **पुरिसाण**- मनुष्यों के, **ण णिच्चा** - नित्य नहीं हैं, **उविच्च** - प्राप्त हो कर, **चयंति**- छोड़ देते हैं, **दुमं** - वृक्ष को, **खीणफलं** - क्षीण फल वाले, **पक्खी** - पक्षी।

भावार्थ - अनित्यता दिखाने के लिए मुनि फिर कहने लगे - समय बीत रहा है, रात्रियाँ त्वरित गति से जा रही हैं और पुरुषों के भोग भी नित्य नहीं है। ये भोग पुरुष के पास स्वतः ही आ कर फिर उसे छोड़ देते हैं जिस प्रकार फल रहित हुए वृक्ष को पक्षी छोड़ देते हैं।

विवेचन - यहाँ वृक्ष के फल के समान पुण्य है और पक्षी के समान भोग हैं। जैसे फल नष्ट हो जाने पर पक्षी वृक्ष को छोड़ देते हैं, उसी प्रकार पुण्य नष्ट हो जाने पर भोग भी जीव को छोड़ देते हैं।

आर्य कर्म करने की प्रेरणा

जइ तं सि भोगे चइउं असत्तो, अज्जाइं कम्माइं करेहि रायं!।
धम्मे ठिओ सव्वपयाणुकंपी, तो होहिसि देवो इओ विउव्वी॥३२॥

कठिन शब्दार्थ - **चइउं** - छोड़ने में, **असत्तो** - असमर्थ, **अज्जाइं** - आर्य, **कम्माइं** - कर्म, **करेहि** - कर, **ठिओ** - स्थित होकर, **सव्वपयाणुकंपी** - सर्व प्रजा (जीवों) पर अनुकम्पा करने वाला, **होहिसि** - हो सकेगा, **देवो** - देव, **विउव्वी** - वैक्रिय शरीर वाला।

भावार्थ - हे राजन्! यदि तुम भोगों का त्याग करने में अशक्त हो तो तुम धर्म में स्थिर हो कर सभी प्राणियों पर अनुकंपा रखते हुए आर्य कर्म करो, ऐसा करने से तुम यहां से मर कर वैक्रिय शरीरधारी देव हो जाओगे।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में गृहस्थ धर्म और राजधर्म दोनों धर्मों के फल का भलीभांति दिग्दर्शन कराया गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चित्तमुनि का विहार

ण तुज्झ भोगे चइऊण बुद्धी, गिद्धो सि आरम्भपरिग्गहेसु।
मोहं कओ इत्तिउ विप्पलावो, गच्छामि रायं! आमंतिओ सि॥३३॥

कठिन शब्दार्थ - तुज्झ - तुम्हारी, चइऊण - छोड़ने की, ण बुद्धी - बुद्धि नहीं है, गिद्धोसि - आसक्त हो, आरंभ परिग्गहेसु - आरंभ और परिग्रह में, मोहं कओ - निष्फल किया, इत्तिउ - इतना, विप्पलावो - विप्रलाप, आमंतिओ सि - तुम्हें संबोधित किया।

भावार्थ - मुनि के इतना कहने पर भी जब राजा ने उनका उपदेश न माना, तो मुनि ने उदासीन भाव से कहा तुम्हारी भोगों को छोड़ने की बुद्धि नहीं है और तुम आरम्भ और परिग्रह में आसक्त हो रहे हो, हे राजन्! मैंने व्यर्थ ही इतना विप्रलाप बकवाद किया अतएव अब आपको सूचित कर के मैं जाता हूँ।

ब्रह्मदत्त का नरक गमन

पंचालराया वि य बंभदत्तो, साहुस्स तस्स वयणं अकाउं।
अणुत्तरे भुंजिय काम-भोगे, अणुत्तरे सो णरए पविट्ठो॥३४॥

कठिन शब्दार्थ - अकाउं - स्वीकार नहीं किया, अणुत्तरे - अनुत्तर (उत्कृष्ट), भुंजिय- भोग कर, णरए - नरक में, पविट्ठो - प्रविष्ट हुआ।

भावार्थ - उस साधु के उपदेश का पालन नहीं कर के और प्रधान काम-भोगों को भोग कर वह पंचाल देश का राजा ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती प्रधान नरक में (सातवीं नरक के अप्रतिष्ठान नामक पांचवें नरकावास में) उत्पन्न हुआ।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में निदान पूर्वक किये जाने वाले कर्मों का फल तथा कामभोगों में अत्यंत आसक्ति रखने का दुष्परिणाम बताया गया है।

चित्त का मुक्ति गमन उपसंहार

चित्तो वि कामेहिं विरत्तकामो, उदग्गचारित्ततवो महेसी।
अणुत्तरं संजम पालइत्ता, अणुत्तरं सिद्धिगइं गओ॥ त्ति बेमि॥ ३५॥

॥ तेरसमं अज्झयणं समत्तं॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - विरत्तकामो - विरक्त काम होकर, **उदग्ग** - प्रधान, **चारित्त तवो** - चारित्र और तप, **महेसी** - महर्षि, **अणुत्तरं** - उत्कृष्ट, **संजम** - संयम का, **पालइत्ता** - पालन करके, **सिद्धिगइं** - सिद्धि गति, **गओ** - प्राप्त हुआ।

भावार्थ - शब्दादि विषय-भोगों से विरक्त काम (काम-भोगों की अभिलाषा रहित) हुआ उत्कृष्ट चारित्र और तप वाला महर्षि चित्त भी सर्व श्रेष्ठ संयम का पालन कर सर्व प्रधान सिद्धिगति को प्राप्त हुआ, इस प्रकार मैं कहता हूँ॥३५॥

विवेचन - विषयासक्ति के कारण ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती मर कर सातवीं नरक में गया और चित्त मुनि कामभोगों का सर्वथा त्याग कर तप संयम की आराधना करके सर्वश्रेष्ठ मोक्ष गति को प्राप्त हुए। इस प्रकार कथन कर कामभोगों के कटु परिणाम को और धर्माचरण के शुभ परिणाम को दर्शाया गया है। शास्त्रकारों ने मुमुक्षु पुरुषों के लिए धर्म का ही आचरण सर्वश्रेष्ठ और उपादेय बतलाया है।

॥ इति चित्त संभूतीय नामक तेरहवाँ अध्ययन समाप्त॥

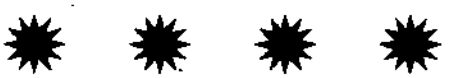

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उसुयारिज्ज णामं चोद्दहमं अज्झयणं

इषुकारीय नामक चौदहवाँ अध्ययन

उत्थानिका - तेरहवें अध्ययन में चित्त मुनि और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के (वर्णन) कथानक के द्वारा विषयभोगों की असारता एवं उसके कटु परिणामों का दिग्दर्शन कराया गया है। प्रस्तुत चौदहवें अध्ययन में राजा इषुकार, रानी कमलावती, भृगु पुरोहित, पुरोहित पत्नी यशा तथा उनके दो पुत्र- इन छह पात्रों का अंतरंग जीवन दर्शन है। ये छहों जीव प्रतिबुद्ध होकर प्रव्रजित हुए थे। यह अध्ययन श्रमण संस्कृति के इस मूल सिद्धान्त का स्पष्ट उद्घोष करता है कि जब हृदय विरक्त हो जाता है तो उसकी प्रव्रज्या के लिए शरीर, उम्र, परिवार, स्वजन आदि कोई भी बाधक नहीं बन सकता है। यह अध्ययन कथात्मक होते हुए भी संवाद प्रधान है। इषुकार राजा की मुख्यता के कारण इसका नाम इषुकारीय रखा गया है। इसकी प्रथम गाथा इस प्रकार है -

देवा भवित्ताण पुरे भवम्मि, केई चुया एग-विमाणवासी।
पुरे पुराणे उसुयार-णामे, खाए समिद्धे सुरलोगरम्मे॥१॥

कठिन शब्दार्थ - **देवा** - देव, **भवित्ताण** - हो कर, **पुरे** - पूर्व, **भवम्मि** - भव में, **केई** - कुछ जीव, **चुया** - च्यव कर, **एगविमाणवासी** - एक विमान में रहने वाले, **पुराणे**- प्राचीन, **उसुयार णामे** - इषुकार नामक, **खाए** - विख्यात, **समिद्धे** - समृद्ध, **सुर लोगम्मे** - देवलोक के समान सुरम्य।

भावार्थ - पूर्व भव में देव हो कर एक विमान में रहने वाले अर्थात् सौधर्म नामक पहले देवलोक के पद्म गुल्म नामक विमान में रहने वाले कितनेक जीव अर्थात् छह जीव चार पल्योपम का आयुष्य पूरा होने पर वहाँ से कुछ आगे पीछे च्यव कर प्राचीन प्रसिद्ध समृद्धिवंत देवलोक के समान रमणीय इषुकार नामक नगर में उत्पन्न हुए।

विवेचन - पूर्वभव में देव हो कर छह जीव समृद्धिशाली इषुकार नगर में उत्पन्न हुए।

सकम्मसेसेण पुराकएणं, कुलेसु दग्गेसु य ते पसूया।
णिव्विण्ण-संसारभया जहाय, जिणिंदमग्गं सरणं पवण्णा॥२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **सकम्मसेसेण** - शेष कर्मों के कारण, **पुराकएणं** - पूर्व जन्म में कृत, **कुलेसु दग्गेसु** - उच्च कुलों में, **पसूया** - उत्पन्न हुए, **णिव्विण्ण** - उद्वेग से युक्त, **संसारभया** - संसार के भय से, **जहाय** - परित्याग कर, **जिणिंदमग्गं** - जिनेन्द्र मार्ग को, **सरणं** - शरण को, **पव्वण्णा** - प्राप्त हुए।

भावार्थ - पूर्वोक्त एक विमान में रहने वाले देव पूर्व जन्म में किये हुए देवगति योग्य कर्मों के फल को भोग कर शेष रहे हुए शुभ कर्मों के फल को भोगने के लिए उत्तम कुल में उत्पन्न हुए और फिर भी संसार के भय से निर्वेद को प्राप्त होते हुए काम-भोगों को छोड़ कर जिनेन्द्र भगवान् के मार्ग की शरण को प्राप्त हुए।

छह जीवों का परिचय

पुमत्तमागम्म कुमार दो वि, पुरोहिओ तस्स जसा य पत्ती।
विसालकित्ती य तहेसुयारो, रायऽत्थ देवी कमलावई य॥३॥

कठिन शब्दार्थ - **पुमत्तं** - पुरुष रूप में, **आगम्म** - आकर, **कुमार दो वि** - दोनों कुमार, **पुरोहिओ** - पुरोहित, **जसा** - यशा, **पत्ती** - पत्नी, **विसालकित्ती** - विशाल कीर्ति वाला, **इसुयारो** - इषुकार, **रायऽत्थ** - इस भव में राजा, **कमलावई** - कमलावती देवी।

भावार्थ - देवलोक से चव कर वे छह जीव इस प्रकार उत्पन्न हुए - विशाल कीर्ति वाला, इषुकार नाम का राजा और उस राजा की कमलावती नाम की पटरानी तथा भृगु नाम का पुरोहित और उसकी यशा नाम की भार्या तथा इनके घर में पुरुष रूप से उत्पन्न होने वाले दो कुमार इस प्रकार वे छह जीव मनुष्य लोक में आकर इषुकार नगर में उत्पन्न हुए।

विवेचन - नगर का नाम 'इषुकार' है इसलिए राजा का नाम भी 'इषुकार' दे दिया गया है। किन्तु ग्रन्थकार के अनुसार राजा का नाम सीमन्धर था और भृगु पुरोहित के दो पुत्रों के नाम देवभद्र और यशोभद्र थे।

टीकाकार के अनुसार इन छहों जीवों में से दो जीव गोवल्लभ नामक गोप के नंददत्त और नंदप्रिय के जीव थे, जो पूर्व जन्म में संयम पालन के कारण देव बने और वहाँ से च्यव कर क्षितिप्रतिष्ठित नगर के जिनदत्त श्रेष्ठी के यहाँ सहोदर भाई के रूप में उत्पन्न हुए। इसी नगर में इनकी मित्रता वसुधर श्रेष्ठी के पुत्र वसुमित्र, वसुदत्त, वसुप्रिय और धनदत्त के साथ हुई। छहों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मित्रों ने स्थविर मुनि से दीक्षा ग्रहण की। तप संयम के प्रभाव से छहों आयुष्य पूर्ण करके सौधर्म नामक पहले देवलोक में पद्मगुल्म नामक विमान में चार पल्योपम की स्थिति वाले देव बने। देवभव का आयुष्य पूर्ण करके वे छहों मित्र इषुकार नगर में उत्पन्न हुए - १. वसुमित्र का जीव भृगुपुरोहित हुआ २. वसुदत्त का जीव पुरोहित की पत्नी यशा हुई ३. वसुप्रिय का जीव इषुकार राजा हुआ ४. धनदत्त का जीव रानी कमलावती हुआ और ५-६. नन्ददत्त तथा नंदप्रिय के जीव भृगुपुरोहित के दो पुत्र हुए।

इन छह जीवों ने पूर्व भव में जो शुभ कर्म उपार्जित किये और उनको भोगने से बचे हुए पुण्य कर्म के प्रभाव से ये छहों पुण्यशाली जीव उच्च कुल (ब्राह्मण और क्षत्रिय) में उत्पन्न हुए।

संसार विरक्त पुरोहित पुत्रों का वर्णन

जाइ-जरा-मच्चुभयाभिभूया, बहिं विहाराभिणिविट्ठ-चित्ता।
संसार-चक्कस्स विमोक्खणट्ठा, दट्ठूण ते कामगुणे विरत्ता॥४॥

कठिन शब्दार्थ - **जाइ** - जन्म, **जरा** - बुढ़ापा, **मच्चु** - मृत्यु, **भयाभिभूया** - भय से अभिभूत, **बहिं** - बाहर (संसार से), **विहाराभिणिविट्ठचित्ता** - मोक्ष की ओर आकृष्ट, **संसारचक्कस्स** - संसार चक्र से, **विमोक्खणट्ठा** - विमुक्त होने के लिए, **दट्ठूण** - देखकर, **कामगुणे** - कामगुणों से, **विरत्ता** - विरक्त।

भावार्थ - जन्म, जरा और मृत्यु के भय से व्याप्त हुए संसार से बाहर अर्थात् मोक्ष में चित्त को स्थापित करने वाले वे दोनों कुमार जैन मुनियों को देख कर संसार-चक्र से छुटकारा पाने के लिए काम-भोगों से विरक्त हो गये।

पियपुत्तगा दोण्णि वि माहणस्स, सकम्मसीलस्स पुरोहियस्स।
सरित्तु पोराणियं तत्थ जाइं, तहा सुचिण्णं तव-संजमं च॥५॥

कठिन शब्दार्थ - **पियपुत्तगा** - प्रिय-पुत्र, **दोण्णि वि** - दोनों ही, **माहणस्स** - ब्राह्मण के, **सकम्मसीलस्स** - स्व कर्म में निरत, **पुरोहियस्स** - पुरोहित के, **सरित्तु** - स्मरण कर के, **पोराणियं जाइं** - पुराने जन्म को, **सुचिण्णं** - सम्यक् प्रकार से आचरित, **तव संजमं** - तप और संयम को।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - ब्राह्मण के योग्य कर्म करने वाले उस भृगु पुरोहित के दोनों प्रिय पुत्रों को जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया जिससे वे पूर्वभव में किये हुए शुद्ध (नियाणा रहित) आचार तप और संयम का स्मरण करने लगे।

ते कामभोगेसु असज्जमाणा, माणुस्सएसु जे यावि दिव्वा।
मोक्खाभिकंखी अभिजाय-सद्धा, तातं उवागम्म इमं उदाहु॥६॥

कठिन शब्दार्थ - कामभोगेसु - कामभोगों में, **असज्जमाणा** - आसक्त नहीं होते हुए, **माणुस्सएसु** - मनुष्य संबंधी, **दिव्वा** - दिव्य, **मोक्खाभिकंखी** - मोक्ष के आकांक्षी - **अभिजायसद्धा** - तत्त्वज्ञान (आत्म-कल्याण) की रुचि वाले, श्रद्धा सम्पन्न, **तातं** - पिता के पास, **उवागम्म** - आकर, **इमं** - इस प्रकार, **उदाहु** - कहने लगे।

भावार्थ - जब उन दोनों कुमारों को जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया तब वे मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों में और जो देव सम्बन्धी काम-भोग हैं उनमें आसक्त न होते हुए मोक्ष की अभिलाषा करते हुए तथा तत्त्व की रुचि वाले दोनों कुमार अपने पिता के पास आकर नम्रतापूर्वक इस प्रकार कहने लगे।

विवेचन - प्रस्तुत गाथाओं में भृगु पुरोहित के दोनों पुत्रों की विरक्ति का वर्णन है। दोनों कुमारों ने जब जैन मुनियों को देखा तब से उन्हें उनके प्रति आकर्षण पैदा हुआ और चिंतन करते हुए उन्हें जाति स्मरण ज्ञान हो गया। इस प्रकार मुनि एवं जातिस्मरण ज्ञान उनकी संसार विरक्ति के निमित्त बने।

आगमकार ने वैराग्यवासित इन दोनों ब्राह्मण पुत्रों के लिए निम्न विशेषण दिये हैं - १. **जाइजरामच्चुभयाभिभूया** - जन्मजरा मरण भय से उद्विग्न २. **विहाराभिणिविट्ठचित्ता** - मोक्ष की ओर आकृष्ट ३. **कामगुणे विरत्ता** - कामगुणों से विरक्त ४. **कामभोगेसु असज्झमाणा**- कामभोगों में अनासक्त ५. **मोक्खाभिकंखी** - मोक्षाभिकांक्षी ६. **अभिजायसद्धा** - श्रद्धा सम्पन्न।

पुत्रों द्वारा दीक्षा की अनुमति मांगना

असासयं दट्ठु इमं विहारं, बहु-अंतरायं ण य दीहमाउं।
तम्हा गिहंसि ण रइं लभामो, आमंतयामो चरिस्सामु मोणं॥७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

कठिन शब्दार्थ - **असासयं** - अशाश्वत, **दट्ठु** - देखकर, **इमं** - इस, **विहारं** - मनुष्य भव को, **बहुअंतरायं** - अनेक अंतरायों वाला, **ण दीहमाउं** - दीर्घ आयुष्य नहीं, **तम्हा** - इसलिए, **गिहंसि** - घर में **रइं** - रति-आनंद को, **ण लभामो** - नहीं पा रहे हैं, **आमंतयामो**- आप से पूछते हैं, **चरिस्सामु** - आचरण करेंगे, **मोणं** - मुनिव्रत को।

भावार्थ - यह मनुष्य जीवन अनित्य एवं क्षण-भंगुर हैं, आयुष्य बहुत थोड़ा है और उसमें भी बहुत विघ्न-बाधाएं हैं, इसलिए इन सब बातों को देख कर हे पिताजी! अब हमको गृहस्थावास में आनंद प्राप्त नहीं होता, अतः हम मुनि वृत्ति को ग्रहण करेंगे, इसके लिए आपकी आज्ञा चाहते हैं।

अह तायगो तत्थ मुणीण तेसिं, तवस्स वाघायकरं वयासी।
इमं वयं वेयविओ वयंति, जहा ण होइ असुयाण लोगो॥८॥

कठिन शब्दार्थ - **तायगो** - पिता ने, **मुणीण** - भाव मुनियों के, **तवस्स** - तप में, **वाघायकरं** - व्याघात करने वाले वचन, **वयासी** - कहे, **वयं** - वचन, **वेयविओ** - वेदों के ज्ञाता, **असुयाण** - पुत्र रहितों का, **लोगो** - परलोक।

भावार्थ - इस प्रकार पुत्रों के आज्ञा मांगने पर उस समय उनका पिता भृगु पुरोहित उन भाव-मुनियों के तप-संयम में विघ्न करने वाला यह वचन कहने लगा कि - 'हे पुत्रो! वेद को जानने वाले पण्डित पुरुष इस प्रकार कहते हैं कि पुत्र-रहित पुरुषों को उत्तम गति की प्राप्ति नहीं होती।

अहिज्ज वेए परिविस्स विप्पे, पुत्ते परिठप्प गिहंसि जाया!
भुच्चाण भोए सह इत्थियाहिं, आरण्णगा होह मुणी पसत्था॥९॥

कठिन शब्दार्थ - **अहिज्ज** - अध्ययन कर, **वेए** - वेदों का, **परिविस्स** - भोजन देकर, **विप्पे** - ब्राह्मणों को, **पुत्ते** - पुत्रों को, **परिठप्प** - स्थापना करके, **गिहंसि** - घर में, **जाया**- हे पुत्रो!, **भुच्चाण** - भोग कर, **भोए** - भोगों को, **सह** - साथ, **इत्थियाहिं** - स्त्रियों के, **आरण्णगा** - आरण्यक, **मुणी** - मुनि, **पसत्था** - प्रशस्त (श्रेष्ठ)।

भावार्थ - इसलिए हे पुत्रो! वेदों को पढ़कर ब्राह्मणों को भोजन करा कर तथा स्त्रियों के साथ भोग भोग कर और पुत्रों को घर का भार सौंप कर फिर तुम वन-वासी प्रशस्त (उत्तम) मुनि बन जाना।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - जब पुरोहित पुत्रों ने अपने पिता से दीक्षा की आज्ञा मांगी तो उन्हें वैदिक मान्यतानुसार रोकते हुए कहा कि अपुत्र व्यक्ति की गति नहीं अर्थात् परलोक नहीं सुधरता क्योंकि मनुस्मृति में कहा है -

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च।
तस्मात् पुत्र मुखं दृष्ट्वा, पश्चात् धर्म समाचरते॥

- पुत्र रहित व्यक्ति की गति नहीं होती, स्वर्ग तो उसे हरगिज नहीं मिलता इसलिए पुत्र का मुख देख कर धर्म का आचरण करना चाहिये।

अतः पहले चारों वेद पढ़कर ब्राह्मणों को भोज्य देकर, स्त्रियों के साथ भोग भोग कर और पुत्र को गार्हस्थ्य भार सौंप कर फिर अरण्यवासी श्रेष्ठ मुनि धर्म स्वीकार करना।

पिता का पुत्रों को प्रलोभन

सोयग्गिणा आय-गुणिंधणेणं, मोहाणिला पज्जलणाहिएणं।
संतत्तभावं परितप्पमाणं, लालप्पमाणं बहुहा बहुं च॥१०॥
पुरोहियं तं कमसोऽणुणंतं, णिमंतयंतं च सुए धणेणं।
जहक्कमं कामगुणेहि चेव, कुमारगा ते पसमिक्ख वक्कं॥११॥

कठिन शब्दार्थ - सोयग्गिणा - शोक रूपी अग्नि से, **आयगुणिंधणेणं** - अपने रागादि गुण रूप ईंधन, **मोहाणिला** - मोह रूपी पवन से, **पज्जलणाहिएणं** - अधिकाधिक प्रज्वलित, **संतत्त भावं** - संतप्त अंतःकरण वाले, **परितप्पमाणं** - परितप्त होते हुए, **लालप्पमाणं** - दीन हीन वचन बोलते हुए, **बहुहा** - बहुत बार, **कमसो** - क्रमशः, **अणुणंतं** - अनुनय करते हुए, **धणेणं** - धन के, **सुए** - पुत्रों को, **जहक्कमं** - यथाक्रम से, **पसमिक्ख** - भली भांति देख कर, **वक्कं** - वचन।

भावार्थ - आत्मगुण रूप ईंधन से युक्त मोह रूपी वायु से अत्यन्त प्रज्वलित होती हुई शोक रूपी अग्नि से संताप एवं परिताप को प्राप्त होते हुए और बहुत प्रकार से अत्यधिक आलाप-संलाप करते हुए तथा क्रम से अनुनय करते हुए और अपने पुत्रों को यथाक्रम से काम-भोगों का और धन का निमंत्रण करते हुए उस भृगुपुरोहित को वे दोनों कुमार विचार कर इस प्रकार वचन कहने लगे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - पुत्रों के संसार त्याग कर मुनि बनने की बात सुन कर भृगु पुरोहित की कैसी मनःस्थिति बनी, उसका इन दोनों गाथाओं में चित्रण किया गया है। मोहावेशवश वह बार-बार दीन-हीन वचनों का प्रयोग करके, धन और भोगों का निमंत्रण (प्रलोभन) देते हुए घर में ही रहने के लिए आजीजी करने लगा किन्तु दोनों कुमारों ने पिता की इस मोहदशा को भलीभांति समझ लिया।

पुत्रों का पिता को समाधान

वेया अहीया ण हवंति ताणं, भुत्ता दिया णिंति तमं तमेणं।
जाया य पुत्ता ण हवंति ताणं, को णाम ते अणुमण्णिज्ज एयं? ॥१२॥

कठिन शब्दार्थ - **वेया** - वेदों को, **अहीया** - पढ़े हुए, **ताणं** - रक्षण कर्त्ता, **भुत्ता** - भोजन कराने से, **दिया** - द्विजों (ब्राह्मणों) को, **णिंति** - ले जाते हैं, **तमं तमेणं** - तमस्तम नामक नरक में, **को णाम** - भला कौन, **अणुमण्णिज्ज** - अनुमोदन करेगा।

भावार्थ - वेदों को पढ़ लेने मात्र से वे शरण रूप नहीं होते ऐसे ब्राह्मणों को (जो दयामय धर्म की निंदा करते हैं और हिंसामय धर्म की प्रशंसा करते हैं तथा यज्ञादि में पशुवध का विधान बता कर हिंसा की प्रेरणा करते हैं उनको) भोजन कराने से अन्धकार से अन्धकार में ले जाते हैं और उत्पन्न हुए पुत्र भी शरण रूप नहीं होते हैं (अर्थात् अपने कर्मों के वशीभूत हो कर नरकादि दुर्गतियों में जाते हुए जीव की रक्षा करने में वे समर्थ नहीं हैं) तो फिर पिताजी! आपके इस कथन को कौन बुद्धिमान् पुरुष स्वीकार कर सकता है अर्थात् कोई भी स्वीकार नहीं कर सकता।

खणमित्तसुक्खा बहुकालदुक्खा, पगामदुक्खा अणिगामसुक्खा।
संसार-मोक्खस्स विपक्खभूया, खाणी अणत्थाण उ कामभोगा॥१३॥

कठिन शब्दार्थ - **खणमित्तसुक्खा** - क्षण मात्र सुख के देने वाले, **बहुकालदुक्खा** - लम्बे समय तक दुःख देने वाले, **पगामदुक्खा** - बहुत दुःख, **अणिगामसुक्खा** - स्वल्प सुख, **संसार मोक्खस्स** - संसार को बढ़ाने वाले, **विपक्खभूया** - विपक्ष भूत - मोक्ष के शत्रु के समान, **खाणी** - खान, **अणत्थाण** - अनर्थों की।

भावार्थ - काम-भोग क्षण मात्र सुख के देने वाले हैं किन्तु लम्बे समय तक दुःख देने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वाले हैं, जिसमें स्वल्प सुख और बहुत दुःख हो, वे सुखदायी कैसे कहे जा सकते हैं? ये काम-भोग संसार को बढ़ाने वाले हैं और मोक्ष के शत्रु के समान हैं। ये काम-भोग अनर्थों की खान हैं।

परिव्वयंते अणियत्तकामे, अहो य राओ परितप्पमाणे।
अण्णप्पमत्ते धणमेसमाणे, पप्पोति मच्चुं पुरिसो जरं च॥१४॥

कठिन शब्दार्थ - **परिव्वयंते** - भटकता फिरता है, **अणियत्तकामे** - कामभोगों से अनिवृत्त, **अहो य राओ** - दिन रात, **परितप्पमाणे** - संतप्त होता हुआ, **अण्णप्पमत्ते** - दूसरों (स्वजनों) के लिए प्रमत्त, **धणमेसमाणे** - धन की खोज में लगा हुआ, **पप्पोति** - प्राप्त करता है, **मच्चुं** - मृत्यु को, **जरं** - जरा को।

भावार्थ - काम-भोगों से निवृत्ति न करने वाला अर्थात् विषय सुखों में गृद्ध बना हुआ पुरुष अपनी अभिलाषाओं को पूर्ण करने के लिए दिन और रात परिताप करता हैं अर्थात् आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान करता हुआ संसार में परिभ्रमण करता है, अन्य स्वजन सम्बन्धियों के लिए दूषित प्रवृत्ति करके धन की गवेषणा करता हुआ यह अन्त में जरा और मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

इमं च मे अत्थि इमं च णत्थि, इमं च मे किच्च इमं अकिच्चं।
तं एवमेवं लालप्पमाणं, हरा हरंति त्ति कहं पमाओ?॥१५॥

कठिन शब्दार्थ - **इमं** - यह, **मे** - मेरे पास, **अत्थि** - है, **णत्थि** - नहीं है, **किच्च**-करना है, **अकिच्चं** - नहीं करना है, **एवमेवं** - इस प्रकार, **लालप्पमाणं** - प्रलाप (बकवास) करते हुए, **हरा** - दिन रात रूपी चोर, **हरंति** - हर लेते हैं, **कहं** - कैसे, **पमाओ** - प्रमाद।

भावार्थ - यह पदार्थ मेरे पास है और यह पदार्थ नहीं हैं तथा यह कार्य तो मैंने कर लिया है और यह कार्य अभी करना शेष है। इस प्रकार प्रलाप करते हुए अर्थात् विषय-भोगों की सामग्री जुटाने में व्याकुल बने हुए उस पुरुष के प्राणों को रात-दिन रूपी चोर हर कर परलोक में पहुँचा देते हैं, तो फिर धर्म के विषय में प्रमाद कैसे किया जा सकता है? (अर्थात् बुद्धिमान् पुरुष को धर्म के विषय में क्षण मात्र भी प्रमाद नहीं करना चाहिये)।

विवेचन - उपरोक्त चार गाथाओं में भृगु पुरोहित द्वारा अपने पुत्रों के समक्ष निम्न चार बातें रखी गयी थी - १. पहले वेदों को पढ़ो २. ब्राह्मणों को भोजन दो ३. विवाह करके पुत्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पैदा करो और ४. कामभोगों को भोगो। उनका पुत्रों द्वारा क्रमशः युक्ति युक्त समाधान दिया गया है जो इस प्रकार है -

१. वेद मरण से रक्षा नहीं कर सकते। वास्तव में धर्माचरण ही मृत्यु से या दुर्गति से जीव की रक्षा करता है।

२. ब्राह्मणों को भोजन कराने पर भी भोजन कराने वाले को उसके पाप नरक गमन से नहीं बचा सकते हैं।

३. पुत्रोत्पत्ति नरकगामी पिता को नरक से नहीं बचा सकती।

४. भोग, इहलोक और परलोक दोनों में अनर्थों की खान है ये जन्म, जरा और मृत्यु से बचा नहीं सकते। भोग, आत्म-कल्याण में बाधक, संसार परिभ्रमण कराने वाले और मोक्ष विरोधी है।

भृगु पुरोहित का कथन-श्रमण क्यों बनना चाहते हो?

धणं पभूयं सह इत्थियाहिं, सयणा तहा कामगुणा पगामा।
तवं कए तप्पइ जस्स लोगो, तं सव्व-साहीण-मिहेव तुब्भं॥१६॥

कठिन शब्दार्थ - धणं - धन, **पभूयं** - प्रचुर (बहुत सा), **सह** - सहित, **इत्थियाहिं**- स्त्रियों के, **सयणा** - स्वजन, **तथा** - तथा, **पगामा** - पर्याप्त, **तवं** - तप, **तप्पइ** - करते हैं, **लोगो** - लोग, **सव्वं** - सभी, **साहीणं** - स्वाधीन।

भावार्थ - भृगु पुरोहित अपने पुत्रों से कहता है कि हे पुत्रो! अपने घर में यहीं स्त्रियों सहित बहुत सा धन है (अर्थात् अपने पास धन भी बहुत है और स्त्रियाँ भी हैं) तथा स्वजन सम्बन्धी भी बहुत हैं और शब्दादि कामगुण भी पर्याप्त है, जिन पदार्थों की प्राप्ति के लिए लोग तप जपादि करते हैं वे सभी पदार्थ तुम्हारे स्वाधीन हैं (अर्थात् सब सुख तुम को स्वतः प्राप्त हैं तो फिर संयम क्यों लेते हो?)।

कुमारों का प्रतिवाद

धणेण किं धम्मधुराहिगारे, सयणेण वा कामगुणेहि चेव।
समणा भविस्सामु गुणोहधारी, बहिं विहारा अभिगम्म भिक्खं॥१७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **धणेण** - धन से, **धम्मधुराहिगारे** - धर्म धुरा के अधिकार में, **सयणेण** - स्वजन से, **कामगुणेहि** - कामभोगादि से, **गुणोहधारी** - गुणों को धारण करने वाले, **समणा** - श्रमण, **भविस्सामु** - बनेंगे, **बहिं विहारा** - अप्रतिबद्ध विहारी, **अभिगम्म**- आश्रय लेकर, **भिक्खं** - शुद्ध भिक्षा का।

भावार्थ - कुमार अपने पिता से कहते हैं कि हे पिताजी! धर्मधुरा के अधिकार में अर्थात् धर्माचरण के विषय में धन से क्या प्रयोजन है? अथवा स्वजन सम्बन्धियों से और काम-भोगादि से भी क्या प्रयोजन है? (अर्थात् धन, स्वजन और काम-भोगादि ये सब धर्म के सामने अत्यन्त तुच्छ हैं, इसलिए हम दोनों) सम्यग्दर्शनादि गुणों को धारण करने वाले श्रमण बनेंगे और द्रव्य और भाव से अप्रतिबद्ध हो कर ग्रामानुग्राम विहार करते हुए शुद्ध भिक्षावृत्ति से अपना जीवन व्यतीत करेंगे।

विवेचन - धन, स्वजन और विषय भोग दुःखों में डालने वाले हैं अतः हमें इनसे नहीं, श्रमणत्व से प्रयोजन है।

भृगु पुरोहित का कथन - जीव का अस्तित्व निषेध

जहा य अग्गी अरणी असंतो, खीरे घयं तेल्ल-महातिलेसु।
एमेव जाया! सरीरंसि सत्ता, संमुच्छइ णासइ णावचिट्ठे॥१८॥

कठिन शब्दार्थ - **अग्गी** - अग्नि, **अरणी** - अरणि के काष्ठ में से, **असंतो** - दिखाई नहीं देने पर भी, **खीरे** - दूध से, **घयं** - घी, **तेल्ल** - तेल, **महातिलेसु** - तिलों में, **सरीरंसि** - शरीर में से, **सत्ता** - जीव, **संमुच्छइ** - पैदा हो जाता है, **णासइ** - नष्ट हो जाता है, **णावचिट्ठे** - अस्तित्व नहीं रहता।

भावार्थ - भृगु पुरोहित कहता है कि हे पुत्रो! जिस प्रकार अरणि (काष्ठ) से अग्नि, दूध से घी और तिलों से तेल प्रत्यक्ष रूप से दिखाई न देने पर भी ये सब वस्तुएं संयोग मिलने से स्वतः उत्पन्न हो जाती हैं, इसी प्रकार इस शरीर में जीव स्वतः उत्पन्न हो जाता है और शरीर का नाश होने के साथ ही नष्ट हो जाता है, किन्तु बाद में नहीं रहता है, इसी प्रकार जब आत्मा नाम की कोई चीज ही नहीं है तो फिर संयम लेकर क्यों व्यर्थ कष्ट उठाते हो?॥१८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कुमारों का प्रतिवाद - बंध संसार का हेतु

णो इंदियग्गेज्झ अमुत्तभावा, अमुत्तभावा वि य होइ णिच्चो।
अज्झत्थ-हेउं णियय‌ऽस्स बंधो, संसार-हेउं च वयंति बंधं॥१९॥

कठिन शब्दार्थ - **इंदियग्गेज्झ** - इन्द्रियों से ग्राह्य, **अमुत्तभावा** - अमूर्त्तभाव - अरूपी होने से यह आत्मा, **णिच्चो** - नित्य, **अज्झत्थहेउं** - अध्यात्म हेतु, **णियय** - नियत - निश्चय ही, **अस्स** - इस आत्मा के, **बंधो** - बन्ध, **संसार हेउं** - संसार का हेतु, **वयंति** - कहते हैं।

भावार्थ - कुमार कहते हैं कि हे पिताजी! अमूर्त्त होने के कारण यह आत्मा इन्द्रियों से ग्रहण नहीं किया जा सकता अर्थात् अरूपी होने के कारण यह आत्मा प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता और अरूपी होने से ही यह आत्मा नित्य है, क्योंकि जो जो पदार्थ अरूपी होते हैं वे सब नित्य होते हैं जैसे आकाश, अध्यात्म हेतु (मिथ्यात्वादि) निश्चय ही इस आत्मा के बन्ध के कारण हैं। अर्थात् यह आत्मा अमूर्त्त एवं नित्य होने पर भी मिथ्यात्वादि कारणों से कर्मों के बन्धन में बन्धा हुआ हैं और यही बन्धन संसार परिभ्रमण का कारण है, ऐसा महापुरुष फरमाते हैं।

विवेचन - आत्मा अमूर्त्त होने से इन्द्रियों के द्वारा जानी नहीं जाती किन्तु उसका नित्य अस्तित्व है। मिथ्यात्व, अविरति आदि के कारण ही आत्मा का शरीर में बंध होता है, ये कर्म ही भव भ्रमण का कारण हैं।

जहा वयं धम्ममजाणमाणा, पावं पुरा कम्म-मकासी मोहा।
ओरुब्भमाणा परिरक्खयंता, तं णेव भुज्जो वि समायरामो॥२०॥

कठिन शब्दार्थ - **धम्मं** - धर्म को, **अजाणमाणा** - नहीं जानते हुए, **पावं** - पाप, **पुरा** - पहले, **कम्मं** - कर्म को, **अकासी** - करते थे, **ओरुब्भमाणा** - रोके हुए, **परिरक्खयंता**- सुरक्षित किये हुए, **भुज्जो वि** - कदापि, **समायरामो** - सेवन करेंगे।

भावार्थ - वे दोनों कुमार कहते हैं कि हे पिताजी! जिस प्रकार मोह के वश होकर धर्म को न जानते हुए हम पहले पाप कर्म करते थे और आपके रोके हुए तथा सब प्रकार से सुरक्षित किये हुए हम घर से बाहर भी नहीं निकल सकते थे परन्तु अब हम उस पापकर्म का कदापि सेवन नहीं करेंगे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - कुमार कहते हैं कि पिताजी! "पाप पुण्य कुछ नहीं है परलोक नहीं है" इस प्रकार जैसा आप मानते हैं, अज्ञान के वश हो कर हम भी वैसा ही मानते थे, किन्तु अब तत्त्व का यथार्थ स्वरूप जान लेने के बाद यह बात हमारे हृदय में बिलकुल नहीं जंचती है।

अब्भाहयम्मि लोगम्मि, सव्वओ परिवारिए।
अमोहाहिं पडंतीहिं, गिहंसि ण रइं लभे॥२१॥

कठिन शब्दार्थ - **अब्भाहयम्मि** - आहत (पीड़ित) है, **सव्वओ** - सब प्रकार से, **परिवारिए** - घिरा हुआ है, **अमोहाहिं** - अमोघा - अमोघ शस्त्र धाराएं, **पडंतीहिं** - गिर रही है, **गिहंसि** - घर में, **रइं** - रति (आनंद) को, **ण लभे** - नहीं प्राप्त होता।

भावार्थ - यह लोक सब प्रकार से पीड़ित हो रहा है और सब प्रकार से चारों ओर से घिरा हुआ है और अमोघ शस्त्र धाराएं गिर रही हैं ऐसी अवस्था में हमें गृहस्थावास में किंचित् मात्र भी आनंद प्राप्त नहीं होता।

विवेचन - जब हम धर्म से अनभिज्ञ थे तब घर में रह कर मोहवश पाप करते रहे। अब हम देव, गुरु, धर्म का स्वरूप जानने लगे हैं अतः पुनः पाप का आचरण नहीं करेंगे।

केण अब्भाहओ लोगो, केण वा परिवारिओ।
का वा अमोहा वुत्ता, जाया! चिंतावरो हु मे॥२२॥

कठिन शब्दार्थ - **केण** - किससे, **अब्भाहओ** - पीड़ित हो रहा है, **वुत्ता** - कही गई है, **चिंतावरो** - चिंतित हो रहा हूँ, **मे** - मैं।

भावार्थ - पुत्रों के उपरोक्त कथन को सुन कर भृगु पुरोहित पूछता है कि हे पुत्रो! यह लोक किससे पीड़ित हो रहा है और किसने इस लोक को चारों ओर से घेर रखा है तथा अमोघ शस्त्र की धारा कौन-सी कही गई है, यह जानने के लिए मैं बड़ा चिन्तित हो रहा हूँ।

पुत्रों का उत्तर

मच्चुणा अब्भाहओ लोगो, जराए परिवारिओ।
अमोहा रयणी वुत्ता, एवं ताय! वियाणह॥२३॥

कठिन शब्दार्थ - **मच्चुणा** - मृत्यु से, **जराए** - जरा से, **रयणी** - रातदिन, **वियाणह**- समझो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

भावार्थ - इस पर दोनों पुत्रों ने उत्तर दिया कि, हे पिताजी! यह लोक मृत्यु से पीड़ित हो रहा है जरा से घिरा हुआ है और रात-दिन रूपी अमोघ शस्त्रधारा कही गई है, जिससे प्रतिक्षण आयुष्य घटता जा रहा है - इस प्रकार आप समझो।

जा जा वच्चइ रयणी, ण सा पडिणियत्तइ।

अहम्मं कुणमाणस्स, अफला जंति राइओ॥२४॥

कठिन शब्दार्थ - **जा जा** - जो जो, **वच्चइ** - व्यतीत होती जा रही है, **रयणी** - रात्रि, **ण पडिणियत्तइ** - लौट कर नहीं आती, **अहम्मं** - अधर्म (पाप) का, **कुणमाणस्स** - सेवन करने वाले को, **अफला** - निष्फल, **जंति** - जाती हैं, **राइओ** - रात्रियाँ।

भावार्थ - जो जो रात्रि व्यतीत होती जा रही है वह पुनः लौट कर नहीं आती अर्थात् गया हुआ समय फिर नहीं लौटता किन्तु अधर्म (पाप) का सेवन करने वाले प्राणी की वे सब रात्रियाँ निष्फल जाती हैं।

जा जा वच्चइ रयणी, ण सा पडिणियत्तइ।

धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जंति राइओ॥२५॥

कठिन शब्दार्थ - **धम्मं** - धर्म का, **सफला** - सफल।

भावार्थ - जो जो रात्रि व्यतीत होती जा रही है वह लौट कर नहीं आ सकती, किन्तु धर्म का सेवन करने वाले प्राणी की वे सब रात्रियाँ सफल हो जाती हैं अर्थात् धर्म का आचरण करने वाले पुरुष का जीवन सफल है।

विवेचन - जब पुत्रों ने यह कहा कि हम घर में जरा सा भी सुख नहीं पा रहे हैं। घर हमारे लिए अब जेलखाना है तब पिता ने जिज्ञासा वश पूछा कि- १. लोक किससे आहत (पीड़ित) है २. किससे घिरा हुआ है और ३. अमोघा क्या है? पिता के इन प्रश्नों का पुत्रों ने इस प्रकार उत्तर दिया - १. यह जगत् मृत्यु से पीड़ित है २. वह वृद्धावस्था से घिरा हुआ है। ३. अधर्मरात्रि अमोघा है। क्योंकि धर्म करने वाले की रात्रियाँ सफल होती हैं और अधर्म करने वाले की रात्रियाँ निष्फल जाती हैं। निष्फल रात्रियाँ मनुष्य के लिए दुःख और संसार परिभ्रमण का कारण होती हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भविष्य में हम साथ ही दीक्षा लेंगे?

एगओ संवसित्ताणं, दुहओ सम्मत्त-संजुया।
पच्छा जाया! गमिस्सामो, भिक्खमाणा कुले कुले॥२६॥

कठिन शब्दार्थ - एगओ - एक साथ, संवसित्ताणं - रह कर, पच्छा - पीछे, सम्मत्त-संजुया - सम्यक्त्व सहित व्रतों से युक्त, गमिस्सामो - दीक्षित होंगे, भिक्खमाणा - भिक्षा ग्रहण करते हुए, कुले कुले - ऊंच, नीच, मध्यम कुलों में।

भावार्थ - अपने पुत्रों के उपरोक्त वचन सुन कर भृगु पुरोहित कहने लगा कि हे पुत्रो! हम सब पहले सम्यक्त्व सहित श्रावक व्रत को धारण करके यहीं गृहस्थावास में एक साथ रह कर पीछे जब तुम्हारी अवस्था परिपक्व हो जायगी तब वृद्धावस्था आने पर दीक्षा ग्रहण कर लेंगे और ऊँच, नीच, मध्यम सभी कुलों में शुद्ध भिक्षावृत्ति से संयम-यात्रा का निर्वाह करते हुए विचरेंगे।

विवेचन - पुरोहित ने पुत्रों को गृहवास में रोकने के लिए कहा कि पहले तुम हमारी बात मान लो फिर हम तुम्हारी बात मान लेंगे अर्थात् हम सब पहले सम्यक्त्व सहित गृहस्थ धर्म का पालन करें फिर हम चारों मुनि धर्म में दीक्षित होकर भिक्षा ग्रहण करते हुए विचरेंगे।

जस्सऽत्थि मच्चुणा सक्खं, जस्स वऽत्थि पलायणं।
जो जाणे ण मरिस्सामि, सो हु कंखे सुए सिया॥२७॥

कठिन शब्दार्थ - जस्स - जिस पुरुष की, अत्थि - है, मच्चुणा - मृत्यु के साथ, सक्खं - मित्रता, पलायणं - पलायन-भाग कर जाने की शक्ति, जाणे - जानता हो, ण मरिस्सामि - नहीं मरूँगा, कंखे - इच्छा कर सकता है, सुए सिया - धर्मकार्य कल कर लूंगा।

भावार्थ - पिता के वचन सुन कर पुत्रों ने उत्तर दिया कि हे पिताजी! जिस पुरुष की मृत्यु के साथ मित्रता हो अथवा जिस पुरुष की मृत्यु के पाश से छूट कर भाग जाने की शक्ति हो अथवा जो पुरुष यह जानता हो कि मैं इतने वर्ष तक नहीं मरूँगा वास्तव में वही पुरुष ऐसी इच्छा कर सकता है कि यह धर्म कार्य मैं कल कर लूँगा।

विवेचन - 'जिसकी मृत्यु के साथ मैत्री हो, वही धर्म के कार्य को कल पर टाल सकता है' - यह इस गाथा से स्पष्ट है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अज्जेव धम्मं पडिवज्जयामो, जहिं पवण्णा ण पुणब्भवामो।
अणागयं णेव य अत्थि किंचि, सद्धाखमं णे विणइत्तु रागं॥२८॥

कठिन शब्दार्थ - अज्जेव - आज ही, धम्मं - धर्म को, पडिवज्जयामो - अंगीकार करेंगे, जहिं - जिस धर्म को, पवण्णा - स्वीकार करके, ण पुणब्भवामो - फिर जन्म नहीं लेना पड़े, अणागयं - अनागत - अप्राप्त (अभुक्त), णेव - नहीं, अत्थि - है, किंचि - कोई भी, सद्धाखमं - श्रद्धा को सक्षम कर, विणइत्तु - दूर कर, रागं - राग को।

भावार्थ - इसलिए हे पिताजी! जिस धर्म को स्वीकार करके फिर जन्म ही न लेना पड़े ऐसे साधु-धर्म को हम आज ही अंगीकार करेंगे और इस संसार में ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है जो इस जीव को प्राप्त न हुआ हो। अतः राग-भाव को दूर करके, धर्म में श्रद्धा रखना एवं साधु धर्म को अंगीकार करना हमारे लिए श्रेष्ठ है।

विवेचन - गृहवास में विषय सुख भोग कर वृद्धावस्था में प्रव्रजित होने के पिताजी के प्रस्ताव को सुन कर पुत्रों ने सशक्त प्रतिवादात्मक समाधान करते हुए कहा कि - मृत्यु का कोई भरोसा नहीं है कि कब आ धमके अतः वृद्धावस्था तक प्रतीक्षा नहीं की जा सकती। पता नहीं वृद्धावस्था आएगी भी या नहीं? अतः हम सबको आज ही प्रव्रजित हो जाना चाहिये।

आप भोग, भोग कर प्रव्रजित होने का कह रहे हैं किन्तु कोई भी विषय सुख ऐसा नहीं है जो इस जीव ने पूर्व में नहीं भोगा हो, सभी विषय सुख उपभुक्त हैं अतः पूर्व में भोगे हुए जूठे भोगों के पुनः सेवन करने की लालसा श्रेयस्कर नहीं है।

पुत्रों का सटीक समाधान पा कर भृग पुरोहित प्रतिबुद्ध हो गया। अब वह अपनी पत्नी को प्रतिबोधित करने का प्रयास करता है जो आगे की गाथाओं में वर्णित है।

पुत्रों के बिना मेरा गृहवास अनुचित

पहीण-पुत्तस्स हु णत्थि वासो, वासिट्ठि!भिक्खायरियाइ कालो।
साहाहि रुक्खो लहइ समाहिं, छिण्णाहि साहाहि तमेव खाणुं॥२९॥

कठिन शब्दार्थ - पहीणपुत्तस्स - पुत्रों के बिना, हु णत्थि - हर्गिज नहीं, वासो - बसना, वासिट्ठि - हे वाशिष्ठि, भिक्खायरियाइ - भिक्षाचर्या का, कालो - काल, साहाहि- शाखाओं से, रुक्खो - वृक्ष, लहइ - पाता है, समाहिं - समाधि-शोभा, छिण्णाहि - कट जाने पर, तमेव - उसी वृक्ष को, खाणुं - स्थाणु - ठूंठ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - अब भृगु पुरोहित अपनी स्त्री को संबोधित कर इस प्रकार कहने लगा, हे वाशिष्ठि (वशिष्ठ गोत्र में उत्पन्न) अब मेरे लिए भिक्षाचर्या (दीक्षा अंगीकार करने का) अवसर आ पहुँचा है क्योंकि जिस प्रकार शाखाओं से ही वृक्ष समाधि एवं शोभा को प्राप्त होता है और शाखाओं के कट जाने से वही वृक्ष स्थाणु (ठूंठ) कहलाता है। इसी प्रकार पुत्रों से रहित होकर अब मेरा गृहस्थावास में रहना अच्छा नहीं है और उस ठूंठ के समान शोभा रहित है।

पंखाविहूणो व्व जहेह पक्खी, भिच्चविहूणो व्व रणे णरिंदो।
विवण्णसारो वणिओ व्व पोए, पहीणपुत्तो मि तहा अहं पि॥३०॥

कठिन शब्दार्थ - **पंखा विहूणोव्व** - पंखों से रहित तथा, **जहेह** - जैसे इस लोक में, **पक्खी** - पक्षी, **भिच्चविहूणो** - भृत्य (सेना) से रहित, **रणे** - संग्राम में, **णरिंदो** - राजा, **विवण्णसारो** - धनमाल रहित, **वणिओ** - व्यापारी (वणिक), **पोए** - जहाज, **पहीणपुत्तो** - पुत्रों से रहित।

भावार्थ - जैसे इस संसार में पंख बिना पक्षी तथा संग्राम में सेवकों (सेना) रहित राजा और जहाज में द्रव्य-रहित व्यापारी शोभित नहीं होता, प्रत्युतः उन्हें शोक करना पड़ता है वैसे ही पुत्रों से रहित मैं भी शोभित नहीं हो कर दुःखित होता हूँ।

विवेचन - भृगु पुरोहित ने वशिष्ठ गोत्रीया अपनी धर्मपत्नी यशा को दीक्षा में बाधक मान कर समझाते हुए कहा - वृक्षों की शाखाए कट जाने से वह वृक्ष शोभाहीन ठूंठ मात्र रह जाता है। जैसे वृक्षों की शोभा शाखाओं से है उसी प्रकार मेरी शोभा भी इन पुत्रों से है।

जिस प्रकार पंखविहीन पक्षी, सैनिक रहित राजा युद्ध में तथा धन रहित वणिक की जलपोत में दुर्दशा होती है उसी प्रकार पुत्रों के बिना मेरी भी दुर्दशा होगी, अतः पुत्रों के साथ मेरा भी मुनि बनना श्रेयस्कर है।

कामगुणों के तीन विशेषण

सुसंभिया कामगुणा इमे ते, संपिंडिया अग्ग-रसप्पभूया।
भुंजामु ता कामगुणे पगामं, पच्छा गमिस्सामु पहाणमग्गं॥३१॥

कठिन शब्दार्थ - **सुसंभिया** - सुसम्भृत - सम्यक् रूपेण संस्कृत, **कामगुणा** - कामभोग, **संपिंडिया** - सु संग्रहीत, **अग्गरसप्पभूया** - प्रधान रस वाले पर्याप्त, **भुंजामु** - भोग लो, **पगामं** - यथेष्ट, **गमिस्सामु** - चलेंगे, **पहाणमग्गं** - प्रधान मार्ग (संयम) को।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

भावार्थ - पति के उपरोक्त वचन सुन कर यशा कहने लगी - प्रधान रस वाले ये उत्तम काम-भोग तुम्हें पर्याप्त रूप से प्राप्त हुए हैं इसलिए हम पहले इन काम-भोगों को खूब अच्छी तरह भोगें और पीछे जब वृद्धावस्था आवेगी उस समय प्रधान मार्ग (संयम) को अंगीकार कर लेंगे।

विवेचन - पुरोहित पत्नी यशा ने अपने पति को भोगों का आमंत्रण (उत्तर) देते हुए उपरोक्त गाथा में कामगुण - पंचेन्द्रियों को सुख देने वाले पदार्थों की तीन विशेषताएं बतायी हैं-

१. **सुसंभिया (सुसम्भृत)** - अच्छे-अच्छे वस्त्र, सरस स्वादिष्ट मिष्ठान्न, पुष्प, चंदन, नाटक, वाद्य, गीत, वीणा आदि वस्तुएं सम्यक् प्रकार से संस्कृत है सुसज्जित है।

२. **संपिंडिया (सपिण्डिता)** - एक जगह सुसंग्रहीत है।

३. **अग्गरस-प्पभूया (अग्रयरसप्रभूता)** - अग्र यानी प्रधान श्रृंगार रस के उत्पादक हैं अग्र रस प्रचुर हैं या जिनमें प्रचुर अग्र - श्रेष्ठ रस=आनंद आता है।

भुत्ता रसा भोइ! जहाइ णे वओ, ण जीवियट्ठा पजहामि भोए।
लाभं अलाभं च सुहं च दुक्खं, संचिक्खमाणो चरिस्सामि मोणं॥३२॥

कठिन शब्दार्थ - **भुत्ता** - भोग लिये हैं, **रसा** - विषय रस, **भोइ** - हे भवति (ब्राह्मणी), **जहाइ** - छोड़ रही है, **वओ** - यौवनावस्था, **जीवियट्ठा** - जीवन के लिए, **पजहामि** - छोड़ता हूँ, **भोए** - भोगों को, **लाभं** - लाभ, **अलाभं** - अलाभ को, **सुहं** - सुख, **च** - और, **दुक्खं** - दुःख को, **संचिक्खमाणो** - समभाव से देखते हुए, **चरिस्सामि** - आचरण करूँगा, **मोणं** - मुनिवृत्ति का।

भावार्थ - भृगु पुरोहित अपनी पत्नी को उत्तर देता है, हे भाग्यशालिनि प्रिये! उत्तम रसों एवं काम-भोगों को हम भोग चुके हैं। युवावस्था अब हमें छोड़ती जा रही है, इसलिए मैं इन काम-भोगों को छोड़ देना चाहता हूँ, असंयम जीवन के लिए एवं आगामी भव में उत्तम काम-भोगों की प्राप्ति की लालसा से मैं इन्हें नहीं छोड़ रहा हूँ, किन्तु त्यागी जीवन के लाभ और अलाभ तथा सुख और दुःख इन सब को खूब सोच समझ कर मैं मुनि वृत्ति अंगीकार करता हूँ।

मा हु तुमं सोयरियाण संभरे, जुण्णो व हंसो पडिसोत्तगामी।
भुंजाहि भोगाइं मए समाणं, दुक्खं खु भिक्खायरिया विहारो॥३३॥

कठिन शब्दार्थ - **सोयरियाण** - सहोदर भाइयों को, **संभरे** - स्मरण करना पड़े,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जुण्णो - जीर्ण (बुढ़े), **हंसो** - हंस, **पडिसोत्तगामी** - प्रतिस्रोतगामी - विपरीत धारा में बहने वाले, **मए समाणं** - मेरे साथ, **भिक्खायरिया** - भिक्षाचर्या, **विहारो** - विहार।

भावार्थ - यशा अपने पति से कहती है कि हे स्वामिन्! जिस प्रकार जल-प्रवाह के सम्मुख जाता हुआ बूढ़ा हँस अपनी असमर्थता के कारण बाद में पछताता है उसी प्रकार कहीं ऐसा न हो कि तुम भी दीक्षा लेकर फिर संयम के कष्टों से घबरा कर पश्चात्ताप करने लगो और अपने स्वजन सम्बन्धियों को तथा पहले भोगे हुए काम-भोगों को याद करने लगो। इसलिए मैं आपसे कहती हूँ कि मेरे साथ गृहस्थवास में रहते हुए इन प्राप्त हुए काम-भोगों को भोगो, क्योंकि भिक्षु बन कर घर-घर भिक्षा माँगना तथा ग्रामानुग्राम अप्रतिबद्ध विहार करना आदि मुनि जीवन की समस्त क्रियाओं का पालन करना बड़ा ही कष्टकारी है।

विवेचन - पुरोहित पत्नी जीर्ण हंस की उपमा देती हुई कहती है कि - जैसे बूढ़ा हंस विपरीत जल प्रवाह में तैरने लगता है किन्तु तैरने में असमर्थ होने पर अनुस्रोत जल प्रवाह में तैरने को याद करते हुए मन में खिन्न होता है मैंने विपरीत जल प्रवाह में तैरना क्यों प्रारम्भ किया। उसी प्रकार आप भी प्रतिस्रोतगामी बनने की सोच रहे हो किन्तु बूढ़े होने पर जब संयम मार्ग में चलने पर थक जाओगे, भिक्षाचर्यावृत्ति सहन नहीं होगी, विहार दुष्कर होगा, तब पश्चात्ताप पूर्वक गृहवास को, अपने भाइयों को याद करोगे, पुनः अनुकूल प्रवाह की ओर तैरने का स्मरण करोगे। अतः इससे तो यही श्रेष्ठ है कि गृहवास में रह कर दाम्पत्य सुखों को भोगो।

पत्नी की शंकाओं का समाधान

जहा य भोइ तणुयं भुयंगो, णिम्मोयणिं हिच्च पलेइ मुत्तो।
एमेए जाया पयहंति भोए, ते अहं कहं माणुगमिस्समेक्को ?॥३४॥

कठिन शब्दार्थ - **तणुयं** - शरीर में उत्पन्न हुई, **भुयंगो** - भुजंग (सर्प), **णिम्मोयणिं**- कांचली को, **हिच्च** - छोड़ कर, **पलेइ** - भाग जाता है, **मुत्तो** - मुक्त मन से, **पयहंति** - छोड़ते हैं, **ण** - नहीं, **अणुगमिस्सं** - अनुगमन करूँ, **इक्को** - अकेला।

भावार्थ - भृगु पुरोहित अपनी स्त्री से कहता है कि हे भद्रे! जिस प्रकार सर्प, अपने शरीर पर उत्पन्न हुई कांचली को छोड़ कर निरपेक्ष हो कर भाग जाता है और वह पीछे फिर कर उसे देखता तक नहीं इसी प्रकार ये मेरे दोनों पुत्र, कामभोगों को छोड़ कर चले जा रहे हैं ऐसी अवस्था में मैं भी उन दोनों के साथ क्यों नहीं चला जाऊँ, मैं अकेला पीछे रह कर क्या करूँ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छिंदित्तु जालं अबलं व रोहिया, मच्छा जहा कामगुणे पहाय।
धोरेय-सीला तवसा उदारा, धीरा हु भिक्खायरियं चरंति॥३५॥

कठिन शब्दार्थ - **छिंदित्तु** - तोड़ कर (काट कर), **जालं** - जाल को, **अबलं** - कमजोर, **रोहिया** - रोहित जाति का, **मच्छा** - मत्स्य, **पहाय** - छोड़ कर, **धोरेयसीला** - धौरी वृषभ के समान स्वभाव वाले, **तवसा** - तपस्वी, **उदारा** - प्रधान, **धीरा** - धीर, **भिक्खायरियं** - भिक्षाचर्या को, **चरंति** - आचरते हैं।

भावार्थ - उपरोक्त कथन सुन कर यशा अपने मन में विचार करने लगी कि जिस प्रकार रोहित जाति के मच्छ जीर्ण जाल को तोड़ कर उससे निकल कर भाग जाता उसी प्रकार ये सब लोग काम-भोगों को छोड़ कर जा रहे हैं और जैसे जातिवंत बैल रथ के भार को अपने कंधों पर उठाते हैं उसी प्रकार ये धीर और गंभीर पुरुष तपश्चर्या और भिक्षाचर्या को संयम मार्ग को अंगीकार करने के लिए उद्यत हो रहे हैं।

विवेचन - उपरोक्त दोनों गाथाओं में भृगु पुरोहित अपनी पत्नी द्वारा प्रस्तुत शंकाओं का समाधान करते हुए कहते हैं कि जैसे सांप कांचली (केंचुली) छोड़ कर उन्मुक्त मन से चला जाता है वापिस मुड़ कर भी नहीं देखता उसी प्रकार मेरे दोनों पुत्र युवावस्था में कामभोगों को छोड़ कर दीक्षित हो रहे हैं तो क्या मैं भुक्त भोगी होकर भी उनका अनुसरण नहीं कर सकता?

जैसे रोहित मत्स्य कमजोर जाल को काट कर उससे बाहर निकल जाता है उसी प्रकार मैं भी कामगुणों की जाल को काट कर संयम पथ पर आसानी से चल सकता हूँ। मेरे लिए भिक्षाचर्या पथ कुछ भी कठिन नहीं है।

पुरोहित पत्नी दीक्षा लेने को तैयार

णहेव कुंचा समइक्कमंता, तयाणि जालाणि दलित्तु हंसा।
पलिंति पुत्ता य पई य मज्झं, ते हं कहं णाणुगमिस्समेक्का?॥३६॥

कठिन शब्दार्थ - **णहेव** - आकाश में, **कुंचा** - क्रोंच पक्षी, **समइक्कमंता** - स्वतंत्र उड़ जाते हैं, **तयाणि** - विस्तीर्ण, **जालाणि** - जालों को, **दलित्तु** - काट कर, **पलिंति** - जा रहे हैं, **पुत्ता** - पुत्र, **पई** - पति, **मज्झं** - मेरे, **कहं ण** - क्यों नहीं, **अणुगमिस्सं** - अनुगमन करूँ, **एक्का हं** - मैं अकेली।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - यशा अपने मन में विचार करती है कि जिस प्रकार क्रौंच पक्षी अनेक प्रदेशों को उल्लंघन करते हुए आकाश में उड़ जाते हैं और हंस, विस्तीर्ण जालों को भेदन कर के अपनी इच्छानुसार आकाश में उड़ जाते हैं इसी प्रकार मेरे, दोनों पुत्र और पति सांसारिक बन्धनों को तोड़ कर एवं काम-भोगों को छोड़ कर त्याग-मार्ग अंगीकार कर रहे हैं, ऐसी अवस्था में मैं भी उनके साथ क्यों नहीं अनुसरण करूँ (जाऊँ) अर्थात् मैं अकेली पीछे रह कर क्या करूँ?

विवेचन - भृगु पुरोहित, उसकी भार्या यशा और दोनों कुमार इन चारों की एक सम्मति हो गई। अपना घर बार एवं संपत्ति छोड़ कर वे चारों ही दीक्षा लेने के लिए घर से निकल गये। उनकी संपत्ति का कोई उत्तराधिकारी न होने के कारण वह सब राज्य भंडार में लाई जाने लगी।

कमलावती रानी द्वारा राजा को प्रतिबोध

पुरोहियं तं ससुयं सदारं, सोच्चाऽभिणिक्खम्म पहाय भोए।
कुडुंबसारं विउलुत्तमं च, रायं अभिक्खं समुवाय देवी॥३७॥

कठिन शब्दार्थ - पुरोहियं - पुरोहित, ससुयं - पुत्रों के साथ, सदारं - पत्नी के साथ, सोच्चा - सुन कर, अभिणिक्खम्म - अभिनिष्क्रमण किया है, पहाय - त्याग कर, भोए - भोगों को, कुडुंबसारं - कुटुम्ब और सार-प्रधान धन की, विउल - विपुल, उत्तम - उत्तम, रायं - राजा को, अभिक्खं - बार-बार, समुवाय - कहा, देवी - कमलावती पटरानी।

भावार्थ - समस्त काम-भोगों का त्याग करके भृग पुरोहित अपने दोनों पुत्रों और स्त्री के साथ दीक्षा अंगीकार करने के लिए घर-बार छोड़ कर निकल गया है यह बात सुन कर तथा उनकी विपुल एवं विस्तीर्ण धन-सम्पत्ति को राजा लेना चाहता है, यह बात जान कर उसकी पटरानी, कमलावती बार-बार राजा को इस प्रकार कहने लगी।

विवेचन - इस गाथा में प्राचीन कालिक एक सामाजिक परम्परा का उल्लेख मिलता है कि - जिस व्यक्ति का कोई उत्तराधिकारी नहीं होता था या जिसका सारा परिवार घर बार छोड़ कर मुनि बन जाता था उसकी धन सम्पत्ति पर राजा का अधिकार होता था। इस परम्परा को रानी कमलावती ने अप्रशंसनीय (निंदनीय) बता कर राजा की वृत्ति को मोड़ दे दिया। जिसका वर्णन अगली गाथाओं में हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वमन किये पदार्थ को ग्रहण करना प्रशंसनीय नहीं

वंतासी पुरिसो रायं!, ण सो होइ पसंसिओ।
माहणेण परिच्चत्तं, धणमादाउमिच्छसि॥३८॥

कठिन शब्दार्थ - **वंतासी** - वमन किये हुए को खाने वाला, **पसंसिओ** - प्रशंसनीय, **माहणेण** - ब्राह्मण के द्वारा, **परिच्चत्तं** - परित्यक्त, **धणं** - धन को, **आदाउं** - ग्रहण करने की, **इच्छसि** - इच्छा करते हो।

भावार्थ - हे राजन्! ब्राह्मण द्वारा छोड़े हुए धन को आप ग्रहण करना चाहते हैं, परन्तु आपको यह मालूम होना चाहिए कि वमन किये हुए पदार्थ को खाने वाला पुरुष प्रशंसित नहीं होता, अपितु उसकी सर्वत्र निन्दा ही होती है।

तृष्णा दुष्पूर है

सव्वं जगं जइ तुहं, सव्वं वा वि धणं भवे।
सव्वं वि ते अपज्जत्तं, णेव ताणाय तं तव॥३९॥

कठिन शब्दार्थ - **सव्वं** - सर्व, **जगं** - जगत्, **जइ** - यदि, **तुहं** - तुम्हारा, **भवे** - हो जावे, **अपज्जत्तं** - अपर्याप्त, **ताणाय** - रक्षा के लिए, **तव** - तुम्हारी।

भावार्थ - हे राजन्! यदि यह सारा जगत् तुम्हारा हो जाय अथवा संसार का सारा धन तुम्हारा हो जाय तो भी ये सब तुम्हारे लिए अपर्याप्त ही हैं अर्थात् संसार के सारे पदार्थ भी तुम्हारी तृष्णा को पूर्ण करने में असमर्थ ही हैं क्योंकि तृष्णा आकाश के समान अनन्त हैं और धन असंख्यात ही है, यह धन जन्म-मृत्यु के कष्टों से तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकता।

धर्म ही मनुष्य का रक्षक है

मरिहिसि रायं! जया तया वा, मणोरमे कामगुणे पहाय।
इक्को हु धम्मो णरदेव! ताणं, ण विज्जइ अण्णमिहेह किंचि॥४०॥

कठिन शब्दार्थ - **मरिहिसि** - मरोगे, **जया** - जब, **तया** - तब, **मणोरमे** - मनोज्ञ, **कामगुणे** - कामभोगों को, **इक्को** - एक, **धम्मो** - धर्म, **णरदेव** - हे नरदेव!, **ताणं** - शरण रूप, **ण विज्जइ** - रक्षक नहीं है, **अण्णं** - अन्य, **किंचि** - कोई भी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - हे राजन्! जब मृत्यु का समय आयेगा तब इन मनोहर कामभोगों को छोड़ कर अवश्य मरना होगा, हे नरदेव! इस संसार में निश्चय ही मृत्यु के समय एक धर्म ही शरण रूप होगा, अन्य कोई भी पदार्थ शरण रूप नहीं होगा।

कमलावती की प्रव्रज्या की भावना

णाहं रमे पक्खिणी पंजरे वा, संताण-छिण्णा चरिस्सामि मोणं।
अकिंचणा उज्जुकडा णिरामिसा, परिग्गहारंभ-णियत्तदोसा॥४१॥

कठिन शब्दार्थ - **ण रमे** - आनंद नहीं पाती, **पक्खिणी** - पक्षिणी, **पंजरे** - पिंजरे में, **संताणछिण्णा** - स्नेह बंधनों को तोड़ कर, **चरिस्सामि** - आचरण करूंगी, **मोणं** - मुनि धर्म का, **अकिंचणा** - अकिंचन - परिग्रह रहित, **उज्जुकडा** - ऋजुकृत - सरल-शल्यादि रहित, **णिरामिसा** - विषयभोगों में अनासक्त, **परिग्गहारंभ णियत्तदोसा** - परिग्रह और आरंभ के दोषों से निवृत्त होकर।

भावार्थ - रानी पुनः राजा से कहती हैं कि राजन्! जैसी पक्षिणी पिंजरे में आनंद नहीं पाती उसी प्रकार राज्य सुखों से परिपूर्ण इस अन्तःपुर रूपी पिंजरे में मैं भी आनंद नहीं मानती हूँ, इसलिए स्नेह बन्धनों को तोड़ कर आरम्भ और परिग्रह रूपी दोषों से निवृत्त हो कर एवं द्रव्य-भाव से परिग्रह-रहित हो कर तथा कामभोगादि की लालसा रहित हो कर सरल स्वभावी बन कर मैं संयम स्वीकार करूँगी।

रागद्वेषाग्नि से संसार जल रहा है

दवग्गिणा जहा रण्णे, डज्झमाणेसु जंतुसु।
अण्णे सत्ता पमोयंति, रागद्दोसवसं गया॥४२॥
एवमेव वयं मूढा, कामभोगेसु मुच्छिया।
डज्झमाणं ण बुज्झामो, रागद्दोसग्गिणा जगं॥४३॥

कठिन शब्दार्थ - **दवग्गिणा** - दावाग्नि से, **जहा** - जैसे, **रण्णे** - अरण्य में, **डज्झमाणेसु** - जलते हुए, **जंतुसु** - जंतुओं को, **अण्णे** - अन्य, **सत्ता** - जीव, **पमोयंति** - प्रसन्न होते हैं, **रागद्दोसवसं गया** - राग द्वेष के वश होकर, **मूढा** - मूढ, **मुच्छिया** -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मूर्च्छित, डज्झमाणं - जलते हुए, ण बुज्झामो - नहीं समझते, रागद्दोसग्गिणा - राग द्वेष की अग्नि में, जगं - जगत को।

भावार्थ - जैसे वन में दावाग्नि लगने से और उसमें जीवों को जलते हुए देख कर दूसरे प्राणी रागद्वेष के वश होकर प्रसन्न होते हैं, किन्तु वे बिचारे यह नहीं जानते हैं कि बढ़ती हुई यह दावाग्नि हमें भी भस्म कर देगी, इसलिए हमें इससे बचने का उपाय करना चाहिये, इसी प्रकार कामभोगों में मूर्च्छित बन कर हम अज्ञानी लोग भी यह नहीं समझते कि सारा संसार राग द्वेष रूपी अग्नि से जल रहा है। यह अग्नि हमें भी जला देगी, इसलिए हमें इस अग्नि से बचने का प्रयत्न करना चाहिये।

विवेकी पुरुष का कर्त्तव्य

भोगे भुच्चा वमित्ता य, लहुभूयविहारिणो।
आमोयमाणा गच्छंति, दिया कामकमा इव॥४४॥

कठिन शब्दार्थ - भोगे - भोगो को, भुच्चा - भोग कर, वमित्ता - त्याग कर, लहुभूय विहारिणो - लघुभूत होकर विहार करते हुए, आमोयमाणा - आनंदित होते हुए, गच्छंति - गमन करते हैं, दिया - पक्षी की, कामकमा - स्वेच्छा पूर्वक विचरने वाले, इव - तरह।

भावार्थ - जो विवेकी मनुष्य होते हैं वे आयु पर्यन्त काम-भोगों में खुचे हुए नहीं रहते किन्तु पहले भोगे हुए काम भोगों को छोड़ कर प्रसन्नता के साथ संयम स्वीकार करते हैं और जैसे पक्षी अपनी इच्छानुसार आकाश में उड़ते हैं, उसी प्रकार वे भी वायु के समान लघुभूत होकर अप्रतिबद्ध विहार करते हैं।

इमे य बद्धा फंदंति, मम हत्थऽज्जमागया।
वयं च सत्ता कामेसु, भविस्सामो जहा इमे॥४५॥

कठिन शब्दार्थ - बद्धा - नियंत्रित किए हुए, फंदंति - अस्थिर (क्षणिक) हैं, मम - मेरे, हत्थ - हाथ में, अज्ज - हे आर्य!, आगया - आये हुए, वयं - हम, सत्ता - आसक्त, भविस्सामो - होंगे, जहा - जैसे, इमे - ये।

भावार्थ - हे आर्य! अपने को प्राप्त हुए काम-भोगों में हम गृद्ध बने हुए हैं किन्तु अनेक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उपायों से इनकी रक्षा करने पर भी ये काम-भोग कभी स्थिर रहने वाले नहीं है अर्थात् कभी न कभी ये हमें छोड़ देंगे तो फिर जिस प्रकार इन भृगु पुरोहित आदि ने इनको छोड़ दिया है, उसी प्रकार हम भी क्यों न छोड़ दें? हम भी दीक्षा अंगीकार करेंगे।

त्याग में सुख है

सामिस्सं कुललं दिस्स, वज्झमाणं णिरामिसं।
आमिसं सव्वमुज्झित्ता, विहरिस्सामि णिरामिसा॥४६॥

कठिन शब्दार्थ - **सामिस्सं** - मांस सहित, **कुललं** - पक्षी को, **दिस्स** - देखकर, **वज्झमाणं** - पीड़ित होता हुआ, **णिरामिसं** - निरामिष - मांस रहित को, **आमिसं** - कामभोगादि आमीष को, **उज्झिता** - छोड़ कर, **विहरिस्सामि** - विचरण करूँगी, **णिरामिसा**- निरामिष - भोग रूपी आमिष से रहित।

भावार्थ - जैसे किसी पक्षी के मुंह में मांस के टुकड़े को देख कर दूसरे पक्षी उस पर झपटते हैं और उसे अनेक प्रकार से पीड़ा पहुँचाते हैं किन्तु जब वही पक्षी मांस के टुकड़े को छोड़ देता है, तो फिर उसे कोई नहीं सताता। इसी प्रकार हे राजन्! मैं भी मांस के टुकड़े के समान इस समस्त धन धान्यादि परिग्रह को छोड़ कर तथा समस्त बन्धनों से रहित होकर संयम मार्ग में विचरूँगी।

कामभोग, संसार वर्द्धक

गिद्धोवमा उ णच्चा णं, कामे संसार-वड्ढणे।
उरगो सुवण्ण-पासे व्व, संकमाणो तणुं चरे॥४७॥

कठिन शब्दार्थ - **गिद्धोवमा** - गृद्ध पक्षी की उपमा वाले, **संसार-वड्ढणे** - संसार को बढ़ाने वाले, **उरगो** - सर्प, **सुवण्णपासे** - गरुड़ के समीप, **संकमाणो** - शंकित होकर, **तणुं** - धीरे-धीरे (यतना पूर्वक), **चरे** - चलता है।

भावार्थ - उपरोक्त गृद्ध पक्षी की उपमा सुन कर और कामभोगों को संसार की वृद्धि करने वाले जान कर मुमुक्षु पुरुष को चाहिए कि जैसे सर्प, गरुड़ पक्षी के सामने शंकित होकर धीरे-धीरे निकल जाता है उसी प्रकार साधु विषय-भोगों से शंकित हो कर संयम मार्ग में प्रवृत्ति करे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मोक्ष, स्वस्थान है

णागो व्व बंधणं छित्ता, अप्पणो वसहिं वए।
एयं पत्थं महारायं, उस्सुयारित्ति! मे सुयं॥४८॥

कठिन शब्दार्थ - **णागो व्व** - जैसे हाथी, **बंधणं** - बंधनों को, **छित्ता** - तोड़ कर, **अप्पणो** - अपने, **वसहिं** - निवास स्थान में, **वए** - चला जाता है, **पत्थं** - पथ्य (श्रेयस्कर) है, **उस्सुयारि** - इषुकार, **महाराय** - हे महाराज!, **मे** - मैंने, **सुयं** - सुना है।

भावार्थ - जैसे हाथी सांकल आदि के बन्धन को तोड़ कर अपने स्थान पर चला जाता है और वहाँ सुखपूर्वक रहता है इसी प्रकार हे इषुकार महाराज! कर्म बन्धनों से छूट जाने पर यह आत्मा भी परमानंद स्वरूप मोक्ष को प्राप्त हो जाता है, ऐसा हितकारी उपदेश मैंने तत्त्वज्ञ पुरुषों से सुना है।

राजा और रानी त्यागी हुए

चइत्ता विउलं रज्जं, कामभोगे य दुच्चए।
णिव्विसया णिरामिसा, णिण्णेहा णिप्परिग्गहा॥४९॥

कठिन शब्दार्थ - **चइत्ता** - छोड़ कर, **विउलं** - विपुल, **रज्जं** - राज्य को, **दुच्चए** - दुस्त्यज, **णिव्विसया** - निर्विषय, **णिरामिसा** - निरामिष, **णिण्णेहा** - निःस्नेह, **णिप्परिग्गहा**- निष्परिग्रही।

भावार्थ - रानी कमलावती के उपदेश से राजा को प्रतिबोध हो गया, फिर राजा और रानी दोनों विस्तीर्ण राज्य को छोड़ कर और दुस्त्याज्य (कठिनता से छोड़े जाने योग्य) अथवा दुर्जय (कठिनाई से जीते जाने वाले) कामभोगों को छोड़ कर विषयों से रहित धन धान्यादि के ममत्व से रहित, स्नेह से रहित और परिग्रह से रहित हो गये।

तप संयम में पराक्रमी बने

सम्मं धम्मं वियाणित्ता, चिच्चा कामगुणे वरे।
तवं पगिज्झऽहक्खायं, घोरं घोरपरक्कमा॥५०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **सम्मं** - सम्यक् रूप से, **धम्मं** - धर्म को, **विआणित्ता** - जानकर, **चिच्चा** - छोड़कर, **कामगुणे** - कामभोगों को, **वरे** - श्रेष्ठ, **तवं** - तप को, **पगिज्झ** - स्वीकार कर, **अहक्खायं** - यथाख्यात - तीर्थंकरादि द्वारा प्रतिपादन किये हुए, **घोरं** - घोर, **घोरपरक्कमा** - घोर पराक्रमी।

भावार्थ - सम्यक् धर्म को जान कर तथा प्रधान कामभोगों को छोड़ कर वे यथाख्यात तीर्थंकर भगवान् द्वारा कहे गये घोर तप को स्वीकार कर के तप-संयम में घोर पराक्रम करने लगे।

छहों को विरक्ति, दीक्षा और मुक्ति

एवं ते कमसो बुद्धा, सव्वे धम्म-परायणा।
जम्म-मच्चु-भउव्विग्गा, दुक्खस्संत-गवेसिणो॥५१॥

कठिन शब्दार्थ - **कमसो** - क्रमशः, **बुद्धा** - प्रतिबुद्ध हुए, **धम्मपरायणा** - धर्म परायण, **जम्ममच्चुभउव्विग्गा** - जन्म और मृत्यु के भय से उद्विग्न, **दुक्खस्संत** - दुःख के अंत के, **गवेसिणो** - गवेषक।

भावार्थ - इस प्रकार वे सब (छहों) जीव क्रमशः प्रतिबोध पाकर धर्म में तत्पर हुए तथा जन्म और मृत्यु के भय से उद्विग्न होकर दुःखों का समूल नाश करने के लिए उद्यमवंत बने।

विवेचन - देवभद्र, यशोभद्र दोनों कुमारों को मुनियों को देखने से जातिस्मरण ज्ञान हुआ और वैराग्य पैदा हुआ। इन दोनों पुत्रों के निमित्त से इनके माता-पिता भृगु पुरोहित और यशा पुरोहितानी को बोध मिला व वैराग्य प्राप्त हुआ। इन चारों के निमित्त से रानी कमलावती को और रानी के निमित्त से राजा को वैराग्य पैदा हुआ। ये छहों जीव चरम शरीरी थे। इसलिए आठों कर्मों को क्षय करके उसी भव में मोक्ष चले गये।

सासणे विगयमोहाणं, पुव्विं भावण-भाविया।
अचिरेणेव कालेण, दुक्खस्संतमुवागया॥५२॥

कठिन शब्दार्थ - **सासणे** - जिनशासन में, **विगयमोहाणं** - मोह को दूर कर, **पुव्विं**- पूर्वजन्म में, **भावण भाविया** - भावना से भावित, **अचिरेणेव** - थोड़े ही, **कालेण** - समय में, **दुक्खस्संतं** - दुःखों के अंत को, **उवागया** - प्राप्त हुए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

भावार्थ - राग-द्वेष को जीतने वाला तीर्थंकर भगवान् के शासन में पूर्वभव की भावना से भावित हुए वे छहों जीव थोड़े ही समय में समस्त दुःखों के अन्त को प्राप्त हो गये अर्थात् सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हो गये।

उपसंहार

राया सह देवीए, माहणो य पुरोहिओ।
माहणी दारगा चेव, सव्वे ते परिणिव्वुडे॥ त्ति बेमि॥ ५३॥

कठिन शब्दार्थ - **राया** - राजा, **देवीए सह** - कमलावती रानी के साथ, **माहणो** - ब्राह्मण, **पुरोहिओ** - पुरोहित, **माहणी** - ब्राह्मणी, **दारगा** - दोनों पुत्र, **परिणिव्वुडे** - परिनिर्वृत - मोक्ष को प्राप्त हुए।

भावार्थ - कमलावती रानी सहित इषुकार राजा और ब्राह्मण भृगु पुरोहित तथा ब्राह्मणी उसकी भार्या यशा और दोनों कुमार वे सभी जीव मोक्ष को प्राप्त हो गये। ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ इति इषुकारीय नामक चौदहवाँ अध्ययन समाप्त॥

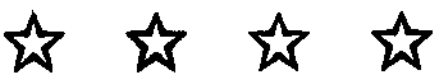

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सभिक्खू णामं पंचदहं अज्झयणं

सभिक्षु नामक पन्द्रहवां अध्ययन

चौदहवें अध्ययन में छह मुमुक्षु आत्माओं की प्रेरणादायी प्रव्रज्या का वर्णन होने के बाद प्रव्रजित भिक्षु की आदर्श जीवन चर्या के विषय में जिज्ञासा होती है। भिक्षु का कठोर असिधारा व्रत कितना जागृति पूर्ण ऋजुता, मृदुता, तितिक्षा, तप आदि गुणों से युक्त होता है, इसका वर्णन प्रस्तुत 'सभिक्षु' नामक इस पन्द्रहवें अध्ययन में किया गया है।

इस अध्ययन की प्रत्येक गाथा के अन्त में 'स भिक्खू' (स भिक्षुः) पद आया है अतः इस अध्ययन का नाम 'सभिक्षु' रखा गया है। इस लघु अध्ययन में सच्चे भिक्षु के लक्षण बताते हुए भिक्षु जीवन के अनेक उत्तमोत्तम गुण एवं मर्यादाओं का बहुत ही सारपूर्ण वर्णन किया गया है। इसकी प्रथम गाथा इस प्रकार है -

भिक्षुत्व की चौभंगी

मोणं चरिस्सामि समिच्च धम्मं, सहिए उज्जुकडे णियाणछिण्णे।
संथवं जहिज्ज अकामकामे, अण्णायएसी परिव्वए स भिक्खू॥१॥

कठिन शब्दार्थ - **मोणं** - मौन - मुनित्व-मुनिभाव का, **चरिस्सामि** - आचरण करूँगा, **समिच्च** - स्वीकार कर, **धम्मं** - धर्म को, **सहिए** - सहित - सम्यग्दर्शन गुणादि से युक्त, स्वहित में तत्पर आत्म-हिताभिलाषी, **उज्जुकडे** - ऋजुकृत - माया से रहित, **णियाण छिण्णे**- निदान छिन्न - निदान का छेदक-निदान रहित, **संथवं** - संस्तव-परिचय का, **जहिज्ज** - त्यागी, **अकामकामे** - काम वासना से रहित, **अण्णायएसी** - अज्ञातैषी - अज्ञात कुल की भिक्षा करने वाला, **परिव्वए** - अप्रतिबद्ध विहारी, **स** - वही, **भिक्खू** - भिक्षु - सद्भिक्षु है।

भावार्थ - जिसने विवेक पूर्वक सच्चे धर्म का विचार कर के मुनिवृत्ति अंगीकार करूँगा इस प्रकार के विचार वाला जो सम्यग्दर्शनादि से युक्त है, जो माया-रहित होकर सरल और नियाणा रहित तप-संयमादि क्रिया करने वाला है, जिसने अपने गृहस्थाश्रम के सम्बन्धियों के परिचय का त्याग कर दिया है, जो विषय-भोगों की अभिलाषा से रहित है तथा अज्ञात कुलों में गोचरी करता हुआ अप्रतिबद्ध विहार करता है, वह भिक्षु-मुनि कहलाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

विवेचन - प्रश्न - भिक्षु किसे कहते हैं?

उत्तर - भिक्षु शब्द की व्युत्पत्ति (अन्वर्थ) इस प्रकार की है - **"यमनियम व्यवस्थित कृतकारितानुमोदितपरिहारेण भिक्षते इत्येवंशीलो भिक्षु"** अर्थात् - पांच महाव्रत रूप यम (मूल गुण) तथा पिण्ड विशुद्धि आदि नियम (उत्तर गुण) का जो पालन करता हुआ और आहार आदि के बयालीस (४२) दोष टालकर शुद्ध संयम का पालन करता है, उसे भिक्षु कहते हैं।

भिक्षु शब्द की इस व्युत्पत्ति दूसरे प्रकार से भी की गई है -

"ज्ञान दर्शन चारित्रतया अष्ट प्रकारं कर्म भिनत्ति इति भिक्षुः"

अर्थात् ज्ञान दर्शन चारित्र का पालन कर जो आठ प्रकार के कर्मों का भेदन (विनाश-क्षय) करता है, उसको भिक्षु कहते हैं।

टीकाकार ने भिक्षुत्व की चौभंगी इस प्रकार बताई है - १. सिंह रूप से प्रव्रज्या ग्रहण करना और सिंहवत् पालना २. सिंहरूप से प्रव्रज्या ग्रहण करना किन्तु श्रृगाल रूप से पालन करना ३. श्रृगाल रूप से दीक्षा ग्रहण करना किन्तु सिंह रूप से उसका पालन करना और ४. श्रृगाल रूप से दीक्षा लेना और श्रृगाल रूप से ही उसका पालन करना इस चौभंगी में सर्वोतम भंग है - सिंह रूप से दीक्षा लेना और सिंह रूप से ही निरतिचार पूर्वक उसका पालन करना। यही सच्चे भिक्षु का लक्षण है।

अण्णायएसी (अज्ञातैषी) के दो अर्थ है - १. अपनी जाति आदि का परिचय दिये बिना ही जो आहार आदि की एषणा करता है २. जिन कुलों में साधु के जाति, कुल, तप, नियम आदि गुणों का परिचय नहीं है उन अज्ञात-अपरिचित घरों से भिक्षा की गवेषणा करने वाला।

सद्भिक्षु के लक्षण

राओवरयं चरेज्ज लाढे, विरए वेयवियायरक्खिए।
पण्णे अभिभूय सव्वदंसी, जे कम्हि वि ण मुच्छिए स भिक्खू॥२॥

कठिन शब्दार्थ - **राओवरयं** - रागोपरत-राग से उपरत (निवृत्त), रात्र्युपरत-रात्रि भोजन से दूर, रात्र्युपरत यानी रात्रि विहार से रहित, **चरेज्ज** - विचरने वाला, **लाढे** - लाढ - प्रधान-संयम में तत्पर, सदनुष्ठान पूर्वक, **विरए** - विरत, **वेयविय** - वेदविद्-शास्त्रज्ञ-सिद्धान्त का ज्ञाता, **आयरक्खिए** - आत्मरक्षक, **पण्णे** - प्राज्ञ - हेयोपादेय बुद्धि वाला, **अभिभूय** -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अभिभूत-परीषहों को जीत कर, **सव्वदंसी** - सर्वदर्शी - सभी जीवों को अपने समान देखने वाला, **जे** - जो, **कम्हिवि** - किसी वस्तु पर भी, **ण मुच्छिए** - मूर्च्छित नहीं होता।

भावार्थ - राग-रहित और लाढ-प्रधान संयम मार्ग में दृढ़ता पूर्वक विचरने वाला, विरत असंयम से निवृत्त, वेदवित् - शास्त्रों का ज्ञाता आत्म रक्षक, बुद्धिमान्, परीषह उपसर्गों को समभाव पूर्वक सहन करने वाला, सर्वदर्शी, सभी प्राणियों को अपनी आत्मा के समान देखने वाला तथा जो किसी भी पदार्थ में ममत्व नहीं रखता है, वह भिक्षु है।

अक्कोसवहं विइत्तु धीरे, मुणी चरे लाढे णिच्चमायगुत्ते।
अव्वग्गमणे असंपहिट्ठे, जे कसिणं अहियासए स भिक्खू॥३॥

कठिन शब्दार्थ - **अक्कोसवहं** - आक्रोश - कठोर वचन और वध - मारपीट को, **विइत्तु** - जान कर, **धीरे** - धीर, **मुणी** - मुनि, **णिच्चं** - नित्य, **आयगुत्ते** - आत्म गुप्त, **अव्वग्गमणे** - व्यग्र मन से रहित, **असंपहिट्ठे** - हर्ष से रहित, **कसिणं** - कृत्स्न - संपूर्ण परीषहों को, **अहियासए**- सहन करता है।

भावार्थ - यदि कोई साधु को कठोर वचन कहे अथवा मारे-पीटे तो उसे अपने पूर्वकृत कर्मों का फल जान कर जो मुनि समभाव पूर्वक सहन करता है और जो श्रेष्ठ कार्यों में प्रवृत्ति करता है तथा सदा आत्मगुप्त - पापकार्यों से अपनी आत्मा की रक्षा करता है और जो चित्त में किसी प्रकार का हर्ष-विषाद न लाते हुए कृत्स्न-संयम मार्ग में आने वाले सभी कष्टों को समभाव पूर्वक सहन करता है, वह भिक्षु है।

पंतं सयणासणं भइत्ता, सीउण्हं विविहं च दंसमसगं।
अव्वग्गमणे असंपहिट्ठे, जे कसिणं अहियासए स भिक्खू॥४॥

कठिन शब्दार्थ - **पंतं** - प्रान्त-निःसार, **सयणासणं** - शयनासन, शय्या आसन को, **भइत्ता** - सेवन करके, **सीउण्हं** - शीत और उष्ण, **विविहं** - विविध प्रकार के, **दंसमसगं** - दंश और मशक आदि परीषहों के प्राप्त होने पर।

भावार्थ - प्रांत-जीर्ण शय्या और आसन के मिलने पर तथा शीत-उष्ण, डांस मच्छर आदि अनेक प्रकार के परीषहों के उत्पन्न होने पर जो चित्त में किसी प्रकार की व्याकुलता न लाता हुआ एवं हर्ष-विषाद न करता हुआ कृत्स्न - सभी कष्टों को समभाव पूर्वक सहन करता है, वह भिक्षु है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णो सक्किकयमिच्छइ ण पूयं, णो वि य वंदणगं कुओ पसंसं।
से संजए सुव्वए तवस्सी, सहिए आयगवेसए स भिक्खू॥५॥

कठिन शब्दार्थ - **सक्किकयं** - सत्कार को, **इच्छइ** - इच्छा नहीं रखता है, **पूयं** - पूजा की, **वंदणगं** - वंदना की, **कुओ** - कैसे, **पसंसं** - प्रशंसा की, **संजए** - संयत, **सुव्वए** - सुव्रती, **तवस्सी** - तपस्वी, **सहिए** - सहित, **आयगवेसए** - आत्मगवेषक।

भावार्थ - जो सत्कार और पूजा प्रतिष्ठा की इच्छा नहीं रखता है। वन्दना और प्रशंसा की किंचिन्मात्र भी इच्छा नहीं रखता है। जो संयत-संयति, सुव्रती, तपस्वी, सहित-सम्यग् ज्ञानवान् एवं आत्मगवेषक है, वह भिक्षु है।

विवेचन - जो सच्चा साधु होता है वह प्रशंसा, वंदना, पूजा, सत्कार के लिए न संयम पालन करता है, न व्रताचरण करता है, न तप करता है और न आचार का पालन करता है। वह तो एक मात्र कर्मनिर्जरा के लिए - आत्म विशुद्धि के लिए ही संयम, व्रत, तप आदि करता है।

प्रस्तुत गाथा में प्रयुक्त सत्कार, पूजा, वंदना और प्रशंसा की चाह आत्मार्थी साधक के लिये अत्यंत बाधक है। जिस गांव या नगर में पहुँचे वहां जनसमूह बड़ी संख्या में स्वागत के लिए सामने आए, विहार करे तब दूर-दूर तक लोग पहुँचाने आए, सभा में प्रवेश करते ही लोग आदर सहित जय जयकार करे, ऐसी इच्छा रखना सत्कार-चाह है। लोग सुंदर वस्त्र, पात्र, स्वादिष्ट सरस आहार आदि बहरा कर सम्मानित करें, ऐसी इच्छा रखना पूजा की चाह है। लोग मुझे देखते ही विधियुक्त वंदना करे, नमन करे, ऐसी इच्छा वंदन की चाह है। लोग मेरी एवं मेरे गुणों की सराहना करे, लोगों में मेरी प्रसिद्धि हो, ऐसी आकांक्षा रखना, प्रशंसा की चाह है।

जेण पुणो जहाइ जीवियं, मोहं वा कसिणं णियच्छइ।
णरणारिं पजहे सया तवस्सी, ण य कोऊहलं उवेइ स भिक्खू॥६॥

कठिन शब्दार्थ - **जेण** - जिससे, **पुणो** - फिर, **जहाइ** - छूट जाता है, **जीवियं** - संयमी जीवन, **णियच्छइ** - बढ़ता है, **णरणारिं** - नर और नारी को, **पजहे** - त्यागता है, **कोऊहलं** - कौतुहल को, **ण उवेइ** - नहीं करता है।

भावार्थ - जिनका संग करने से संयम रूप जीवन का सर्वथा विनाश हो जाता हो अथवा सम्पूर्ण मोहनीय कर्म का बन्ध होता हो, ऐसे नर और नारी की संगति को जो तपस्वी मुनि सदा के लिए छोड़ देता है और जो कुतूहल को प्राप्त नहीं होता एवं पूर्व भोगे हुए भोगादि का स्मरण नहीं करता है, वह भिक्षु है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विविध विद्याओं से आजीविका न करने वाला

छिण्णं सरं भोमम्मंतलिक्खं, सुमिणं लक्खण-दंड-वत्थुविज्जं।
अंगवियारं सरस्स विजयं, जे विज्जाहिं ण जीवइ स भिक्खू॥७॥

कठिन शब्दार्थ - **छिण्णं** - छिन्न विद्या, **सरं** - स्वर विद्या, **भोमं** - भौम (भूकम्प) विद्या, **अंतलिक्खं** - अंतरिक्ष विद्या, **सुमिणं** - स्वप्न विद्या, **लक्खण** - लक्षण विद्या, **दंड**-दण्ड विद्या, **वत्थुविज्जं** - वास्तु विद्या, **अंगवियारं** - अंग विकार विद्या, **सरस्स विजयं** - स्वर विजय विद्या, **विज्जाहिं** - विद्याओं से, **ण जीवइ** - आजीविका नहीं करता।

भावार्थ - छिन्न - वस्त्र-काष्ठादि छेदने की विद्या, स्वर विद्या, भूकम्प विद्या, अन्तरिक्ष-आकाश सम्बन्धी विद्या, स्वप्न-विद्या (स्वप्नों का फल बताने वाली विद्या), लक्षण शरीर के लक्षणों द्वारा सुख-दुःख बताने वाली विद्या, दंड-विद्या, वास्तु-विद्या, मकान बनाने की विद्या, अंग-स्फुरण के शुभाशुभ फल बताने वाली विद्या और पशु-पक्षियों की बोली जानने की विद्या इन कुत्सित एवं निन्दित विद्याओं से जो अपनी आजीविका नहीं करता है-वह भिक्षु है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में यह स्पष्ट किया गया है कि संयमी साधु विविध लौकिक विद्याओं का अपनी आजीविका चलाने में उपयोग नहीं करे। इस गाथा में निम्न दस प्रकार की विद्याओं का कथन किया गया है -

१. **छिन्न विद्या** - वस्त्र या पात्र के कटे भाग एवं छिद्र को देख कर शुभाशुभ का ज्ञान करना।

२. **स्वर विद्या** - षड्ज आदि स्वरों से मनुष्य की पहचान करना या संगीत के स्वर को पहचानना, नासिका के दक्षिण भाग से चलने वाली वायु से तीन नाड़ियों में से कौनसी नाड़ी चल रही है और कौनसी नाड़ी में कौनसा कार्य करना लाभकारी होता है, इसका ज्ञान करना।

३. **भौम विद्या** - भूमि में कहां कौनसी वस्तु मिल सकती है? आदि रूप से भूमि का लाभालाभ समझना।

४. **अंतरिक्ष विद्या** - आकाश के ग्रह नक्षत्र और तारों की गति से वर्ष और समय का शुभाशुभ रूप जानना।

५. **स्वप्न विद्या** - स्वप्न के द्वारा शुभाशुभ फल को जानना।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६. लक्षण विद्या - स्त्री पुरुष और हाथी घोड़े आदि के शरीरस्थ मष-तिलक और रेखाओं से शुभाशुभ जानना।

७. दण्ड विद्या - कैसा दण्ड लाभकारी होता है, कितनी गांठ वाला क्या फल देता है आदि जानकारी देने वाली दण्ड विद्या कहलाती है।

८. वास्तु विद्या - भवन निर्माण संबंधी जानकारी, मकान में रसोई घर, शयन घर आदि कहां रखना शुभ और कहां रखना अशुभ होता है इसका ज्ञान करना।

९. अंगविचार विद्या - हाथ, पांव, आंख, ललाट आदि अंगों के फड़कने (स्फुरण) के शुभाशुभ फल का विचार करना।

१०. स्वर विजय विद्या - पशुपक्षियों की आवाज से शुभाशुभ फल बताने वाली विद्या।

तप संयम के प्रभाव से साधु को कई प्रकार की विद्याएं हो जाती हैं किंतु निस्पृह साधक इन विद्याओं का उपयोग अपनी आजीविका चलाने में, लोगों को आश्चर्यचकित करने आदि के लिए इनका उपयोग नहीं करता क्योंकि वह इन्हें पापसूत्र मानता है।

दशवैकालिक सूत्र अध्ययन ८ गाथा ५१ में कहा गया है कि - मुनि नक्षत्र, स्वप्न योग-दो वस्तुओं का संयोग, भूत-भविष्य के निमित्त मंत्र और भेषज-औषध स्वयं जान कर भी गृहस्थ को नहीं बतावे। इससे प्रतीत होता है कि मुनि के लिये इन विद्याओं को जानना और संघ हित के लिए शिष्यादि को बताना निषिद्ध नहीं है।

मंत्रादि से चिकित्सा निषेध

मंतं मूलं विविहं वेज्जचिंतं, वमण-विरेयण-धूमणेत्त-सिणाणं।
आउरे सरणं तिगिच्छियं च, तं परिण्णाय परिव्वए स भिक्खू॥८॥

कठिन शब्दार्थ - **मंतं** - मंत्र, **मूलं** - मूल, **विविहं** - विविध प्रकार के, **वेज्जचिंतं** - वैद्यकीय चिंतन, **वमण** - वमन, **विरेयण** - विरेचन, **धूम** - धूम, **णेत्त** - नैत्रोषधि, **सिणाणं**-स्नान, **आउरे** - आतुर, **सरणं** - स्मरण, **तिगिच्छियं** - चिकित्सा, **परिण्णाय** - परिज्ञा से अर्थात् ज्ञ परिज्ञा से जान कर और प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्याग कर, **परिव्वए** - संयम मार्ग में विचरे।

भावार्थ - मंत्र-तंत्रादि का प्रयोग, मूल - जड़ी-बूटी, अनेक प्रकार के वैद्यक प्रयोग, वमन, विरेचन, धूम्र प्रयोग, आँख का अञ्जन, स्नान, रोग से पीड़ित होने पर 'हा मात! हा तात!' इत्यादि विलाप करना और चिकित्सा इत्यादि प्रयोग जो अपने लिए नहीं करे तथा दूसरों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के लिए भी न करे-करावे इन सब को ज्ञ-परिज्ञा से जान कर प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्याग देता है वह भिक्षु है।

खत्तियगण-उग्गरायपुत्ता, माहण-भोइय विविहा य सिप्पिणो।
णो तेसिं वयइ सिलोग-पूयं, तं परिण्णाय परिव्वए स भिक्खू॥९॥

कठिन शब्दार्थ - **खत्तिय** - क्षत्रिय, **गण** - गण, **उग्गरायपुत्ता** - उग्र कुल के पुत्र (राजपुत्र), **माहण** - ब्राह्मण, **भोइय** - भोगिक, **सिप्पिणो** - शिल्पी, **सिलोगपूयं** - श्लाघा (प्रशंसा) और पूजा को।

भावार्थ - क्षत्रिय, मल्ल-योद्धा, उग्र-कोतवाल, राजपुत्र, ब्राह्मण, प्रधान और नाना प्रकार के कलाकार इन सब की जो प्रशंसा नहीं करता और पूजा भी नहीं करता किन्तु इन कार्यों को साधुओं के लिए अयोग्य जान कर छोड़ देता है वह भिक्षु है।

विवेचन - उपर्युक्त गाथाओं में साधु द्वारा विद्याएं आदि बता कर आहार आदि प्राप्त करने का निषेध किया गया है। साधु मंत्र, मूल, विविध वैद्यकीय विचार सदोष जान कर त्याग दे। क्योंकि इन विद्याओं के प्रयोग से छोटे बड़े जीवों का आरंभ और संयम में दोष लगने की संभावना है। साधु यदि निःशुल्क चिकित्सा करेगा तो लोगों की भीड़ बनी रहेगी फलस्वरूप ज्ञान, ध्यान नहीं हो पायेगा और संयम पालन में बाधा आयेगी। अतः विवेकी साधु इन विद्याओं को सदोष जानकर त्याग कर दे।

गृहस्थों से अति परिचय का निषेध

गिहिणो जे पव्वइएण दिट्ठा, अपव्वइएण व संथुया हविज्जा।
तेसिं इह-लोइय-फलट्ठा, जो संथवं ण करेइ स भिक्खू॥१०॥

कठिन शब्दार्थ - **गिहिणो** - गृहस्थों को, **पव्वइएण** - प्रव्रजित होने के बाद, **दिट्ठा** - देख कर, **अपव्वइएण** - अप्रव्रजित अवस्था, (गृहस्थावास) में, **संथुया** - परिचित, **हविज्जा**- हुए हों, **इहलोइय** - इस लोक के, **फलट्ठा** - फल प्राप्ति के लिए, **संथवं** - संस्तव-विशेष परिचय।

भावार्थ - प्रव्रजित - दीक्षा लेने के पश्चात् जिन गृहस्थों को देखने का प्रसंग आया हो और जिनके साथ परिचय हुआ हो अथवा अप्रव्रजित - गृहस्थावस्था में रहते समय जिन गृहस्थों के साथ संस्तुत-परिचय हुआ हो इस प्रकार दोनों अवस्था में परिचय में आने वाले

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गृहस्थों के साथ इहलौकिक फल की प्राप्ति के लिए जो संस्तव-विशेष परिचय नहीं करता है वह भिक्षु है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में साधु साध्वियों का गृहस्थों से विशेष परिचय नहीं करने का निर्देश किया गया है क्योंकि **'संसर्गजा दोष गुणा भवंति'** इस न्याय के अनुसार अगर साधु गृहस्थों से अत्यधिक संसर्ग करेगा तो उसमें रागवृद्धि होने से चारित्र के गुणों में हानि होने की संभावना है। अति संसर्ग होने से ज्ञानध्यान में बाधा पड़ेगी, जप-तप की साधना भंग होगी और कदाचित् संयम से पतन भी हो जाय अतः कहा गया है कि - **"गिहि संथवं ण कुज्जा कुज्जा साहूहिं संथवं"** अर्थात् गृहस्थों से अधिक परिचय न करे, साधुओं के साथ ही परिचय करे ताकि संयम और त्याग, तप में वृद्धि हो।

रागद्वेष-त्याग

सयणासणपाणभोयणं, विविहं खाइमं-साइमं परेसिं।
अदए पडिसेहिए णियंठे, जे तत्थ ण पउस्सइ स भिक्खू॥११॥

कठिन शब्दार्थ - **सयणासण** - शयन आसन, **पाण** - पान, **भोयणं** - भोजन, **खाइम-साइमं** - खादिम-स्वादिम, **परेसिं** - गृहस्थों के, **अदए** - न देने से, **पडिसेहिए** - निषेध कर दे, **णियंठे** - निर्ग्रंथ, **ण पउस्सइ** - द्वेष नहीं करता है।

भावार्थ - शय्या, आसन, पानी और आहार तथा अनेक प्रकार के खादिम और स्वादिम पदार्थ गृहस्थ के घर में रहे हुए हों, किन्तु मुनि द्वारा उन पदार्थों की याचना करने पर भी यदि वह न दे और मना कर दे तो भी जो निर्ग्रन्थ मुनि उस गृहस्थ पर द्वेष न करे, वह भिक्षु है।

विवेचन - यदि किसी गृहस्थ के यहां प्रचुर मात्रा में शयन आसन आदि तथा अशन, पान, खादिम, स्वादिम उपलब्ध हो और वह साधु को नहीं देता है, सकारण मांगने पर भी मना कर देता है अथवा टालमटूल करता है या इस प्रकार निषेध कर देता है कि अरे साधु! हमारे यहां क्यों आया, यहां मत आना, तो भी साधु मन में द्वेष भाव न लाये। यह नहीं सोचे कि इसके घर में प्रचुर सामग्री होते हुए भी यह दान नहीं देता है, मेरे द्वारा मांगने पर भी मुझे इंकार करता है। धिक्कार है इस दुष्ट को! इस प्रकार के विचार जो मन में भी नहीं लाता है, दाता (गृहस्थ) पर द्वेष नहीं करता है वही सच्चा भिक्षु है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जं किंचि आहारपाणगं, विविहं खाइमं-साइमं परेसिं लद्धुं।
जो तं तिविहेण णाणुकंपे, मणवयकाय सुसंवुडे जे स भिक्खू॥१२॥

कठिन शब्दार्थ - **लद्धुं** - प्राप्त होने पर, **तिविहेण** - तीन योगों से, **ण अणुकंपे** - अनुकम्पा नहीं करता, **मण** - मन, **वय** - वचन, **काय** - काया से, **सुसंवुडे** - सुसंवृत।

भावार्थ - गृहस्थों के घर से जो कुछ आहार-पानी और अनेक प्रकार के खादिम और स्वादिम प्राप्त करके जो नर (साधु) मन-वचन काया से बाल, वृद्ध और ग्लान साधुओं पर अनुकम्पा करता है अर्थात् उस आहारादि का संविभाग करने के पश्चात् स्वयं आहार करता है जो मन-वचन और काया को वश में रखता है वह भिक्षु है।

इस गाथा में आये हुए '**णाणुकंपे**' का अर्थ टीका में इस प्रकार भी किया है कि भिक्षु द्वारा प्राप्त हुए आहारादि का जो **ण** - नहीं, **अणुकंपे** - साथी साधुओं में संविभाग नहीं करता है वह भिक्षु नहीं है, जो संविभाग करता है वह भिक्षु कहलाता है। ऐसा करने में 'न' की पुनरावृत्ति करनी पड़ती है, यह क्लिष्ट कल्पना है। इसलिए पहला अर्थ ही ठीक है क्योंकि दोनों तरह से वही अर्थ है, फिर सरल अर्थ को छोड़ कर क्लिष्ट कल्पना करना व्यर्थ है)।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में कहा गया है कि साधु आहारादि के बदले गृहस्थों का कोई कार्य नहीं करे।

इस गाथा की निम्न दो व्याख्याएं की जाती है -

१. गृहस्थों से आहारादि प्राप्त करके बदले में उन्हें पुत्र-धन, लौकिक विद्यादि प्राप्ति का आशीर्वाद नहीं देता अथवा बदले में उनका कोई व्यवसायादि या गृहादि से संबंधित कार्य करके उपकार नहीं करता।

२. द्रव्य उपकार सावद्य और स्वार्थ भाव को पुष्ट करने वाला है अतः साधु गृहस्थों का द्रव्य उपकार नहीं करता।

नीरस आहारादि की निन्दा न करने वाला

आयामगं चेव जवोदणं च, सीयं सोवीर जवोदगं च।
णो हीलए पिंडं णीरसं तु, पंत-कुलाइं परिव्वए स भिक्खू॥१३॥

कठिन शब्दार्थ - **आयामगं** - आयामक-ओसामण, **जवोदणं** - यव का भात, **सीयं**-ठण्डा भोजन, **सोवीर** - कांजी का पानी, **जवोदगं** - यव-जौ का पानी, **ण हीलए** - हीलना नहीं करे, **पिण्डं** - पिण्ड-आहार, **णीरसं** - नीरस, **पंत-कुलाइं** - प्रान्त कुलों में।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - गृहस्थों के घर से मिले हुए निर्दोष ओसामण (चावल आदि का पानी) और यवोदन - जौ का दलिया और ठंडा आहार, कांजी आदि का पानी और यवोदक - जौ का पानी और नीरस आहारादि के मिलने पर जो उसकी अवहेलना (निंदा) नहीं करता तथा प्रान्त कुल (दरिद्र कुल) एवं सामान्य स्थिति के घरों में भी भिक्षावृत्ति करता है, वह भिक्षु है।

विवेचन - जो भिक्षु गृहस्थ से नीरस आहार पानी प्राप्त कर उस गृहस्थ की या उस पिण्ड की निन्दा नहीं करता और न ही उस आहार पानी की अवहेलना-अवज्ञा करके फैंकता है अपितु उसे समभाव से उदरस्थ कर लेता है तथा साधारण घरों में (निर्धनों के यहां) भी निर्दोष आहार के लिए जाता है, वह सच्चा भिक्षु है।

सद्दा विविहा भवंति लोए, दिव्वा माणुस्सगा तहा तिरिच्छा।
भीमा भयभेरवा उराला, सोच्चा ण विहिज्जइ स भिक्खू॥१४॥

कठिन शब्दार्थ - **सद्दा** - शब्द, **विविहा** - नाना प्रकार के, **भवंति** - होते हैं, **लोए**- लोक में, **दिव्वा** - देव संबंधी, **माणुस्सगा** - मनुष्य संबंधी, **तिरिच्छा** - तिर्यंच संबंधी, **भीमा** - भयंकर-रौद्र, **भयभेरवा** - भय से भैरव, **उराला** - प्रधान, **सोच्चा** - सुन कर, **ण विहिज्जइ** - नहीं डरता है।

भावार्थ - लोक में देव सम्बन्धी, मनुष्य सम्बन्धी और तिर्यंच सम्बन्धी नाना प्रकार के भयंकर, भयोत्पादक और उदार-महान् शब्द होते हैं, उन्हें सुन कर जो भयभीत हो कर धर्मध्यान से चलित नहीं होता, वह भिक्षु है।

वादं विविहं समिच्च लोए, सहिए खेयाणुगए य कोवियप्पा।
पण्णे अभिभूय सव्वदंसी, उवसंते अविहेडए स भिक्खू॥१५॥

कठिन शब्दार्थ - **वादं** - वाद को, **समिच्च** - जान करके, **सहिए** - सहित - ज्ञान दर्शन चारित्र से युक्त, **खेयाणुगए** - खेदानुगत - खेद अर्थात् संयम में अनुगत, **कोवियप्पा** - कोविदात्मा-विद्वान्, **पण्णे** - प्राज्ञ, **अभिभूय** - परीषहों को जीत कर, **सव्वदंसी** - सर्वदर्शी-सब के प्रति समदर्शी, **उवसंते** - उपशान्त, **अविहेडए** - अविहेठक - किसी को विघ्न नहीं पहुँचाता।

भावार्थ - लोक में प्रचलित नाना प्रकार के वादों को जान कर जो कोविद आत्मा-विचक्षण साधु अपने आत्म-धर्म में स्थिर रहता हुआ, संयम में दत्तचित्त रहता है। जो बुद्धिमान् साधु सभी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परीषहों को समभाव पूर्वक सहन करता है तथा समस्त जीवों को अपनी आत्मा के समान देखता हुआ कषायों पर विजय प्राप्त करता है। किसी जीव को पीड़ा नहीं पहुँचाता वह भिक्षु है।

उपसंहार

असिप्पजीवी अगिहे अमित्ते, जिइंदिए सव्वओ विप्पमुक्के।
अणुक्कसाई लहु अप्पभक्खी, चिच्चा गिहं एगचरे स भिक्खू॥१६॥॥ त्ति बेमि॥

कठिन शब्दार्थ - **असिप्पजीवी** - शिल्पजीवी नहीं है, **अगिहे** - गृह से रहित, **अमित्ते** - मित्र-शत्रु रहित, **जिइंदिए** - जितेन्द्रिय, **विप्पमुक्के** - विप्रमुक्त - परिग्रह से मुक्त, **अणुक्कसाई** - अणु-कषायी, **लहु** - लघु, **अप्पभक्खी** - अल्पभक्षी, **गिहं** - गृहवास को, **एगचरे** - एक चर्या।

भावार्थ - शिल्प-कला द्वारा अपना निर्वाह न करने वाला, घरबार से रहित, मित्र एवं शत्रु-रहित (रागद्वेष-रहित), जितेन्द्रिय, सर्वतः विप्रमुक्त-अर्थात् बाह्य और आभ्यंतर बन्धनों से सर्वथा रहित, अल्प कषाय वाला अल्प एवं परिमित आहार करने वाला, द्रव्य और भाव परिग्रह को छोड़ कर रागद्वेष-रहित हो कर जो विचरता है, वह भिक्षु है। ऐसा मैं कहता हूँ।

विवेचन - जैन साधु चित्रकारी, दस्तकारी आदि किसी शिल्प से जीविका नहीं चलाता, उसके कोई अपना घर या आश्रम नहीं होता। प्राणिमात्र के साथ मैत्री भाव होने से उसकी किसी के साथ शत्रुता नहीं होती। वह जितेन्द्रिय और धनादि परिग्रह से सर्वथा मुक्त होता है। जिसकी क्रोध आदि कषायें मंद होती है और जो घर का त्याग कर रागद्वेष से रहित होकर एकाकी भाव में विचरण करता है। वही भिक्षु है।

इस अध्ययन के समान ही दशवैकालिक सूत्र का १०वाँ 'सभिक्षु' नामक अध्ययन भी है, जिसमें भिक्षु के आचार का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। 'अनगार मार्ग' नामक उत्तराध्ययन सूत्र के ३५वें अध्ययन में भी अनगार मार्ग का वर्णन किया गया है जो कि जिज्ञासुओं के लिये दृष्टव्य है।

॥ इति सभिक्षु नामक पन्द्रहवां अध्ययन समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बंभचेरसमाहिठाणं णामं सोलसमं अज्झयणं

ब्रह्मचर्य-समाधि स्थान नामक सोलहवाँ अध्ययन

उत्थानिका - पन्द्रहवें अध्ययन में भिक्षु का स्वरूप बताया गया है। भिक्षु के गुणों में ब्रह्मचर्य की प्रधानता है। अतः इस सोलहवें अध्ययन में ब्रह्मचर्य का स्वरूप और उसकी रक्षा के स्थानों-साधनों का वर्णन किया गया है।

इस अध्ययन का नाम ब्रह्मचर्य-समाधि-स्थान है। क्योंकि इसमें ब्रह्मचर्य में समाधि प्राप्त करने के लिए निम्न दश ब्रह्मचर्य समाधि स्थानों का विशद वर्णन किया है -

१. विविक्त शयनासन।

२. स्त्री कथा वर्जन।

३. स्त्री के साथ एकासन एवं वार्तालाप का त्याग।

४. स्त्री के अंगोपांगों को नहीं निरखना।

५. स्त्री के वासनावर्द्धक शब्दादि को श्रवण न करना।

६. पूर्वानुभूत भोगों के स्मरण का निषेध।

७. विकार वर्द्धक आहार का त्याग।

८. परिमाण से अधिक आहार का त्याग।

९. श्रृंगार विभूषा का निषेध।

१०. शब्दादि पांच इन्द्रिय विषयों की आसक्ति का त्याग।

ये ही ब्रह्मचर्य की नौ बाडें और दसवीं (एक) कोट है। इनका सम्यक् प्रकार से पालन करना ही ब्रह्मचर्य समाधि प्राप्त करना है।

आगमकार ने इस अध्ययन में पहले गद्य रूप में और तत्पश्चात् पद्य रूप में ब्रह्मचर्य समाधि के सुरक्षात्मक नियम बता कर भिक्षु को उनका दृढ़तापूर्वक पालन करने का निर्देश दिया है साथ ही उक्त ब्रह्मचर्य समाधि-स्थान को न अपनाने पर साधक को प्राप्त होने वाले दुष्परिणामों का भी उल्लेख किया है। इसका प्रथम सूत्र इस प्रकार है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ब्रह्मचर्य समाधि स्थान

सुयं मे आउसं तेणं भगवया एवमक्खायं। इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिं दस बंभचेर-समाहि-ठाणा पण्णत्ता, जे भिक्खू सुच्चा णिसम्म संजमबहुले संवर-बहुले समाहिबहुले गुत्ते गुत्तिंदिए गुत्तबंभयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **सुयं** - सुना है, **मे** - मैंने, **आउसं** - हे आयुष्मन्! **तेणं** - उन, **भगवया** - भगवंतों ने, **एवं** - इस प्रकार, **अक्खायं** - कहा है, **इह** - इस निर्ग्रंथ प्रवचन में, **खलु** - निश्चय से, **थेरेहिं भगवंतेहिं** - स्थविर भगवंतों ने, **दस बंभचेर समाहिठाणा** - ब्रह्मचर्य समाधि के दस स्थान, **पण्णत्ता** - बतलाए हैं, **जे** - जो, **भिक्खू** - भिक्षु, **सोच्चा** - सुन कर, **णिसम्म** - अर्थ का निश्चय कर, **संजमबहुले** - संयम में अधिकाधिक लक्ष्य रखने वाला, **संवरबहुले** - संवर में अधिक सम्पन्न, **समाहिबहुले** - समाधि में अधिक सम्पन्न, **गुत्ते** - गुप्त - मन, वचन, काया का गोपन करके, **गुत्तिंदिए** - गुप्तेन्द्रिय, **गुत्तबंभयारी** - गुप्त ब्रह्मचारी, **सया** - सदा, **अप्पमत्ते** - अप्रमत्त होकर, **विहरेज्जा** - विचरे।

भावार्थ - श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं कि हे आयुष्मन्! मैंने सुना है उन भगवंतों ने इस प्रकार फरमाया है इस जिन शासन में स्थविर भगवंतों ने ब्रह्मचर्य समाधि के दस स्थान बताये हैं, जिन्हें सुन कर और हृदय में धारण करके साधु संयम संवर और समाधि में दृढ़ हो कर मन-वचन-काय से गुप्त, गुप्तेन्द्रिय और गुप्त ब्रह्मचारी होकर (ब्रह्मचर्य का रक्षक) सदा अप्रमत्त भाव से विचरे।

विवेचन - ब्रह्मचर्य का निश्चय नय की दृष्टि से अर्थ है - ब्रह्म+चर्य। ब्रह्म अर्थात् आत्मा यानी आत्म स्वभाव में, चर्य अर्थात् रमण या विचरण करना। ब्रह्मचर्य का व्यावहारिक दृष्टि से अर्थ है - सर्वेन्द्रिय संयम, इन्द्रिय मनोनिग्रह, जननेन्द्रिय संयम, वीर्यरक्षण, सर्व मैथुन विरमण आदि।

ब्रह्मचर्य में चित्त का सम्यक् प्रकार से जम जाना, चित्त का दृढ़ हो जाना, मन, बुद्धि, चित्त और अन्तःकरण का तथा सभी इन्द्रियों एवं अंगोपांगों का ब्रह्मचर्य के साथ एकरस हो जाना, उसी में तल्लीन हो जाना, ब्रह्मचर्य से विचलित न होना 'ब्रह्मचर्य-समाधि' है। इस प्रकार की ब्रह्मचर्य-समाधि के स्थान साधन अर्थात् कारण - ब्रह्मचर्य-समाधि-स्थान हैं, ऐसे ब्रह्मचर्य समाधि स्थान दश हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इन दश ब्रह्मचर्य समाधि स्थानों को सुन कर एवं अर्थ का निर्णय करके विशिष्ट साधना से युक्त साधक ब्रह्मचर्य पालन में मन-वचन-काया से स्थिर हो सकता है।

संयम में खेदित होते हुए तथा धर्म से डिगते हुए प्राणी को जो धर्म में स्थिर करे, उसे 'स्थविर' कहते हैं। ठाणांग सूत्र ३ उद्देशा ३ में स्थविर के तीन भेद बतलाएं हैं। यथा -

१. वयःस्थविर (जन्म स्थविर, जाति स्थविर) - साठ वर्ष की अवस्था के साधु वयः स्थविर कहलाते हैं।

२. श्रुत स्थविर (सूत्र स्थविर-ज्ञान स्थविर) - श्री स्थानांग (ठाणांग) और समवायांग सूत्र के ज्ञाता सूत्र स्थविर कहलाते हैं।

३. प्रव्रज्या स्थविर (दीक्षा स्थविर-पर्याय स्थविर) - बीस वर्ष की दीक्षा पर्याय वाले साधु प्रव्रज्या स्थविर कहलाते हैं।

तीर्थंकर भगवन्तों के गणधरों को भी 'स्थविर' कहते हैं।

ब्रह्मचर्य समाधि स्थानों की जिज्ञासा

कयरे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं दस बंभचेर-समाहि ठाणा पण्णत्ता, जे भिक्खू सुच्चा णिसम्म संजमबहुले संवरबहुले समाहिबहुले गुत्ते गुत्तिंदिए गुत्तबंभयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा।

कठिन शब्दार्थ - कयरे - कौन से।

भावार्थ - आर्य जम्बूस्वामी, आर्य सुधर्मा स्वामी से जिज्ञासा करते हैं कि स्थविर भगवंतों ने ब्रह्मचर्य समाधि के वे कौन से दश स्थान बतलाए हैं जिन्हें सुन कर, जिनका अर्थागम करके भिक्षु संयम, संवर और समाधि से अधिकाधिक समृद्ध होकर मन, वचन और काया को संगुप्त करे, इन्द्रियों को नियंत्रित करे, ब्रह्मचर्य को सुरक्षित रखे तथा सदा अप्रमत्त भाव में विचरण करे।

जिज्ञासा का समाधान

इमे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं दस बंभचेर-समाहि ठाणा पण्णत्ता, जे भिक्खू सुच्चा णिसम्म संजमबहुले संवरबहुले समाहिबहुले गुत्ते गुत्तिंदिए गुत्तबंभयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - आर्य सुधर्मा स्वामी समाधान प्रस्तुत करते हैं - स्थविर भगवंतों के द्वारा ब्रह्मचर्य समाधि के ये निम्न दश स्थान बतलाए गए हैं जिन्हें सुनकर, जिनके अर्थ का निर्णय कर, भिक्षु संयम, संवर एवं समाधि में अधिकाधिक स्थिर हो कर मन, वचन और काया को संगुप्त करे, इन्द्रियों को वशीभूत करे, ब्रह्मचर्य को सुरक्षित रखे तथा सदैव अप्रमत्त होकर विचरण करे।

प्रथम ब्रह्मचर्य समाधि स्थान - विविक्त शयनासन सेवन

तंजहा - विवित्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता हवइ से णिग्गंथे। णो इत्थीपसुपंडग संसत्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता हवइ से णिग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह- णिग्गंथस्स खलु इत्थीपसुपंडग-संसत्ताइं सयणासणाइं सेवमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलिपण्णत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु णो णिग्गंथे इत्थीपसुपंडग-संसत्ताइं सयणासणाइं सेविज्जा॥१॥

कठिन शब्दार्थ - **तंजहा** - वे इस प्रकार हैं, **विवित्ताइं** - विविक्त (एकान्तर), **सयणासणाइं** - शयन और आसनों का, **सेवित्ता** - सेवन कर, **हवइ** - होता है, **णिग्गंथे** - निर्ग्रन्थ, **इत्थी** - स्त्री, **पसु** - पशु, **पंडग** - नपुंसक, **संसत्ताइं** - संसक्त, **तं** - वह, **कहं** - कैसे, **इति चे** - यदि ऐसा कहा जाए, **आयरियाह** - आचार्य ने कहा, **णिग्गंथस्स** - निर्ग्रन्थ के, **सेवमाणस्स** - सेवन करने वाले के, **बंभयारिस्स** - ब्रह्मचारी के, **बंभचेरे** - ब्रह्मचर्य में, **संका** - शंका, **वा** - अथवा, **कंखा** - कांक्षा, **विइगिच्छा** - विचिकित्सा, **समुप्पज्जिज्जा** - समुत्पन्न होती है, **भेदं** - भेद-विनाश, **लभेज्जा** - होने की, **उम्मायं** - उन्माद, **पाउणिज्जा** - प्राप्त होने की, **दीहकालियं** - दीर्घकालिक, **रोगायंकं** - रोग और आतंक, **हवेज्जा** - हो जाता है, **केवलिपण्णत्ताओ** - केवली प्ररूपित, **धम्माओ** - धर्म से, **भंसिज्जा** - भ्रष्ट हो जाता है, **तम्हा** - इसलिए, **सेविज्जा** - सेवन करे।

भावार्थ - जैसे कि जो विविक्त अर्थात् स्त्री, पशु और नपुंसक रहित शय्या और आसनादि का सेवन करता है वह निर्ग्रन्थ होता है और जो स्त्री, पशु और नपुंसक से युक्त शय्या और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आसनादि का सेवन करता है वह निर्ग्रन्थ नहीं है। शिष्य प्रश्न करता है कि हे भगवन्! निर्ग्रन्थ को स्त्री, पशु और नपुंसक युक्त शय्या - आसनादि का सेवन क्यों नहीं करना चाहिए?

आचार्य महाराज उत्तर देते हैं कि निश्चय से स्त्री, पशु और नपुंसक युक्त शय्या और आसनादि का सेवन करने वाले निर्ग्रन्थ ब्रह्मचारी को, ब्रह्मचर्य में शंका अथवा कांक्षा - भोग-भोगने की इच्छा अथवा विचिकित्सा - ब्रह्मचर्य के फल के प्रति संदेह उत्पन्न हो सकता है, अथवा विषयेच्छा जागृत होने से संयम का एवं ब्रह्मचर्य का विनाश होने की तथा उन्माद की प्राप्ति होने की संभावना रहती है और ऐसे कुविचारों के तथा दुष्कार्य के फल स्वरूप दीर्घकाल तक रहने वाला शारीरिक रोग, आतंक (शीघ्र मृत्यु करने वाले रोग हैं जो प्लेग आदि) उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार क्रमशः पतित होते हुए वह केवलज्ञानियों द्वारा प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है, इसलिए निश्चय से निर्ग्रन्थ मुनि को स्त्री, पशु और नपुंसक से युक्त शय्या और आसनादि का सेवन नहीं करना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में प्रथम ब्रह्मचर्य समाधि स्थान - विविक्त शयनासन सेवन का स्वरूप और उसका पालन न करने से होने वाले अनर्थों का वर्णन किया गया है।

स्त्री-पशु-नपुंसक युक्त शयनासन सेवन के सात दुष्परिणाम इस प्रकार हैं -

१. शंका - स्त्री-पशु-नपुंसक युक्त शयनासन सेवन करने वाले साधक के ब्रह्मचर्य के विषय में लोगों को शंका हो सकती है कि यह साधु ब्रह्मचारी है या नहीं? अथवा स्त्री आदि से संसक्त स्थान में रहने से चित्त स्त्री आदि की ओर आकृष्ट हो जाता है। मानसिक ब्रह्मचर्य दूषित हो जाता है स्वयं के मन में भी ऐसी शंका हो जाती है कि मैथुन सेवन से नौ लाख जीवों की वध (हिंसा) होती है ऐसा जिनोक्त कथन सत्य है या मिथ्या है?

२. कांक्षा - ऐसे व्यक्ति के मन में भोगेच्छा भी उत्पन्न हो सकती है।

३. विचिकित्सा - ब्रह्मचर्य के फल के विषय में भी संदेहावली उत्पन्न हो सकती है कि मैं ब्रह्मचर्य पालन में इतना भारी कष्ट उठाता हूँ इसका कुछ भी फल मिलेगा या नहीं? क्योंकि विषय भोग सेवन से तो तात्कालिक सुख मिलता है आदि।

४. भेद - चारित्र का विनाश होता है।

५. उन्माद - काम परवशता वश उन्माद हो सकता है।

६. रोग एवं आतंक - निःशंक हो कर स्त्री आदि से युक्त स्थानादि के सेवन से कामेच्छा के उद्रेक के कारण अनिद्रा, आहारादि में अरुचि, दाहज्वरादि रोग एवं आतंक - शीघ्र घात शूल आदि व्याधि हो जाती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्त्री को बार-बार देखने आदि से कामाधिक्य के कारण निम्नोक्त दश कामभाव उत्पन्न हो जाते हैं - १. चिंता २. दर्शनेच्छा ३. दीर्घनिःश्वास ४. कामज्वर ५. अंगों में दाह ६. आहार में अरुचि ७. कम्प ८.. उन्माद ९. प्राणों के अस्तित्व की आशंका और १०. जीवन त्याग या आत्म हत्या।

७. धर्मभ्रंश - इन सब अनिष्टों के उत्पन्न होने से ब्रह्मचर्य समाधि नहीं रहती, वह केवली प्ररूपित श्रुत चारित्र धर्म से भी भ्रष्ट हो जाता है।

द्वितीय ब्रह्मचर्य समाधि स्थान-स्त्रीकथावर्जन

णो इत्थीणं कहं कहित्ता हवइ से णिग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह-णिग्गंथस्स खलु इत्थीणं कहं कहेमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलिपण्णत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु णो णिग्गंथे इत्थीणं कहं कहेज्जा॥२॥

कठिन शब्दार्थ - **इत्थीणं** - स्त्रियों की, **कहं** - कथा, **णो कहित्ता हवइ** - नहीं कहता है, **णिग्गंथे** - निर्ग्रन्थ।

भावार्थ-- जो स्त्रियों की कथा नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है। ऐसा क्यों? ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं - जो साधु स्त्रियों संबंधी कथा करता है उस ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ के ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का नाश होता है अथवा उन्माद पैदा होता है या दीर्घकालिक रोग और आतंक हो जाता है अथवा वह केवलि-प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है अतः निर्ग्रन्थ स्त्री संबंधी कथा न करे।

विवेचन - **'णो इत्थीणं कहं कहित्ता हवइ'** की व्याख्या बृहद वृत्तिकार ने दो प्रकार से की है, जो इस प्रकार हैं -

१. केवल स्त्रियों के बीच में कथा (उपदेश) न करे।

२. स्त्रियों की जाति, रूप, कुल, वेश, श्रृंगार आदि से संबंधित कथा न करे। **जैसे जाति**- यह ब्राह्मणी है, वह वेश्या है, **कुल** - उग्र कुल की ऐसी होती है, अमुक कुल की वैसी, **रूप** - कर्णाटकी विलासप्रिय होती है इत्यादि, **संस्थान** - स्त्रियों के डीलडौल आकृति, ऊँचाई आदि की चर्चा, **नेपथ्य** - स्त्रियों के विभिन्न वेश, पोशाक, पहनावे आदि की चर्चा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार की स्त्री कथा करने से या सुनने से ब्रह्मचर्य का आंशिक या पूर्ण रूप से भंग होने की संभावना बनी रहती है।

तृतीय ब्रह्मचर्य समाधि स्थान - एक आसन वर्जन

णो इत्थीहिं सद्धिं सण्णिसेज्जागए विहरित्ता हवइ से णिग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह-णिग्गंथस्स खलु इत्थीहिं सद्धिं सण्णिसेज्जागयस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेदं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा केवलिपण्णत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु णो णिग्गंथे इत्थीहिं सद्धिं सण्णिसेज्जागए विहरेज्जा॥३॥

कठिन शब्दार्थ - **इत्थीहिं सद्धिं** - स्त्रियों के साथ, **सण्णिसेज्जागए** - एक आसन पर, **णो विहरित्ता हवइ** - नहीं बैठता है।

भावार्थ - जो स्त्रियों के साथ एक आसन पर नहीं बैठता वह निर्ग्रन्थ है। ऐसा क्यों? आचार्य फरमाते हैं - जो ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ स्त्रियों के साथ एक आसन पर बैठता है उसको ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश हो जाता है अथवा उन्माद पैदा हो जाता है या दीर्घकालिक रोग और आतंक हो जाता है अथवा वह केवलिप्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। अतः निर्ग्रन्थ स्त्रियों के साथ एक आसन पर न बैठे।

विवेचन - **'इत्थीहिं सद्धिं सण्णिसेज्जागए'** की व्याख्या बृहद वृत्तिकार ने दो प्रकार से की है - १. स्त्रियों के साथ सन्निषधा - पट्टा, चौकी, शय्या, बिछौना, आसन आदि पर न बैठे। २. स्त्री जिस स्थान पर बैठी हो उस स्थान पर तुरन्त न बैठे, उठने पर भी एक मुहूर्त्त (दो घड़ी) तक उस स्थान या आसनादि पर न बैठे।

एक आसन पर बैठने से नारी का संस्पर्श या शरीर संसर्ग होने से विषय रस की जागृति होती है जिससे ब्रह्मचर्य व्रत भंग होने की आशंका रहती है। परस्पर अलगाव मिटने से ऐसे साधक या साधिका के विषय में लोग आशंकावश मिथ्या भ्रम फैला सकते हैं। स्त्रीवेद और पुरुषवेद के पुद्गलों का परस्पर ऐसा आकर्षण है कि उन पुद्गलों के स्पर्श से परस्पर विकार उत्पन्न होने की संभावना रहती है। अतः ब्रह्मचारी को वेद स्वभाव को ध्यान में रख कर न तो नारी का स्पर्श करना चाहिए और न ही उसके साथ एक आसन पर बैठना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्थ ब्रह्मचर्य समाधि स्थान - स्त्री अंगोपांग अदर्शन

णो इत्थीणं इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोइत्ता णिज्झाइत्ता हवइ से णिग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह-णिग्गंथस्स खलु इत्थीणं इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोयमाणस्स णिज्झायमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जेज्जा भेदं वा लभेज्जा उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा केवलिपण्णत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा, तम्हा खलु णो णिग्गंथे इत्थीणं इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोएज्जा णिज्झाएज्जा ॥४॥

कठिन शब्दार्थ - **मणोहराइं** - मनोहर-चित्ताकर्षक, **मणोरमाइं** - मनोरम - चित्ताह्लादक, **आलोइत्ता** - आलोकन-थोड़ा देखना, **णिज्झाइत्ता** - निर्ध्यान-जम कर व्यवस्थित रूप से देखना, **इंदियाइं** - इन्द्रियों का, उपलक्षण से सभी अंगोपांगों का।

भावार्थ - जो स्त्रियों की मनोहर एवं मनोरम इन्द्रियों को ताक-ताक कर नहीं देखता, उनके विषय में चिंतन नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ श्रमण है। ऐसा क्यों? ऐसा पूछने पर आचार्य फरमाते हैं - जो निर्ग्रन्थ ब्रह्मचारी स्त्रियों की मनोहर एवं मनोरम इन्द्रियों को दृष्टि गड़ा कर देखता है उनके विषय में चिंतन करता है उसके ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है या ब्रह्मचर्य का भंग हो जाता है अथवा उन्माद पैदा हो जाता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक हो जाता है या वह केवलिप्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। इसलिए निर्ग्रन्थ, स्त्रियों की मनोहर एवं मनोरम इन्द्रियों को न तो देखे और न ही उनका चिंतन करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में चौथें ब्रह्मचर्य समाधि स्थान के अंतर्गत दृष्टि संयम का कथन किया गया है। यानी ब्रह्मचारी साधक स्त्रियों के अंगोपांगों को नहीं निरखे।

दशवैकालिक सूत्र में भी कहा गया है कि ब्रह्मचारी साधक स्त्रियों के अंग प्रत्यंग, संस्थान (आकृति), सुंदर आलाप, नेत्र विन्यास आदि पर टकटकी लगा कर न देखे क्योंकि ये काम राग बढ़ाने वाले हैं। आत्म हितैषी साधु, स्त्री की ओर ताक कर देखना तो दूर रहा, दीवार, पोस्टर एवं कागज या काष्ठ पर चित्रित सुअलंकृत नारी की ओर भी ताक कर न देखे। जिस प्रकार पतंगा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दीपक के प्रकाश पर मुग्ध हो कर उस पर गिर कर अपने शरीर को जला देता है। उसी प्रकार नारी के रूप पर मुग्ध होकर कामी पुरुष अपने संयमी जीवन को दग्ध (नष्ट) कर डालता है।

पंचम ब्रह्मचर्य समाधि स्थान - श्रुति संयम

णो इत्थीणं कुड्डंतरंसि वा दूसंतरंसि वा भित्तंतरंसि वा कूइयसद्दं वा रुइयसद्दं वा गीयसद्दं वा हसियसद्दं वा थणियसद्दं वा कंदियसद्दं वा विलवियसद्दं वा सुणित्ता हवइ से णिग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह-णिग्गंथस्स खलु इत्थीणं कुड्डंतरंसि वा दूसंतरंसि वा भित्तंतरंसि वा कूइयसद्दं वा रुइयसद्दं वा गीयसद्दं वा हसियसद्दं वा थणियसद्दं वा कंदियसद्दं वा विलवियसद्दं वा सुणेमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जेज्जा भेदं वा लभेज्जा उम्मायं वा पाउणिज्जा दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा केवलिपण्णत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु णो णिग्गंथे इत्थीणं कुड्डंतरंसि वा दूसंतरंसि वा भित्तंतरंसि वा कूइयसद्दं वा रुइयसद्दं वा गीयसद्दं वा हसियसद्दं वा थणियसद्दं वा कंदियसद्दं वा विलवियसद्दं वा सुणेमाणे विहरेज्जा॥५॥

कठिन शब्दार्थ - **कुड्डंतरंसि** - कुड्य - मिट्टी की दीवार के अंतर से, **दूसंतरंसि** - कपड़े के पर्दे के अंतर से, **भित्तंतरंसि** - भींत-पक्की दीवार की ओर से, **कूइयसद्दं** - कूजित-रति क्रीड़ा शब्द, **रुइयसद्दं** - रुदित - प्रेममिश्रित रुदन (रति-कलहादि कृत) शब्द, **गीयसद्दं** - गीत शब्द, **हरियसद्दं** - हसित-ठहाका मार कर हंसने का, कहकहे लगाने का शब्द, **थणियसद्दं**- स्तनित - अधोवायु निसर्ग आदि का-शब्द, **कंदियसद्दं** - क्रन्दित शब्द - वियोगिनी का आक्रन्दन, **णो सुणित्ता हवइ** - नहीं सुनता है।

भावार्थ - जो मिट्टी की दीवार के अन्तर से, कपड़े के पर्दे के अन्तर से अथवा पक्की दीवार के अन्तर से स्त्रियों के कूजित शब्द को, रुदित शब्द को, गीत की ध्वनि को, हास्य शब्द को, स्तनित (गर्जन से) शब्द को, आक्रन्दन या विलाप के शब्द को नहीं सुनता, वह निर्ग्रन्थ है।

यह क्यों? ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं - जो निर्ग्रन्थ मिट्टी की दीवार के अन्तर से, पर्दे के अन्तर से अथवा पक्की दीवार के अंतर से स्त्रियों के कूजन, रुदन, गीत, हास्य, गर्जन, आक्रन्दन अथवा विलाप के शब्दों को सुनता है उस ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा उसका ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है अथवा उन्माद पैदा हो जाता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक हो जाता है या वह केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। अतः निर्ग्रन्थ मिट्टी की दीवार के अन्तर से, पर्दे के अन्तर से अथवा पक्की दीवार के अंतर से स्त्रियों के कूजन, रुदन, गीत, हास्य, गर्जन, आक्रन्दन या विलाप के शब्द को न सुने।

विवेचन - स्त्रियों के कामोद्दीपक शब्द सुनकर ब्रह्मचारी साधक का मन ब्रह्मचर्य से उसी तरह विचलित हो जाता है जैसे मेघ गर्जन सुन कर मोर और पपीहे कामोन्मत्त होकर बोलने लगते हैं अतः ब्रह्मचारी को ऐसे स्थान में नहीं रहना चाहिए और न ही ऐसे शब्द कानों में पड़ने पर उसमें रस लेना चाहिए।

छठा ब्रह्मचर्य समाधि स्थान - पूर्वकृत भोग स्मृति संयम

णो णिग्गंथे इत्थीणं पुव्वरयं पुव्वकीलियं अणुसरित्ता हवइ से णिग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह-णिग्गंथस्स खलु इत्थीणं पुव्वरयं पुव्वकीलियं अणुसरमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जेज्जा भेदं वा लभेज्जा उम्मायं वा पाउणिज्जा दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा केवलिपण्णत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु णो णिग्गंथे इत्थीणं पुव्वरयं पुव्वकीलियं अणुसरेज्जा॥६॥

कठिन शब्दार्थ - पुव्वरयं - पूर्व रति, **पुव्वकीलियं** - क्रीड़ा का पूर्व, **अणुसरित्ता** - अनुस्मरण।

भावार्थ - जो साधु संयम ग्रहण से पूर्व गृहस्थावस्था में स्त्री आदि के साथ किये गए रमण का और पूर्व क्रीड़ा का अनुस्मरण नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है। यह क्यों? ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं जो पूर्व रति और क्रीड़ा का अनुस्मरण करता है उस ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश हो जाता है अथवा उन्माद पैदा हो जाता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक हो जाता है या वह केवलि प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। अतः निर्ग्रन्थ संयम ग्रहण से पूर्व गृहवास में की गई रति और क्रीड़ा का अनुस्मरण न करे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

विवेचन - स्त्री के साथ पूर्व गृहस्थ जीवन में भोगे हुए शब्दादि पांचों कामगुणों में से एक भी विषय भोग का स्मरण करने से ब्रह्मचर्य भंग हो जाता है इसलिए यह समाधि स्थान बताया गया है।

सप्तम ब्रह्मचर्य समाधि स्थान - प्रणीत आहार त्याग

णो पणीयं आहारं आहारित्ता हवइ से णिग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह-णिग्गंथस्स खलु पणीयं आहारं आहारेमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जेज्जा भेदं वा लभेज्जा उम्मायं वा पाउणिज्जा दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा केवलिपण्णत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु णो णिग्गंथे पणीयं आहारं आहारेज्जा॥७॥

कठिन शब्दार्थ - **पणीयं** - प्रणीत-जिस खाद्य पदार्थ से तेल घी आदि की बूंदे टपक रही हो अथवा जो धातु वृद्धिकारक हो, **आहारं** - आहार को, **णो आहारित्ता हवइ** - आहार नहीं करता है

भावार्थ - जो प्रणीत-रसयुक्त पौष्टिक आहार नहीं करता, वह निर्ग्रंथ है। यह क्यों? ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं - जो प्रणीत सरस आहार करता है उस ब्रह्मचारी निर्ग्रंथ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा और विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा उसके ब्रह्मचर्य का भंग हो जाता है अथवा उन्माद पैदा हो जाता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है अथवा वह केवलि प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। इसलिए निर्ग्रंथ प्रणीत-सरस एवं पौष्टिक आहार न करे।

विवेचन - सरस स्निग्ध आहार धातु को दीप्त करता है। धातु के दीप्त होने से मनोविकार बढ़ता है, मनोविकार वृद्धि से अंग-कुचेष्टा होती है या वीर्यपात होता है और इससे प्रायः मनुष्य भोग में प्रवृत्त हो जाते हैं। अतः सरस, स्निग्ध एवं स्वादिष्ट पौष्टिक आहार करने वाला साधक अपने बहुमूल्य ब्रह्मचर्य महाव्रत को भंग कर डालता है।

आठवां ब्रह्मचर्य समाधिस्थान-अति भोजन त्याग

णो अइमायाए पाणभोयणं आहारित्ता हवइ से णिग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह-णिग्गंथस्स खलु अइमायाए पाणभोयणं आहारेमाणस्स बंभयारिस्स

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जेज्जा भेदं वा लभेज्जा उम्मायं वा पाउणिज्जा दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा केवलिपण्णत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु णो णिग्गंथे अइमायाए पाणभोयणं आहारेज्जा॥८॥

कठिन शब्दार्थ - अइमायाए - अतिमात्रा में (परिमाण से अधिक), **पाणभोयणं** - पान भोजन।

भावार्थ - जो अतिमात्रा में पान भोजन नहीं करता, वह निर्ग्रंथ है ऐसा क्यों? इस प्रकार पूछने पर आचार्य ने कहा - जो परिमाण से अधिक खाता पीता है उस ब्रह्मचारी निर्ग्रंथ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा अथवा विचिकित्सा उत्पन्न होती है या ब्रह्मचर्य का विनाश हो जाता है अथवा उन्माद पैदा हो जाता है अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक हो जाता है अथवा वह केवलि-प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है अतः निर्ग्रंथ मात्रा से अधिक पान भोजन का सेवन न करे।

विवेचन - **'अइमायाए'** की व्याख्या इस प्रकार है - मात्रा का अर्थ है - परिमाण। भोजन का जो परिमाण है, उसका उल्लंघन करना अतिमात्रा है। बृहद्वृत्ति पत्र ४२६ में भोजन का परिमाण बताने वाली गाथा यह है -

बत्तीसं किर कवला आहारो कुच्छिपूरओ भणिओ।
पुरिसस्स महिलियाए अट्ठावीसं भवे कवला॥

अर्थात् - पुरुष (साधु) के भोजन का परिमाण है - बत्तीस कौर और स्त्री (साध्वी) के भोजन का परिमाण अट्ठाईस कौर है, इससे अधिक भोजन-पान का सेवन करना अतिमात्रा में भोजन-पान है।

अतिमात्रा में आहार करने से पेट उसी तरह फटने लगता है जिस तरह सेर की हंडिया में सवा सेर अन्न भरने से, वह फटती है। अधिक आहार करने से मनुष्य के रूप, बल, कांति, ओज और गात्र क्षीण हो जाते हैं उसे प्रमाद, निद्रा आलस्य घेर लेते हैं, पाचन शक्ति क्षीण हो जाती है। अजीर्ण गैस, अपच, उदर शूल, अतिसार आदि रोग का भय रहता है जठराग्नि कूपित हो जाती है। इस प्रकार शारीरिक और मानसिक कई हानियां है अतः ब्रह्मचर्य समाधि के लिये अति मात्रा में आहार त्याग जरूरी कहा है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - जो अतिमात्रा (शास्त्र में बतलाये हुए परिणाम* से अधिक) आहार-पानी का सेवन नहीं करता वह निर्ग्रन्थ कहलाता है।

नवम ब्रह्मचर्य समाधि स्थान-विभूषा त्याग

णो विभूसाणुवादी हवइ से णिग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह-णिग्गंथस्स खलु विभूसावत्तिए विभूसियसरीरे इत्थीजणस्स अभिलसणिज्जे हवइ। तओ णं तस्स इत्थीजणेणं अभिलसिज्जमाणस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जेज्जा भेदं वा लभेज्जा उम्मायं वा पाउणिज्जा दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा केवलिपण्णत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु णो णिग्गंथे विभूसाणुवादी हवेज्जा॥९॥

कठिन शब्दार्थ - विभूसाणुवादी - विभूषानुपाती - शरीर संस्कारकर्त्ता-शरीर को सजाने वाला, **विभूसावत्तिए** - विभूषावृत्तिक-जिसका स्वभाव विभूषा करने का है, **विभूसियसरीरे** - विभूषित शरीर, **इत्थीजणस्स** - स्त्रियों की, **अभिलसणिज्जे** - अभिलाषणीय।

भावार्थ - जो शरीर की विभूषा नहीं करता है, वह निर्ग्रंथ है। ऐसा क्यो? इस प्रकार पूछने पर आचार्य कहते हैं - जिसकी मनोवृत्ति विभूषा करने की होती है, जो शरीर को विभूषित (सुसज्जित) किये रहता है, वह स्त्रियों की अभिलाषा का पात्र बन जाता है। इसके पश्चात् स्त्रियों द्वारा चाहे जाने वाले ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य में शंका, कांक्षा अथवा विचिकित्सा उत्पन्न हो जाती है अथवा ब्रह्मचर्य भंग हो जाता है अथवा उसे उन्माद पैदा हो जाता है या उसे दीर्घकालिक रोग और आतंक हो जाता है। अथवा वह केवलि-प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। अतः निर्ग्रंथ विभूषानुपाती न बने।

विवेचन - विभूषा करने वाला साधु स्त्रीजनों द्वारा अभिलाषणीय हो जाता है, स्त्रियां उसे चाहने लगती हैं, स्त्रियों द्वारा चाहे जाने या प्रार्थना किये जाने पर ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न हो जाती है। जैसे - जब स्त्रियां इस प्रकार मुझे चाहती है तो क्यों न मैं इनका उपभोग कर लूं? अथवा इसका उत्कृष्ट या उत्कट परिणाम नरक

---

* टीकाकार ने टीका में पुरुष के लिए ३२ कवल (ग्रास), स्त्री के लिए २८ और नपुंसक के लिए २४ कवल आहार का परिमाण बतलाया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गमन है अतः क्यों न उपभोग करूँ? ऐसी शंका तथा अधिक चाहने पर स्त्री सेवन की आकांक्षा अथवा बार-बार मन में ऐसे विचारों का भूचाल मच जाने से स्त्रीसेवन की प्रबल इच्छा हो जाती है और वह ब्रह्मचर्य भंग कर देता है।

दसवाँ ब्रह्मचर्य समाधि स्थान - पंचेन्द्रिय विषय संयम

णो सद्दरूवरसगंधफासाणुवादी हवइ से णिग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरियाह-णिग्गंथस्स खलु सद्दरूवरसगंधफासाणुवादिस्स बंभयारिस्स बंभचेरे संका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जेज्जा भेदं वा लभेज्जा उम्मायं वा पाउणिज्जा दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा केवलिपण्णत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा। तम्हा खलु णो णिग्गंथे सद्दरूवरसगंधफासाणुवादी हवेज्जा। दसमे बंभचेर-समाहिठाणे हवइ॥१०॥

कठिन शब्दार्थ - सद्द-रूव-रस गंध फासाणुवादी - शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श में अनुपाती (आसक्त)।

भावार्थ - जो साधक शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श में आसक्त नहीं होता, वह निर्ग्रंथ है। ऐसा क्यों? इस प्रकार पूछने पर आचार्य कहते हैं - शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श में आसक्त होने वाले ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न हो जाती है अथवा ब्रह्मचर्य भंग हो जाता है अथवा उसे उन्माद पैदा हो जाता है या फिर दीर्घकालिक रोग या आतंक हो जाता है अथवा वह केवलिप्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है अतः निर्ग्रंथ शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श में अनुपाती (आसक्त) न बने।

विवेचन - सद्द-रुव-रसगंध फासाणुवाई अर्थात् स्त्रियों के मनोज्ञ शब्द-कोमल ललित शब्द या गीत **रूप** - उनके कटाक्ष, वक्षस्थल, कमर आदि का या उनके चित्रों का अवलोकन **रस** - मधुर आदि रसों द्वारा अभिवृद्धि पाने वाला, **गन्ध** - कामवर्द्धक सुगंधित पदार्थ एवं **स्पर्श**-आसक्तिजनक कोमल कमल आदि का स्पर्श इनमें लुभा जाने वाला, फिसल जाने वाला, प्रतित होने वाला या आसक्त हो जाने वाला।

भवंति य इत्थ सिलोगा तं जहा-

कठिन शब्दार्थ - इत्थ - इस विषय में, **सिलोगा** - श्लोक।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इस विषय में कुछ श्लोक हैं। वे इस प्रकार हैं -

१. प्रथम बाड़ (गुप्ति) - विविक्त शयनासन

जं विवित्तमणाइण्णं, रहियं इत्थी जणेण य।
बंभचेरस्स रक्खट्ठा, आलयं तु णिसेवए॥१॥

कठिन शब्दार्थ - **विवित्तं** - विविक्त-एकान्त, **अणाइण्णं** - अनाकीर्ण, **रहियं** - रहित, **इत्थीजणेण** - स्त्रीजन से, **बंभचेरस्स** - ब्रह्मचर्य की, **रक्खट्ठा** - रक्षा के लिये, **आलयं** - निवास स्थान का, **णिसेवए** - सेवन करे।

भावार्थ - जो स्थान विविक्त (एकान्त) हो अर्थात् जहाँ स्त्री आदि का निवास न हो, जो स्त्री आदि से आकीर्ण-व्याप्त न हो और जो स्थान स्त्री, पशु, नपुंसक से रहित ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए साधु ऐसे स्थान का सेवन करे।

विवेचन - अनाकीर्ण और स्त्रीजन रहित का टीकाकार विशेष अर्थ करते हुए सूचित करते हैं कि - रात में तो स्त्रियों का आवागमन न हो किंतु दिन में भी व्याख्यान, प्रत्याख्यान या शास्त्र वाचना आदि योग्य काल के अलावा वहां साध्वियों या श्राविकाओं का आवागमन न हो तभी ब्रह्मचर्य की सुरक्षा हो सकती है।

२. द्वितीय बाड़ - स्त्री कथा वर्जन

मणपल्हायजणणिं, कामरागविवड्ढणिं।
बंभचेररओ भिक्खू, थीकहं तु विवज्जए॥२॥

कठिन शब्दार्थ - **मणपल्हायजणणिं** - मन को आनंद पैदा करने वाली, **कामरागविवड्ढणिं**- कामराग को बढ़ाने वाली, **बंभचेररओ** - ब्रह्मचर्य में रत, **थीकहं** - स्त्रीकथा का, **विवज्जए** - त्याग करे।

भावार्थ - ब्रह्मचर्य में रत भिक्षु मन में विकारी-भावजन्य आनंद उत्पन्न करने वाली तथा कामभोगों में आसक्ति बढ़ाने वाली स्त्री-कथा को त्याग दे।

३. तीसरी बाड़ - स्त्री के साथ एकासन निषेध

समं च संथवं थीहिं, संकहं च अभिक्खणं।
बंभचेररओ भिक्खू, णिच्चसो परिवज्जए॥३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **संथवं** - संस्तव-अति परिचय, **थीहिं** - स्त्रियों से, **संकहं** - संभाषण-साथ बैठ कर कथा करने का, **अभिक्खणं** - बार-बार, **परिवज्जए** - परित्याग करे।

भावार्थ - ब्रह्मचर्य में रत साधु को चाहिए कि स्त्रियों के साथ परिचय और बारम्बार स्त्रियों के साथ वार्तालाप और उनके साथ एक आसन पर बैठने आदि कार्यों को सदा के लिए त्याग दे।

विवेचन - ब्रह्मचर्य परायण भिक्षु स्त्रियों के साथ एकासन, वार्तालाप एवं अतिसंसर्ग का त्याग करे।

४ चतुर्थ बाड़ - अंग-प्रत्यंग-प्रेक्षण निषेध

अंग-पच्चंग संठाणं, चारुल्लवियपेहियं।
बंभचेररओ थीणं, चक्खुगिज्झं विवज्जए॥४॥

कठिन शब्दार्थ - **अंगपच्चंग संठाणं** - अंग (मस्तक आदि) प्रत्यंग (कुच-कक्षादि) एवं संस्थान को, **चारुल्लवियपेहियं** - सुंदर, संभाषन और कटाक्ष को देखने का, **थीणं** - स्त्रियों के, **चक्खुगिज्झं** - चक्षुइन्द्रिय से ग्राह्य (ग्रहण)।

भावार्थ - ब्रह्मचर्य में रत साधु को चाहिए कि स्त्रियों के अंग (मस्तक आदि) तथा प्रत्यंग (कुच-कक्षादि) को बोलने का मनोहर ढंग एवं कटाक्षपूर्वक देखना इत्यादि बातें, जो कि चक्षु इन्द्रिय के विषय हैं उन्हें वर्जे अर्थात् उन पर दृष्टि पड़ने पर तत्काल दृष्टि पीछी हटा ले, किन्तु रागवश हो कर बार-बार उनकी ओर न देखे तथा निरखें नहीं, टकटकी लगाकर देखे नहीं।

५ पांचवीं बाड़ - वासनावर्द्धक शब्दादि श्रवण निषेध

कूइयं रुइयं गीयं, हसियं थणियकंदियं।
बंभचेररओ थीणं, सोयगिज्झं विवज्जए॥५॥

कठिन शब्दार्थ - **कूइयं** - कूजित, **रुइयं** - रुदित, **हसियं** - हसित, **थणिय** - स्तनित, **कंदियं** - क्रन्दित, **सोयगिज्झं** - श्रोत्रेन्द्रिय से ग्राह्य।

भावार्थ - ब्रह्मचर्य में रत साधु स्त्रियों का कोयल के समान मीठा शब्द, प्रेममिश्रित रोना, गाना, हँसना, काम विषयक सराग शब्द क्रन्दित एवं विलाप का शब्द जो श्रोत्रेन्द्रिय का विषय है, उनको वर्जे, भींत-पर्दे आदि के अन्तर से भी स्त्रियों के उपरोक्त शब्दों को न सुने।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६. छठी बाड़ - पूर्वानुभूत भोगों के स्मरण का निषेध

हासं किड्डं रइं दप्पं, सहसावित्तासियाणि य।
बंभचेररओ थीणं, णाणुचिंते कयाइ वि॥६॥

कठिन शब्दार्थ - **हासं** - हास्य, **किड्डं** - क्रीडा, **रइं** - रति, **दप्पं** - दर्प (स्त्रियों को मनाने या उनके मान-मर्दन से उत्पन्न गर्व), **सहसा** - आकस्मिक, **अवित्तासियाणि** - अवत्रासित-त्रास का, **कयाइ वि** - कदापि, **णाणुचिंते** - अनुचिंतन न करे।

भावार्थ - ब्रह्मचर्य में रत साधु पहले गृहस्थाश्रम में स्त्रियों के साथ किये गये हास्य, क्रीड़ा, रति-विषय सेवन, दर्प अहंकार और एकदम त्रास उत्पन्न करने के लिए की गई क्रिया इत्यादि का कदापि चिंतन न करे अर्थात् पहले भोगे हुए भोगों का स्मरण कभी नहीं करे।

७ सातवीं बाड़ - विकार वर्द्धक आहार निषेध

पणीयं भत्तपाणं तु, खिप्पं मयविवड्ढणं।
बंभचेररओ भिक्खू, णिच्चसो परिवज्जए॥७॥

कठिन शब्दार्थ - **पणीयं** - प्रणीत-गरिष्ठ, **खिप्पं** - शीघ्र, **मयविवड्ढणं** - मद बढ़ाने वाले।

भावार्थ - ब्रह्मचर्य में रत साधु शीघ्र ही मद (काम) विकार को बढ़ाने वाले गरिष्ठ आहार-पानी को, सदा के लिए वर्जे (त्याग दे)।

८. आठवीं बाड़ - मात्रा से अधिक आहार का निषेध

धम्मलद्धं मियं काले, जत्तत्थं पणिहाणवं।
णाइमत्तं तु भुंजेज्जा, बंभचेररओ सया॥८॥

कठिन शब्दार्थ - **धम्मलद्धं** - धर्मलब्ध - धर्म मर्यादानुसार प्राप्त, **पणिहाणवं** - प्रणिधानवान् - स्थिरचित्त होकर, **मियं** - परिमित, **अइमत्तं** - अति मात्रा में, **जत्तत्थं** - जीवन यात्रा के लिये।

भावार्थ - सदा ब्रह्मचर्य में रत साधु भिक्षा के समय शुद्ध एषणा से प्राप्त हुए आहार को, चित्त को स्वस्थ रख कर संयम यात्रा के निर्वाह के लिए परिमित मात्रा में भोगवे किन्तु शास्त्रोक्त परिमाण से अधिक आहार नहीं करे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में ब्रह्मचारी की भोजन विधि बताई गयी है जो इस प्रकार समझना चाहिए -

१. **कैसा भोजन? 'धम्मलद्धं'** - धर्मविधि से प्राप्त एषणीय कल्पनीय भोजन ग्रहण करे। किसी से जबरन छीन कर, डरा कर, ठग कर या अविधि पूर्वक प्राप्त किया हुआ आहार ग्रहण नहीं करे।

२. **कितना भोजन? 'मियं'** - मित - परिमित मात्रा में भोजन करे।

३. **कब भोजन करे? 'काले'** - उचित समय पर भोजन करे।

४. **किसलिए भोजन करे? 'जत्तत्थं'** - जीवन यात्रा यानी संयम यात्रा के निर्वाह के लिए भोजन करे, शरीर पुष्टि के लिए नहीं।

५. **किस प्रकार भोजन करे? 'पणिहाणवं'** - स्थिर चित्त - शांत चित्त होकर भोजन करे।

९. नौवीं बाड़ - विभूषा त्याग

विभूसं परिवज्जेज्जा, सरीरपरिमंडणं।
बंभचेररओ भिक्खू, सिंगारत्थं ण धारए॥९॥

कठिन शब्दार्थ - विभूसं - विभूषा को, **परिवज्जेज्जा** - छोड़ दे, **सरीर परिमंडणं** - शरीर का मण्डन, **सिंगारत्थं** - श्रृंगार के लिए, **ण धारए** - धारण न करे।

भावार्थ - ब्रह्मचर्य में रत साधु शरीर की विभूषा और शरीर संस्कार को छोड़ दे अर्थात् केश-श्मश्रु आदि को न संवारे एवं श्रृंगार के लिए कोई कार्य न करे।

१०. दसवीं बाड़ - शब्दादि में आसक्ति का निषेध

सद्दे रूवे य गंधे य, रसे फासे तहेव य।
पंचविहे कामगुणे, णिच्चसो परिवज्जए॥१०॥

कठिन शब्दार्थ - पंचविहे - पांच प्रकार के, **कामगुणे** - कामगुणों को।

भावार्थ - ब्रह्मचारी साधु पांच प्रकार के कामगुण अर्थात् पांच इन्द्रियों के मनोज्ञ विषय शब्द, रूप, गन्ध, रस और इसी प्रकार स्पर्श इनका सदा त्याग करे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ब्रह्मचर्य समाधि भंग के कारण

आलओ थीजणाइण्णो, थीकहा य मणोरमा।
संथवो चेव णारीणं, तासिं इंदियदरिसणं॥११॥
कूइयं रुइयं गीयं, हासभुत्तासियाणि य।
पणीयं भत्तपाणं च, अइमायं पाणभोयणं॥१२॥
गत्तभूसणमिट्ठं च, काम-भोगा य दुज्जया।
णरस्सत्तगवेसिस्स, विसं तालउडं जहा॥१३॥

कठिन शब्दार्थ - **आलओ** - स्थान, **थीजणाइण्णो** - स्त्रीजन से आकीर्ण, **थीकहा** - स्त्रीकथा, **संथवो** - संस्तव, **इंदियदरिसणं** - इन्द्रियों को देखना, **भुत्तासियाणि** - भुक्त भोगों और सहावस्थान को स्मरण करना, **गत्तभूसणमिट्ठं** - शरीर को विभूषित करने की इच्छा, **दुज्जया** - दुर्जय, **णरस्सत्तगवेसिस्स** - आत्मगवेषी पुरुष के लिए, **विसं** - विष, **तालउडं** - तालपुट, **जहा** - जैसे।

भावार्थ - १. स्त्रियों से व्याप्त स्थान और मनोरम (मन को आनंद देने वाली) २. स्त्री-कथा, ३. स्त्रियों के साथ परिचय और ४. उनकी नाक, आँख आदि इन्द्रियों को देखना ५. कूजित अर्थात् कोयल के समान मीठे शब्द, रुदन, गायन, हंसी का शब्द और ६. पहले भोगे हुए भोगों को तथा स्त्री के साथ एक आसन पर बैठना आदि कार्यों का स्मरण करना तथा ७. गरिष्ठ आहार-पानी का सेवन करना और ८. शास्त्रोक्त मर्यादा से अधिक आहार-पानी का सेवन करना, ९. शरीर की विभूषा करना और १०. मनोज्ञ शब्दादि विषय एवं दुर्जय अर्थात् कठिनाई से जीते जाने योग्य कामभोग - ये दश बातें आत्मगवेषी पुरुष के लिए तालपुट विष के समान हैं अर्थात् जिस प्रकार तालपुट विष होठों के भीतर जा कर तालु के लगते ही प्राणों का नाश कर देता है, उसी प्रकार ये पूर्वोक्त दस स्थान संयम रूपी जीवन का नाश करने वाले हैं। इसलिए ब्रह्मचारी पुरुष को इनका सेवन कदापि नहीं करना चाहिये॥११-१२-१३॥

विवेचन - प्रस्तुत तीन गाथाओं में ब्रह्मचर्य समाधि भंग होने के दस कारण बताए गए हैं। ब्रह्मचारी के लिये ये दशों कारण तालपुट विष के समान त्याज्य है। अतः ब्रह्मचारी साधक को इनका दूर से ही त्याग कर देना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शंका स्थानों का त्याग

दुज्जए कामभोगे य, णिच्चसो परिवज्जए।
संकाठाणाणि सव्वाणि, वज्जेज्जा पणिहाणवं॥१४॥

कठिन शब्दार्थ - **णिच्चसो** - सदैव, **संकाठाणाणि** - शंका स्थानों से, **वज्जेज्जा** - दूर रहे, **पणिहाणवं** - स्थिर चित्त वाला।

भावार्थ - संयम में एकाग्र मन रखने वाले ब्रह्मचारी पुरुष को चाहिए कि दुर्जय (कठिनाई से जीते जाने योग्य) कामभोगों को सदा के लिए त्याग दे और जिन-जिन बातों से ब्रह्मचर्य में किसी प्रकार की हानि पहुँचने की संभावना हो, ऐसे शंका के सभी स्थानों को भी सदैव के लिए त्याग दे।

ब्रह्मचर्य की समाधि-स्थायिता

धम्मारामे चरे भिक्खू, धिइमं धम्मसारही।
धम्मारामे रए दंते, बंभचेर-समाहिए॥१५॥

कठिन शब्दार्थ - **धम्मारामे** - धर्मबाग में, **धिइमं** - धैर्यवान्, **धम्मसारही** - धर्मसारथि, **धम्मारामे रए** - धर्म रूपी उद्यान में रत, **दंते** - दान्त, **बंभचेरसमाहिए** - ब्रह्मचर्य में सुसमाहित (समाधिमान्)।

भावार्थ - धैर्यवान्, धर्म रूप रथ को चलाने में सारथि के समान, पाप के ताप से संतप्त प्राणियों को शान्ति देने वाले धर्म रूपी बगीचे में अनुरक्त, इन्द्रियों को दमन करने वाला ब्रह्मचर्य में समाधिवंत साधु सदैव धर्म (संयम रूपी) बगीचे में ही रमण करे।

ब्रह्मचर्य की महिमा

देवदाणवगंधव्वा, जक्ख-रक्खस-किण्णरा।
बंभयारिं णमंसंति, दुक्करं जे करंति तं॥१६॥

कठिन शब्दार्थ - **देवदाणवगंधव्वा** - देव, दानव, गन्धर्व, **जक्ख-रक्खस्स किण्णरा**- यक्ष, राक्षस, किन्नर, **बंभयारिं** - ब्रह्मचारी को, **णमंसंति** - नमस्कार करते हैं, **दुक्करं** - दुष्कर, **करंति** - करता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

भावार्थ - जो दुष्कर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता है उस ब्रह्मचारी पुरुष को वैमानिक और ज्योतिषी देव, दानव - भवनपति देव और गन्धर्व देव तथा यक्ष, राक्षस और किन्नर आदि व्यंतर जाति के देव, इस प्रकार चारों जाति के देव नमस्कार करते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में ब्रह्मचर्य की महिमा गाई गयी है। दुष्कर ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले को देवादि नमस्कार करते हैं।

देव - विमानवासी एवं ज्योतिषी **दानव** - भवनपति **गन्धर्व** - गायक देव **यक्ष** - वृक्षवासी व्यन्तर देव, **राक्षस** - क्रूर जाति के व्यन्तर देव, **किन्नर** - व्यन्तर जाति के देव।

उपसंहार

एस धम्मे धुवे णिच्चे, सासए जिणदेसिए।
सिद्धा सिज्झंति चाणेणं, सिज्झिस्संति तहावरे॥१७॥ त्ति बेमि॥

कठिन शब्दार्थ - एस - यह, **धम्मे** - ब्रह्मचर्य रूप धर्म, **धुवे** - ध्रुव, **णिच्चे** - नित्य, **सासए** - शाश्वत, **जिणदेसिए** - जिनोपदिष्ट, **सिद्धा** - सिद्ध हुए हैं, **सिज्झंति** - सिद्ध हो रहे हैं, **अणेणं** - इसका पालन करने से, **सिज्झिस्संति** - सिद्ध होंगे, **अवरे** - दूसरे अनेक।

भावार्थ - यह ब्रह्मचर्य रूप धर्म ध्रुव है, नित्य है शाश्वत है अर्थात् त्रिकाल स्थायी है और जिनेश्वर भगवान् द्वारा कहा हुआ है, इसका पालन करने से अनेक जीव भूतकाल में सिद्ध हुए हैं तथा वर्तमान काल में सिद्ध हो रहे हैं और इसी प्रकार भविष्यत् काल में भी सिद्ध होंगे। ऐसा मैं कहता हूँ।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में ब्रह्मचर्य धर्म के जो विशेषण दिये हैं, उनके विशिष्ट अर्थ इस प्रकार है -

१. **ध्रुव** - परतीर्थिकों द्वारा भी अनिरुद्ध अतएव प्रमाण प्रतिष्ठित।
२. **नित्य** - त्रिकाल में भी अविनश्वर।
३. **शाश्वत** - त्रिकाल फलदायी।

॥ इति ब्रह्मचर्य समाधि स्थान नामक सोलहवाँ अध्ययन समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पावसमणिज्जं णामं सत्तरसमं अज्झयणं

पापश्रमणीय नामक सतरहवां अध्ययन

उत्थानिका - सोलहवें अध्ययन में ब्रह्मचर्य का वर्णन किया गया है। ब्रह्मचर्य साधना में लीन रहने वाला श्रेष्ठ श्रमण होता है। जो ब्रह्मचर्य की उपेक्षा व अवहेलना करता है वह 'पापश्रमण' है। इस सतरहवें अध्ययन में पापश्रमण का वर्णन किया गया है। अतः इस अध्ययन का नाम 'पापश्रमणीय' है।

पन्द्रहवें सभिक्षु अध्ययन में जहां आदर्श श्रमण का अंतरंग दर्शन कराया गया है वहाँ इस सतरहवें अध्ययन में उसके विपरीत सिर्फ वेशधारी ऐसे साधु की वृत्तियों पर प्रकाश डाला गया है, जो अपने नियम, मर्यादा एवं आचार की उपेक्षा करता है। इसकी प्रथम गाथा इस प्रकार है-

पापश्रमणता का प्रारम्भ

जे केइ उ पव्वइए णियंठे, धम्मं सुणित्ता विणओववण्णे।
सुदुल्लहं लहिउं बोहिलाभं, विहरेज्ज पच्छा य जहासुहं तु॥१॥

कठिन शब्दार्थ - **जे केइ** - कोई एक, **पव्वइए** - प्रव्रजित, **णियंठे** - निर्ग्रन्थ, **धम्मं**- धर्म को, **सुणित्ता** - सुन कर, **विणओववण्णे** - विनयोपपन्न - विनय संपन्न हो कर, **सुदुल्लहं**- सुदुर्लभ, **लहिउं** - प्राप्त करके, **बोहिलाभं** - बोधि लाभ को, **विहरेज्ज** - विचरे, **जहासुहं** - यथासुख - सुखशील बनकर।

भावार्थ - श्रुत-चारित्र रूप धर्म को सुन कर, ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूपी विनय से युक्त होकर, अत्यन्त दुर्लभ, बोधि अर्थात् समकित प्राप्त करके कोई एक दीक्षा लेकर निर्ग्रन्थ बना है, किन्तु दीक्षा लेने के बाद जिस प्रकार सुख प्रतीत हो उस प्रकार स्वच्छन्दता पूर्वक विचरता है अर्थात् कोई-कोई पुरुष पहले तो सिंह की भांति शूरवीर होकर दीक्षा लेता है, किन्तु पीछे श्रृगाल के समान कायर बन जाता है।

सेज्जा दढा पाउरणम्मि अत्थि, उप्पज्जइ भोत्तुं तहेव पाउं।
जाणामि जं वट्टइ आउसुत्ति, किं णाम काहामि सुएण भंते॥२॥

कठिन शब्दार्थ - **सेज्जा** - वसति या धर्मस्थान, **दढा** - दृढ, **पाउरणं** - तन ढकने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को वस्त्र, **उप्पज्जइ** - मिल जाता है, **भोत्तुं** - खाने के लिये, **पाउं** - पीने के लिये, **वट्टइ** - हो रहा है, **आउसं** - हे आयुष्मन्, **काहामि** - करूंगा, **सुएण** - श्रुतज्ञान।

भावार्थ - उपरोक्त रीति से स्वच्छन्दता पूर्वक विचरने वाले मुनि से जब गुरु आदि हितबुद्धि से, शास्त्र अध्ययन के लिए प्रेरणा करते हैं, तब वह उन्हें उत्तर देता है - हे पूज्य गुरुदेव! रहने के लिए मुझे दृढ़ - वर्षा, धूप, ठंड आदि से रक्षा करने वाला स्थान मिला हुआ है और ओढ़ने के लिए वस्त्र भी मेरे पास हैं, इसी प्रकार खाने के लिए आहार और पीने के लिए पानी भी मिल जाता है, हे आयुष्मन् गुरुदेव! वर्तमान काल में जो हो रहा है उसे मैं जानता हूँ अर्थात् जैसे आप अधिक पढ़कर भी वर्तमान कालीन भावों को ही जानते हैं और भूत-भविष्यत् के अतीन्द्रिय भावों को नहीं जान सकते, वैसे ही वर्तमान काल के भावों को मैं भी जानता हूँ, तो फिर शास्त्र पढ़ कर क्या करूँगा?

विवेचन - जब साधु निद्रा, विकथा आदि प्रमाद पूर्वक सुख स्पृहा करके स्वच्छंदाचारी बन जाता है तब पापश्रमणता का प्रारंभ होने लगता है। गुरु या आचार्य द्वारा शास्त्राध्ययन की प्रेरणा किये जाने पर वह सुखशील जीवन जीने वाला साधु अविनयपूर्वक उत्तर देता है कि - मुझे अपनी आवश्यकतानुसार आहार, पानी, वस्त्र और स्थान आदि प्राप्त हैं तो फिर मैं क्यों शास्त्राध्ययन में श्रम करूँ?

पापश्रमण का स्वरूप

जे केइ उ पव्वइए, णिद्दासीले पगामसो।
भोच्चा पेच्चा सुहं सुवइ, पावसमणे त्ति वुच्चइ॥३॥

कठिन शब्दार्थ - **णिद्दासीले** - निद्राशील, **पगामसो** - अत्यधिक, **भोच्चा** - खा कर, **पेच्चा** - पीकर, **सुहं** - सुखपूर्वक, **सुवइ** - सो जाता है, **पावसमणे** - पापश्रमण, **वुच्चइ** - कहलाता है।

भावार्थ - जो कोई दीक्षा लेकर बहुत निद्रालु हो जाता है अर्थात् खूब नींद लेता है एवं खूब खा-पीकर सुखों से सो जाता है, वह पापश्रमण कहलाता है।

विवेचन - श्रमण मुनि के अठारह ही पापों का त्याग होता हैं किन्तु दीक्षा लेने के बाद जो साधु रस लोलुपी बन जाता है। संयम की क्रियाएं यथावत् नहीं करता है तथा पाप स्थानों का सेवन करता है, वह 'पापश्रमण' कहलाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आयरिय-उवज्झाएहिं, सुयं विणयं च गाहिए।
ते चेव खिंसइ बाले, पावसमणे त्ति वुच्चइ॥४॥

कठिन शब्दार्थ - आयरिय-उवज्झाएहिं - आचार्य और उपाध्यायों की, **सुयं** - श्रुत, **विणयं** - विनय, **गाहिए** - ग्रहण किया है, **खिंसइ** - निंदा करता है, **बाले** - बाल-अज्ञानी-विवेक विकल।

भावार्थ - जिन आचार्य तथा उपाध्यायजी महाराज से शास्त्र और विनय ग्रहण किया है, उन्हीं की जो बाल-अज्ञानी निंदा करता है, वह पापश्रमण कहलाता है।

आयरिय-उवज्झायाणं, सम्मं ण पडितप्पइ।
अपडिपूयए थद्धे, पावसमणे त्ति वुच्चइ॥५॥

कठिन शब्दार्थ - सम्मं - सम्यक् प्रकार से, **ण पडितप्पइ** - चिंता नहीं करता, परितृप्त नहीं करता, प्रीति नहीं रखता, **अपडिपूयए** - अप्रतिपूजक - बड़ों का सम्मान नहीं करने वाला पूज्य भाव नहीं रखने वाला, **थद्धे** - स्तब्ध-अहंकारी।

भावार्थ - जो आचार्य तथा उपाध्यायजी की सम्यक् प्रकार से सेवा नहीं करता और गुणी जनों के एवं अरहंतादि के गुणग्राम नहीं करता तथा उपकारी पुरुषों के उपकार को नहीं मानता और अभिमान करता है, वह पापश्रमण कहलाता है।

सम्मद्दमाणो पाणाणि, बीयाणि हरियाणि य।
असंजए संजयमण्णमाणो, पावसमणे त्ति वुच्चइ॥६॥

कठिन शब्दार्थ - सम्मद्दमाणो - सम्मर्दन करने वाला, **पाणाणि** - द्वीन्द्रिय आदि प्राणी, **बीयाणि** - बीज, **हरियाणि** - हरित वनस्पति, **असंजए** - असंयत, **संजय** - संयत, **मण्णमाणो** - मानने वाला।

भावार्थ - बेइन्द्रियादि प्राणियों को, बीजों को और हरी वनस्पति को मर्दन करता हुआ अर्थात् चलते समय इनको पैरों तले कुचल कर चलने वाला तथा स्वयं असंयत (असंयति) होकर भी अपने आपको, संयत (संयति) मानने वाला पापश्रमण कहलाता है।

संथारं फलगं पीढं, णिसिज्जं पाय-कंबलं।
अप्पमज्जियमारुहइ, पावसमणे त्ति वुच्चइ॥७॥

कठिन शब्दार्थ - संथारं - संस्तारक-बिछौना, **फलगं** - फलक-पाट, **पीढं** - पीठ-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आसन, **णिसिज्जं** - निषद्या - स्वाध्याय भूमि, **पायकंबलं** - पैर पौंछने का कम्बल का टुकड़ा, **अप्पमज्जिय** - प्रमार्जन किए बिना ही, **आरुहइ** - बैठता है।

भावार्थ - संस्तारक - तृणादि की शय्या, फलक - बाजोठ (पाटा), पीढ़ा (आसन) स्वाध्याय करने का स्थान तथा पाँव पौंछने का वस्त्र, इन सभी पर जो बिना पूंजे बैठता है अर्थात् धर्मोपकरण को बिना पूंजे उपयोग में लेता है, वह पापश्रमण कहलाता है।

विवेचन - जो रजोहरण से प्रमार्जन किये बिना ही अयतनापूर्वक पाट, पीठ आदि पर बैठ जाता है, वह जीव हिंसा के पाप का भागी होता है, अतः उसे 'पापश्रमण' कहा गया है।

दवदवस्स चरइ, पमत्ते य अभिक्खणं।
उल्लंघणे य चंडे य, पावसमणे त्ति वुच्चइ॥८॥

कठिन शब्दार्थ - **दवदवस्स** - द्रवं-द्रवं - पैरों से दब दब आवाज करता हुआ, जल्दी जल्दी, **चरइ** - चलता है, **पमत्ते** - प्रमत्त - प्रमाद करता हुआ, **अभिक्खणं** - बार बार, **उल्लंघणे** - उल्लंघन करता है, **चंडे** - चण्ड (क्रोधी)।

भावार्थ - जो ईर्यासमिति का उपयोग रखे बिना अयतना पूर्वक दड़बड़-दड़बड़ शीघ्रता से चलता है तथा धर्म-साधना में प्रमाद करता है और बारबार मर्यादा का उल्लंघन करता है अथवा बालक आदि का उल्लंघन कर चलता है और चण्ड - सुशिक्षा देने पर क्रोध करता है वह पापश्रमण कहलाता है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में पापश्रमण के चार दुर्गुण बताये हैं - १. **अत्यधिक द्रुतगामी**-शीघ्रताशीघ्र चलने वाला २. **प्रमादी** - बार बार प्रमादाचरण करने वाला ३. **मर्यादा**-उल्लंघक-श्रमण मर्यादाओं का उल्लंघन करने वाला ४. **प्रचण्ड-क्रोधी** - सुशिक्षा देने पर भी अति क्रोध करने वाला।

पडिलेहेइ पमत्ते, अवउज्झइ पाय-कंबलं।
पडिलेहा-अणाउत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चइ॥९॥

कठिन शब्दार्थ - **पडिलेहेइ** - प्रतिलेखन करता है, **अवउज्झइ** - जहां तहां डाल देता है, **पायकंबलं** - पादकम्बल अथवा पात्र और कम्बल को, **पडिलेहा** - प्रतिलेखना में, **अणाउत्ते** - अनायुक्त है-उपयोगशून्य है।

भावार्थ - जो प्रमाद युक्त हो कर बिना उपयोग पडिलेहणा करता है और पाँव पोंछने के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वस्त्र को अथवा पात्र को कम्बल एवं सभी धर्मोपकरणों को इधर-उधर बिखेरे रखता है और पडिलेहणा में उपयोग नहीं रखता है, वह पापश्रमण कहलाता है।

पडिलेहेइ पमत्ते, से किंचि हु णिसामिया।
गुरु-परिभासए णिच्चं, पावसमणे त्ति वुच्चइ॥१०॥

कठिन शब्दार्थ - णिसामिया - सुनता हुआ, **गुरुपरिभावए (गुरु परिभासए)** - गुरुजनों का अपमान करता है।

भावार्थ - जो प्रमादी हो कर पडिलेहणा करता है और कुछ विकथा आदि सुनने में दत्तचित्त रहता है और इसीलिए पडिलेहणा (प्रतिलेखना) के विषय में उपयोग शून्य हो जाता है और गुरु महाराज द्वारा प्रेरणा करने पर सदैव गुरु के सामने बोलता है अथवा उनका तिरस्कार करता है या उनके साथ विवाद करता हुआ असभ्य वचन बोलता है कि 'आपने हमको पडिलेहणा करना इसी प्रकार सिखाया था अथवा हम भली प्रकार पडिलेहणा करना नहीं जानते तो आप स्वयं का लें' इस प्रकार जो बोलता है, वह पापश्रमण कहलाता है।

बहुमाई पमुहरे, थद्धे लुद्धे अणिग्गहे।
असंविभागी अवियत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चइ॥११॥

कठिन शब्दार्थ - बहुमाई - बहुमायी - अत्यंत माया युक्त, **पमुहरे (पमुहरी)** - प्रमुखर-वाचाल, **थद्धे** - स्तब्ध-ढीठ, **लुद्धे** - लुब्ध, **अणिग्गहे** - इन्द्रियों को वश न करने वाला, **असंविभागी**- समविभाग न करने वाला, **अवियत्ते** - प्रीति न करने वाला।

भावार्थ - बहुत छल-कपट करने वाला, वाचाल (बहुत बोलने वाला), अभिमानी, आसक्ति रखने वाला, इन्द्रियों को वश में नहीं करने वाला, आहार का संविभाग न करने वाला, अप्रीतिकारी एवं सांथी साधुओं के साथ प्रेम वात्सल्य का व्यवहार न करने वाला, पापश्रमण कहलाता है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में बताया है कि जो साधु १. कपटी २. वाचाल ३. ढीठ ४. लोभी ५. अजितेन्द्रिय ६. असंविभागी - बिना विभाग किये एकाकी खाने वाला ७. गुरुजनों का तिरस्कार करने वाला होता है, वह पापश्रमण कहलाता है।

असंविभागी की टीका करते हुए टीकाकार ने कहा है - "**आत्मपोषकत्वेनैव सोऽसंविभागी**" - जो सिर्फ अपने पोषण का ही ध्यान रखता है, वह असंविभागी है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवादं च उदीरेइ, अहम्मे अत्तपण्णहा।
वुग्गहे कलहे रत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चइ॥१२॥

कठिन शब्दार्थ - विवादं - विवाद को, **उदीरेइ** - पुनः भड़काता है, **अहम्मे** - अधर्मी, **अत्तपण्णहा** - आप्त-हितकारी प्रज्ञा का हनन करने वाला, **वुग्गहे** - विग्रह-कदाग्रह, **कलहे** - कलह में, **रत्त** - रत-रचा पचा हुआ।

भावार्थ - जो क्लेश शान्त हो चुका है उसे फिर से उत्पन्न करने वाला, सदाचार रहित, आत्मा के अस्तित्व एवं परलोकादि के प्रश्न का नाश करने वाला अथवा कुतर्कों द्वारा अपनी और दूसरों की बुद्धि को मलिन बनाने वाला और विग्रह-दंडादि द्वारा लड़ाई करने वाला तथा वचन द्वारा कलह करने वाला पापश्रमण कहलाता है।

विवेचन - आगम आज्ञा है कि साधु कषाय का उपशमन किये बिना अन्न जल भी नहीं लेता है। इसके विपरीत जो फिर से कषाय की उदीरणा करता और कलह तथा विग्रह में रचा पचा रहता है वह पापश्रमण कहलाता है।

अथिरासणे कुक्कुइए, जत्थ-तत्थ णिसीयइ।
आसणम्मि अणाउत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चइ॥१३॥

कठिन शब्दार्थ - **अथिरासणे** - अस्थिर आसन, **कुक्कुइए** - कौत्कुच्य भांडों (विदूषकों) जैसी कुचेष्टा, **जत्थ तत्थ** - जहां तहां, **णिसीयइ** - बैठता है, **आसणम्मि** - आसन में, **अणाउत्ते** - अनायुक्त-विवेक रहित।

भावार्थ - अस्थिर आसन वाला, कुचेष्टा करने वाला अथवा अयतना पूर्वक हाथ-पाँव इधर-उधर हिलाने वाला, सचित्त-अचित्त का विचार किये बिना जहाँ तहाँ बैठ जाने वाला और आसनादि के विषय में उपयोग न रखने वाला पापश्रमण कहलाता है।

ससरक्खपाए सुवइ, सेज्जं ण पडिलेहइ।
संथारए अणाउत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चइ॥१४॥

कठिन शब्दार्थ - **ससरक्खपाए** - रज से भरे पैरों से, **सुवइ** - सो जाता है, **सेज्जं** - शय्या का, **ण पडिलेहइ** - प्रतिलेखन नहीं करता, **संथारए** - संस्तारक-बिछौना।

भावार्थ - जो सचित्त रज से भरे हुए पाँव को पूंजे बिना ही शय्या की प्रतिलेखना भी नहीं करता है तथा संस्तारक के विषय में उपयोग नहीं रखता है ऐसा साधु पापश्रमण कहलाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दुद्ध-दही-विगईओ, आहारेइ अभिक्खणं।
अरए य तवोकम्मे, पावसमणे त्ति वुच्चइ॥१५॥

कठिन शब्दार्थ - **दुद्ध-दही-विगईओ** - दूध, दही आदि विकृतिजनक पदार्थों का, **अरए** - अरत-अप्रीति, **तवोकम्मे** - तपश्चरण में।

भावार्थ - दूध, दही आदि विगयों का जो बारबार आहार करता है और इसीलिए तपस्या करने में अरत-जो अप्रीति रखता है, वह पापश्रमण कहलाता है।

विवेचन - ठाणाङ्ग सूत्र के पांचवें ठाणे में पांच प्रकार के विगय (विगइ-विकृति) बताये गये हैं यथा - दूध, दही, घी, तेल, मीठा। साधु-साध्वी को प्रतिदिन पांचों विगयों का सेवन नहीं करना चाहिए। पांच विगय में "दही" का नाम भी है। इससे स्पष्ट होता है कि दही अचित्त है। उसमें जीव नहीं होते इसी प्रकार दही के साथ मूंग, मोठ, चने आदि की दाल और बेसन का सम्मिश्रण हो जाने पर भी जीव उत्पन्न नहीं होते हैं। द्वि दल में जो 'जीवों की उत्पत्ति होती है' यह मान्यता आगम सम्मत्त नहीं है। इसी प्रकार २२ प्रकार के अभक्ष्य की मान्यता भी आगम सम्मत्त नहीं है। वैसे निश्चय नय की अपेक्षा तो जीव का स्वभाव अनाहारक (किसी प्रकार का आहार नहीं लेना) होना है। सिद्ध भगवान् अनाहारक हैं। इस दृष्टि से जीव के लिए सब पदार्थ अभक्ष्य हैं। किन्तु जब तक संसारी हैं, शरीर धारी हैं, तब तक शरीर निर्वाह के लिए उसे आहार लेना पड़ता है उसमें अल्प पाप और महापाप का विवेक तो जिनवचनानुरागी बुद्धिमान् को करना ही चाहिए। जो वैज्ञानिकों का नाम लेकर दही में "बैक्टेरिया" नामक जीव बतलाते हैं (दुर्बीन के द्वारा) यह उनका भ्रम है। वह तो दही के अंश रूप रेशे दिखाई देते हैं। जैसे धूप में उड़ते हुए रजकण दिखाई देते हैं किन्तु वे जीव नहीं हैं। जीव की तरह पुद्गल भी गति करता है। वे दही में नीचे ऊपर होते रहते हैं।

जिस पदार्थ का आहार करने से शरीर में मद, काम आदि विकार उत्पन्न होते हैं उसे विगय-विकृति कहते हैं। स्थानांग सूत्र स्थान ९ में विकृति के नौ भेद इस प्रकार कहे हैं - १. दूध २. दही ३. घी ४. नवनीत ५. तेल ६. मीठा ७. मधु ८. मद्य और ९. मांस। इनमें मद्य और मांस तो सदैव त्याज्य है। नवनीत और मधु महाविगय है जिनका गाढ़ागाढ़ कारण से-रोगादि कारणवश उपयोग किया जा सकता है। शेष विगयों का भी बार-बार सेवन करने से विकार पैदा होता है और मन तपस्या से हट जाता है अतः विगयों का प्रतिदिन-बारबार सेवन करने वाले साधु को पापश्रमण कहा गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्थंतम्मि य सूरम्मि, आहारेइ अभिक्खणं।
चोइओ पडिचोएइ, पावसमणे त्ति वुच्चइ॥१६॥

कठिन शब्दार्थ - **अत्थंतम्मि** - अस्त होने तक, **सूरम्मि** - सूर्य के, **चोइओ** - प्रेरणा देने पर, **पडिचोएइ** - उन्हीं पर आक्षेप करता है।

भावार्थ - सूर्य के अस्त होने तक जो बार-बार आहार करता है अर्थात् प्रातःकाल से संध्या तक आहार करने में ही लगा रहता है और ऐसा न करने के लिए अथवा तपस्यादि करने के लिए गुरु महाराज द्वारा प्रेरणा करने पर उनके वचन का अनादर करते हुए प्रत्युत्तर देता है वह पापश्रमण कहलाता है।

आयरियपरिच्चाई, परपासंड-सेवए।
गाणं-गणिए दुब्भूए, पावसमणे त्ति वुच्चइ॥१७॥

कठिन शब्दार्थ - **आयरियपरिच्चाई** - आचार्य का परित्याग कर, **परपासंडसेवए** - परपाषण्ड का सेवन करता है, **गाणंगणिए** - गाणंगणिक - बार बार गण बदलने वाला, **दुब्भूए** - दुर्भूत - निन्दित।

भावार्थ - आचार्य महाराज को छोड़ कर अन्यमत में जाने वाला, छह महीनों के भीतर एक गच्छ को छोड़ कर दूसरे गच्छ में जाने वाला, दुर्भूत - निंदनीय साधु पापश्रमण कहलाता है।

विवेचन - गाणंगणिक का अर्थ करते हुए टीकाकार कहते हैं - **"गणाद् गणं षण्मासाभ्यन्तरं संक्रामतीति गाणंगणिक इत्यागमिकी परिभाषा"** - शान्त्याचार्य वृहदवृत्ति पत्र ४३५ - जो श्रमण विशेष कारण के बिना अपनी इच्छा से ही छह मास के भीतर एक गण से दूसरे गण में संक्रमण करता है उसे **'गाणंगणिक'** कहा जाता है।

सयं गेहं परिच्चज्ज, परगेहंसि वावरे।
णिमित्तेण य ववहरइ, पावसमणे त्ति वुच्चइ॥१८॥

कठिन शब्दार्थ - **सयं** - अपना, **गेहं** - घर, **परिच्चज्ज** - छोड़ कर, **परगेहंसि** - अन्य गृहस्थ के घर में, **वावरे** - व्याप्त, **णिमित्तेण** - निमित्त (शुभाशुभ) बतला कर, **ववहरइ** - व्यवहार करता है।

भावार्थ - अपना घर अर्थात् गृहस्थाश्रम छोड़ कर जो संयमी बना है, फिर भी रसलोलुपी होकर जो गृहस्थों के घरों में फिरता है, गृहस्थ के कार्य करता है और शुभाशुभादि निमित्त-विद्या बता कर द्रव्य उपार्जन करता है, वह पापश्रमण कहलाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सण्णाइपिंडं जेमेइ, णेच्छइ सामुदाणियं।
गिहिणिसेज्जं च वाहेइ, पावसमणे त्ति वुच्चइ॥१९॥

कठिन शब्दार्थ - **सण्णाइपिंडं** - स्वज्ञातिपिण्ड, **जेमेइ** - ग्रहण करता है, **णेच्छइ** - नहीं चाहता है, **सामुदाणियं** - सामुदायिक भिक्षा ग्रहण करना (अनेक घरों से गृहीत भिक्षा अथवा अज्ञात-अपरिचित घरों से थोड़ी थोड़ी लाई हुई भिक्षा), **गिहिणिसेज्जं** - गृहस्थ की शय्या-निषद्या पर, **वाहेइ** - बैठता है।

भावार्थ - जो स्वज्ञातिपिंड अर्थात् अपनी जाति एवं सगे-सम्बन्धियों के घर से ही आहार लेता है, सामुदानिकी भिक्षा नहीं लेना चाहता और गृहस्थ की शय्या पर बैठता है, वह पापश्रमण कहलाता है।

विवेचन - अपने ज्ञातिजनों से लाया हुआ आहार ही करने वाला साधु चाहे प्रतिदिन एक ही घर से आहार न लेता हो, किंतु ज्ञाति बन्धु, स्वजन आदि परिचित होने से उनके द्वारा साधु के निमित्त सरस स्वादिष्ट आहार तैयार करना सम्भव है, उससे औद्देशिक दोष तो है ही, छह काया के आरम्भ का दोष भी लगता है। साथ ही लगातार सरस स्वादिष्ट आहार करने से अनेक विकार व उदर व्याधियां भी उत्पन्न हो जाती है अतः स्वज्ञातिपिण्डभोजी श्रमण को पापश्रमण कहा गया है।

एयारिसे पंचकुसीलसंवुडे, रूवंधरे मुणिपवराण हेट्ठिमे।
अयंसि लोए विसमेव गरहिए, ण से इहं णेव परत्थ लोए॥२०॥

कठिन शब्दार्थ - **एयारिसे** - इस प्रकार, **पंचकुसीलेसंवुडे** - पांच कुशील साधुओं के समान असंवृत, **रूवंधरे** - मुनिवेश का धारक, **मुणिपवराण** - श्रेष्ठ मुनियों में, **हेट्ठिमे** - निकृष्टतम, **विसमेव** - विष की तरह, **गरहिए** - गर्हित-निन्दनीय, **ण इहं** - न तो इसलोक का, **णेव परत्थ लोए** - न ही परलोक का।

भावार्थ - इस प्रकार पार्श्वस्थ, अवसन्न, कुशील, संसक्त और स्वच्छंद, इन पांच प्रकार के कुशीलों का अनुसरण करने वाला, संवर से रहित मुनि का वेष धारण करने वाला, श्रेष्ठ मुनियों में हीन अर्थात् संयम का यथावत् पालन करने वाले मुनियों की अपेक्षा हीन वह मुनि इस लोक में विष (जहर) के समान निंदनीय होता है और उसका न तो यह लोक सुधरता है और न परलोक सुधरता है अर्थात् उसके दोनों लोक बिगड़ जाते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - पापश्रमण को इस गाथा में **'पंचकुसील संवुडे'** कहा है। जो साधु की समाचारी का बराबर पालन नहीं करता उसे कुशील (संवृत) श्रमण कहते हैं। उसके पांच भेद हैं वे इस प्रकार हैं -

१. पासत्थ (पार्श्वस्थ या पासस्थ) - जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और प्रवचन में सम्यग् उपयोग वाला नहीं है। ज्ञानादि के समीप रहकर भी जो उन्हें अपनाता नहीं है। वह पासस्थ (पार्श्वस्थ) कहलाता है।

२. ओसन्न (अवसन्न) - जो एक पक्ष के अन्दर पीठ फलक आदि बंधन खोल कर उनकी पडिलेहणा नहीं करता अथवा बार-बार सोने के लिए संथारा बिछाये रखता हैं तथा जो स्थापना आदि दोष से दूषित आहार आदि लेता है जो साधु समाचारी का पालन करते हुए थक गया है वह सर्व अवसन्न या देश अवसन्न कहलाता है।

३. कुशील - कुत्सित अर्थात् निंदनीय शील आचार वाले साधु को कुशील कहते हैं। ज्ञान कुशील, दर्शन कुशील व चारित्र कुशील के भेद से यह तीन प्रकार का है।

४. संसक्त - मूल गुण और उत्तर गुण तथा इनके जितने दोष हैं वे सभी जिसमें मिले रहते हैं। उसे संसक्त श्रमण कहते हैं।

५. यथाच्छन्द - जो अपनी इच्छानुसार उत्सूत्र (सूत्र विपरीत) प्ररूपणा और आचरण करता है ऐसे स्वच्छंदाचारी साधु को यथाच्छन्द कहते हैं।

उपसंहार

जे वज्जए एए सया उ दोसे, से सुव्वए होइ मुणीण-मज्झे।
अयंसि लोए अमयं व पूइए, आराहए लोगमिणं तहापरं॥२१॥ त्तिबेमि॥

कठिन शब्दार्थ - **वज्जए** - छोड़ देता है, **दोसे** - दोषों को, **सुव्वए** - सुव्रत, **मुणीण मज्झे** - मुनियों के मध्य में, **अमयं व** - अमृत की तरह, **पूइए** - पूजित, **लोगमिणं** - इस लोक, **आराहए** - आराधना कर लेता है।

भावार्थ - जो मुनि इन उपरोक्त दोषों को सदा के लिए छोड़ देता है, वह मुनियों में सुव्रत-सुंदर व्रत वाला अर्थात् श्रेष्ठ मुनि होता है, इस लोक में अमृत के समान पूजनीय होता है, इस प्रकार इस लोक और परलोक दोनों की वह सम्यक् आराधना करता है। ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ इति पापश्रमणीय नामक सत्तरहवां अध्ययन समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संजइज्जं णामं अट्ठारहमं अज्झयणं

संयतीय नामक अठारहवाँ अध्ययन

उत्थानिका - सतरहवें अध्ययन में पापश्रमण का स्वरूप बतलाने के बाद आगमकार इस अठारहवें अध्ययन में सुश्रमण का स्वरूप बतलाते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन का नाम **'संजइज्जं'** अर्थात् संजतीय या संयतीय है। संयति शब्द का सामान्य अर्थ होता है - मन और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने वाला साधक - मुनि। यहां यह शब्द दो अर्थ ध्वनित कर रहा है - १. संयति या संजति नामक राजा के जीवन का परिवर्तन और २. संयति अर्थात् मुनि के जीवन का प्रभाव। इस अध्ययन में संजय (संयति) राजा के शिकारी जीवन की तथा इसके बाद उसके संयमी जीवन की झांकी प्रस्तुत की गयी है। इस अध्ययन के पूर्वार्ध में गर्दभाली मुनि के परिचय और उनके निमित्त से राजा संयति के हृदय परिवर्तन का वर्णन किया गया है जबकि इसके उत्तरार्द्ध में क्षत्रिय मुनि से संयति मुनि की चर्चा और भगवान् महावीर स्वामी के तत्त्व दर्शन का निरूपण किया गया है। साथ ही संयति मुनि को धर्म में स्थिर करने हेतु क्षत्रिय मुनि, भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ, महापद्म, हरिषेण, जय आदि चक्रवर्ती तथा दशार्णभद्र, नमिराज, करकण्डु आदि चार प्रत्येक बुद्ध, उदायन, विजय, काशीराज महाबल आदि बीस महापुरुषों की जीवन झांकी प्रस्तुत की गयी है। इस अध्ययन में वर्णित सभी आत्माएं संयम अंगीकार करके ज्ञानादि की उत्कृष्ट आराधना करके मोक्ष गति को प्राप्त हुई।

वाणिज्यकुलीन - कोटिकगणीय - वज्रशाखीय - श्री गोपालगणिमहत्तरशिष्य - जिनदासगणिमहत्तर कृत उत्तराध्ययन चूर्णि में भी क्षत्रिय राजर्षि द्वारा कीर्तित सभी मुनियों को मोक्ष जाना बताया है। यथा - **एतत्पुण्यपदंश्रुत्वा, कृत्वाचये मोक्षं गताः। तानहं कीर्तियिष्यामि स्थिरीकरणार्थं, 'भरहो वि भारहं वासं चिच्चा कामाइ पव्वए' इत्यादि, एवमादाय धीरा धर्मं कृत्वा मोक्षं गता इति।**

इसकी प्रथम गाथा इस प्रकार है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संजय राजा का मृगयार्थ गमन

कंपिल्ले णयरे राया, उदिण्ण-बलवाहणे।
णामेणं संजओ णामं, मिग्गवं उवणिग्गए॥१॥

कठिन शब्दार्थ - **कंपिल्ले** - काम्पिल्य-कम्पिलपुर, **णयरे** - नगर में, **उदिण्ण-बलवाहणे** - बल - चतुरंगिणी सेना और वाहन से उद्यत होकर, **णामेणं संजओ णामं** - नाम से संजय नामक, **मिगव्वं** - मृगया - शिकार के लिए, **उवणिग्गए** - नगर से निकला।

भावार्थ - कम्पिलपुर नगर में विस्तीर्ण सेना तथा हाथी घोड़े और वाहनादि युक्त, संजय (संयति) नाम का राजा राज्य करता था। एक बार वह मृगया - शिकार खेलने के लिए नगर से बाहर निकला।

हयाणीए गयाणीए रहाणीए तहेव य।
पायत्ताणीए महया, सव्वओ परिवारिए॥२॥
मिए छुहित्ता हयगओ, कंपिल्लुज्जाण-केसरे।
भीए संते मिए तत्थ, वहेइ रसमुच्छिए॥३॥

कठिन शब्दार्थ - **हयाणीए** - हयानीक - अश्व सेना से, **गयाणीए** - गजानीक - गज सेना से, **रहाणीए** - रथानीक - रथ सेना से, **तहेव** - तथा, **पायंत्ताणीए** - पदाति अनीक - सेना से, **महया** - विशाल, **सव्वओ** - सब ओर से, **परिवारिए** - परिवृत्त (घिरा हुआ), **मिए** - मृगों को, **छुहित्ता** - प्रेरित करके-हांक कर, **हयगओ** - अश्व पर आरूढ, **कंपिल्लुजाणकेसरे** - कम्पिल नगर के केसर नामक उद्यान में, **भीए**- भयभीत, **संते**- श्रान्त-थके हुए, **वहेइ** - व्यथित करता है, **रसमुच्छिए** - रस-मूर्च्छित होकर।

भावार्थ - हयानीक (घोड़ों की सेना) गजानीक (हाथियों की सेना) तथा रथानीक (रथों की सेना) और पदाति अनीक (पैदल सेना) इन चार प्रकार की बड़ी सेनाओं से चारों ओर से घिरा हुआ वह राजा घोड़े पर सवार होकर कम्पिलपुर के केसर नामक उद्यान में पहुँचा और रसमूर्च्छित अर्थात् मांस खाने में गृद्ध बना हुआ वह संजय राजा उस उद्यान में हिरणों को क्षुभित कर के भयभीत बने हुए तथा श्रान्त - थके हुए हिरणों को मारने लगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ध्यानस्थ गर्दभालि अनगार

अह केसरम्मि उज्जाणे, अणगारे तवोधणे।
सज्झायज्झाणसंजुत्ते, धम्मज्झाणं झियायइ॥४॥

कठिन शब्दार्थ - **तवोधणे** - तपोधनी, **सज्झायज्झाणसंजुत्ते** - स्वाध्याय और ध्यान में संलग्न, **धम्मज्झाणं** - धर्म ध्यान का, **झियायइ** - चिंतन (ध्यान) कर रहे थे।

भावार्थ - उस केसर नाम के उद्यान में तपोधनी, स्वाध्याय और ध्यान में लगे हुए एक अनगार महात्मा धर्मध्यान ध्याते थे।

मृग का हनन

अप्फोवमंडवम्मि, झायइ खवियासवे*।
तस्सागए मिगे पासं, वहेइ से णराहिवे॥५॥

कठिन शब्दार्थ - **अप्फोवमंडवम्मि** - अप्फोवमण्डप - वृक्षादि से घिरा हुआ मण्डप अथवा नागरवेल, द्राक्षा आदि लताओं से वेष्टित मण्डप, **झायइ** - ध्यान कर रहे थे, **खवियासवे** - आस्रवों का क्षय करने वाले, **तस्स** - उनके, **पासं** - पास में, **आगए** - आये हुए, **वहेइ** - मार डाला, **णराहिवे** - नराधिप।

भावार्थ - कर्मबन्ध के हेतु स्वरूप हिंसादि आस्रवों का क्षय करने वाले वे महात्मा, वृक्ष-गुच्छ-गुल्म-लताओं से युक्त तथा नागरवेल आदि से आच्छादित मंडप में ध्यान कर रहे थे राजा से भयभीत हुए कुछ मृग दौड़ कर उन मुनि के पास चले आये किन्तु वह नराधिप (राजा), उन मृगों पर भी बाण चला कर मारने लगा।

नृप का पश्चात्ताप

अह आसगओ राया, खिप्पमागम्म सो तहिं।
हए मिए उ पासित्ता, अणगारं तत्थ पासइ॥६॥

कठिन शब्दार्थ - **आसगओ** - अश्वारूढ़, **खिप्पमागम्म** - शीघ्र आकर, **हए** - मरे हुए।

---

* पाठान्तर - '**झवियासवे**'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इसके बाद घोड़े पर बैठे हुए उस राजा ने शीघ्र वहाँ आकर अपने बाणों से विद्ध होकर मरे हुए हिरणों को देखा और इतने ही में वहाँ ध्यानस्थ बैठे हुए महात्मा को भी देखा।

अह राया तत्थ संभंतो, अणगारो मणाहओ।
मए उ मंदपुण्णेणं, रसगिद्धेण घंतुणा॥७॥

कठिन शब्दार्थ - **संभंतो** - संभ्रान्त-भयभीत, **मणा** - मनाक् - व्यर्थ ही, **आहओ** - आहत (पीड़ित) किया है, **मंदपुण्णेण** - मंद पुण्य से, **रसगिद्धेण** - रसलोलुप, **घंतुणा** - जीवघातक।

भावार्थ - इसके बाद मुनिराज पर दृष्टि पड़ते ही राजा अत्यन्त भयभीत हुआ और मन में अपने आपको धिक्कारता हुआ विचारने लगा कि मेरे बाण से विद्ध होकर यह मृग दौड़ कर मुनिराज के पास आया है, इसलिए मंदभागी रसासक्त और निरपराध जीवों की हिंसा करने वाले मैंने इस मृग को मार कर मनाक् - अल्प स्वार्थ के लिए मुनिराज के चित्त को दुःखित किया है। अथवा भयभ्रान्त बन कर राजा इस प्रकार विचार करने लगा कि मैं अवश्य मंदभागी हूँ। शिकार खेलने में अन्ध बने हुए मुझे इतना भी ध्यान नहीं रहा कि यहाँ मुनिराज बैठे हुए हैं। मृग पर चलाया हुआ मेरा बाण यदि ध्यानस्थ मुनिराज को लग जाता तो कैसा अनर्थ हो जाता? इत्यादि विचारों से राजा अत्यन्त भयभ्रान्त बन गया।

मुनि से क्षमायाचना

आसं विसज्जइत्ताणं, अणगारस्स सो णिवो।
विणएण वंदए पाए, भगवं एत्थ मे खमे॥८॥

कठिन शब्दार्थ - **आसं** - घोड़े को, **विसज्जइत्ताणं** - छोड़ कर, **णिवो** - नृप, **विणएण** - विनय से, **वंदए** - वंदन किया, **पाए** - चरणों में, **भगवं** - हे भगवन्! **एत्थ** - इस अपराध के विषय में, **खमे** - क्षमा करें।

भावार्थ - इसके बाद वह नृप-राजा अश्व-घोड़े को छोड़ कर अर्थात् घोड़े से उतर कर मुनिराज के पैरों में विनय पूर्वक वंदना-नमस्कार करता हुआ कहने लगा कि, हे भगवन्! इस शिकार करने में मेरा जो अपराध हुआ है उसके लिए मुझे क्षमा कीजिए।

विवेचन - शिकार के लिए केसर उद्यान में गया संयति राजा एक-एक करके भयभीत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हिरणों को बाणों से बींधने लगा। घायल हो कर हिरण इधर-उधर भाग दौड़ करते-करते थक कर जमीन पर बैठ जाते तब राजा उन्हें मार गिराता। घोड़े पर चढ़ा हुआ राजा मरते हुए हिरणों को देख कर हर्षित हो रहा था तभी उसने मृत हिरणों के पास ही एक ध्यानस्थ तपस्वी मुनि को देखा। मुनि के पास ही एक मूर्च्छित मृग को देख कर राजा चौंका और मन ही मन यह सोच कर अत्यंत भयभीत हुआ कि हो न हो ये मृग मुनि के ही हों। मैंने मुनि के मृगों को मार डाला। हाय! हाय! घोर अनर्थ हो गया मुझ से! बस इसी पश्चात्ताप की भावना के साथ वह घोड़े से एकदम नीचे उतरा और मुनि के पास जाकर अत्यंत नम्रतापूर्वक अपने अपराध के लिए क्षमायाचना करने लगा।

अह मोणेण सो भगवं, अणगारे झाणमस्सिए।
रायाणं ण पडिमंतेइ, तओ राया भयदुओ॥९॥

कठिन शब्दार्थ - मोणेण - मौन से, **झाणमस्सिए** - ध्यान में लीन, **ण पडिमंतेइ** - प्रत्युत्तर नहीं दिया, **भयदुओ** - अत्यधिक भयभीत।

भावार्थ - राजा ने अपने अपराध के लिए क्षमा मांगी किन्तु उस समय वे भगवान्-योगीश्वर अनगार महात्मा ध्यान आश्रित - धर्मध्यान में लीन थे इसलिए मौन रहे और उन्होंने राजा को उत्तर नहीं दिया तब मुनि द्वारा उत्तर न पाने के कारण राजा अधिक भयभ्रान्त हुआ।

भयाक्रान्त राजा की अभय प्रार्थना

संजओ अहमम्मीति, भगवं! वाहराहि मे।
कुद्धे तेएण अणगारे, डहेज्ज णरकोडिओ॥१०॥

कठिन शब्दार्थ - संजओ - संजय, **अहं** - मैं, **अम्मि** - हूं, **वाहराहि** - संभाषण कीजिए, **कुद्धे** - क्रोधी, **तेएण** - तेज से, **डहेज्ज** - जला सकते हैं, **णरकोडिओ** - करोड़ों मनुष्यों को।

भावार्थ - राजा अपना परिचय देता हुआ कहने लगा कि मैं संजय नाम का राजा हूँ इसलिए हे भगवन्! आप मुझ से संभाषण कीजिये अर्थात् आप मुझे मेरे अपराध के लिए क्षमा प्रदान कीजिए क्योंकि, कुपित हुए अनगार महात्मा अपने तप-तेज से करोड़ों मनुष्य को जला कर भस्म कर सकता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - राजा अपने अपराध के लिए क्षमा मांग रहा था किंतु मुनि तो ध्यानस्थ थे, वे सभी प्राणियों को अपनी आत्मा के समान समझते हुए मैत्री भावना से ओतप्रोत हो रहे थे। उनकी तन्मयता, मौन तथा तप की तेजस्विता देख कर राजा अत्यंत भयभीत होकर अपना नाम लेकर गिड़गिड़ाता हुआ मुनि से क्षमादान की प्रार्थना करने लगा क्योंकि राजा ने सोचा - 'मुनि क्रुद्ध हो गए हैं और इसी तरह क्रुद्ध रहे तो ये एक क्षण में लाखों करोड़ों व्यक्तियों को भस्म कर सकते हैं।

मुनि द्वारा अभयदान और त्याग का उपदेश

अभओ पत्थिवा! तुज्झं, अभयदाया भवाहि य।
अणिच्चे जीवलोगम्मि, किं हिंसाए पसज्जसि॥११॥

कठिन शब्दार्थ - **अभओ** - अभय, **पत्थिवा** - हे पार्थिव! **तुज्झं** - तुझे, **अभयदाया**- अभयदाता, **भवाहि** - बन, **अणिच्चे** - अनित्य, **जीवलोगम्मि** - जीव लोक में, **किं** - क्यों, **हिंसाए** - हिंसा में, **पसज्जसि** - आसक्त हो रहा है।

भावार्थ - तत्पश्चात् मुनि कहने लगे कि हे पार्थिव! हे राजन्! तुम अभय हो अर्थात् तुम मेरी ओर से किसी प्रकार का भय मत रखो और हे राजन्! तुम भी अभयदान देने वाले बनो अर्थात् जिस प्रकार तुम मुझसे भय मान रहे हो उसी प्रकार वन के ये जीव भी तुम से भयभीत हो रहे हैं, किन्तु अब मैंने तुमको अभयदान दिया है, वैसे ही इन जीवों को तुम भी अभयदान देकर निर्भय बना दो, इस अनित्य जीवलोक-संसार में हिंसा करने में क्यों, आसक्त हो रहे हो? अर्थात् संसार की कोई वस्तु नित्य नहीं है, तब इस क्षणभंगुर जीवन के लिए तुम हिंसा जैसे क्रूर कर्म में क्यों प्रवृत्त हो रहे हो?

जया सव्वं परिच्चज्ज, गंतव्वमवसस्स ते।
अणिच्चे जीवलोगम्मि, किं रज्जम्मि पसज्जसि॥१२॥

कठिन शब्दार्थ - **परिच्चज्ज** - छोड़ कर, **गंतव्वं** - जाना है, **अवसस्स** - परवश हुए, **रज्जमि** - राज्य में।

भावार्थ - जब सभी वस्तुओं को छोड़ कर अवश होकर अर्थात् कर्मों के वश होकर तुम को परलोक में अवश्य जाना पड़ेगा तो फिर इस अनित्य संसार में तथा राज्य में क्यों आसक्त हो रहे हो?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीवियं चेव रूवं च, विज्जुसंपाय-चंचलं।
जत्थ तं मुज्झसि रायं! पेच्चत्थं णावबुज्झसि॥१३॥

कठिन शब्दार्थ - **जीवियं** - जीवन, **रूवं** - रूप, **विज्जुसंपाय** - विद्युत्संपात-बिजली की चमक के समान, **चंचलं** - चंचल, **जत्थ** - जिनमें, **मुज्झसि** - मुग्ध हो, **पेच्चत्थं** - परलोक के हित को, **णावबुज्झसि** - नहीं समझ रहे हो।

भावार्थ - हे राजन्! जिस पर तू मोहित हो रहा है, वह जीवन और रूप तो विद्युत्संपात-चंचल - बिजली के चमत्कार के समान एक क्षणविध्वंसी हैं, तो हे राजन्! परलोक के विषय में विचार क्यों नहीं करते? अर्थात् जीवन और रूप आदि सब अनित्य हैं इसलिए तुम्हारे सरीखे बुद्धिमान् को आत्मकल्याण में प्रवृत्ति करना ही श्रेष्ठ है।

दाराणि य सुया चेव, मित्ता य तह बंधवा।
जीवंतमणुजीवंति, मयं णाणुव्वयंति य॥१४॥

कठिन शब्दार्थ - **दाराणि** - स्त्रियाँ, **सुया** - पुत्र, **मित्ता** - मित्र, **तह** - तथा, **बंधवा** - बन्धुजन, **जीवंतं** - जीवित के साथ ही, **अणुजीवंति** - जीते हैं, **मयं** - मृत, **णाणुव्वयंति** - पीछे नहीं जाते हैं।

भावार्थ - दारा-स्त्री और सुत-पुत्र, मित्र और बन्धु सब जीते हुए के साथ जीते हैं अर्थात् जब तक घर का स्वामी जीता है तब तक उसके कमाये हुए पैसे से मौज करते हैं और उसके पीछे-पीछे चलते हैं किन्तु मृत-मरे हुए के साथ पीछे नहीं जाते, ऐसे सम्बन्धियों के लिए दिन रात अनर्थ करना और उनको अपने जीवन का आधार समझना बुद्धिमान् पुरुष के लिए कहाँ तक उचित है, उसका स्वयं विचार करना चाहिये।

णीहरंति मयं पुत्ता, पियरं परमदुक्खिया।
पियरो वि तहा पुत्ते, बंधू रायं! तवं चरे॥१५॥

कठिन शब्दार्थ - **णीहरंति** - निकाल देते हैं, **मयं** - मरे हुए, **पुत्ता** - पुत्र, **पियरं** - पिता को, **परमदुक्खिया** - अत्यंत दुःखित होकर, **पियरो वि** - पिता भी, **बंधू** - बंधु भी, **तवं** - तप का, **चरे** - आचरण करे।

भावार्थ - मरे हुए पिता को पुत्र अत्यन्त दुःखित हो कर निकाल देते हैं और जला कर घर लौट आते हैं, इसी प्रकार पुत्रों के मर जाने पर पिता और भाई के मर जाने पर भाई करता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है अर्थात् एक मरता है और दूसरा उसको ले जा कर जला आता है। यह संसार के सम्बन्ध की अवस्था है। कोई किसी के साथ नहीं जाता, इसलिए हे राजन्! इन सब का मोह छोड़ कर तप संयम का सेवन करना चाहिए।

तओ तेणज्जिए दव्वे, दारे य परिरक्खिए।
कीलंतिऽण्णे णरा रायं, हट्ठतुट्ठमलंकिया॥१६॥

कठिन शब्दार्थ - **तेण** - उसके द्वारा, **अज्जिए** - अर्जित, **दव्वे** - द्रव्य, **परिरक्खिए** - सुरक्षित, **कीलंति** - उपभोग करते हैं, **अण्णे** - अन्य, **णरा** - लोग, **हट्ठतुट्ठमलंकिया** - हृष्ट, तुष्ट और अलंकृत होकर।

भावार्थ - हे राजन्! उस पुरुष के मर जाने के बाद उस मृत पुरुष के द्वारा अर्जित-उपार्जन किये हुए द्रव्य-धन का और सब प्रकार के रक्षा की हुई स्त्रियों का, दूसरे पुरुष जो कि हृष्ट-पुष्ट और विभूषित हैं वे उपभोग करते हैं अर्थात् जो स्त्रियाँ पुरुषों के बिना और जो पुरुष स्त्रियों के बिना अपना जीवित रहना असंभव कहते थे, वे मृत्यु के थोड़े दिनों के बाद ही एक दूसरे को भूल कर मौज-शौक में लग जाते हैं।

तेणावि जं कयं कम्मं, सुहं वा जइ वा दुहं।
कम्मुणा तेण संजुत्तो, गच्छइ उ परं भवं॥१७॥

कठिन शब्दार्थ - **सुहं** - सुख, **दुहं** - दुःख, **कम्मुणा** - कर्म से, **संजुत्तो** - संयुक्त-साथ, **गच्छइ** - जाता है, **परं भवं** - परभव में।

भावार्थ - उस मृत आत्मा ने भी जो सुख (सुख का कारण रूप शुभकर्म) अथवा दुःख कर्म (दुःख का कारण रूप अशुभकर्म) किया है, उस शुभाशुभ कर्म से संयुक्त-युक्त होकर परभव में चला जाता है। सगे सम्बन्धी, पुत्र, स्त्री एवं धन और परिवार ये सब यहीं रह जाते हैं। केवल जीव के किये हुए शुभाशुभ कर्म ही उसके साथ जाते हैं।

विवेचन - मुनि ने अपना ध्यान सहज भाव से खोला और राजा को अत्यधिक भयभीत हुआ देखकर बोले - राजन्! मैं अपनी ओर से तुम्हें अभयदान देता हूँ परन्तु जिस प्रकार तुम अपने प्राणों के विनाश होने के डर से भयभीत हो रहे हो, इसी प्रकार ये मूक प्राणी भी तो भयभीत हो रहे हैं, अतः जिस प्रकार मैंने तुम्हें अभयदान दिया है, उसी प्रकार तुम भी इन्हें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अभयदान दो। इस थोड़ी सी जिंदगी के लिए, थोड़े से भोगों के लिए क्यों प्राणिवध का महापाप कर रहे हो? यह धन, स्वजन, परिजन या कामभोग आदि कोई भी काल से तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकते, न ही ये तुम्हें सुख दे सकते हैं। एक मात्र अहिंसा, संयम और तप रूप धर्म ही तुम्हारी रक्षा कर सकता है, तुम्हें इहलोक और परलोक में सुख दे सकता है। इन क्रूर कर्मों का कटुफल तुम्हें स्वयं ही भोगना पड़ेगा, अतः कर्मबंधन से बचो।

संजय नृप की विरक्ति और प्रव्रज्या ग्रहण

सोऊण तस्स सो धम्मं, अणगारस्स अंतिए।
महया संवेग-णिव्वेयं, समावण्णो णराहिवो॥१८॥

कठिन शब्दार्थ - **सोऊण** - सुन कर, **धम्मं** - धर्म को, **अणगारस्स** - अनगार के, **अंतिए** - समीप, **महया** - महान्, **संवेग** - संवेग-मोक्षाभिलाषा, **णिव्वेयं** - निर्वेद-संसार से उद्विग्नता, **समावण्णो** - प्राप्त हुआ।

भावार्थ - उन गर्दभाली अनगार के समीप धर्म सुन कर वह नराधिप-राजा महान् संवेग और निर्वेद को प्राप्त हुआ अर्थात् उस योगीश्वर के धर्मोपदेश से तथा पूर्व संस्कारों की प्रबलता से उसी समय संवेग (मोक्ष की तीव्र अभिलाषा) और निर्वेद (संसार एवं काम-भोगों से विरक्ति) के भाव उत्पन्न हो गए।

संजओ चइउं रज्जं, णिक्खंतो जिणसासणे।
गद्दभालिस्स भगवओ, अणगारस्स अंतिए॥१९॥

कठिन शब्दार्थ - **चइउं** - छोड़ कर, **रज्जं** - राज्य, **णिक्खंतो** - निष्क्रमण किया-प्रव्रजित हो गया, **जिणसासणे** - जिन-शासन में, **गद्दभालिस्स** - गर्दभाली, **अंतिए** - पास।

भावार्थ - संजय राजा राज्य छोड़ कर भगवान् गर्दभाली अनगार के पास जिनशासन में दीक्षित हो गया।

विवेचन - संजय राजा पर गर्दभालि मुनि के मौन और तत्पश्चात् उनके युक्तिसंगत करूणामय प्रवचन का अचूक प्रभाव पड़ा, मुनि की प्रत्येक बात उसके गले उतर गई। क्रमशः वह सर्वस्व त्याग कर मुनि बन कर, रत्नत्रय की साधना और तपश्चरण में लीन हो गया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संजय राजर्षि की क्षत्रियराजर्षि से भेंट

चिच्चा रट्ठं पव्वइए, खत्तिए परिभासइ।

जहा ते दीसइ रूवं, पसण्णं ते तहा मणो॥२०॥

कठिन शब्दार्थ - चिच्चा - छोड़ कर, रट्ठं - राष्ट्र-राज्य, **पव्वइए** - दीक्षित हुए, **खत्तिए** - क्षत्रिय, **परिभासइ** - कहा, **दीसइ** - दिखाई देता है, **रूवं** - रूप, **पसण्णं** - प्रसन्न, **मणो** - मन।

भावार्थ - पूर्व संस्कारों की प्रबलता एवं किसी निमित्त विशेष से उनको जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। उसके प्रभाव से वे क्षत्रिय नरेश संसार से विरक्त हो गये और राष्ट्र-राज्य छोड़ कर दीक्षा अंगीकार कर ली। ग्रामानुग्राम विचरते हुए उनकी संजयमुनि से भेंट हुई। संजयमुनि को देख कर, वे कहने लगे कि हे मुनीश्वर! जिस प्रकार आपका रूप प्रसन्न (विकार रहित) दिखाई देता है, उसी प्रकार आपका मन भी निर्मल एवं विकार रहित है।

विवेचन - गर्दभाली मुनीश्वर के शिष्य संजयमुनि, साधु जीवन में दृढ़ तथा गीतार्थ बन कर गुरु आज्ञा से ग्रामानुग्राम विचरते हुए उनकी क्षत्रिय राजर्षि से भेंट हुई। वे क्षत्रियराजर्षि पूर्व जन्म में वैमानिक जाति के देव थे। वहां से चव कर वे क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए। पूर्व संस्कारों की प्रबलता एवं किसी निमित्त विशेष से उनको जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया इस कारण उन्हें वैराग्य उत्पन्न हुआ। वे अपने राज्यादि का परित्याग करके प्रव्रजित हुए। शास्त्रकार ने इनके नाम का निर्देश नहीं किया है। केवल क्षत्रियकुल में जन्म होने के कारण इन्हें 'क्षत्रिय मुनि' कहा गया है।

परिचयात्मक प्रश्न

किं णामे किं गोत्ते, कस्सट्ठाए व माहणे।

कहं पडियरसि बुद्धे, कहं विणीए त्ति वुच्चसि॥२१॥

कठिन शब्दार्थ - **णामे** - नाम, **किं** - क्या, **गोत्ते** - गोत्र, **कस्सट्ठाए** - किसलिए, **माहणे** - माहन, **कहं** - कैसे, **पडियरसि** - परिचर्या (सेवा) करते हो, **विणीए** - विनीत, **वुच्चसि** - कहलाते हो।

भावार्थ - क्षत्रिय मुनि, संजय मुनि से प्रश्न करते हैं कि मुनीश्वर! आपका नाम क्या है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आपका गोत्र कौन-सा है? और किसलिए आप मा हण-माहन बने हैं? आपके गुरु कौन हैं, किस प्रकार आप उन आचार्यादि गुरुजनों की सेवा करते हैं? और किस प्रकार विनयवान् कहलाते हैं।

विवेचन - मन, वचन और काया से किसी भी जीव के मारने के भाव जिसमें नहीं हैं, उसे माहन कहते हैं अर्थात् किसी भी जीव को मत मारो 'मा-मत-हन-मारो' - इस प्रकार जो 'मत मारो, मत मारो' का उपदेश देता है वह 'माहन' कहलाता है। 'माहन' शब्द साधु और श्रावक दोनों अर्थ में आता है। इस गाथा में 'माहन' शब्द 'साधु' अर्थ में आया है।

क्षत्रिय मुनि ने संजयराजर्षि को देख कर उनके ज्ञान की परीक्षा करने हेतु निम्न पाँच परिचयात्मक प्रश्न पूछे - मुने! १-२. तुम्हारा नाम और गोत्र क्या है? ३. किस प्रयोजन से तुम प्रव्रजित हुए हो ४. आचार्यों की परिचर्या कैसे करते हो? ५. तुम विनीत कैसे कहलाते हो?

संजय राजर्षि द्वारा उत्तर

संजओ णाम णामेणं, तहा गोत्तेण गोयमो।

गद्दभाली ममायरिया, विज्जाचरण-पारगा॥२२॥

कठिन शब्दार्थ - ममायरिया - मेरे आचार्य, **विज्जा-चरण-पारगा** - विद्या (ज्ञान) और चरण (चारित्र) में पारंगत।

भावार्थ - संजयमुनि क्षत्रिय मुनि के प्रश्नों का उत्तर देते हैं कि संजय मेरा नाम है, गौतम मेरा गोत्र है और विद्या (ज्ञान) और चारित्र के पारगामी गर्दभाली मेरे आचार्य हैं। ज्ञान और चारित्र की प्राप्ति के लिए मैंने दीक्षा अंगीकार की है, जिसका अंतिम फल मोक्ष है। मैं अपने गुरुजनों की सेवा करता हूँ और उन्हीं का उपदेश सुनने से तथा उसी के अनुसार आचरण करने से मुझे विनय-धर्म की प्राप्ति हुई है।

विवेचन - पूर्व गाथा में पूछे गये पांच प्रश्नों में से दो प्रश्नों का उत्तर तो इस गाथा में स्पष्ट बताया है शेष तीन प्रश्नों का उत्तर उत्तरार्द्ध से इस प्रकार ध्वनित होता है -

१. मेरा नाम संजय है २. मेरा गोत्र गौतम है ३. मुक्ति के लिए ही मुनि बना हूं ४. आचार्य गर्दभालि के आदेशानुसार वर्तन कर मैं गुरुओं की सेवा करता हूं ५. विद्या और चारित्र की विनयाचार पूर्वक ग्रहण-आसेवन शिक्षा लेने से तथा आचार्यों के आदेश का पालन करने से मैं विनीत कहलाता हूं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चार वादों का निरूपण

किरियं अकिरियं विणयं, अण्णाणं च महामुणी।
एएहिं चउहिं ठाणेहिं, मेयण्णे किं पभासइ॥२३॥

कठिन शब्दार्थ - **किरियं** - क्रिया, **अकिरियं** - अक्रिया, **विणयं** - विनय, **अण्णाणं**- अज्ञान, **महामुणी** - महामुनिश्वर, **एएहिं** - इन, **चउहिं** - चार, **ठाणेहिं** - स्थानों (वादों) द्वारा, **मेयण्णे** - मेदज्ञ - कुछ एकान्तवादी तत्त्वज्ञ, **किंपभासइ** - कुत्सित प्ररूपणा करते हैं।

भावार्थ - क्षत्रिय राजर्षि संजय मुनि से कहते हैं कि हे महामुनीश्वर! क्रियावाद, अक्रियावाद विनयवाद और अज्ञानवाद इन चार स्थानों (वादों) द्वारा वादी लोग अपनी-अपनी इच्छानुसार एकान्त पक्ष का प्रतिपादन करते हैं, किन्तु उनका कथन युक्ति-संगत न होने से अयुक्त है।

विवेचन - क्रियावादी लोग आत्मा को सदा क्रियाशील मानते हैं। उनका कथन है कि आत्मा सदा क्रिया करती ही रहती है। अक्रियावादी लोग आत्मा को अक्रिय मानते हैं। विनयवादी लोग केवल विनय से ही मोक्ष मानते हैं। अज्ञानवादी लोग अज्ञान से मोक्ष मानते हैं। ये सब एकान्त पक्ष को लेकर विवाद करते हैं, उनका कथन युक्ति संगत नहीं है।

प्रस्तुत गाथा में भगवान् महावीर स्वामी के समकालीन एकान्तवादियों के द्वारा अभिमत चार वादों का उल्लेख है। सूत्रकृतांग सूत्र में इन चारों के ३६३ भेद बताए गए हैं। यथा - क्रियावादियों के १८०, अक्रियावादियों के ८४, वैनयिकों के ३२ और अज्ञानवादियों के ६७ भेद हैं। ये चारों वाद एकान्त होने के कारण मिथ्यात्वयुक्त हैं। ये दूसरों के विचारों को एकान्त असत्य कहते हैं दूसरी अपेक्षाओं को ठुकरा देना ही इनका कुत्सित भाषण है।

क्षत्रिय मुनि, संजयराजर्षि से कहते हैं इन एकान्तवादी असत्य प्ररूपकों के एकान्तवाद रूप असत्य प्ररूपण को तुम्हें ज्ञ परिज्ञा से जान कर प्रत्याख्यान परिज्ञा से छोड़ देना चाहिए।

इइ पाउकरे बुद्धे, णायए परिणिव्वुए।
विज्जाचरणसंपण्णे, सच्चे सच्चपरक्कमे॥२४॥

कठिन शब्दार्थ - **पाउकरे** - प्रकट किया है, **बुद्धे** - तत्त्ववेत्ता, **णायए** - ज्ञातपुत्र ने, **परिणिव्वुए** - परिनिर्वृत्त - सब प्रकार से परिशांत, **विज्जाचरणसंपण्णे** - विद्या और चरण से सम्पन्न, **सच्चे** - सत्यवादी, **सच्चपरक्कमे** - सत्य में पराक्रम करने वाले।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - क्षायिक ज्ञान और चारित्र से सम्पन्न सत्य बोलने वाले, सत्य में पराक्रम करने वाले एवं कर्म-शत्रुओं का विनाश करने वाले कषायों को शांत करने वाले तत्त्ववेत्ता-केवलज्ञानी, ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने उपरोक्त चारों वादों का कथन किया है।

पाप और धर्म का फल

पडंति णरए घोरे, जे णरा पावकारिणो।
दिव्वं च गइं गच्छंति, चरित्ता धम्ममारियं॥२५॥

कठिन शब्दार्थ - **पडंति** - गिरते हैं, **णरए** - नरक में, **घोरे** - घोर, **जे** - जो, **णरा** - नर, **पावकारिणो** - पाप करते हैं, **दिव्वं** - दिव्य, **गइं** - गति को, **गच्छंति** - प्राप्त करते हैं, **चरित्ता** - आचरण करके, **धम्मं** - धर्म को, **आरियं** - आर्य।

भावार्थ - जो मनुष्य पाप करने वाले हैं अर्थात् असत् प्ररूपणा और हिंसादि पाप-कर्म से प्रवृत्ति करने वाले हैं वे घोर अंधकार वाली भयानक नरक में पड़ते हैं (जाते हैं) और श्रुत चारित्र रूप आर्य धर्म का आचरण करके जीव देवगति को प्राप्त होते हैं, इसलिए पापकर्म का तथा मिथ्यापक्ष का त्याग करके सत्य प्ररूपणा एवं आर्यधर्म का अनुसरण करना चाहिये।

विवेचन - जो मनुष्य पापकर्त्ता है-असत्य प्ररूपणा रूप पाप करते हैं वे भीषण नरक में जाते हैं किंतु जो सत्य प्ररूपणा रूप आर्य-वीतराग प्ररूपित धर्म का आचरण-आराधन करते हैं वे दिव्य-उत्तम गति को प्राप्त करते हैं। यहां असत्य वचन को पाप और सत्य वचन को धर्म समझना चाहिये।

मायाबुइयमेयं तु मुसा भासा णिरत्थिया।
संजममाणोवि अहं, वसामि इरियामि य॥२६॥

कठिन शब्दार्थ - **मायाबुइयं** - मायापूर्वक, **एयं** - यह कथन, **मुसा** - मृषा, **भासा** - भाषण, **णिरत्थिया** - निरर्थक, **संजममाणो** - संयत (निर्वृत) होकर, **वसामि** - रहता हूं, **इरियामि** - चलता हूं।

भावार्थ - क्षत्रिय मुनि संजयमुनि से कहते हैं कि मुने! क्रियावादी आदि लोग, माया पूर्वक बोलते हैं इसलिए उनकी भाषा (कथन) मिथ्या और निरर्थक है। उनके कथन को सुनता हुआ भी मैं, संयम-मार्ग में भली प्रकार स्थित हूँ और यतनापूर्वक गोचरी आदि के लिए जाता हूँ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - क्रियावादी आदि एकान्तवादियों का कथन कपट पूर्ण मिथ्या एवं निरर्थक है अतः इनसे बच कर रहो।

सव्वे ए विइया मज्झं, मिच्छादिट्ठी अणारिया।
विज्जमाणे परे लोए, सम्मं जाणामि अप्पगं॥२७॥

कठिन शब्दार्थ - **विइया** - जान लिये गये हैं, **मज्झं** - मेरे द्वारा, **मिच्छादिट्ठी** - मिथ्यादृष्टि, **अणारिया** - अनार्य, **विज्जमाणे** - विद्यमान होने से, **परे लोए** - परलोक, **अप्पगं** - अपनी आत्मा को।

भावार्थ - ये सब वादी लोग मेरे जाने हुए हैं। ये सब मिथ्यादृष्टि अनार्य हैं। परलोक विद्यमान हैं और इसी से मैं अपनी आत्मा को सम्यक् प्रकार से जानता हूँ।

विवेचन - क्षत्रिय महर्षि के कहने का आशय यह है कि मैं आत्मा को कथञ्चित् (द्रव्य दृष्टि से) नित्य और कथञ्चित् (पर्याय दृष्टि से) अनित्य मानता हूं। परलोक से आया हुआ होने से, परलोक का अस्तित्व होने से मैं अपनी और दूसरों की आत्मा को भलीभांति जानता हूं।

अहमासी महापाणे, जुइमं वरिस सओवमे।
जा सा पाली महापाली, दिव्वा वरिस सओवमा॥२८॥

कठिन शब्दार्थ - **अहं** - मैं, **आसी** - था, **महापाणे** - महाप्राण विमान में, **जुइमं** - द्युतिमान, **वरिस सओवमे** - वर्ष शतोपम आयु वाला, **पाली** - पल्योपम, **महापाली** - सागरोपम, **दिव्वा** - दिव्य।

भावार्थ - क्षत्रिय राजर्षि कहते हैं कि मैं ब्रह्म देवलोक के महाप्राण नामक विमान में द्युति देवों की कान्ति से युक्त देव था और यहाँ की सौ वर्ष आयु के साथ जिसकी उपमा दी जाती है ऐसी देवों की जो पल्योपम और सागरोपम की स्थिति कही जाती है, वैसी वर्ष शतोपमा वाली मेरी आयु थी अर्थात् जैसे इस समय इस लोक में सौ वर्ष की विशिष्ट आयु मानी गई है, उसी प्रकार उस देवलोक में मेरी भी उत्कृष्ट आयु भी अर्थात् मेरी आयु दश सागरोपम परिमाण थी।

विवेचन - क्षत्रियमुनि कहते हैं कि वैमानिक देवों की स्थिति पाली (पल्योपम प्रमाण) और महापाली (सागरोपम प्रमाण) होती है किंतु मैंने ब्रह्मलोक नामक देवलोक के महाप्राण विमान में महापाली (दश सागरोपम की आयु) दिव्य स्थिति का भोग किया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से चुए बंभलोगाओ, माणुसं भवमागए।
अप्पणो य परेसिं च, आउं जाणे जहा तहा॥२९॥

कठिन शब्दार्थ - **चुए** - चव कर, **बंभलोगाओ** - ब्रह्म देवलोक से, **माणुसं** - मनुष्य के, **भवं** - भव में, **आगए** - आया हूं, **अप्पणो** - अपनी, **परेसिं** - दूसरों की, **आउं** - आयु, **जाणे** - जानता हूं, **जहा तहा** - जैसी है वैसी।

भावार्थ - वहाँ की दस सागरोपम की स्थिति भोगने के बाद, ब्रह्म देवलोक से चव कर मैं मनुष्य के भव में आया हूँ और मैं अपनी और दूसरों की आयु को जैसी है वैसी यथार्थ जानता हूँ।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में क्षत्रियमुनि द्वारा जातिस्मरण स्वरूप अतिशय ज्ञान की अभिव्यक्ति की गयी है अर्थात् पूर्व जन्म का ज्ञान प्राप्त हो जाने से मैं सब सत्य-सत्य जानता हूं, विपरीत नहीं।

शुद्ध ज्ञान क्रिया में स्थिर रहने का उपदेश

णाणारुइं च छंदं च, परिवज्जेज्ज संजए।
अणट्ठा जे य सव्वत्था, इइ विज्जामणुसंचरे॥३०॥

कठिन शब्दार्थ - **णाणारुइं** - नाना प्रकार की रुचि, **छंदं** - मनःकल्पित अभिप्रायों का, **परिवज्जेज्ज** - त्याग कर दे, **अणट्ठा** - अनर्थकारी, **सव्वत्था** - सर्वथा, **विज्जां** - जान कर, **अणुसंचरे** - प्रवृत्ति करे।

भावार्थ - क्षत्रिय राजर्षि, संजयमुनि से कहते हैं कि संयत-साधु को चाहिए कि क्रियावादी अक्रियावादी आदि वादियों की नाना प्रकार की रुचि और अपनी बुद्धि से कल्पित भिन्न-भिन्न प्रकार के अभिप्रायों का सर्वथा त्याग कर दे और जो हिंसा झूठ आदि अनर्थकारी पाप कार्य हैं उन सब को सर्वथा एवं सर्वत्र त्याग कर दे और इस प्रकार सम्यग् ज्ञान को अंगीकार करके संयम-मार्ग में प्रवृत्ति करे।

पडिक्कमामि पसिणाणं, परमंतेहिं वा पुणो।
अहो उट्ठिए अहोरायं, इइ विज्जा तवं चरे॥३१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **पडिक्कमामि** - निवृत्त हो गया हूं, **पसिणाणं** - शुभाशुभ सूचक प्रश्नों से, **परमंतेहिं** - परमंत्रों-गृहस्थों की मंत्रणाओं से, **उट्ठिए** - उद्यत, **अहोरायं** - दिन रात।

भावार्थ - क्षत्रिय राजर्षि पुनः कहते हैं कि मैं शुभाशुभ फल सूचक सावद्य प्रश्नों के उत्तर से और गृहस्थ सम्बन्धी सावद्य कार्यों के विचार-विनिमय से निवृत्त हो गया हूँ और रात-दिन धर्म साधना में उद्यत रहता हूँ। जो शुद्ध संयम का पालन करना चाहते हैं, उन मुनियों को भी ऐसा ही करना चाहिए, इस प्रकार जान कर बुद्धिमान् साधु को सदा, तप संयम का आचरण करना चाहिए। 'अहो' यह विस्मयार्थक अव्यय है।

जं च मे पुच्छसि काले, सम्मं सुद्धेण चेयसा।
ताइं पाउकरे बुद्धे, तं णाणं जिणसासणे॥३२॥

कठिन शब्दार्थ - **पुच्छसि** - पूछ रहे हो, **काले** - काल विषयक, **सम्मं** - सम्यक्, **सुद्धेण** - शुद्ध, **चेयसा** - चित्त से, **तं णाणं** - वह ज्ञान, **जिणसासणे** - जिनशासन में।

भावार्थ - हे मुनीश्वर! सम्यक् प्रकार एवं शुद्ध चित्त से यदि तुम मुझ से किसी समय प्रश्न करो तो मैं तुम्हारे प्रश्नों का ठीक उत्तर दे सकता हूँ क्योंकि इस प्रकार का सारा ज्ञान जिन-शासन में विद्यमान है, जो कि सर्वज्ञ भगवान् ने फरमाया है और उन्हीं ज्ञानियों की कृपा से मैं भी बुद्ध हूँ। अतएव तुम्हारे सारे प्रश्नों का उत्तर दे सकता हूँ। जिनशासन में रह कर संयम का पालन करने से तुम भी बुद्ध हो सकते हो।

किरियं च रोयए धीरे, अकिरियं परिवज्जए।
दिट्ठिए दिट्ठिसंपण्णे, धम्मं चरसु दुच्चरं॥३३॥

कठिन शब्दार्थ - **रोयए** - रुचि करता है, **धीरे** - धीर पुरुष, **दिट्ठीए** - सम्यग्दर्शन से, **दिट्ठीसंपण्णे** - दृष्टि संपन्न होकर, **धम्मं** - धर्म का, **चरसु** - आचरण करो, **दुच्चरं** - अतिदुष्कर।

भावार्थ - हे मुने! धीर पुरुषों को चाहिए कि क्रिया अर्थात् आस्तिकता में विश्वास करे और नास्तिकता का त्याग कर दे तथा सम्यग्-दर्शन और सम्यग्ज्ञान से सम्पन्न होकर अति दुष्कर धर्म का आचरण करे। अतः हे मुनीश्वर! तुम भी दृढ़तापूर्वक धर्म का आचरण करो।

विवेचन - प्रस्तुत चार गाथाओं में क्षत्रियराजर्षि ने सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप से भ्रष्ट एवं विरत करने वाले मतों, अभिप्रायों, रुचियों, निमित्त प्रश्नों के ज्ञान तथा गृहस्थ कार्यों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की मंत्रणाओं से, हिंसादि पापजनक विविध प्रवृत्तियों तथा अज्ञान एवं मिथ्यात्व की पोषक क्रियाओं या अक्रियाओं से दूर रहने और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक् तप रूप मोक्षमार्ग में स्थिर रहने का उपदेश दिया है।

धर्म में सुदृढ़ करने के लिए महापुरुषों के उदाहरण

संजयमुनि को संयम में विशेष स्थिर करने के लिए तथा मुमुक्षुजन को धर्म में दृढ़ करने के लिए क्षत्रियराजर्षि कुछ महापुरुषों के उदाहरण देते हैं -

१. भरत चक्रवर्ती

एयं पुण्णपयं सोच्चा, अत्थधम्मोवसोहियं।
भरहो वि भारहं वासं, चिच्चा कामाइ पव्वए॥३४॥

कठिन शब्दार्थ - पुण्णपयं - पुण्यपद-पवित्र उपदेश वचन, **अत्थधम्मोवसोहियं** - अर्थ और धर्म से उपशोभित, **भरहो वि** - भरत चक्रवर्ती भी, **भारहं वासं** - भारत वर्ष को, **चिच्चा** - परित्याग कर, **कामाइं** - कामभोगों को, **पव्वए** - प्रव्रजित हुए

भावार्थ - अर्थ (मोक्ष) और धर्म (श्रुत-चारित्र रूप धर्म) से शोभित उपसेक्त कल्याणकारी उपदेश सुन कर प्रथम चक्रवर्ती भरत महाराजा ने सम्पूर्ण भारतवर्ष का विशाल राज्य और विषय-भोगों को छोड़ कर दीक्षा ली।

विवेचन - अत्थधम्मोवसोहियं - अर्थ और धर्म से युक्त की व्याख्या इस प्रकार है - अर्थ अर्थात् लक्ष्यभूत पदार्थ जिसको प्राप्त करने के लिये संयमाचरण किया जाता है, वह पदार्थ है मोक्ष। धर्म अर्थात् उस मोक्ष रूप अर्थ को प्राप्त करने का उपाय - सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तपरूप मोक्षमार्ग।

प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव के १०० पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र भरत, छह खण्डों को जीत कर इस अवसर्पिणी के प्रथम चक्रवर्ती सम्राट बने। एक बार भरत चक्रवर्ती महान् वैभव से तथा समस्त आभूषणों से शरीर को विभूषित कर आदर्श (स्फटिक रत्न से निर्मित कांच की तरह पारदर्शक) महल में आए। दर्पण के सामने अपने शरीर की शोभा देख रहे थे उस समय शरीर की अनित्यता का चिन्तन करते हुए वह शरीर उन्हें शोभारहित दिखने लगा। इस पर चक्रवर्ती ने चिंतन किया -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अहो! यह शरीर कितना असुंदर है। इसका अपना सौंदर्य तो कुछ भी नहीं है। ऐसे मलमूत्र से भरे घृणित, अपवित्र और असार देह को सुंदर मान कर मूढ़ लोग इसमें आसक्त होकर इस शरीर को वस्त्राभूषण आदि से सुशोभित करके, इसका रक्षण करने तथा इसे उत्तम खानपान से पुष्ट बनाने के लिए अनेक पाप कर्म करते हैं। वास्तव में वस्त्राभूषण आदि या मनोज्ञ खानपान आदि सभी वस्तुएं इस असुंदर शरीर के सम्पर्क से अपवित्र और विनष्ट हो जाती है। परन्तु मोक्ष के साधनभूत चिंतामणि सम इस मनुष्य जन्म को पाकर शरीर के लिए पापकर्म करके मनुष्य जन्म को हार जाना ठीक नहीं है। इस प्रकार शुभ ध्यान करते हुए भरत चक्रवर्ती क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हुए। फिर शीघ्र ही चार घातिकर्मों का क्षय कर केवलज्ञान केवलदर्शन प्राप्त कर लिया। शकेन्द्र ने उन्हें संयमोपकरण दिए। भरत ने मुनिवेश धारण किया। अपने मस्तक का पंचमुष्टि लोच किया। भरत को मुनिवेश में देख कर १० हजार अन्य राजाओं ने दीक्षा ली। एक लाख पूर्व अन्तर्मुहूर्त्त कम तक केवलिपर्याय का पालन कर भरत केवली सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए।

२. सगर चक्रवर्ती

सगरो वि सागरंतं, भरहवासं णराहिवो।
इस्सरियं केवलं हिच्चा, दयाइ परिणिव्वुडे॥३५॥

कठिन शब्दार्थ - **सगरो वि** - सगर नाम के, **णराहिवो** - नराधिप, **सागरंतं** - समुद्र पर्यन्त, **इस्सरियं** - ऐश्वर्य को, **केवलं** - संपूर्ण, **हिच्चा** - छोड़कर, **दयाए** - दया अर्थात् संयम की साधना से, **परिणिव्वुडे** - परिनिर्वृत अर्थात् मोक्ष प्राप्त किया।

भावार्थ - सगर नाम के नराधिप, दूसरे चक्रवर्ती ने भी समुद्रपर्यंत भारतवर्ष तथा सम्पूर्ण ऐश्वर्य को छोड़ कर दीक्षा अंगीकार की और तप-संयम का आराधन कर परिनिर्वृत अर्थात् मोक्ष प्राप्त किया।

विवेचन - अयोध्या नगरी के जितशत्रु राजा की विजया रानी ने एक पुत्र को जन्म दिया जो अजितनाथ नामक दूसरे तीर्थंकर हुए। जितशत्रु राजा के छोटे भाई सुमित्र नामक युवराज की पत्नी यशोमती से सगर नामक द्वितीय चक्रवर्ती का जन्म हुआ। जितशत्रु राजा ने अपना राज्य अजितकुमार को सौंपा और सगर को युवराज पद दिया। जितशत्रु ने अपने भाई सुमित्र सहित

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दीक्षा अंगीकार की। अजितकुमार ने भी तीर्थ प्रवर्तन के समय अपना राज्य सगर को सौंप कर स्वयं ने दीक्षा ग्रहण की। सगर चक्रवर्ती बना। उसके साठ हजार पुत्र हुए। अपने पुत्रों की मृत्यु की घटना सुन कर सगर चक्रवर्ती को वैराग्य हुआ। उसने स्वयं भगवान् अजितनाथ के पास दीक्षा ग्रहण की। तप संयम की आराधना कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए।

३. मघवा चक्रवर्ती

चइत्ता भारहं वासं, चक्कवट्टी महिड्ढिओ।
पव्वज्जमब्भुवगओ, मघवं णाम महाजसो॥३६॥

कठिन शब्दार्थ - **चक्कवट्टी** - चक्रवर्ती, **महिड्ढिओ** - महान् ऋद्धि सम्पन्न, **पव्वज्जमब्भुवगओ** - प्रव्रज्या अंगीकार की, **महाजसो** - महान् यशस्वी।

भावार्थ - महायशस्वी और महासमृद्धिशाली मघवा नाम के तीसरे चक्रवर्ती ने भारतवर्ष के राज्य को छोड़ कर प्रव्रज्या-दीक्षा अंगीकार की और तप संयम का पालन करके मोक्ष गये।

विवेचन - भरत क्षेत्र की श्रावस्ती नगरी में समुद्र विजय राजा की भद्रादेवी की कुक्षि से मघवा का जन्म हुआ। षट् खण्ड साध कर चक्रवर्ती बने। संसार से विरक्ति हुई। पुत्र को राज्य सौंप कर दीक्षा ली और मोक्ष में गये।

४. सनत्कुमार चक्रवर्ती

सणंकुमारो मणुस्सिंदो, चक्कवट्टी महिड्ढिओ।
पुत्तं रज्जे ठवेऊणं, सो वि राया तवं चरे॥३७॥

कठिन शब्दार्थ - **सणंकुमारो** - सनत्कुमार, **मणुस्सिंदो** - मनुष्यों में इन्द्र के समान **पुत्तं** - पुत्र को, **रज्जे** - राज्य पर, **ठवेऊणं** - स्थापित करके, **तवं** - तप का, **चरे** - आचरण किया।

भावार्थ - मनुष्यों में इन्द्र के समान महा ऋद्धिशाली एवं रूप-सम्पन्न, सनत्कुमार नामक चौथे चक्रवर्ती राजा (नरेन्द्र) ने भी पुत्र को, राज्य-सिंहासन पर स्थापित कर संयम युक्त तप का आचरण किया और मोक्ष प्राप्त किया।

विवेचन - कुरु जांगल देश के हस्तिनापुर नगर में अश्वसेन राजा की रानी सहदेवी की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कुक्षि से सनत्कुमार का जन्म हुआ। पिता ने शुभ मुहूर्त में सनत्कुमार का राज्याभिषेक किया। अश्वसेन और सहदेवी ने दीक्षा अंगीकार कर मनुष्य जन्म सार्थक किया। कुछ समय बाद सनत्कुमार चक्रवर्ती हो गए, उन्होंने छह खंडों पर अपनी विजय पताका फहराई। सनत्कुमार चक्रवर्ती बहुत रूपवान् थे। उनके रूप की प्रशंसा बहुत दूर-दूर तक फैल चुकी थी। एक दिन प्रातःकाल ही स्वर्ग से चल कर दो देव ब्राह्मण का रूप बना कर उनके रूप को देखने के लिए आए। सनत्कुमार चक्रवर्ती उस समय स्नानार्थ स्नान घर में जा रहे थे, उन्हें देख कर ब्राह्मणों ने उसके रूप की बहुत प्रशंसा की। अपने रूप की प्रशंसा सुन कर सनत्कुमार चक्रवर्ती को बड़ा अभिमान हुआ। उन्होंने ब्राह्मणों से कहा - 'आप लोग अभी मेरे रूप को क्या देख रहे हो, जब मैं स्नानादि कर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर राजसभा में सिंहासन पर बैठूँ तब आप मेरे रूप को देखना।' स्नानादि से निवृत्त होकर जब सनत्कुमार चक्रवर्ती सिंहासन पर जाकर बैठे तब उन ब्राह्मणों को राजसभा में उपस्थित किया गया। ब्राह्मणों ने कहा - 'राजन्! आपका रूप पहले जैसा नहीं रहा।' राजा ने कहा - 'यह कैसे?' ब्राह्मणों ने कहा - 'आप अपने मुंह को देखें, उसके अन्दर क्या हो रहा है?' राजा ने थूंक कर देखा तो उसके अन्दर एक दो नहीं बल्कि सैकड़ों कीड़े किलबिलाहट कर रहे थे और उससे भयंकर दुर्गन्ध आ रही थी। चक्रवर्ती का रूप सम्बन्धी अभिमान चूर हो गया। उन्हें शरीर की अशुचि का भान हो गया। वे विचारने लगे 'यह शरीर घृणित एवं अशुचिमय पदार्थों से उत्पन्न हुआ है और स्वयं भी अशुचि का भण्डार है।' इस प्रकार उनके हृदय में अशुचि भावना प्रबल हो उठी। संसार से उन्हें वैराग्य हो गया। छह खण्ड का राजपाट छोड़ कर उन्होंने दीक्षा अंगीकार कर ली। उत्कृष्ट तप का आराधन कर इस अशुचिमय शरीर को छोड़ कर सिद्ध पद प्राप्त किया।

इस अवसर्पिणी काल में बारह चक्रवर्ती हुए हैं। उनमें से दस चक्रवर्ती मोक्ष गये हैं। टीकाकार लिखते हैं कि - 'तीसरे चक्रवर्ती मघवा और चौथे चक्रवर्ती सनत्कुमार ये दोनों तीसरे देवलोक में गये हैं।' किन्तु टीकाकार का यह लिखना आगम सम्मत मालूम नहीं होता है। क्योंकि आठवें चक्रवर्ती सुभूम और बारहवें चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त ये दोनों चक्रवर्ती काल करके सातवीं नरक के अप्रतिष्ठान नामक नरक में तेतीस सागरोपम की स्थिति में गये हैं, ऐसा वर्णन ठाणाङ्ग सूत्र के दूसरे ठाणे में है। यदि मघवा और सनत्कुमार ये दो चक्रवर्ती देवलोक में गये होते तो ठाणाङ्ग के दूसरे ठाणे में उनका भी वर्णन कर देते, किन्तु वैसा नहीं किया है। ठाणाङ्ग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र के चौथे ठाणे में चार प्रकार की अन्तक्रिया का वर्णन किया है। अन्तक्रिया का अर्थ है - सब कर्मों का अन्त कर उसी भव में मोक्ष प्राप्त करना। वहाँ अन्तक्रिया करने वाले चार महापुरुषों के नाम दिये हैं - यथा - १ भरत चक्रवर्ती २. गजसुकुमाल ३. सनत्कुमार चक्रवर्ती और ४. मरुदेवी माता।

इससे स्पष्ट होता है कि - दस चक्रवर्ती मोक्ष में गये हैं।

५ शांतिनाथ

चइत्ता भारहं वासं, चक्कवट्टी महिड्ढिओ।
संती संतिकरे लोए, पत्तो गइमणुत्तरं॥३८॥

कठिन शब्दार्थ - संती - शांतिनाथ, **संतिकरे** - शांति करने वाले, **लोए** - लोक में, **पत्तो** - प्राप्त हुए, **गइं** - गति को, **अणुत्तरं** - अनुत्तर-प्रधान।

भावार्थ - महासमृद्धिशाली लोक में शान्ति करके वाले शान्तिनाथ चक्रवर्ती ने भारत वर्ष के राज्य का त्याग करके दीक्षा अंगीकार की और फिर वे अनुत्तर गति-प्रधान गति (मोक्ष) प्राप्त हुए। ये शान्तिनाथ भगवान् इस वर्तमान अवसर्पिणी में सोलहवें तीर्थंकर और पांचवें चक्रवर्ती थे।

विवेचन - शरण में आए कबूतर को अभयदान देने के लिए अपने जीवन को न्यौछावर करने वाले मेघरथ राजा के जीव ने शुद्ध चारित्र की आराधना की और समाधि मरण पूर्वक काल करके सर्वार्थसिद्ध विमान में देवरूप से उत्पन्न हुए। वहां से च्यव कर मेघरथ का जीव जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र में हस्तिनापुर नगर के राजा विश्वसेन की पत्नी अचिरा रानी की कुक्षि से पुत्र रूप में उत्पन्न हुए। जब ये गर्भ में थे तब सभी प्रदेशों में महामारी फैली हुई थी, माता द्वारा शांत दृष्टि से देखने से महामारी शांत हो गई। इसलिए इनका नाम 'शांतिनाथ' रखा गया। यौवनवय में शांतिनाथ ने चक्रवर्ती पदवी पाई। षट् खण्ड पर राज्य किया। सभी कामभोगों का त्याग कर दीक्षा ली। तीर्थ की स्थापना की और कई जीवों को प्रतिबोध दे कर केवलज्ञान पाया। २५ हजार वर्षों तक साधु पर्याय का पालन कर अंत में सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६. कुंथुनाथ

इक्खागरायवसभो, कुंथू णाम णरीसरो।
विक्खायकित्ती भगवं, पत्तो गइमणुत्तरं॥३९॥

कठिन शब्दार्थ - **इक्खागरायवसभो** - इक्ष्वाकु कुल के राजाओं में श्रेष्ठ, **विक्खायकित्ती** - विख्यात - विशद कीर्तिवाला।

भावार्थ - इक्ष्वाकु वंश के राजाओं में श्रेष्ठ, विख्यात कीर्ति वाले भगवान् कुंथु नामक नरेश्वर-चक्रवर्ती दीक्षा अंगीकार करके प्रधान गति-मोक्ष को प्राप्त हुए। ये कुन्थुनाथ भगवान् इस वर्तमान अवसर्पिणी काल में सतरहवें तीर्थंकर और छठे चक्रवर्ती हुए थे।

विवेचन - हस्तिनापुर के राजा सूर की रानी श्रीदेवी की कुक्षि से कुंथुनाथ का जन्म हुआ। योग्यवय में पिता ने कुंथुनाथ को राज्य सौंपकर दीक्षा ली। तत्पश्चात् कुंथुनाथ छह खण्डों के अधिपति चक्रवर्ती सम्राट बने। दीक्षा लेकर केवलज्ञान, केवलदर्शन प्राप्त कर तीर्थ स्थापना की। अनेक लोगों को प्रतिबोधित करते हुए सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए।

७. अरनाथ

सागरंतं चइत्ता णं, भरहं णरवरीसरो।
अरो य अरयं पत्तो, पत्तो गइमणुत्तरं॥४०॥

कठिन शब्दार्थ - **अरो** - अरनाथ ने, **अरयं पत्तो** - अरजस्कता प्राप्त करके, **णरवरीसरो**-नरेश्वरों में श्रेष्ठ।

भावार्थ - सागरपर्यंत भारतवर्ष का राज्य छोड़ कर अर नामक नरवरेश्वर - चक्रवर्ती कर्मरज के अभाव को प्राप्त हुए और सर्वश्रेष्ठ गति (मोक्ष) प्राप्त हुए। ये अरनाथ भगवान् इस वर्तमान अवसर्पिणी काल में अठारहवें तीर्थंकर तथा सातवें चक्रवर्ती हुए हैं।

विवेचन - हस्तिनापुर के सुदर्शन राजा की श्रीदेवी रानी की कुक्षि से अरनाथ का पुत्र रूप में जन्म हुआ। पिता ने योग्य वय में अरनाथ को राज्य सौंपा। कालान्तर में अरनाथ चक्रवर्ती बने। तत्पश्चात् दीक्षा ग्रहण की एवं तीर्थंकर पद प्राप्त किया और अंत में सभी कर्मों का क्षय कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

८. महापद्म चक्रवर्ती

चइत्ता भारहं वासं, चक्कवट्टी महिड्ढिओ।
चइत्ता उत्तमे भोए, महापउमे तवं चरे॥४१॥

कठिन शब्दार्थ - **उत्तमे भोए** - उत्तम भोगों को, **महापउमे** - महापद्म, **तवं चरे** - तपाचरण किया।

भावार्थ - महा समृद्धिशाली महापद्म नाम के नौवें चक्रवर्ती ने भारत वर्ष के राज्य को छोड़ कर तथा उत्तम काम-भोगों को छोड़ कर तप-संयम अंगीकार कर आत्म-कल्याण किया।

विवेचन - हस्तिनापुर के महाप्रतापी राजा पद्मोत्तर के विष्णुकुमार और महापद्म नामक दो पुत्र थे। जब राजा पद्मोत्तर ने संयम अंगीकार कर आत्मकल्याण का निश्चय किया और बड़े पुत्र विष्णुकुमार को युवराज बनाना चाहा तो विष्णुकुमार ने छोटे भाई महापद्म को युवराज बनाने एवं स्वयं दीक्षित होने की भावना प्रकट की। पद्मोत्तर एवं विष्णुकुमार ने प्रव्रज्या ली। महापद्म राजा बना। संपूर्ण भरत क्षेत्र पर एक छत्र राज्य कर महापद्म ने चक्रवर्तीपन भोगा। न्याय नीति पूर्वक प्रजा का पालन करते हुए श्रमण दीक्षा अंगीकार की और तप संयम की साधना कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए।

९. हरिषेण चक्रवर्ती

एगच्छत्तं पसाहित्ता, महिं माण णिसूद(र)णो।
हरिसेणो मणुस्सिंदो, पत्तो गइमणुत्तरं॥४२॥

कठिन शब्दार्थ - **एगच्छत्तं** - एक छत्र, **पसाहित्ता** - शासन करके, **महिं** - पृथ्वी का, **माणणिसूद(र)णो** - शत्रुओं का मान मर्दन करने वाले, **हरिसेणो** - हरिषेण, **मणुस्सिंदो** - मनुष्येन्द्र।

भावार्थ - मनुष्यों में इन्द्र के समान हरिषेण नाम के दसवें चक्रवर्ती ने शत्रुओं के मान का मर्दन करके पृथ्वी पर एक छत्र राज्य स्थापित किया। इसके बाद राज्य-वैभव का त्याग करके तप-संयम का आराधन करके अनुत्तर-प्रधान गति मोक्ष को प्राप्त किया।

विवेचन - काम्पिल्य नगर में महाहरि राजा की 'मेरा' देवी रानी की कुक्षि से हरिषेण का जन्म हुआ। यौवनवय प्राप्त होने पर पिता ने राज्य सौंपा। छह खण्ड जीत कर चक्रवर्ती

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पद पाया। संसार से विरक्त होकर दीक्षा ली। अंत में सर्व कर्मों का क्षय कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए।

१०. जय चक्रवर्ती

अण्णिओ रायसहस्सेहिं, सुपरिच्चाई दमं चरे।
जय णामो जिणक्खायं, पत्तो गइमणुत्तरं॥४३॥

कठिन शब्दार्थ - **अण्णिओ** - युक्त हो कर, **रायसहस्सेहिं** - हजार राजाओं से, **सुपरिच्चाई** - श्रेष्ठ त्यागी, **दमं** - दम (संयम) का, **चरे** - आचरण किया, **जयणामो** - जय नामक, **जिणक्खायं** - जिनभाषित।

भावार्थ - हजारों राजाओं के साथ जय नाम के ग्यारहवें चक्रवर्ती ने राज्य-वैभव और काम-भोगों का त्याग करके जिनेन्द्र देव द्वारा कहे हुए तप-संयम एवं श्रुत-चारित्र धर्म का सेवन किया और प्रधान गति-मोक्ष को प्राप्त किया।

विवेचन - राजगृह नगर के समुद्रविजय राजा की वप्रा रानी की कुक्षि से जय नामक चक्रवर्ती का जन्म हुआ। कालान्तर में चौदह रत्न उत्पन्न हुए फिर षट्खण्ड साध कर उन्होंने चक्रवर्ती पद पाया। संसार से विरक्त होकर दीक्षा ग्रहण की तथा रत्नत्रय की सम्यक् साधना कर सर्व कर्मों का क्षय कर सिद्धि प्राप्त की।

उपरोक्त दस चक्रवर्ती मोक्ष में गये हैं। आठवां चक्रवर्ती सुभूम और बारहवां चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त - इन दोनों ने दीक्षा नहीं ली। दोनों मरकर सातवीं नरक में उत्पन्न हुए।

११. दशार्णभद्र राजा

दसण्णरज्जं मुदियं, चइत्ता णं मुणी चरे।
दसण्णभद्दो णिक्खंतो, सक्खं सक्केण चोइओ॥४४॥

कठिन शब्दार्थ - **दसण्णरज्जं** - दशार्ण देश का राज्य, **मुइयं** - प्रमुदित, **दसण्णभद्दो** - दशार्णभद्र राजा, **णिक्खंतो** - प्रव्रज्या ग्रहण की, **सक्खं** - साक्षात्, **सक्केण** - शक्रेन्द्र द्वारा, **चोइओ** - प्रेरित होकर।

भावार्थ - साक्षात् शक्रेन्द्र से, प्रेरित किया हुआ दशार्णभद्र राजा उपद्रव रहित एवं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समृद्धशाली दशार्ण देश का राज्य, छोड़ कर निकला तथा मुनि होकर तप-संयम का पालन करके मोक्ष प्राप्त किया।

विवेचन - दशार्णदेश के राजा दशार्णभद्र को ऐसा विचार हुआ कि - मैं भगवान् महावीर स्वामी का परम भक्त हूं अतः ऐसी अद्भूत ऋद्धि एवं वैभव के साथ भगवान् के दर्शन करने जाऊँ जैसा आज तक कोई नहीं गया हो। ऐसा सोचकर दशार्णभद्र राजा वस्त्राभूषणों से पूर्णतया अलंकृत होकर सपरिवार चतुरंगिनी सेना एवं नागरिकजनों सहित सुसज्जित हस्ती पर आरूढ़ होकर ठाट बाट के साथ भगवान् की सेवा में जाने के लिए रवाना हुआ।

दशार्णभद्र राजा की सवारी ज्योंही भगवान् के समवसरण के निकट पहुँच रही थी त्योंही इन्द्र ने अवधिज्ञान से दशार्णभद्र के अहंकार युक्त विचारों को जाना और निर्णय किया कि राजा के वैभवमद को उतारना चाहिए जिससे यह प्रतिबोध पा सके। ऐसा सोच कर इन्द्र अपनी वैक्रिय शक्ति से ऐरावण हाथी पर बैठ कर देव-देवांगनाओं के साथ कई गुना अधिक वैभव समृद्धि के साथ भगवान् के समीप आकर प्रदक्षिणा पूर्वक वंदना करने लगा। इन्द्र का अपार वैभव देखकर दशार्णभद्र का गर्व चूर-चूर हो गया।

दशार्णभद्र राजा ने सोचा - "भौतिक वैभव में तो मैं इन्द्र की बराबरी नहीं कर सकता हूं किंतु यदि साधु बन कर उत्कृष्ट धर्माचरण करूं तो आध्यात्मिक वैभव में इन्द्र मेरी बराबरी नहीं कर सकेगा। ऐसा करने पर ही मेरी विजय हो सकेगी।"

इस प्रकार संवेग भावना से प्रतिबुद्ध हो राजा दशार्णभद्र ने भगवान् के चरणों में दीक्षा अंगीकार की। देवराज शक्र ने मुनि दशार्णभद्र को वंदन करते हुए कहा - आप भौतिक समृद्धि का त्याग कर और श्रमणत्व स्वीकार कर विजयी बने हैं। पहले अभिमानग्रस्त होकर आपने भगवान् को द्रव्य वंदन किया है अब प्रव्रज्या ग्रहण करके वास्तव में आपने प्रभु को भाव वंदन किया है। अतः आप महान् हैं। अब मैं आपकी चरण रज की भी तुलना नहीं कर सकता हूं।

इस प्रकार दशार्णभद्र मुनि की प्रशंसा करते हुए शक्रेन्द्र स्वस्थान को लौट गया।

१२. नमिराजर्षि

णमी णमेइ अप्पाणं, सक्खं सक्केण चोइओ।
चइऊण गेहं वइदेही, सामण्णे पज्जुवट्ठिओ॥४५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **णमी** - नमि राजा, **णमेइ** - झुका लिया, **अप्पाणं** - आत्मा को, **चइऊण** - छोड़ कर, **गेहं** - राजभवन को, **वइदेही** - विदेह के राजा, **सामण्णे** - श्रमण धर्म में, **पज्जुवट्ठिओ** - भलीभांति स्थिर किया।

भावार्थ - साक्षात् शक्रेन्द्र से प्रेरित हुए नमिराजा ने अपनी आत्मा को नम्र बनाया-विनीत बनाया तथा घर और विदेह देश के स्वामी राज्य को छोड़ कर संयम अंगीकार किया और मोक्ष को प्राप्त किया।

विवेचन - नमिराजर्षि का विस्तृत वर्णन उत्तराध्ययन सूत्र के 'नमिप्रव्रज्या' नामक नौवें अध्ययन में किया जा चुका है।

१३-१५ करकण्डू आदि प्रत्येक बुद्ध

करकंडू कलिंगेसु, पंचालेसु य दुम्मुहो।
णमीराया विदेहेसु, गंधारेसु य णग्गई॥४६॥

कठिन शब्दार्थ - **करकंडू** - करकण्डु राजा, **कलिंगेसु** - कलिंग में, **पंचालेसु** - पांचाल में, **दुम्मुहो** - द्विमुख, **णमीराया** - नमिराज, **विदेहेसु** - विदेह में, **गंधारेसु** - गान्धार देश में, **णग्गई** - नग्गति राजा।

भावार्थ - कलिंग देश में करकंडू राजा और पंचाल देश में द्विमुख राजा, विदेह देश में नमिराजा और गान्धार देश में नग्गति राजा हुआ। इन सब राजाओं ने राज्य-वैभव छोड़ कर दीक्षा ली और संयम का पालन कर मोक्ष प्राप्त किया।

एए णरिंदवसभा, णिक्खंता जिणसासणे।
पुत्ते रज्जे ठवेऊणं, सामण्णे पज्जुवट्ठिया॥४७॥

कठिन शब्दार्थ - **णरिंदवसभा** - राजाओं में वृषभ के समान श्रेष्ठ, **एए** - ये, **णिक्खंता** - प्रव्रजित हुए, **जिणसासणे** - जिनशासन में, **पुत्ते** - पुत्र को, **रज्जे** - राज्य में, **ठवित्ताणं** - स्थापित करके, **सामण्णे** - श्रमण धर्म में, **पज्जुवट्ठिया** - सम्यक् प्रकार से स्थिर हो गये।

भावार्थ - राजाओं में वृषभ के समान श्रेष्ठ ये सभी राजा अपना राज्य पुत्रों को सौंप कर जिन-शासन में दीक्षित हुए और श्रमण वृत्ति का सम्यक् पालन कर के मोक्ष को प्राप्त हुए।

विवेचन - राजाओं में प्रमुख कलिंगदेश में करकण्डु, पांचाल देश में द्विमुख, विदेह में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नमिराज और गांधार में नग्गति राजा हुए। इन चारों राजाओं ने किसी निमित्त से बोध पा कर संसार से विरक्ति पायी और प्रत्येक बुद्ध कहलाए। चारों ने दीक्षा ली और एक ही समय में सिद्ध हुए। इसमें से नमिराजर्षि का वर्णन तो पूर्व की गाथा में आ चुका है। शेष तीन की कथा नमि प्रव्रज्या अध्ययन की बृहद् वृत्ति में मिलती है। तदनुसार करकण्डू राजा एक बैल (सांड) की अवस्था देखकर, द्विमुख राजा इन्द्रध्वज को देखकर और नग्गति राजा आम्रवृक्ष को देखकर संसार से विरक्त हुए। इस प्रकार ये चारों ही प्रत्येक बुद्ध महाशुक्र नामक सातवें देवलोक में १७ सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति वाले देव हुए। वहां से च्यव कर एक समय में ही मुनि दीक्षा ली और एक ही साथ मोक्ष में गये (उत्तराध्ययन सूत्र की प्रियदर्शिनी टीका भा. ३ पृ. ३१० से ३९६ के अनुसार)

१६. उदायन नृप

सोवीरराय-वसभो, चइत्ताणं मुणी चरे।
उदायणो पव्वइओ, पत्तो गइमणुत्तरं॥४८॥

कठिन शब्दार्थ - सोवीरराय वसभो - सौवीर राजाओं में वृषभ के समान महान्, **उदायणो** - उदायन, **मुणी चरे** - मुनि धर्म का आचरण किया।

भावार्थ - सौवीर देश के राजाओं में श्रेष्ठ, उदायन राजा ने राज्य-वैभव छोड़ कर, दीक्षा ग्रहण की और मुनि होकर संयम का सम्यक् पालन किया जिससे प्रधान गति (मोक्ष) को प्राप्त किया।

विवेचन - उदायन, भरत क्षेत्र के सौवीर देश का प्रमुख राजा था। वीतभय नगर उसके राज्य की राजधानी थी। वह सिन्धु-सौवीर आदि १६ जनपदों का तथा वीतभय आदि ३६३ नगरों का अधिपति और दस मुकुट बद्ध राजाओं का अधीश्वर था।

उदायन की रानी प्रभावती समाधि भावों में काल कर देवलोक में उत्पन्न हुई। प्रभावती ने देवरूप में आकर राजा उदायन को प्रतिबोध दिया जिससे राजा ने जैन धर्म और श्रावक के व्रत ग्रहण किये।

एक दिन उदायन राजा पौषधशाला में पौषधव्रत में थे। पिछली रात्रि उनके मन में यह शुभ विचार उत्पन्न हुआ कि अगर भगवान् महावीर स्वामी यहां पधारे तो मैं उनके पास दीक्षा ग्रहण करूं। सर्वज्ञ सर्वदर्शी प्रभु ने उदायन के विचार को जाना और कौशाम्बी से विहार कर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वीतभय नगर के मृगवन में पधारे। राजा दर्शन, वंदन और धर्मश्रवण करने भगवान् की सेवा में पहुँचा। धर्मोपदेश सुनकर संसार से विरक्त हो गया और भगवान् के पास प्रव्रजित होने की भावना व्यक्त की। भगवान् ने फरमाया - **'अहासुहं देवाणुप्पिया!'** राजप्रासाद में लौट कर सोचा कि 'यह राज्य किसको सौंपू?' उन्हें विचार आया कि 'यदि मैं अपने पुत्र अभिचि कुमार को यह राज्य सौंपूंगा तो वह मनुष्य संबंधी कामभोगों तथा राज्य में आसक्त हो अनंतकाल तक संसार में परिभ्रमण करता रहेगा। अतः अच्छा यही होगा कि मैं अपने भाणेज केशीकुमार को यह राज्य सौपूं।' केशीकुमार को राज्य सौंपकर राजा उदायन दीक्षित हो गये। तप संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए उन्हें केवलज्ञान हो गया और अंत में सभी कर्मों को क्षय कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो गये।

१७ काशीराज नन्दन

तहेव कासीराया वि, सेओ सच्च-परक्कमे।
काम-भोगे परिच्चज्ज, पहणे कम्म-महावणं॥४९॥

कठिन शब्दार्थ - **कासीराया** - काशीराज, **सेओ-सच्च-परक्कमे** - श्रेय और सत्य में पराक्रमी, **पहणे** - नष्ट कर डाला, **कम्म-महावणं** - कर्म रूपी महावन को।

भावार्थ - इसी प्रकार काशी नरेश ने अर्थात् नन्दन नाम के सातवें बलदेव ने भी काम-भोगों का त्याग करके दीक्षा अंगीकार की और श्रेष्ठ सत्य एवं संयम में पराक्रम कर के तपरूपी अग्नि के द्वारा कर्मरूपी महावन को जला कर भस्म कर डाला और मोक्ष प्राप्त किया।

विवेचन - वाराणसी के अग्निशिख राजा की रानी जयंती की कुक्षि से नन्दन नामक सातवें बलदेव का जन्म हुआ। उसका छोटा भाई, शेषवती रानी का आत्मज 'दत्त' नामक वासुदेव हुआ। दत्त ने अपने भाई नन्दन की सहायता से अर्द्ध भरत क्षेत्र को जीता और राज्यलक्ष्मी का उपभोग किया। वासुदेव दत्त मर कर पांचवीं नरक में गया जबकि नंदन ने संसार से विरक्त हो कर प्रव्रज्या ग्रहण की। ६५००० वर्ष की सर्व आयुष्य भोग कर मोक्ष पधारे।

१८. विजय राजा

तहेव विजओ राया, अणट्टाकित्ति पव्वए।
रज्जं तु गुणसमिद्धं, पयहित्तु महाजसो॥५०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **विजओ राया** - विजय राजा, **अणट्ठाकित्ति** - अनष्ट कीर्ति:- अविनाशी-अमर कीर्ति वाला, **महाजसो** - महायशस्वी, गुणसमिद्धं - गुण समृद्ध, **पयहित्तु** - छोड़ कर।

भावार्थ - इसी प्रकार आनष्टा अकीर्ति - जिसकी अकीर्ति सब तरफ से नष्ट हो चुकी है अतएव निर्मल कीर्ति वाले महायशस्वी दूसरे बलदेव, विजय नामक राजा ने गुणसमृद्ध-महा ऋद्धिशाली, राज्य को छोड़ कर दीक्षा ली और मोक्ष प्राप्त किया।

विवेचन - द्वारावती के ब्रह्मराज की रानी सुभद्रा की कुक्षि से विजय नामक दूसरे बलदेव का जन्म हुआ। छोटे भाई द्विपृष्ठ वासुदेव ने विजय की सहायता से तीन खण्ड का राज्य जीता। ७२ लाख की आयु पूर्ण करने पर जब द्विपृष्ठ की मृत्यु हुई तब विजय बलदेव ने भागवती दीक्षा अंगीकार की, केवलज्ञान प्राप्त किया और ७५ लाख वर्ष का आयुष्य पूर्ण कर मोक्ष प्राप्त किया।

११. महाबल राजर्षि

तहेवुग्गं तवं किच्चा, अव्वक्खित्तेण चेयसा।
महब्बलो रायरिसी, आदाय सिरसा सिरिं॥५१॥

कठिन शब्दार्थ - **तहेव** - इसी प्रकार, उग्गं - उग्र, तवं - तप, **किच्चा** - करके, **अव्वक्खित्तेण** - अव्याक्षिप्त-अव्यग्र-एकाग्र, **चेयसा** - चित्त से, **महब्बलो**- महाबल, **रायरिसी**- राजर्षि, **आदाय** - ग्रहण करके, **सिरसा** - मस्तक से, सिर देकर, **सिरिं** - श्री-मोक्ष लक्ष्मी को, चारित्र रूपी लक्ष्मी को।

भावार्थ - इसी प्रकार महाबल नाम के राजर्षि ने एकाग्र चित्त से उग्र तप करके शिर से अर्थात् अपना मस्तक देकर-अपने शरीर की उपेक्षा की और सर्वश्रेष्ठ केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी को प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त किया अथवा सम्पूर्ण लोक के मस्तक पर स्थित मोक्षश्री को प्राप्त किया।

विवेचन - यहाँ पर 'महाबल मलया चारित्र' वाले महाबल समझना चाहिए। महाबल मलया चारित्र की चौपाई वाली पुस्तक की प्रस्तावना में इस गाथा को उद्धृत किया गया है। ये महाबल उसी भव में संयम अंगीकार करके मोक्ष में गए हैं। ऐसा कथा में वर्णन आता है।

नेमिचन्द्रीया लघुवृत्ति में बताया है - महाबल संबंधी - एष व्याख्याप्रज्ञप्ति भणितो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महाबलः परिकथितः। यदि वाऽन्यः कोऽपि विदितः समयज्ञानां ततः स एवात्र वाच्य इति सप्तदश (३५-५१) सूत्रार्थः॥

अर्थ - महाबल संबंधी कथानक भगवती सूत्र में आये हुए महाबल को समझना। अथवा बहुश्रुतों को ज्ञात कोई अन्य महाबल को यहाँ पर समझना चाहिए।

भगवती सूत्र में वर्णित महाबल के लिए देवगति में जाना बताया है। किन्तु उत्तराध्ययन की चूर्णि आदि में इस अध्ययन में वर्णित सभी आत्माओं का तद्भवमोक्षगामी होना बताया है। अतः यहाँ पर भगवती सूत्र से भिन्न अन्य कोई महाबल होने चाहिए। 'महाबल मलया चारित्र' वाले महाबल को यहाँ पर मानने में कोई बाधा नहीं आती है।

उपदेश का सार

कहं धीरो अहेउहिं, उम्मत्तो व्व महिं चरे।
एए विसेसमादाय, सूरा दढपरक्कमा॥५२॥

कठिन शब्दार्थ - **कहं** - कैसे, **धीरो** - धीर, **अहेऊहिं** - अहेतु वादों से प्रेरित होकर, **उम्मत्तो** - उन्मत्त, **महिं** - पृथ्वी पर, **चरे** - विचरण करे, **एए** - इस प्रकार ये, **विसेसमादाय**- विशेषता जान कर, **सूरा** - शूरवीर, **दढपरक्कमा** - दृढ पराक्रमी।

भावार्थ - क्षत्रिय राजर्षि कहते हैं कि हे मुने! धीर एवं बुद्धिमान् पुरुष, क्रियावादी, अक्रियावादी आदि वादियों के कुतर्कों में फंस कर उन्मत्त पुरुष के समान पृथ्वी पर कैसे विचर सकता है? अर्थात् नहीं विचर सकता। ऐसा विचार कर तथा ज्ञान और क्रिया से युक्त जैन धर्म की विशेषता को जान कर पूर्वोक्त शूरवीर एवं दृढ़ पराक्रम करने वाले प्रबल पुरुषार्थी भरतादि चक्रवर्ती आदि नरेशों ने जैन धर्म एवं संयम स्वीकार कर आत्म-कल्याण किया। हे मुनीश्वर! इसी प्रकार आप भी इस जैन-धर्म में अपने चित्त को दृढ़ करके विचरते हुए अपने अभीष्ट पद को प्राप्त करने का प्रयत्न करो।

अच्चंत-णियाणखमा, सच्चा (एसा) मे भासिया वई।
अतरिंसु तरंतेगे, तरिस्संति अणागया॥५३॥

कठिन शब्दार्थ - **अच्चंत णियाणखमा** - अत्यंत निदान क्षम - युक्तिसंगत-कर्ममल को शोधन करने में समर्थ, **सच्चा** - सत्य, **मे** - मैंने, **भासिया** - कही है, **वई** - वाणी,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अतरिंसु - अतीत में तिर गये हैं, **तरंति** - वर्तमान में तिर रहे हैं, **एगे** - अनेक जीव, **तरिस्संति** - तिरेंगे-पार होंगे, **अणागया** - अनागत-भविष्य में।

भावार्थ - हे मुनीश्वर! कर्म-मल को शोधन करने में अत्यन्त समर्थ यह सम्पूर्ण सत्य, यह वाणी जो मैंने आपके प्रति कही है, इस वाणी के द्वारा भूतकाल में अनेक जीव संसार समुद्र तिर गये हैं, वर्तमान काल में अनेक जीव तिर रहे हैं और भविष्यत् काल में अनेक जीव तिरेंगे।

उपसंहार

कहं धीरे अहेउहिं, अत्ताणं परियावसे।
सव्व-संग-विणिम्मुक्के, सिद्धे हवइ णीरए॥५४॥ त्तिबेमि॥

कठिन शब्दार्थ - **अत्ताणं** - अपने आपको, **परियावसे** - लगाए, **सव्व संग विणिम्मुक्के** - सभी संगों से विनिर्मुक्त, **सिद्धे** - सिद्ध, **हवइ** - होता है, **णीरए** - नीरज-कर्म रज से रहित।

भावार्थ - कौन धीर एवं बुद्धिमान् पुरुष क्रियावादी, अक्रियावादी आदि वादियों के कहे हुए कुतर्कों में फंस कर अपनी आत्मा का अहित करना चाहेगा अर्थात् कोई नहीं चाहेगा, क्योंकि इन कुहेतुओं में आत्मा को न फंसा कर जिन-शासन का आश्रय लेने से ही सभी द्रव्य संग और भाव संगों से रहित होकर तथा कर्म रूपी रज से रहित होकर यह आत्मा सिद्ध हो जाता है। ऐसा मैं कहता हूँ।

विवेचन - उपर्युक्त तीन गाथाओं में क्षत्रिय राजर्षि द्वारा संजय राजर्षि को पूर्व में जो उपदेश दिया गया है उसका उपसंहार (निष्कर्ष) और फल बतलाया गया है।

क्षत्रियराजर्षि संजयमुनि को कहते हैं कि भरत आदि महापुरुषों ने जिनशासन की विशेषता को देख कर ही जिनशासन में प्रव्रज्या ली और अहेतुवादों से अपने आप को दूर रख कर तप संयम से सभी कर्मों को खपाया और सिद्धि प्राप्त की। अतः तुम भी इन अहेतुवादों के कुचक्र में नहीं फंस कर जिनोपदिष्ट मार्ग को अपनाते हुए कर्मों से मुक्त होने का पुरुषार्थ करोगे तो सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो जाओगे। क्योंकि इसी मार्ग पर चल कर भूतकाल में अनेक साधकों ने संसार समुद्र को पार किया है, वर्तमान में पार हो रहे हैं और भविष्य में भी पार होंगे। ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ इति संयतीय नामक अठारहवाँ अध्ययन समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मियापुत्तीयं णामं एगुणवीसइमं अज्झयणं

'मृगापुत्रीय' नामक उन्नीसवाँ अध्ययन

अठारहवें 'संयतीय' अध्ययन की तरह यह उन्नीसवाँ अध्ययन भी 'मृगापुत्र' का वर्णन होने से 'मृगापुत्रीय' नाम से प्रसिद्ध हुआ है।

एक तपस्वी श्रमण को देख कर राजकुमार मृगापुत्र को जातिस्मरण ज्ञान हो जाता है और चित्रपट की तरह पूर्वभव (जन्म) की स्मृतियां ताजी हो जाती है। पूर्व जन्मों की स्मृतियों के आधार पर जहां मृगापुत्र ने इस अध्ययन में नरक के भयंकर से भयंकर दारुण दुःखों को भोगने की आपबीती कह सुनाई वहां तिर्यंच गति और मनुष्य गति के दुःखों का अनुभव भी सुनाया। मृगापुत्र ने चतुर्गति के दुःखों का दारुण वर्णन करते हुए यह भी स्पष्ट किया है कि इन दुःखों-कष्टों के सामने श्रमण जीवन के कष्ट तो उसके अनंतवें भाग भी नहीं है।

जातिस्मरण ज्ञान से मृगापुत्र को सांसारिक भोगों से विरक्ति हो जाती है और वह संयम ग्रहण करने के लिये माता-पिता से दीक्षा की अनुमति मांगता है तब होता है वैराग्य और निर्वेद रस से ओतप्रोत रोचक संवाद, जिसका इस अध्ययन में वर्णन किया गया है। प्रस्तुत है इसकी प्रथम गाथा -

सुग्गीवे णयरे रम्मे, काणणुज्जाण-सोहिए।
राया बलभद्दित्ति, मिया तस्सग्गमहिसी॥१॥

कठिन शब्दार्थ - सुग्गीवे णयरे - सुग्रीव नगर में, **रम्मे** - रम्य, **काणणुज्जाण सोहिए** - कानन-वनों और उद्यानों से सुशोभित, **राया बलभद्दित्ति** - बलभद्र राजा, **मिया** - मृगा, **अग्गमहिसी** - अग्रमहिषी-पटरानी।

भावार्थ - कानन उद्यान शोभित अर्थात् अनेक प्रकार के वन-उपवनों से सुशोभित, रमणीय सुग्रीव नाम के नगर में बलभद्र नाम का राजा राज्य करता था, उनके मृगा नाम की अग्रमहिषी-पटरानी थी।

तेसिं पुत्ते बलसिरी, मियापुत्ते त्ति विस्सुए।
अम्मा-पिऊण दइए, जुवराया दमीसरे॥२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **तेसिं** - उनके, **पुत्ते** - पुत्र, **मियापुत्ते** - मृगापुत्र, **विस्सुए** - विश्रुत-प्रसिद्ध, **बलसिरी** - बलश्री, **अम्मापिऊण** - माता पिता को, **दइए** - दयित-प्रिय, **जुवराया**-युवराज, **दमीसरे** - दमीश्वर-शत्रुओं को दमन करने वाले का अधिपति।

भावार्थ - उनके बलश्री नाम का पुत्र था किन्तु लोगों में वह मृगापुत्र के नाम से विश्रुत-विख्यात था। वह माता-पिता को बड़ा प्रिय था। वह युवराज और दमीश्वर था अर्थात् उद्धत पुरुषों का दमन करने वाले राजाओं का स्वामी था। यह अर्थ वर्तमान काल की अपेक्षा से किया गया है। भविष्यत् काल की अपेक्षा 'दमीश्वर' शब्द का अर्थ है - इन्द्रियों का दमन करने वाले महात्माओं में श्रेष्ठ। ऐसा वह मृगापुत्र था।

णंदणे सो उ पासाए, कीलए सह इत्थिहिं।
देवो दोगुंदगो चेव, णिच्चं मुइयमाणसो॥३॥

कठिन शब्दार्थ - **णंदणे** - नन्दन, **पासाए** - प्रासाद (भवन-महल), **कीलए** - क्रीड़ा करता था, **सह** - साथ, **इत्थिहिं** - स्त्रियों के, **देवो** - देव, **दोगुंदगो** - दोगुंदक, **णिच्चं** - नित्य, **मुइयमाणसो** - मुदित मानस - प्रसन्नचित्त वाला।

भावार्थ - वह मृगापुत्र नामक राजकुमार नंदन वन के समान आनंददायक प्रासाद (भवन) में स्त्रियों के साथ सदा मुदितमानस - प्रसन्न चित्त वाला होकर दोगुंदक देव के समान अर्थात् इन्द्र के गुरुस्थानीय त्रायस्त्रिंश जाति के देव के समान क्रीड़ा करता था।

मुनिदर्शन

मणिरयणकोट्टिमतले, पासायालोयणट्ठिओ।
आलोएइ णगरस्स, चउक्कत्तियचच्चरे॥४॥

कठिन शब्दार्थ - **मणिरयणकोट्टिमतले** - मणि रत्न जटित आंगन वाले, **पासायालोयणट्ठिओ** - प्रासाद के आलोकन (गवाक्ष) में बैठा हुआ, **आलोएइ** - देख रहा था, **णगरस्स** - नगर के, **चउक्क-त्तिय-चच्चरे** - चौराहों, तिराहों और चौहट्टों को।

भावार्थ - जिसके आंगन में मणि और रत्न कूटे हुए थे ऐसे प्रासाद (महल) के झरोखे में बैठा हुआ वह राजकुमार एक समय उस सुग्रीव नगर के चतुष्क (जहाँ चार मार्गों का संगम हो) त्रिक (तीन मार्गों का मिलन स्थान) और चत्वर (अनेक मार्गों के मिलने का स्थान) देख रहा था।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अह तत्थ अइच्छंतं, पासइ समण-संजयं।

तव-णियम-संजमधरं, सीलड्ढं गुण-आगरं॥५॥

कठिन शब्दार्थ - अइच्छंतं - जाते हुए, **पासइ** - देखता है, **समण** - श्रमण, **संजयं**- संयत को, **तव णियम संजमधरं** - तप, नियम और संयम को धारण करने वाले, **सीलड्ढं** - शील से समृद्ध, **गुण-आगरं** - गुणों के आकर (खान)।

भावार्थ - इसके बाद राजकुमार ने नगर अवलोकन करते हुए तप, नियम और संयम को धारण करने वाले अठारह हजार शील के अंग रूप गुणों के धारक ज्ञानादि गुणों के भण्डार एक श्रमण संयत (जैन साधु) को राज-मार्ग पर जाते हुए देखा।

विवेचन - मृगापुत्र ने अपने राजमहल के गवाक्ष में बैठे हुए नगरावलोकन करते हुए एक जैन साधु को राजमार्ग पर जाते हुए देखा। जैन साधु के लिए प्रस्तुत गाथा में निम्न विशेषण दिये गये हैं -

१. समण-संजयं - शाक्यादि मत के भी श्रमण होते हैं अतः वैसे श्रमण से पृथक्ता-विशेषता बताने के लिये यहां **संजयं** पद दिया है। **संजयं** अर्थात् संयत। संयत के दो अर्थ होते हैं - १. सम्यक् प्रकार से जीवों की यतना करने वाला और २. वीतराग देव के मार्गानुसारी श्रमण।

२. तव-णियम-संजमधरं - तप, नियम और संयम के धारक। तप का अर्थ है - बाह्य और आभ्यंतर के भेद से बारह प्रकार का तप। नियम अर्थात् द्रव्य, क्षेत्र,काल और भाव की अपेक्षा से अभिग्रह ग्रहण करना। संयम अर्थात् सतरह प्रकार के संयम को धारण करने वाला।

३. सीलड्ढं - अठारह हजार शीलांगों - ब्रह्मचर्य के भेदों से पूर्ण।

४. गुण-आगरं - गुणों - ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप गुणों के आकर - खान के समान।

मृगापुत्र को जातिस्मरण ज्ञान

तं पेहइ मियापुत्ते, दिट्ठीए अणिमिसाए उ।

कहिं मण्णेरिसं रूवं, दिट्ठपुव्वं मए पुरा॥६॥

कठिन शब्दार्थ - **तं** - उस मुनि को, **पेहइ** - देखता है, **दिट्ठीए** - दृष्टि से, **अणिमिसाए**- अनिमेष-अपलक, **कहिं** - कहीं, **मण्णे** - मैं मानता हूं कि, **एरिसं रूवं** - ऐसा रूप, **दिट्ठपुव्वं** - पहले देखा है, **मए** - मैंने, **पुरा** - पूर्व।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - मृगापुत्र उस मुनि को अनिमेष-आँख टमकारे बिना एक टक दृष्टि से देखने लगा और मन में सोचने लगा कि मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार का रूप मैंने पहले कहीं अवश्य देखा है।

साहुस्स दरिसणे तस्स, अज्झवसाणम्मि-सोहणे।
मोहं गयस्स संतस्स, जाइसरणं समुप्पण्णं॥७॥

कठिन शब्दार्थ - **साहुस्स** - साधु के, **दरिसणे** - दर्शन से, **तस्स** - उस, **अज्झवसाणम्मि सोहणे** - अध्यवसायों के शुद्ध हो जाने पर, **मोहं** - मोह को, **गयस्ससंतस्स**- प्राप्त होने पर-उपशांत होने पर, **जाइसरणं** - जातिस्मरण ज्ञान, **समुप्पण्णं** - उत्पन्न हो गया।

भावार्थ - उस साधु को देखने पर मोहनीय (चारित्र मोहनीय) कर्म के उपशांत (देश उपशम-मंद) होने पर तथा अध्यवसायों (ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से होने वाले आन्तरिक परिणामों) की विशुद्धि होने से मृगापुत्र को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया।

विवेचन - मोहनीय कर्म का पूर्ण उपशम तो 'उपशान्त मोहनीय गुणस्थान' वाले संयमी साधकों के ही होता है। अतः यहाँ पर इस गाथा में प्रयुक्त **'गयस्स संतस्स'** (उपशांत) शब्द का आशयपूर्ण उपशम होना नहीं समझ कर 'देश उपशम' समझना चाहिए। अर्थात् 'चारित्र मोहनीय कर्म की मंदता' होना समझना चाहिये। जाति स्मरण ज्ञान क्षायोपशमिक ज्ञान है। वह ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होता है। मोहनीय कर्म के उपशम से नहीं होता है। आगम में क्षायिक ज्ञान (केवलज्ञान) एवं क्षायोपशमिक ज्ञान (मति आदि चार ज्ञान) ही बताये हैं। औपशमिक ज्ञान नहीं बताया है अतः 'जातिस्मरण' को क्षायोपशमिक समझना है। मोहनीय कर्म के उपशम से नहीं समझना।

देवलोग चुओ संतो, माणुसं भवमागओ।
सण्णिणाणे-समुप्पण्णे, जाइं-सरइ-पुराणियं॥८॥

कठिन शब्दार्थ - **देवलोगे** - देवलोक से, **चुओ संतो** - च्युत होकर, **माणुसं भवं** - मनुष्य भव में, **आगओ** - आया हूँ, **सण्णिणाणे** - संज्ञी ज्ञान, **समुप्पण्णे** - उत्पन्न होने पर, **जाइं** - जाति को, **पुराणियं** - पूर्व, **सरइ** - स्मरण करता है।

भावार्थ - संज्ञिज्ञान-जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो जाने पर वह मृगापुत्र अपने पूर्व-जन्म को स्मरण करने लगा कि मैं देवलोक से चव कर मनुष्य भव में आया हूँ।

विवेचन - साधु को एकटक देखने पर मृगापुत्र हर्षित हो सोचने लगा कि ऐसा रूप मैंने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पहले कहीं देखा है। इस प्रकार चिंतन करते उसे संज्ञीज्ञान-जातिस्मरण ज्ञान हो गया और वह अपने पूर्वजन्म को याद करने लगा। उसे स्मरण हो गया कि वह देवलोक से च्यव कर मनुष्य भव में आया है।

जाइसरणे समुप्पण्णे, मियापुत्ते महिड्ढिए।
सरइ पोराणियं जाइं, सामण्णं च पुराकयं॥९॥

कठिन शब्दार्थ - **महिड्ढिए** - महाऋद्धि वाला, **सामण्णं** - श्रामण्य-साधुपन को, **पुराकयं** - पूर्वकृत।

भावार्थ - जातिस्मरण ज्ञान, उत्पन्न होने पर महाऋद्धि वाला वह मृगापुत्र अपने पूर्व-जन्म को और पूर्व कृत - पूर्व-जन्म में पालन किये हुए साधुपन को स्मरण करने लगा।

विवेचन - जातिस्मरण ज्ञान से मृगापुत्र को पूर्वजन्मों के अनुभवों का और मनुष्य भव में पालन किये हुए चारित्र का स्मरण हो गया।

विषयभोगों से विरक्ति

विसएसु अरज्जंतो, रज्जंतो संजमम्मि य।
अम्मा-पियरमुवागम्म, इमं वयण-मब्बवी॥१०॥

कठिन शब्दार्थ - **विसएसु** - विषयों से, **अरज्जंतो** - विरक्त, **संजमम्मि** - संयम में, **रज्जंतो** - अनुरक्त, **अम्मापियरं** - माता पिता के, **उवागम्म** - पास आकर, **वयणं** - वचन, **अब्बवी** - कहा।

भावार्थ - विषय-भोगों में आसक्ति नहीं रखता हुआ और संयम में अनुराग रखता हुआ मृगापुत्र माता-पिता के निकट आकर इस प्रकार वचन कहने लगा।

विवेचन - मृगापुत्र को जातिस्मरण ज्ञान से पूर्वजन्मों की स्मृति एवं चारित्र पालन का स्मरण हो जाने के कारण कामभोगों से विरक्ति हो गयी और संयम में उसका मन लग गया अतः माता पिता के समीप आकर संयम ग्रहण की अनुमति-याचना करने लगे।

मृगापुत्र द्वारा दीक्षा की आज्ञा मांगना

सुयाणि मे पंच महव्वयाणि, णरएसु दुक्खं च तिरिक्ख-जोणिसु।
णिव्विण्णकामो मि महण्णवाओ, अणुजाणह पव्वइस्सामि अम्मो॥११॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **सुयाणि** - सुना है, **मे** - मैंने, **पंच** - पांच, **महव्वयाणि** - महाव्रतों को, **णरएसु** - नरकों में, **दुक्खं** - दुःख, **तिरिक्खजोणिसु** - तिर्यंच योनि में, **णिव्विणकामो** - काम विरक्त, **महण्णवाओ** - महार्णव - संसार रूप महासागर से, **अणुजाणह**- मुझे आज्ञा दीजिये, **पव्वइस्सामि** - दीक्षा लूंगा, **अम्मो** - हे माता!

भावार्थ - हे माता पिताओ! मैंने पूर्वजन्म में जिन पांच महाव्रतों का पालन किया था, उन्हें मैंने जान लिया है और नरक गति में तथा तिर्यंच योनि में भोगे हुए दुःखों को भी स्मरण कर जान लिया है इसलिए मैं महार्णव - संसार रूपी महासमुद्र से निवृत्त होने का अभिलाषी हूँ। मुझे आज्ञा दीजिये मैं दीक्षा लूँगा।

विवेचन - इस गाथा में मृगापुत्र ने माता-पिता को कहा कि - मैंने पूर्व भव में पांच महाव्रतों का पालन किया था तथा आठवीं गाथा में मृगापुत्र के लिए देवलोक से च्यव कर इस मनुष्य भव में आना बताया है। इन दोनों बातों की संगति बिठाते हुए पूज्य बहुश्रुत गुरुदेव फरमाया करते थे - भरत क्षेत्र में अवसर्पिणी काल के २४ तीर्थंकरों में से प्रथम एवं चरम तीर्थंकर के शासन में ही पांच महाव्रत रूप संयम धर्म होता है। २४ वें तीर्थंकर का शासनकाल २१००० वर्षों का बताया है तथा प्रथम तीर्थंकर का शासनकाल ५० लाख करोड़ सागरोपम का होता है। मृगापुत्र ने इस भव में भी पांच महाव्रत रूप श्रमण धर्म को अंगीकार किया था। पूर्व के भव में एवं इस भव में पांच महाव्रत रूप श्रमण धर्म स्वीकार करना एवं बीच में वैमानिक देव का भव करना, ये सब भगवान् ऋषभदेव के शासनकाल में ही घटित हो सकता है। इत्यादि आधारों से मृगापुत्र भगवान् ऋषभदेव के शासन में हुए, ऐसा बहुश्रुत गुरुदेव फरमाया करते थे। समर्थ समाधान भाग ३ में भी इस संबंधी विस्तृत उत्तर दिया गया है।

कामभोग दुःखदायी

अम्म-ताय! मए भोगा, भुत्ता विसफलोवमा।
पच्छा कडुयविवागा, अणुबंध-दुहावहा॥१२॥

कठिन शब्दार्थ - **अम्मताय** - हे माता पिताओ! **मए** - मैंने, **भोगा** - कामभोगों को, **भुत्ता** - भोग चुका हूं, **विसफलोवमा** - विषफल के समान, **पच्छा** - बाद में, **कडुयविवागा**- कटु विपाक वाले, **अणुबंध दुहावहा** - निरन्तर दुःख देने वाले।

भावार्थ - हे माता-पिताओ! मैंने कामभोगों को भोग कर इनका परिणाम जान लिया है भोगने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के पीछे इनका परिणाम अत्यन्त कड़वा होता है और ये काम-भोग निरन्तर दुःख देने वाले हैं, विषफल के समान हैं अर्थात् जैसे विषफल (किंपाक) देखने में सुन्दर और खाने में स्वादिष्ट और मीठा तो लगता है, किन्तु खाने के बाद वह प्राण-हरण कर लेता है, उसी प्रकार ये काम-भोग भी भोगने के समय तो प्रिय लगते हैं किन्तु परिणाम में अधिक से अधिक दुःख देने वाले हैं।

शरीर, दुःखों की खान

इमं सरीरं अणिच्चं, असुइं असुइ-संभवं।
असासयावासमिणं, दुक्ख-केसाण-भायणं॥१३॥

कठिन शब्दार्थ - **इमं** - यह, **सरीरं** - शरीर, **अणिच्चं** - अनित्य, **असुइं** - अशुचि (अपवित्र), **असुइसंभवं** - अशुचि का उत्पत्ति स्थान, **असासयावासं** - इसमें निवास अशाश्वत-अनित्य, **दुक्ख-केसाण** - दुःख और क्लेशों का, **भायणं** - भाजन।

भावार्थ - यह शरीर अनित्य है, अशुचि (अपवित्र) है और अशुचि से ही इसकी उत्पत्ति हुई है एवं यह स्वयं भी अशुचि का स्थान है, इसमें जीव का निवास-स्थान भी अशाश्वत ही है और यह शरीर दुःख और क्लेशों का भाजन (बर्तन) है।

विवेचन - यह शरीर अनित्य, अपवित्र, अशुचि से उत्पन्न और अशुचि से भरा है। इसमें जीव का निवास अशाश्वत है। यह शरीर जन्म, जरा, मृत्यु आदि दुःखों तथा धन-हानि, स्वजन वियोग आदि क्लेशों का भाजन स्थान या पात्र है।

मृगापुत्र को सांसारिक विषयाभिलाषा से तथा अनित्य, अशरण अपवित्र एवं अपवित्र पदार्थों से निर्मित, विविध दुःखों एवं संक्लेशों के घर इस शरीर से विरक्ति हो गयी।

शरीर की अशाश्वतता

असासए-सरीरम्मि, रइं णोवलभामहं।
पच्छा पुरा व चइयव्वे, फेणबुब्बुयसण्णिभे॥१४॥

कठिन शब्दार्थ - **असासए** - अशाश्वत, **सरीरम्मि** - शरीर में, **रइं** - रति-प्रसन्नता, **णोवलभामहं** - मैं नहीं पा रहा हूं, **पच्छा** - बाद में, **पुरा** - पहले, **चइयव्वे** - छोड़ना ही है, **फेणबुब्बुय सण्णिभे** - फेन के बुलबुले के समान।

भावार्थ - मृगापुत्र अपने माता-पिता से कहता है कि जल के बुलबुले के समान क्षणभंगुर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं अशाश्वत इस शरीर में मुझे रति-प्रसन्नता प्राप्त नहीं होती, क्योंकि पहले या पीछे इस शरीर को अवश्य छोड़ना पड़ेगा, इसका विनाश अवश्यंभावी है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में इस शरीर की क्षणभंगुरता एवं नश्वरता का वर्णन किया गया है। पश्चात् अर्थात् भोगों के भोग लेने पर यानी वृद्धावस्था में भुक्त भोगी बन जाने पर तथा पुरा अर्थात् भोग भोगने से पूर्व अर्थात् भोग भोगे ही न हों ऐसी बाल्यावस्था में कभी न कभी इस शरीर को अवश्य ही छोड़ना पड़ेगा। अतः मृगापुत्र अपने माता पिता से कह रहे हैं कि ऐसे शरीर में मैं आनंद नहीं पा रहा हूं।

मनुष्य भव की असारता

माणुसत्ते असारम्मि, वाहिरोगाण आलए।
जरामरणघत्थम्मि, खणं पि ण रमामहं॥१५॥

कठिन शब्दार्थ - **माणुसत्ते** - मनुष्य शरीर में, **असारम्मि** - असार, **वाहिरोगाण** - व्याधियां और रोगों के, **आलए** - घर, **जरामरणघत्थम्मि** - जरा और मरण से ग्रस्त, **खणंपि** - क्षण मात्र भी, **ण रमामहं** - मैं सुख नहीं पा रहा हूं।

भावार्थ - कोढ़ आदि व्याधियाँ और ज्वर आदि रोगों के घर रूप तथा जरा और मृत्यु से घिरे हुए इस असार मनुष्य जन्म में मैं एक क्षण भर भी रमण नहीं करता हूँ अर्थात् प्रसन्न नहीं होता हूँ।

विवेचन - कोढ़, शूल आदि दुःसाध्य बीमारियों को 'व्याधि' कहते हैं और वात, पित्त तथा कफ से होने वाले ज्वर आदि को 'रोग' कहते हैं।

मनुष्य भव के दुःखों का दिग्दर्शन

जम्मं दुक्खं जरा दुक्खं, रोगाणि मरणाणि य।
अहो दुक्खो हु संसारो, जत्थ कीसंति जंतवो॥१६॥

कठिन शब्दार्थ - **जम्मं** - जन्म, **दुक्खं** - दुःख, **जरा** - जरा, **रोगाणि** - रोग, **मरणाणि**- मरण, **अहो** - आश्चर्य है, **संसारो** - संसार, **जत्थ** - जहां, **कीसंति** - क्लेश पाते हैं, **जंतवो** - जीव।

भावार्थ - जन्म दुःख रूप है, बुढ़ापा दुःख रूप है तथा रोग और मृत्यु ये सभी दुःख

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रूप हैं, अहो! आश्चर्य है कि यह सारा संसार ही दुःख रूप है, इस दुःखमय संसार में जीव अपने-अपने कर्मों के वश होकर नाना प्रकार के दुःख और क्लेशों को प्राप्त हो रहे हैं।

विवेचन - जन्म, जरा, व्याधि और मृत्यु आदि नाना प्रकार के दुःख इस संसार में हैं। ऐसे दुःखमय संसार में जीव क्लेश पाते हैं, यही आश्चर्य है।

संसार से निर्वेद

खेत्तं वत्थुं हिरण्णं च, पुत्तदारं च बंधवा।
चइत्ताणं इमं देहं, गंतव्वमवसस्स मे॥१७॥

कठिन शब्दार्थ - **खेत्तं** - क्षेत्र, **वत्थुं** - वास्तु-घर, **हिरण्णं** - हिरण्य-स्वर्णादि, **पुत्त** - पुत्र, **दारं** - स्त्री, **बंधवा** - बंधुजन, **चइत्ताणं** - छोड़ कर, **इमं** - इस, **देहं** - शरीर को, **गंतव्वं** - चले जाना है, **अवसस्स** - अवश्य ही।

भावार्थ - क्षेत्र (खुली भूमि) वास्तु (घर मकान आदि) और हिरण्य-सोना-चांदी आदि पुत्र-स्त्री और बान्धव तथा इस शरीर को भी छोड़ कर मेरे इस जीव को परवश होकर अवश्य जाना पड़ेगा।

विषयभोगों का फल

जह किंपागफलाणं, परिणामो ण सुंदरो।
एवं भुत्ताणं भोगाणं, परिणामो ण सुंदरो॥१८॥

कठिन शब्दार्थ - **जह** - जैसे, **किंपागफलाणं** - किम्पाक फलों का, **परिणामो** - परिणाम, **ण सुंदरो** - सुन्दर नहीं होता, **भुत्ताणं** - भोगे हुए, **भोगाणं** - भोगों का।

भावार्थ - जिस प्रकार किंपाक वृक्ष के फलों का परिणाम सुन्दर नहीं होता, इसी प्रकार भोगे हुए भोगों का परिणाम भी सुन्दर नहीं होता।

धर्म का पाथेय

अद्धाणं जो महंतं तु, अपाहेज्जो पवज्जइ।
गच्छंतो सो दुही होइ, छुहातण्हाए पीडिओ॥१९॥

कठिन शब्दार्थ - **अद्धाणं** - मार्ग का, **महंतं** - लम्बे, **अपाहेज्जो** - पाथेय लिए बिना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ही, **पवज्जइ** - चल देता है, **गच्छंतो** - जाता हुआ, **दुही** - दुःखी, **छुहातण्हाए** - भूख और प्यास से, **पीडिओ** - पीड़ित।

भावार्थ - पाथेय (खाने पीने की सामग्री) साथ में लिए बिना ही जो पुरुष लंबे मार्ग की यात्रा करता है, मार्ग में जाता हुआ वह भूख और प्यास से पीड़ित होकर दुःखी होता है।

एवं धम्मं अकाऊणं, जो गच्छइ परं भवं।
गच्छंतो सो दुही होइ, वाहि रोगेहिं पीडिओ॥२०॥

कठिन-शब्दार्थ - **धम्मं** - धर्म को, **अकाऊणं** - किये बिना, **परं भवं** - परभव में, **वाहि** - व्याधि, **रोगेहिं** - रोगों से।

भावार्थ - इसी प्रकार धर्म का आचरण किये बिना जो पुरुष परभव में जाता है तो परभव में जाता हुआ वह व्याधि और रोगों से पीड़ित होकर दुःखी होता है।

अद्धाणं जो महंतं तु, सपाहेज्जो पवज्जइ।
गच्छंतो सो सुही होइ, छुहातण्हा-विवज्जिओ॥२१॥

कठिन शब्दार्थ - **सपाहेज्जो** - पाथेय सहित, **सुही** - सुखी, **छुहातण्हा** - भूख और प्यास, **विवज्जिओ** - रहित।

भावार्थ - पाथेय सहित जो पुरुष लम्बे मार्ग की यात्रा करता है तो मार्ग में जाता हुआ वह पुरुष भूख और प्यास से रहित होकर सुखी होता है।

एवं धम्मं वि काऊणं, जो गच्छइ परं भवं।
गच्छंतो सो सुही होइ, अप्पकम्मे अवेयणे॥२२॥

कठिन शब्दार्थ - **अप्पकम्मे** - अल्प कर्म वाला, **अवेयणे** - वेदना से रहित।

भावार्थ - इसी प्रकार जो पुरुष धर्म का सेवन करके परभव में जाता है तो जाता हुआ वह अल्पकर्म - अल्प पाप वाला और वेदना से रहित होकर सुखी होता है।

विवेचन - धर्माराधना करने वाला पुरुष इसलोक में भी सुखी होता है और परलोक में भी सुखी होता है क्योंकि धर्माचरण के कारण उसके अशुभ कर्म बहुत ही अल्प होते हैं और पाप कर्म अल्प होने से असाता वेदनीय अत्यल्प होने से वह सुखी होता है, इसलिये '**अप्पकम्मे अवेयणे**' कहा है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आत्मा रूपी सार पदार्थ की सुरक्षा

जहा गेहे पलित्तम्मि, तस्स गेहस्स जो पहू।
सारभंडाणि णीणेइ, असारं अवउज्झइ॥२३॥
एवं लोए पलित्तम्मि, जराए मरणेण य।
अप्पाणं तारइस्सामि, तुब्भेहिं अणुमण्णिओ॥२४॥

कठिन शब्दार्थ - गेहे - घर में, **पलित्तम्मि** - आग लगने पर, **गेहस्स** - घर का, **पहू** - प्रभु-स्वामी, **सारभंडाणि** - सार (मूल्यवान्) वस्तुओं को, **णीणेइ** - बाहर निकाल लेता है, **असारं** - असार (मूल्यहीन) वस्तुओं को, **अवउज्झइ** - छोड़ देता है, **जराए** - जरा (बुढ़ापा) से, **मरणेण** - मृत्यु से, **तुब्भेहिं** - आपकी, **अणुमण्णिओ** - आज्ञा मिलने पर, **तारइस्सामि** - तारूंगा।

भावार्थ - जिस प्रकार घर में आग लग जाने पर उस घर का जो प्रभु-स्वामी होता है वह सार वस्तु (मूल्यवान् आभूषण तथा वस्त्रादि) को बाहर निकालता है और असार वस्तुओं (फटे हुए वस्त्रादि) को छोड़ देता है इसी प्रकार बुढ़ापा और मृत्यु से जलते हुए इस लोक में आप की आज्ञा मिलने पर मैं अपनी आत्मा को तारूँगा अर्थात् यह संसार जरा और मरण रूपी अग्नि से जल रहा है इसलिए मैं अपनी आत्मा रूपी सार पदार्थ को इससे निकाल लूंगा और कामभोग रूपी असार पदार्थों को छोड़ दूँगा।

साधु जीवन की दुष्करता

तं बिंतम्मापियरो, सामण्णं पुत्त! दुच्चरं।
गुणाणं तु सहस्साइं, धारेयव्वाइं भिक्खुणा॥२५॥

कठिन शब्दार्थ - तं - उसको, **अम्मापियरो** - माता पिता, **बिंत** - कहने लगे, **सामण्णं** - श्रामण्य - साधु धर्म का, **पुत्त** - हे पुत्र! **दुच्चरं** - दुष्कर, **गुणाणं सहस्साइं** - अठारह हजार गुण (अठारह हजार शीलांगरथ के भेद रूप गुण), **धारेयव्वाइं** - धारण करने पड़ते हैं।

भावार्थ - उस मृगापुत्र को माता-पिता कहने लगे कि हे पुत्र! साधु को शील के अठारह हजार गुण तथा क्षमा आदि के अनेक गुण धारण करने पड़ते हैं। इसलिए श्रामण्य-साधु धर्म का पालन करना अत्यन्त कठिन है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - अठारह हजार शीलांगरथ के भेदों का वर्णन संघ से प्रकाशित दशवैकालिक सूत्र के ८वें अध्ययन की गाथा ४१ के विवेचन में बताया गया है। जिज्ञासुओं को वहां से जान लेना चाहिए।

प्रथम महाव्रत की दुष्करता

समया सव्वभूएसु, सत्तुमित्तेसु वा जगे।
पाणाइवायविरई, जावज्जीवाए दुक्करं॥२६॥

कठिन शब्दार्थ - **समया** - समता-समभाव रखना, **सव्वभूएसु** - सभी जीवों पर, **सत्तुमित्तेसु** - शत्रु हो या मित्र पर, **जगे** - संसार में, **पाणाइवाय विरई** - प्राणातिपात से विरत होना, **दुक्करं** - दुष्कर।

भावार्थ - हे पुत्र! जीवनपर्यंत जगत्-संसार में सभी प्राणियों पर चाहे शत्रु हो या मित्र पर समभाव रखना तथा प्राणातिपात (हिंसा) से सर्वथा निवृत्त होना (पहले महाव्रत का पालन करना) भी अत्यन्त कठिन है।

द्वितीय महाव्रत की दुष्करता

णिच्चकालऽप्पमत्तेणं, मुसावाय-विवज्जणं।
भासियव्वं हियं सच्चं, णिच्चाउत्तेण दुक्करं॥२७॥

कठिन शब्दार्थ - **णिच्चकाल** - सदैव, **अप्पमत्तेणं** - अप्रमत्त रह कर, **मुसावाय विवज्जणं** - मृषावाद का त्याग, **भासियव्वं** - बोलना, **हियं** - हितकारी, **सच्चं** - सत्य, **णिच्चाउत्तेण** - सतत उपयोग के साथ।

भावार्थ - सदैव के लिए प्रमाद रहित होकर मृषावाद का त्याग और सदा उपयोग रख कर हितकारी सत्य वचन बोलना (दूसरे महाव्रत का पालन करना) बड़ा दुष्कर है।

तृतीय महाव्रत की दुष्करता

दंत-सोहणमाइस्स, अदत्तस्स विवज्जणं।
अणवज्जेसणिज्जस्स, गिण्हणा वि दुक्करं॥२८॥

कठिन शब्दार्थ - **दंत सोहणमाइस्स** - दंतशोधन आदि के ग्रहण का, **अदत्तस्स** -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बिना दिये हुए, **विवज्जणं** - विवर्जन - त्याग करना, **अणवज्जेसणिज्जस्स** - निर्दोष और एषणीय वस्तु का, **गिण्हणा** - ग्रहण करना।

भावार्थ - बिना दिये हुए किसी भी पदार्थ को विवर्जन - नहीं लेना, यहाँ तक कि दाँतों को स्वच्छ करने के लिये तृण भी बिना आज्ञा नहीं लेना तथा निर्दोष और एषणीय वस्तु ग्रहण करना, इस तीसरे महाव्रत का पालन करना भी बड़ा दुष्कर है।

चौथे महाव्रत की दुष्करता

विरई अबंभचेरस्स, कामभोगरसण्णुणा।
उग्गं महव्वयं बंभं, धारेयव्वं सुदुक्करं॥२९॥

कठिन शब्दार्थ - **विरई** - विरति, **अबंभचेरस्स** - अब्रह्मचर्य की, **कामभोग रसण्णुणा**- कामभोगों के रस के ज्ञाता के लिए, **उग्गं** - उग्र, **महव्वयं** - महाव्रत को, **बंभं** - ब्रह्मचर्य, **धारेयव्वं** - धारण करना, **सुदुक्करं** - अत्यंत दुष्कर है।

भावार्थ - कामभोग के रस को जानने वाले पुरुष के लिए मैथुन से सर्वथा निवृत्त होकर उग्र (कठोर) ब्रह्मचर्य रूप चतुर्थ महाव्रत को धारण करना अत्यन्त कठिन है।

पंचम महाव्रत की दुष्करता

धणधण्णपेसवग्गेसु, परिग्गह-विवज्जणं।
सव्वारंभपरिच्चाओ, णिम्ममत्तं सुदुक्करं॥३०॥

कठिन शब्दार्थ - **धणधण्णपेसवग्गेसु** - धन धान्य प्रेष्य-दास वर्ग के प्रति, **परिग्गह** - परिग्रह, **विवज्जणं** - विवर्जन का, **सव्वारंभ** - सर्व प्रकार के आरंभ, **परिच्चाओ** - परित्याग, **णिम्ममत्तं** - निर्ममत्व।

भावार्थ - सभी आरम्भ का त्याग करना तथा परिग्रह का त्याग करना और धन-धान्य प्रेष्यवर्ग-नौकर-चाकरों का त्याग करना एवं इन सभी के ममत्वभाव से रहित होना, इस प्रकार परिग्रह-विरमण रूप पाँचवां महाव्रत अत्यन्त दुष्कर है।

छठे रात्रिभोजन की दुष्करता

चउव्विहे वि आहारे, राइभोयण-वज्जणा।
सण्णिहिसंचओ चेव, वज्जेयव्वो सुदुक्करं॥३१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - चउव्विहे वि - चारों प्रकार के, **आहारे** - आहार, **राइभोयणवज्जणा**- रात्रि भोजन वर्जन, **सण्णिहिसंचओ** - सन्निधि-संचय, **वज्जेयव्वो** - वर्जन करना।

भावार्थ - चार प्रकार का जो आहार है, रात्रि भोजन वर्जन-रात्रि में उनके भोजन का त्याग करना और सन्निधिसंचय - घी-गुड़ आदि का संचय करके रखने का त्याग करना अत्यन्त कठिन है।

विवेचन - माता-पिता ने मृगापुत्र से कहा कि अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप पांच महाव्रतों का एवं छठे रात्रिभोजन त्याग व्रत का जीवन पर्यन्त तीन करण तीन योग से पालन करना अत्यंत दुष्कर है।

परीषह-विजय की कठिनाइयाँ

छुहा तण्हा य सीउण्हं, दंसमसग-वेयणा।
अक्कोसा दुक्खसेज्जा य, तणफासा-जल्लमेव य॥३२॥

कठिन शब्दार्थ - छुहा - क्षुधा-भूख, **तण्हा** - तृषा-प्यास, **सीउण्हं** - शीत-उष्ण, **दंसमसगवेयणा** - दंश (डांस) मशक (मच्छरों) की वेदना, **अक्कोसा** - आक्रोश, **दुक्खसेज्जा**- दुःखरूप शय्या, **तणफासा** - तृण स्पर्श, **जल्लमेव** - मैल धारण।

भावार्थ - बाईस परीषहों को सहन करने की कठिनता बताते हैं - क्षुधा (भूख), प्यास और शीत और उष्ण, डांस और मच्छरों के काटने से होने वाली वेदना आक्रोश वचनों को सहन करना तथा दुःखकारी शय्या और तृणादि का स्पर्श, इसी प्रकार मैल परीषह, इन सभी परीषहों को समभावपूर्वक सहन करना बड़ा कठिन है।

तालणा तज्जणा चेव, वहबंधपरीसहा।
दुक्खं भिक्खायरिया, जायणा य अलाभया॥३३॥

कठिन शब्दार्थ - तालणा - ताड़ना, **तज्जणा** - तर्जना, **वह** - वध, **बंध** - बंधन, **परीसहा** - परीषह, **दुक्खं** - दुःख रूप, **भिक्खायरिया** - भिक्षाचर्या, **जायणा** - याचना, **अलाभया** - अलाभता।

भावार्थ - ताड़ना और तर्जना, वध-बन्धन का परीषह, भिक्षाचर्या तथा याचना और अलाभता (माँगने पर भी न मिलना) इत्यादि परीषहों को समभाव पूर्वक सहन करना अत्यन्त कठिन है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत दोनों गाथाओं में माता पिता द्वारा परीषह विजय की कठिनाइयों का वर्णन करते हुए साधु धर्म में कष्ट-सहिष्णुता की वृत्ति का उल्लेख किया गया है।

कापोत वृत्ति

कावोया जा इमा वित्ती, केसलोओ य दारुणो।
दुक्खं बंभव्वयं घोरं, धारेउं अमहप्पणो॥३४॥

कठिन शब्दार्थ - **कावोया वित्ती** - कापोत वृत्ति, **केसलोओ** - केशलोच, **दारुणो** - दारुण-कठिन, **बंभव्वयं** - ब्रह्मचर्य व्रत, **घोरं** - घोर, **धारेउं** - धारण करना, **अमहप्पणो** - अल्प सत्त्व वाले साधारण आत्मा के द्वारा।

भावार्थ - जो यह कापोतवृत्ति है अर्थात् जैसे कबूतर बिल्ली आदि से शंकित रह कर दाना चुगता है उसी प्रकार एषणादि के दोषों से शंकित रह कर आहारादि ग्रहण करना और केशों का लोच करना दारुण-कठिन है तथा अमहात्मा अर्थात् अजितेन्द्रिय एवं धैर्य-रहित आत्मा के लिए घोर ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करना अत्यन्त कठिन है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में श्रमण धर्म के अंतर्गत कापोतीवृत्ति, केशलोच, घोर ब्रह्मचर्य पालन को महासत्त्वशालियों के लिए भी अति दुष्कर बताया गया है।

कापोतीवृत्ति - कापोत (कबूतर) पक्षी अपना आहार ग्रहण करते समय शंकित-सावधान रहता है तथा चुग्गा दाना खा लेने के बाद अपने पास संचित नहीं रखता सिर्फ पेट भरने जितनी ही प्रवृत्ति करता है वैसे ही साधु भी भिक्षा ग्रहण करने - एषणा में कोई किसी प्रकार का दोष न लग जाए, इसी शंका-सावधानी से आहार ग्रहण में प्रवृत्त होता है। साधु भी उदर को पोषण देने जितना ही लेता है, आहार करने के पश्चात् कुछ भी संचित नहीं करता। यही कापोती वृत्ति है, जो कष्टदायी है।

सुहोइओ तुमं पुत्ता! सुकुमालो सुमज्जिओ।
ण हुसि पभू तुमं पुत्ता! सामण्णमणुपालिया॥३५॥

कठिन शब्दार्थ - **सुहोइओ** - सुखोचित - सुख भोगने योग्य, **सुकुमालो** - सुकुमार, **सुमज्जिओ** - सुमज्जित-स्वच्छ, **सामण्णं** - श्रमण धर्म का, **अणुपालिया** - पालन करने में।

भावार्थ - हे पुत्र! तू सुखोचित है अर्थात् सुख भोगने के योग्य है सुकुमार है, सुस्नपित है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् स्नान, विलेपन और वस्त्राभूषणों से सदा अलंकृत रहने वाला है, इसलिए हे पुत्र! तू श्रामण्य (साधुपना) पालने के लिए समर्थ नहीं है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में मृगापुत्र की सुखभोग योग्य वय, सुकुमारता, स्वच्छता आदि प्रकृति की याद दिला कर श्रमणधर्म पालन में उसकी असमर्थता का संकेत किया गया है।

विविध उपमाओं से संयमपालन की दुष्करता का वर्णन

जावज्जीवमविस्सामो, गुणाणं तु महब्भरो।
गुरुओ लोहभारुव्व, जो पुत्ता! होइ दुव्वहो॥३६

कठिन शब्दार्थ - **जावज्जीवं** - जीवन पर्यन्त, **अविस्सामो** - बिना विश्राम लिए, **गुणाणं** - गुणों का, **महब्भरो** - महाभार, **गुरुओ** - गुरुतर, **लोहभारुव्व** - लोहे के भार के समान, **दुव्वहो** - वहन करना अत्यंत कठिन है।

भावार्थ - जिस प्रकार लोह के बड़े भार को दुर्वह - सदा उठाए रखना बड़ा कठिन है, उसी प्रकार हे पुत्र! साधुपने के अनेक गुणों का जो महान् भार है उसको विश्राम लिए बिना जीवनपर्यन्त धारण करना दुर्वह - बड़ा कठिन है।

आगासे गंगसोउव्व, पडिसोउव्व दुत्तरो।
बाहाहिं सागरो चेव, तरियव्वो य गुणोदही॥३७॥

कठिन शब्दार्थ - **आगासे** - आकाश में, **गंगसोउव्व** - गंगा के स्रोत, **पडिसोउव्व** - प्रतिस्रोत जैसे, **दुत्तरो** - दुस्तर, **बाहाहिं** - भुजाओं से, **सागरो** - सागर, **तरियव्वो** - तैरना, **गुणोदही** - गुणोदधि - गुणों के सागर को।

भावार्थ - जिस प्रकार आकाश-गंगा की धारा को अर्थात् चुलहिमवंत पर्वत से नीचे गिरती हुई धारा को तैरना बड़ा कठिन है तथा धारा के सामने तैरना कठिन है और जिस प्रकार भुजाओं से सागर को पार करना कठिनतर है उसी प्रकार गुण उदधि - ज्ञानादि गुणों के समूह रूप उदधि-सागर को तिरना-पार करना अत्यन्त कठिन है।

वालुयाकवलो चेव, णिरस्साए उ संजमे।
असिधारागमणं चेव, दुक्करं चरिउं तवो॥३८॥

कठिन शब्दार्थ - **वालुयाकवलो** - बालू के कवल (कौर), **णिरस्साए** - निःस्वाद, **संजमे** - संयम, **असिधारागमणं** - तलवार की धार पर चलना, **चरिउं** - आचरण करना।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - जिस प्रकार बालू रेत का ग्रास नीरस होता है उसी प्रकार विषय-भोगों में गृद्ध बने हुए मनुष्यों के लिए संयम नीरस है और जिस प्रकार तलवार की धार पर चलना कठिन है उसी प्रकार तप संयम का आचरण करना भी बड़ा कठिन है।

अहीवेगंतदिट्ठीए, चरित्ते पुत्त! दुच्चरे।
जवा लोहमया चेव, चावेयव्वा सुदुक्करं॥३९॥

कठिन शब्दार्थ - **अहीवेगंतदिट्ठीए** - सांप की तरह एकान्त (एकाग्र) दृष्टि से, **चरित्ते**- चारित्र धर्म में, **दुच्चरे** - चलना दुष्कर है, **लोहमया** - लोहे के, **जवा** - यव (जौ), **चावेयव्वा** - चबाना, **सुदुक्करं** - अत्यंत कठिन है।

भावार्थ - हे पुत्र! सर्प की तरह अर्थात् जिस प्रकार साँप एकाग्र दृष्टि रख कर चलता है उसी प्रकार एकाग्र मन रख कर संयम-वृत्ति में चलना कठिन है और जिस प्रकार लोह के जौ अथवा चने चबाना अत्यन्त कठिन है उसी प्रकार संयम का पालन करना भी कठिन है।

जहा अग्गिसिहा दित्ता, पाउं होइ सुदुक्करा।
तहा दुक्करं करेउं जे, तारुण्णे समणत्तणं॥४०॥

कठिन शब्दार्थ - **जहा** - जैसे, **अग्गिसिहा** - अग्निशिखा को, **दित्ता** - दीप्त-प्रज्वलित, **पाउं** - पीना, **करेउं** - करता है, **तारुण्णे** - युवावस्था में, **समणत्तणं** - श्रमण धर्म का पालन।

भावार्थ - जिस प्रकार दीप्त-जलती हुई अग्नि की ज्वाला शिखा को पीना अत्यन्त कठिन होता है उसी प्रकार तरुण अवस्था में साधुपना पालन करना अत्यन्त कठिन है।

जहा दुक्खं भरेउं जे, होइ वायस्स कोत्थलो।
तहा दुक्खं करेउं जे, कीवेणं समणत्तणं॥४१॥

कठिन शब्दार्थ - **दुक्खं** - कठिन, **भरेउं** - भरना, **वायस्स** - हवा से, **कोत्थलो** - कोत्थल-थैला, **कीवेणं** - कायर के द्वारा।

भावार्थ - जिस प्रकार कपड़े के कोथले को हवा से भरना कठिन है उसी प्रकार कृपण-कायर एवं निर्बल से श्रमणत्व-साधुपना पाला जाना दुष्कर है।

जहा तुलाए तोलेउं, दुक्करो मंदरो गिरी।
तहा णिहुयणीसंकं, दुक्करं समणत्तणं॥४२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **तुलाए** - तराजू से, **तोलेउं** - तोलना, **मंदरो गिरी** - मेरु पर्वत को, **णिहुय** - निश्चल, **णीसंकं** - निःशंक।

भावार्थ - जिस प्रकार सुमेरु पर्वत को तराजु से तोलना कठिन है उसी प्रकार कामभोगों की अभिलाषा और शरीर के ममत्व एवं सम्यक्त्व के शंकादि दोषों से रहित होकर साधुपने का पालन करना बड़ा कठिन है।

जहा भुयाहिं तरिउं, दुक्करो रयणायरो।
तहा अणुवसंतेणं, दुक्करं दम-सायरो॥४३॥

कठिन शब्दार्थ - **भुयाहिं** - भुजाओं से, **तरिउं** - तैरना, **रयणायरो** - रत्नाकर - समुद्र को, **अणुवसंतेणं** - अनुपशान्त - जिसका कषाय शांत नहीं हुआ है, **दमसागरो** - दम (संयम) के सागर को।

भावार्थ - जिस प्रकार रत्नाकर समुद्र को भुजाओं से तैरना कठिन है उसी प्रकार कषायों को उपशान्त किये बिना संयम रूपी समुद्र को तैरना बड़ा कठिन है।

विवेचन - प्रस्तुत आठ गाथाओं (क्र. ३६ से ४३ तक) में विविध उपमाओं द्वारा श्रमण धर्म के आचरण को अतीव दुष्कर सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। ये उपमाएं इस प्रकार हैं-

१. लोहे का भार उठाने के समान।
२. आकाशगंगा के स्रोत को तैरने के समान।
३. प्रवाह के विपरीत दिशा में तैरने के समान।
४. बालू के कवल के समान निःस्वाद।
५. खड्ग की धार पर चलने के समान।
६. भुजाओं से समुद्र को पार करने के समान।
७. सर्प की तरह एकाग्र दृष्टि से चलने के समान।
८. लोहे के जौ चबाने के समान।
९. प्रज्वलित अग्निशिखा को पीने के समान।
१०. वस्त्र के थैले को हवा से भरने के समान।
११. मेरु पर्वत को तराजू से तौलने के समान।
१२. भुजाओं से समुद्र को तैरने के समान।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनुपशांत के लिए संयम पालना दुष्कर है

भुंज माणुस्सए भोए, पंच लक्खणए तुमं।
भुत्त भोगी तओ जाया! पच्छा धम्मं चरिस्ससि॥४४॥

कठिन शब्दार्थ - **भुंज** - भोगो, **माणुस्सए** - मनुष्य संबंधी, **भोए** - भोगों को, **पंचलक्खणए** - पांच लक्षण - शब्द-रूप-रस-गंध-स्पर्श वाले, **भुत्तभोगी** - भुक्त भोगी होकर, **जाया** - हे पुत्र! **पच्छा** - बाद में, **धम्मं** - धर्म को, **चरिस्ससि** - आचरण करना।

भावार्थ - मृगापुत्र के माता-पिता उसे कहते हैं कि तरुण अवस्था में संयम का पालन करना बड़ा कठिन है इसलिए हे पुत्र! अभी तो तुम शब्द-रूप-रस-गन्ध-स्पर्श रूप पाँच लक्षण वाले मनुष्य सम्बन्धी भोगों को भोगो, इसके बाद भुक्तभोगी होकर वृद्धावस्था में धर्म का पालन करना।

विवेचन - माता पिता प्रस्तुत गाथा में मृगापुत्र को सुझाव देते हैं कि यदि इतनी दुष्करताओं और कठिनाइयों के बावजूद भी तेरी इच्छा श्रमण धर्म के पालन की हो तो पहले पंचेन्द्रिय विषय भोगों को भोग कर फिर साधु बन जाना।

नरकादि गतियों के दुःखों का वर्णन

सो बिंत अम्मापियरो, एवमेयं जहाफुडं।
इहलोगे णिप्पिवासस्स, णत्थि किंचि वि दुक्करं॥४५॥

कठिन शब्दार्थ - **बिंत** - बोला, **अम्मापियरो** - माता पिता से, **जहाफुडं** - जैसा कहा है, **णिप्पिवासस्स** - तृष्णा रहित, **किंचि वि** - कुछ भी, **णत्थि** - नहीं, **दुक्करं** - दुष्कर।

भावार्थ - वह मृगापुत्र कहने लगा कि - हे माता पिताओ! संयम का पालन करना ऐसा ही कठिन है जैसा आपने कहा है किन्तु इस लोक में अर्थात् स्वजन सम्बन्धी परिग्रह तथा काम-भोगों में निःस्पृह बने हुए पुरुष के लिये कुछ भी कठिन नहीं है।

सारीरमाणसा चेव, वेयणाओ अणंतसो।
मए सोढाओ भीमाओ, असइं दुक्ख-भयाणि य॥४६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **सारीरमाणसा** - शारीरिक और मानसिक, **वेयणाओ** - वेदना, **अणंतसो** - अनन्तबार, **सोढाओ** - सहन की है, **भीमाओ** - भयंकर, **असइं** - अनेक बार, **दुक्खभयाणि** - दुःखं और भयों का।

भावार्थ - हे माता पिताओ! मैंने अनन्त बार भयंकर शारीरिक और मानसिक वेदनाएँ सहन की है और अनेक बार दुःख और सात भयों का अनुभव किया है।

जरामरणकंतारे, चाउरंते भयागरे।
मए सोढाणि भीमाणि, जम्माणि मरणाणि य॥४७॥

कठिन शब्दार्थ - **जरामरणकंतारे** - जरा और मृत्यु रूपी संसार कान्तार में, **चाउरंते** - चार गति रूप अंत वाले, **भयागरे** - भयंकर, **जम्माणि** - जन्म, **मरणाणि** - मरण।

भावार्थ - चार गति वाले भयंकर जरा-मरण रूपी कान्तार-अटवी में मैंने भयंकर जन्म और मरण के दुःख अनेक बार सहे हैं।

जहा इहं अगणी उण्हो, इत्तो अणंतगुणो तहिं।
णरएसु वेयणा उण्हा, अस्साया वेइया मए॥४८॥

कठिन शब्दार्थ - **अगणी** - अग्नि, **उण्हो** - उष्ण, **इत्तो** - उससे, **अणंतगुणो** - अनन्त गुणा, **उण्हो** - उष्ण, **णरएसु** - नरकों में, **वेयणा** - वेदना, **अस्साया** - असाता, **मए** - मैंने।

भावार्थ - यहाँ जैसी अग्नि उष्ण है उससे अनन्तगुणा उष्णता उन नरकों में हैं उस उष्णवेदना रूप असाता को मैंने अनन्ती बार वेदन की है, सहन की है।

विवेचन - नरकों में बादर अग्नि नहीं है किन्तु वहां की पृथ्वी का ही ऐसा स्पर्श है।

जहा इहं इमं सीयं, इत्तो अणंतगुणं तहिं।
णरएसु वेयणा सीया, अस्साया वेइया मए॥४९॥

कठिन शब्दार्थ - **सीयं** - शीत, **अणंतगुणं** - अनंत गुना, **सीया** - शीत।

भावार्थ - यहाँ जैसी यह शीत है इससे अनन्तगुणा अधिक शीत उन नरकों में हैं। उस शीत-वेदना रूप असाता को मैंने अनन्तीबार वेदन की है-सहन की है।

कंदंतो कंदुकुंभीसु, उड्ढपाओ अहोसिरो।
हुयासणे जलंतम्मि, पक्कपुव्वो अणंतसो॥५०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **कंदुकुंभीसु** - कंदु कुम्भियों में, **उड्ढपाओ** - ऊंचे पाँव, **अहोसिरो** - अधो शिर करके, **हुयासणे** - हुताशन-अग्नि में, **जलंतम्मि** - जलती हुई, **पक्कपुव्वो** - पूर्व में पकाया गया, **अणंतसो** - अनंती बार, **कंदंतो** - क्रन्दन करता हुआ।

भावार्थ - कंदुकुम्भियों में (वैक्रिय द्वारा बनाये हुए पकाने के बरतन विशेषों में) ऊँचे पांव तथा नीचे शिर करके आक्रन्दन करता हुआ मैं जलती हुई हुताशन-अग्नि में अनन्ती बार पकाया गया हूँ।

महादवग्गिसंकासे, मरुम्मि वइरवालुए।
कलंब-वालुयाए य, दड्ढपुव्वो अणंतसो॥५१॥

कठिन शब्दार्थ - **महादवग्गिसंकासे** - महाभयंकर दावाग्नि के सदृश, **मरुम्मि** - मरु प्रदेश में, **वइरवालुए** - वज्र वालुका-वज्र के समान कर्कश कंकरीली रेत) में, **कलंबवालुयाए**- कदम्ब नदी की बालुका में, **दड्ढपुव्वो** - जलाया गया।

भावार्थ - महादावाग्नि के समान और मरुदेश की बालुका के समान नरक की वज्र-बालुका में और कदम्ब नदी की बालुका में अनन्ती बार मैं जलाया गया हूँ।

रसंतो कंदुकुंभीसु, उड्ढं बद्धो अबंधवो।
करवत्तकरकयाईहिं, छिण्णपुव्वो अणंतसो॥५२॥

कठिन शब्दार्थ - **रसंतो** - रोता चिल्लाता हुआ, **उड्ढं** - ऊर्ध्व, **बद्धो** - बांधा गया, **अबंधवो** - बंधु बांधवों से रहित, **करवत्तकरकयाईहिं** - करवत और क्रकच आदि शस्त्र विशेषों से, **छिण्णपुव्वो** - पहले छेदा गया हूं।

भावार्थ - दुःख के मारे चिल्लाते हुए बान्धव स्वजनादि की शरण एवं सहायता रहित मुझे कंदुकुम्भियों के ऊपर अर्थात् नीचे कंदुकुम्भी रख कर ऊपर किसी वृक्षादि की शाखा में बांध दिया गया और फिर करवत और क्रकच आदि शस्त्र विशेषों से मैं अनन्ती बार पूर्वभवों में छेदन-भेदन किया गया हूँ।

अइतिक्खकंटगाइण्णे, तुंगे सिंबलिपायवे।
खेवियं पासबद्धेणं, कड्ढोकड्ढाहिं दुक्करं॥५३॥

कठिन शब्दार्थ - **अइतिक्खकंटगाइण्णे** - अत्यंत तीखे कांटों से व्याप्त, **तुंगे** - उत्तुंग-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ऊंचे, **सिंबलिपायवे** - शाल्मलि वृक्ष पर, **खेवियं** - भोग चुका हूं, **पासबद्धेणं** - पाश से बांध कर, **कड्ढोकड्ढाहिं** - इधर-उधर खींचतान करने से।

भावार्थ - अत्यन्त तीक्ष्ण कांटों से व्याप्त ऊँचे शाल्मलि वृक्ष पर मुझे पाश से बांध दिया गया तथा काँटों पर इधर-उधर खींचे जाने से मैंने अत्यन्त असह्य दुःखों को सहन किया है।

महाजंतेसु उच्छू वा, आरसंतो सुभेरवं।
पीडिओमि सकम्मेहिं, पावकम्मो अणंतसो॥५४॥

कठिन शब्दार्थ - **महाजंतेसु** - बड़े बड़े यंत्रों (कोल्हुओं) में, **उच्छू** - इक्षु की तरह, **आरसंतो** - आक्रन्दन करता हुआ, **सुभेरवं** - अत्यंत भयानक, **पीडिओमि** - पीला गया हूं, **सकम्मेहिं** - अपने कर्मों के कारण, **पावकम्मो** - पाप कर्मा, **अणंतसो** - अनन्त बार।

भावार्थ - अत्यन्त रौद्रतापूर्वक रुदन करता हुआ पापकर्मों वाला मैं अनन्ती बार अपने अशुभ कर्मों से बड़े-बड़े यंत्रों में डाल कर इक्षु-गन्ने के समान पीला गया हूँ।

कूवंतो कोलसुणएहिं, सामेहिं सबलेहि य।
पाडिओ फालिओ छिण्णो, विप्फुरंतो अणेगसो॥५५॥

कठिन शब्दार्थ - **कूवंतो** - चिल्लाते हुए, **कोलसुणएहिं** - सूअर और कुत्ते के रूप में, **सामेहिं** - श्याम, **सबलेहि** - शबल नामक परमाधार्मिक देवों द्वारा, **पाडिओ** - नीचे गिराया गया, **फालिओ** - फाड़ा गया, **छिण्णो** - छेदा गया।

भावार्थ - आक्रन्दन करता हुआ तथा भय से इधर-उधर दौड़ता हुआ मैं सूअर और कुत्तों का रूप धारण करने वाले श्याम और शबल जाति के परमाधार्मिक देवों द्वारा भूमि पर गिराया गया जीर्ण कपड़े के समान चीर दिया गया और लकड़ी के समान छेदा गया।

असीहिं अयसीवण्णेहिं, भल्लीहिं पट्टिसेहि य।
छिण्णो भिण्णो विभिण्णो य, उववण्णो पावकम्मुणा॥५६॥

कठिन शब्दार्थ - **असीहिं** - तलवारों से, **अयसीवण्णेहिं** - अलसी के फूलों के समान नीले रंग की, **भल्लीहिं** - भालों से, **पट्टिसेहि** - पडिस-लोहे के दण्डों से, **भिण्णो** - भेदा गया, **विभिण्णो** - खण्ड खण्ड कर दिया गया, **उववण्णो** - उत्पन्न हुआ।

भावार्थ - पापकर्मों से नरक में उत्पन्न हुआ मैं अलसी के वर्ण सरीखी तलवारों से भालों से और पट्टिश नामक शस्त्र विशेष से (लोहे के दण्डों से) छेदन किया गया, भेदन किया गया और विभिन्न-छोटे-छोटे टुकड़े - किया गया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अवसो लोहरहे जुत्तो, जलंते समिलाजुए।
चोइओ तुत्तजुत्तेहिं, रोज्झो वा जह पाडिओ॥५७॥

कठिन शब्दार्थ - **अवसो** - विवश बना, **लोहरहे** - लोहे के रथ में, **जुत्तो** - जोता गया, **तुत्तजुत्तेहिं** - चाबुक और रस्सी से, **जलंते** - जलते हुए, **समिलाजुए** - समिला (जुए के छेदों में लगाने वाली कील) से युक्त जुए वाले, **चोइओ** - हांका गया, **रोज्झो** - रोझ।

भावार्थ - परवश बने हुए मुझे जलते हुए समिला युक्त जुआ वाले लोह के रथ में जोड़ा गया और चाबुक और जोतों से हाँका गया तथा लाठी आदि से पीटा गया एवं रोझ के समान भूमि पर गिराया गया।

हुयासणे जलंतम्मि, चियासु महिसो विव।
दड्ढो पक्को य अवसो, पावकम्मेहिं पाविओ॥५८॥

कठिन शब्दार्थ - **हुयासणे** - आग में, **जलंतम्मि** - जलती हुई, **चियासु** - चिताओं में, **महिसो विव** - भैंसे की तरह, **दड्ढो** - जलाया गया, **पक्को** - पकाया गया।

भावार्थ - पापकर्मों से परवश बना हुआ पापी मैं परमाधार्मिक देवों द्वारा बनाई हुई ईंधन की चिताओं में जलती हुई हुताशन - अग्नि में भैंसे के समान जलाया गया और पकाया गया।

बला संडासतुंडेहिं, लोहतुंडेहिं पक्खिहिं।
विलुत्तो विलवंतोहं, ढंकगिद्धेहिं अणंतसो॥५९॥

कठिन शब्दार्थ - **बला** - बलात् (जबरन), **संडासतुंडेहिं** - संडासी जैसी चोंच वाले, **लोहतुंडेहिं** - लोहे के समान कठोर मुख वाले, **पक्खिहिं** - पक्षियों द्वारा, **विलुत्तो** - नोचा गया हूं, **विलवंतोहं** - विलाप करता हुआ मैं, **ढंकगिद्धेहिं** - ढंक और गृद्ध पक्षियों द्वारा।

भावार्थ - विलाप करता हुआ मैं बलपूर्वक संडासी के समान मुख वाले और लोह के समान कठोर मुख वाले पक्षिओं द्वारा और ढंक और गृद्ध पक्षिओं द्वारा अनन्ती बार छिन्न-भिन्न किया गया हूं।

विवेचन - नरकों में पक्षी नहीं होते हैं। नारकी जीव ही स्वयं वैक्रिय शक्ति से पक्षी जैसे बन जाते हैं।

तण्हाकिलंतो धावंतो, पत्तो वेयरणिं णइं।
जलं पाहिं त्ति चिंतंतो, खुरधाराहिं विवाइओ॥६०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **तण्हाकिलंतो** - प्यास से व्याकुल होकर, **धावंतो** - दौड़ता हुआ, **पत्तो** - प्राप्त हुआ, **वेयरणिं** - वैतरणी, **णइं** - नदी, **जलं** - जल को, **पाहिं त्ति** - पीऊंगा, **चिंतंतो** - चिंतन करता हुआ, **खुरधाराहिं** - क्षुरधाराओं से, **विवाइओ** - चीरा गया।

भावार्थ - तृषा से अत्यन्त पीड़ित होकर जल पीऊँगा, इस प्रकार विचार करता हुआ अर्थात् जल पीने की इच्छा से दौड़ता हुआ मैं वैतरणी नदी को प्राप्त हुआ तो वहाँ क्षुरधाराओं से अर्थात् उस वैतरणी नदी की धारा उस्तरे की धार के समान अति तीक्ष्ण थी जिससे मैं विनाश को प्राप्त हुआ।

उण्हाभितत्तो संपत्तो, असिपत्तं महावणं।
असिपत्तेहिं पडंतेहिं, छिण्णपुव्वो अणेगसो॥६१॥

कठिन शब्दार्थ - **उण्हाभितत्तो** - गर्मी से संतप्त होकर, **संपत्तो** - प्राप्त हुआ, **असिपत्तं** - असि पत्र, **महावणं** - महावन, **असिपत्तेहिं** - असि पत्र - तलवार के समान तीखे पत्रों से, पडंतेहिं - गिरने से, **छिण्णपुव्वो** - पूर्व में छेदा गया।

भावार्थ - उष्णता से घबराया हुआ मैं असिपत्र (तलवार) के समान तीक्ष्ण पत्तों वाले वृक्षों के महावन में प्राप्त हुआ और इच्छा करता था कि अब मुझे वृक्षों की छाया में शान्ति मिलेगी, किन्तु तलवार के समान तीक्ष्ण पत्तों के गिरने से मैं अनेक बार पूर्वजन्मों में छेदन किया गया हूँ।

मुग्गरेहिं मुसुंढीहिं, सूलेहिं मुसलेहि य।
गयासं भग्गगत्तेहिं, पत्तं दुक्खं अणंतसो॥६२॥

कठिन शब्दार्थ - **मुग्गरेहिं** - मुद्गरों से, **मुसुंढीहिं** - मुसुण्डियों, **सूलेहिं** - शूलों, **मुसलेहि** - मूसलों से, **गयासं** - गत आशा-सभी ओर से निराश हुए, **भग्गगत्तेहिं** - गात्रों को (शरीर को) भग्न कर दिया, **पत्तं** - पाया हूं, **दुक्खं** - दुःख।

भावार्थ - मुद्गरों से मुसंढी नामक, शस्त्र विशेष से त्रिशूलों से और मूसलों से मेरे गात्रों को भग्न कर दिया जिससे गत आशा - मेरे जीवन की आशा नष्ट हो गई इस प्रकार मैंने अनन्ती बार दुःख प्राप्त किया है।

खुरेहिं तिक्खधाराहिं, छुरियाहिं कप्पणीहि य।
कप्पिओ फालिओ छिण्णो, उक्कित्तो य अणेगसो॥६३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **खुरेहिं** - उस्तरों से, **तिक्खधाराहिं** - तीक्ष्ण धार वाले, **छुरियाहिं** - छुरियों से, **कप्पणीहि** - कैंचियों से, **कप्पिओ** - काटा गया, **उक्कित्तो** - चमड़ी उधेड़ी गई।

भावार्थ - परमाधार्मिक देवों द्वारा मैं कतरणियों से अनेक बार कतरा गया, छुरियों से चीर कर दो टुकड़े कर दिया गया और तीक्ष्ण धार वाले उस्तरों से छेदन कर दिया गया और अनेक बार मेरी चमड़ी उतार कर काचरे के समान छील दिया गया।

पासेहिं कूडजालेहिं, मिओ वा अवसो अहं।
वाहिओ बद्धरुद्धो य, बहुसो चेव विवाइओ॥६४॥

कठिन शब्दार्थ - **पासेहिं** - पाशों से, **कूडजालेहिं** - कूट जालों से, **मिओ** - मृग, **वाहिओ** - छल पूर्वक पकड़ा गया, **बद्धरुद्धो** - बांध कर रोका गया, **बहुसो** - अनेक बार, **विवाइओ** - विनष्ट किया गया।

भावार्थ - मृगवत् परवश पड़ा हुआ मैं पाशों से और कूटपाशों से धोखा देकर बांध कर रोक लिया गया और बहुत बार मारा गया।

गलेहिं मगरजालेहिं, मच्छो व अवसो अहं।
उल्लिओ फालिओ गहिओ, मारिओ य अणंतसो॥६५॥

कठिन शब्दार्थ - **गलेहिं** - गलों - मछली को फंसाने के कांटों, **मगरजालेहिं** - मगरों को पकड़ने के जालों से, **मच्छो व** - मछली के समान, **अवसो** - परवश, **उल्लिओ**- खींचा गया, **गहिओ** - पकड़ा गया, **मारिओ** - मारा गया।

भावार्थ - बड़िश यंत्र से मगर के आकार वाले जालों से मछली के समान परवश मैं अनन्ती बार खींचा गया, फाड़ा गया, पकड़ा गया और मारा गया।

विदंसएहिं जालेहिं, लिप्पाहिं सउणो विव।
गहिओ लग्गो य बद्धो य, मारिओ य अणंतसो॥६६॥

कठिन शब्दार्थ - **विदंसएहिं** - बाज पक्षियों से, **जालेहिं** - जालों से, **लिप्पाहिं** - लेपों से, **सउणो विव** - पक्षी की भांति, **गहिओ** - पकड़ा गया, **लग्गो** - चिपकाया गया, **बद्धो** - बांधा गया, **मारिओ** - मारा गया।

भावार्थ - बाज पक्षियों से, जालों से, लेपों से (पंख चिपक जाने वाले द्रव्यों से) पक्षी के समान व अनन्ती बार पकड़ा गया, चिपटाया गया, बांधा गया और मारा गया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कुहाडफरसुमाईहिं, वड्ढईहिं दुमो विव।
कुट्टिओ फालिओ छिण्णो, तच्छिओ य अणंतसो॥६७॥

कठिन शब्दार्थ - **कुहाडफरसुमाईहिं** - कुल्हाड़ी और फरसे आदि से, **वड्ढईहिं** - बढ़ई लोगों द्वारा, **दुमो विव** - वृक्ष की तरह, **कुट्टिओ** - कूटा गया, **तच्छिओ** - छीला गया।

भावार्थ - सुथारों का रूप धारण किये हुए परमाधार्मिक देवों द्वारा कुल्हाड़े, फरसे आदि से मेरे अनन्ती बार वृक्ष के समान टुकड़े कर दिये गये, मुझे फाड़ा गया, छेदन किया गया और चमड़ी उतार कर छील दिया गया।

चवेडमुट्ठिमाइहिं, कुमारेहिं अयं विव।
ताडिओ कुट्टिओ भिण्णो, चुण्णिओ य अणंतसो॥६८॥

कठिन शब्दार्थ - **चवेडमुट्ठिमाइहिं** - चपत और मुक्के आदि से, **कुमारेहिं** - लुहारों के द्वारा, **अयं विव** - लोहे की भांति, **ताडिओ** - पीटा गया, **चुण्णिओ** - चूर्ण की तरह चूर चूर कर दिया गया।

भावार्थ - जिस प्रकार लोहार लोह को कूटते-पीटते हैं उसी प्रकार मैं भी थप्पड़ और मुष्टि आदि से अनन्ती बार पीटा गया कूटा गया भेदन किया गया और चूर्ण के समान बारीक पीस डाला गया।

तत्ताइं तंबलोहाइं, तउयाइं सीसगाणि य।
पाइओ कलकलंताइं, आरसंतो सुभेरवं॥६९॥

कठिन शब्दार्थ - **तत्ताइं** - तपाया हुआ गर्मागर्म, **तंबलोहाइं** - ताम्बा और लोहा, **तउयाइं** - रांगा, **सीसगाणि** - सीसा, **पाइओ** - पिलाया गया, **कलकलंताइं** - कलकलाता हुआ, **आरसंतो** - आक्रन्द करते हुए, **सुभेरवं** - भयंकर।

भावार्थ - प्यास से अत्यन्त पीड़ित होने पर जब मैंने जल की प्रार्थना की तब उन परमाधार्मिक देवों ने बहुत जोर से अरडाट शब्द करते हुए मुझे बलपूर्वक तपाया हुआ तथा कलकल शब्द करता हुआ ताम्बा और लोहा त्रपुष-कथीर और सीसा पिला दिया।

तुहं पियाइं मंसाइं, खंडाइं सोल्लगाणि य।
खाविओ मि समंसाइं, अग्गिवण्णाइ अणेगसो॥७०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **तुहं** - तुझे, **पियाइं** - प्रिय, **मंसाइं** - मांस, **खंडाइं** - टुकड़े टुकड़े किया हुआ, **सोल्लगाणि** - शूल में पिरो कर पकाया हुआ, **खाविओमि** - मुझे खिलाया गया, **समंसाइं** - अपने ही शरीर का मांस, **अग्गिवण्णाइ** - अग्नि के समान लाल करके।

भावार्थ - जिन प्राणियों को इस लोक में मांस अधिक प्रिय होता है उनकी नरक में क्या दशा होती है सो कहते हैं - तुझे मांस अधिक प्रिय था ऐसा याद दिला कर परमाधार्मिक देवों ने मेरे शरीर के मांस को काट कर भूर्ता कर भड़ीता बना कर और अग्नि के समान लाल करके मुझे अनेक बार खिलाया।

तुहं पिया सुरा सीहू, मेरओ य महूणि य।
पाइओ मि जलंतीओ, वसाओ रुहिराणि य॥७१॥

कठिन शब्दार्थ - **सुरा** - सुरा, **सीहू** - सीधु, **मेरओ** - मेरक, **महूणि** - मधु से बनी मदिरा, **पाइओमि** - मुझे पिलाया गया, **जलंतीओ** - जलती हुई, **वसाओ** - वसा (चर्बी), **रुहिराणि** - रुधिर।

भावार्थ - जिनको इस लोक में मदिरा प्रिय होती है, उनकी नरक में क्या दशा होती है सो कहते हैं - मदिरा, सीधु - ताड़ वृक्ष की बनी हुई मदिरा तथा मेरक - गुड़ से बनी हुई मदिरा और महुए से बनी हुई मदिरा, ये सभी मदिराएँ तुझे प्रिय थीं, ऐसा याद दिला कर परमाधार्मिक देवों ने जलती हुई चर्बी और रुधिर मुझे पिलाया।

णिच्चं भीएण तत्थेण, दुहिएण वहिएण य।
परमा दुहसंबद्धा, वेयणा वेइया मए॥७२॥

कठिन शब्दार्थ - **णिच्चं** - नित्य, **भीएण** - भयभीत, **तत्थेण** - संत्रस्त, **दुहिएण** - दुःखित, **वहिएण** - व्यथित रहते हुए, **परमा** - परम, **दुहसंबद्धा** - दुःख पूर्ण, **वेयणा** - वेदना, **वेइया** - अनुभव किया, **मए** - मैंने।

भावार्थ - अपने कथन का उपसंहार करता हुआ मृगापुत्र कहता है कि हे माता-पिताओ! सदैव भयभीत बने हुए त्रस्त-उद्वेग पाये हुए, दुःखित बने हुए और व्यथित बने हुए अर्थात् कम्पायमान शरीर वाले मेरे इस जीव ने अत्यन्त दुःखों से युक्त वेदना वेदन की है, सहन की है।

तिव्वचंडप्पगाढाओ, घोराओ अइदुस्सहा।
महब्भयाओ भीमाओ, णरएसु वेइया मए॥७३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **तिव्व चंडप्पगाढाओ** - तीव्र, प्रचण्ड और प्रगाढ़, **घोराओ** - घोर, **अइदुस्सहा** - अत्यंत दुःसह, **महब्भयाओ** - महाभयोत्पादक, **भीमाओ** - भयंकर, **णरएसु** - नरकों में।

भावार्थ - विपाक की अपेक्षा तीव्र और उत्कृष्ट तथा लम्बी स्थिति वाली, घोर, अत्यन्त दुस्सह, महान् भय वाली, भयंकर-सुनने मात्र से डर पैदा करने वाली असाता वेदना मैंने नरकों में वेदन की है, भोगी है।

जारिसा माणुसे लोए, ताया! दीसंति वेयणा।
इत्तो अणंतगुणिया, णरएसु दुक्ख वेयणा॥७४॥

कठिन शब्दार्थ - **जारिसा** - जैसी, **माणुसे लोए** - मनुष्य लोक में, **ताया** - पिताजी, **दीसंति** - देखी जाती है, **इत्तो** - इससे, **अणंतगुणिया** - अनन्त गुणी, **दुक्खवेयणा** - दुःख पूर्ण वेदनाएं।

भावार्थ - हे माता-पिताओ! मनुष्य लोक में जैसी वेदना दिखाई देती है नरकों में उससे अनन्त गुणा दुःख रूप असाता वेदना है।

सव्वभवेसु अस्साया, वेयणा वेइया मए।
णिमेसंतरमित्तंपि, जं साया णत्थि वेयणा॥७५॥

कठिन शब्दार्थ - **सव्वभवेसु** - सभी भवों में, **अस्साया** - असाता, **णिमेसंतरमित्तंपि** - निमेष मात्र (एक पल) भी, **साया** - साता (सुख) रूप, **णत्थि** - नहीं है।

भावार्थ - सभी भवों में मैंने असाता वेदना वेदी है क्योंकि निमेष मात्र (आँख मींच कर खोलने में जितना समय लगता है उतने समय के लिए) भी साता वेदना नहीं है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथाओं (गाथा क्रं. ४६ से ७५ तक) में मृगापुत्र ने चारों गतियों में विशेषतः नरक गति में अपने द्वारा अनुभव किये गये रोमाञ्चक दुःखों का वर्णन किया है। यह वर्णन कपोल कल्पित नहीं है अपितु जातिस्मरणज्ञान से देखा-जाना हुआ है। इन दुःखों के वर्णन के द्वारा मृगापुत्र ने अपने माता-पिता को यह समझाने की कोशिश की है कि नरकादि गतियों के दुःखों के सामने संयम के दुःख कुछ भी नहीं है। और सभी दुःखों से छूटने का एक मात्र उपाय संयम है जो सर्वोत्कृष्ट आत्मिक सुख को प्रदान करने वाला है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निष्प्रतिकर्मता रूप कष्ट

तं बिंत अम्मापियरो, छंदेणं पुत्त! पव्वया।
णवरं पुण सामण्णे, दुक्खं णिप्पडिकम्मया॥७६॥

कठिन शब्दार्थ - तं - उससे, **बिंत** - कहने लगे, **अम्मापियरो** - माता पिता, **छंदेणं**- स्वेच्छा पूर्वक, **पव्वया** - प्रव्रज्या, **णवरं** - इतना विशेष है, **सामण्णे** - साधुपने में, **णिप्पडिकम्मया** - निष्प्रतिकर्मता - रोगादि होने पर चिकित्सा न कराना।

भावार्थ - मृगापुत्र का उपरोक्त कथन सुन कर उसके माता-पिता उससे कहने लगे कि हे पुत्र! यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो अपनी इच्छानुसार प्रव्रज्या अंगीकार करो किन्तु संयम लेने के पश्चात् साधुपने में निष्प्रतिकर्मता - यदि शरीर में कोई रोग उत्पन्न हो जाय, तो उसका प्रतीकार नहीं कराना, यह बड़ा कष्ट है।

नोट - यह कथन जिनकल्प की अपेक्षा से है। जिनकल्पी मुनि रोगादि के होने पर भी उसकी निवृत्ति के लिए किसी प्रकार की औषधि का उपयोग नहीं करते। किन्तु जो स्थविरकल्पी हैं, वे अपनी इच्छा से किसी औषधि का भले ही उपयोग न करें, परन्तु निरवद्य औषधोपचार का उनके लिए प्रतिषेध नहीं है।

मृगचर्या और साधुचर्या

सो बेइ अम्मापियरो, एवमेयं जहाफुडं।
पडिकम्मं को कुणइ, अरण्णे मियपक्खिणं॥७७॥

कठिन शब्दार्थ - **जहाफुडं** - जैसा आपने कहा, **पडिकम्मं** - प्रतिकर्म (चिकित्सा), **को** - कौन, **कुणइ** - करता है, **अरण्णे** - अरण्य - जंगल में, **मियपक्खिणं** - मृग आदि पशु और पक्षियों की।

भावार्थ - वह मृगापुत्र कहने लगा कि हे माता-पिताओ! यह इसी प्रकार है जिस प्रकार आपने बतलाया है, किन्तु आप यह बतलावें कि अरण्य-वन में मृग और पक्षियों के रोग का प्रतिकर्म-उपचार कौन करता है? अर्थात् कोई नहीं करता। फिर भी वे जीते हैं और आनन्दपूर्वक यथेच्छ विचरते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एगब्भूओ अरण्णे वा, जहा उ चरइ मिगो।
एवं धम्मं चरिस्सामि, संजमेण तवेण य॥७८॥

कठिन शब्दार्थ - **एगब्भूओ** - अकेला ही, **चरइ** - विचरता है, **मिगो** - मृग, **चरिस्सामि** - आचरण करूंगा।

भावार्थ - जैसे अरण्य (जंगल) में मृग अकेला ही विचरता है, वैसे ही मैं भी संयम और तप से युक्त होकर धर्म का पालन करूँगा।

जया मिगस्स आयंको, महारण्णम्मि जायइ।
अच्छंतं रुक्खमूलम्मि, को णं ताहे तिगिच्छइ॥७९॥

कठिन शब्दार्थ - **मिगस्स** - मृग के, **आयंको** - आतंक - शीघ्र घातक रोग, **महारण्णम्मि**- महारण्य में, **जायइ** - उत्पन्न हो जाता है, **अच्छंतं** - बैठे हुए की, **रुक्खमूलम्मि**- वृक्ष के नीचे, **को णं** - कौन, **ताहे** - तब, **तिगिच्छइ** - चिकित्सा करता है।

भावार्थ - भयानक वन में जब मृग के कोई रोग हो जाता है तब उस रोग से पीड़ित होकर किसी वृक्ष के नीचे बैठे हुए उस मृग की कौन चिकित्सा करता है? अर्थात् कोई नहीं करता है।

विवेचन - पीड़ा के तीन भेद हैं - आधि, व्याधि और उपाधि। मानसिक दुःख को आधि और शारीरिक दुःख को व्याधि तथा बाहरी निमित्तों से होने वाले दुःख को उपाधि कहते हैं। व्याधि के दो भेद हैं - रोग और आतंक। ज्वर आदि को रोग कहते हैं। रोग थोड़े समय में भी उपशांत हो सकता है और लम्बे समय तक भी चल सकता है। जैसे कि - इस अवसर्पिणी काल के चौथे चक्रवर्ती सनत्कुमार के शरीर में दीक्षा लेने के बाद कण्डू (खुजली), ज्वर, कास (खांसी), श्वास, स्वर भंग, आँख की पीड़ा और पेट की पीड़ा, ये सात रोग हो गये थे सो सात सौ वर्ष रहे और मुनि ने समभाव पूर्वक सहन किये। **"सद्योघाती आतंक"** ऐसा रोग जिसके होने पर प्राणी की थोड़े ही समय में अर्थात् दो चार दिन में मृत्यु हो जाय, उसे 'आतंक' कहते हैं। जैसे कि - प्लेग - गांठों की बीमारी, हैजा - एक साथ दस्ते तथा उल्टीये होना, संवत् १९७४ में प्लेग की बीमारी हुई थी जिसमें बहुत से मनुष्यों की मृत्यु हो गई थी। गांव के गांव खाली हो गये थे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को वा से ओसहं देइ, को वा से पुच्छइ सुहं।
को से भत्तं वा पाणं वा, आहरित्तु पणामए॥८०॥

कठिन शब्दार्थ - **ओसहं** - औषधि, **देइ** - देता है, **पुच्छइ** - पूछता है, **सुहं** - सुखसाता, **भत्तं** - आहार, **पाणं** - पानी, **आहरित्तु** - लाकर, **पणामए** - देता है।

भावार्थ - कौन उस मृग को औषधि देता है और कौन उसकी सुखसाता पूछता है तथा कौन उसे आहार और पानी लाकर देता है? अर्थात् कोई नहीं।

जया से सुही होइ, तया गच्छइ गोयरं।
भत्तपाणस्स अट्ठाए, वल्लराणि सराणि य॥८१॥

कठिन शब्दार्थ - **जया** - जब, **सुही** - सुखी (स्वस्थ), **तया** - तब, **गच्छइ** - जाता है, **गोयरं** - गोचर भूमि (चरागाह) में, **भत्तपाणस्स अट्ठाए** - भक्त पान (आहार पानी) के लिये, **वल्लराणि** - वल्लरों (लता निकुंजों), **सराणि** - जलाशयों में।

भावार्थ - जब वह मृग सुखी (नीरोग) हो जाता है तब आहार-पानी के लिए सघन वन में और तालाबों पर गोचरी (मृगचर्या) के लिए जाता है।

खाइत्ता पाणियं पाउं, वल्लरेहिं सरेहि य।
मिगचारियं चरित्ताणं, गच्छइ मिगचारियं॥८२॥

कठिन शब्दार्थ - **खाइत्ता** - खाकर, **पाणियं** - पानी, **पाउं** - पीकर, **वल्लरेहिं** - लता कुंजों, **सरेहि** - सरोवरों में, **मिगचारियं** - मृगचर्या का, **चरित्ताणं** - आचरण करके।

भावार्थ - सघन वन में घास आदि खा कर और जलाशय में पानी पी कर तथा अपनी इच्छानुसार मृगक्रीड़ा करके वह मृग मृगचर्या में चला जाता है।

एवं समुट्ठिओ भिक्खू, एवमेव अणेगए।
मिगचारियं चरित्ताणं, उड्ढं पक्कमइ दिसं॥८३॥

कठिन शब्दार्थ - **समुट्ठिओ** - समुत्थित - संयम में सावधान हुआ, **अणेगए** - अनेक स्थानों में स्थित हो कर, **उड्ढं दिसं** - ऊर्ध्वदिशा (मोक्ष) को, **पक्कमइ** - गमन करता है।

भावार्थ - इस प्रकार संयम में सावधान बना हुआ मृग के समान अनेक स्थानों में भ्रमण करने वाला साधु, मृगचर्या का आचरण करके अर्थात् जैसे रोगादि के हो जाने पर मृग; चिकित्सा की अपेक्षा नहीं रखता, उसी प्रकार चिकित्सा की अपेक्षा न रखता हुआ साधु ऊँची दिशा में अर्थात् मोक्ष में जाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जहा मिगे एगे अणेगचारी, अणेगवासे धुवगोयरे य।
एवं मुणी गोयरियं पविट्ठे, णो हीलए णो वि य खिंसएज्जा॥८४॥

कठिन शब्दार्थ - **एगे** - अकेला, **अणेगचारी** - अनेक स्थानों में विचरता है, **अणेगवासे**- अनेक स्थानों में निवास करता है, **धुवगोयरे** - ध्रुवगोचर - सदैव गोचरी से जीवन यापन करता है, **गोयरियं** - गोचरी के लिए, **पविट्ठे** - प्रविष्ट हुआ, **णो हीलए** - अवहेलना न करे, **णो वि खिंसएज्जा** - निन्दा भी न करे।

भावार्थ - जिस प्रकार मृग अकेला अनेक स्थानों पर भ्रमण करने वाला, किसी एक नियत स्थान पर निवास नहीं करने वाला और ध्रुवगोचर-सदैव गोचरी जाने वाला अर्थात् जंगल में घास पानी के लिये जाने वाला एवं जो कुछ मिलता है उसे खा कर संतोष करने वाला होता है उसी प्रकार मुनि भी गोचरी के लिए जाता है। अच्छा आहार न मिलने पर दाता की अथवा आहार की अवहेलना नहीं करे और निन्दा भी नहीं करे।

विवेचन - साधु जीवन में चिकित्सा नहीं कराने से होने वाले कष्ट के उत्तर में मृगापुत्र अपने माता पिता से कहते हैं कि - मैं मृगचर्या के समान आचरण करूंगा। जैसे वन में रहने वाले मृग आदि बीमार पड़ जाते हैं तब कौन उन्हें दवा लाकर देता है, कौन उनसे सुख-दुःख की बात पूछता है? कौन उनके लिए घास-पानी लाकर खिलाता पिलाता है? बेचारे स्वस्थ होने तक आहार पानी छोड़ कर चुपचाप बैठे रहते हैं। जब वे स्वस्थ हो जाते हैं तब स्वयं गोचर भूमि में लता निकुंजों और जलाशयों की खोज करते हैं और वहां यथेच्छ खा पी कर स्व स्थान लौट जाते हैं। उनकी यह मृगचर्या उन्हें कष्टप्रद महसूस नहीं होती। इसी मृगचर्या का मैं भी अनुसरण करूंगा। मैं भी तप संयम के साथ एकाकी हो कर वीतराग प्ररूपित श्रमण धर्म का आचरण करूंगा। अस्वस्थ होने पर मुझे भी किसी से कोई अपेक्षा नहीं रहेगी कि कोई मुझे औषध देता है या नहीं, मुझे कोई सुखसाता पूछता है या नहीं? कोई आहार पानी लाकर देता है या नहीं? किंतु जब मैं स्वस्थ होऊंगा तब स्वयं ही अनेक घरों से निर्दोष आहार पानी लाकर जीवनयापन करूंगा। गोचरी में मुझे अच्छा या बुरा जैसा भी निर्दोष आहार मिलेगा उसे ग्रहण करके मैं दाता का तिरस्कार या निंदा नहीं करूंगा। किंतु समभावों में रमण करूंगा। इस प्रकार मृगचर्या का अनुसरण करने वाले संयम में उद्यत मुनि मोक्ष को प्राप्त कर लेता है अतः मैं भी वैसा ही आचरण करूंगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

माता पिता द्वारा दीक्षा की आज्ञा

मिगचारियं चरिस्सामि, एवं पुत्ता जहासुहं।
अम्मापिऊहिं अणुण्णाओ, जहाइ उवहिं तओ॥८५॥

कठिन शब्दार्थ - जहासुहं - जैसा तुम्हें सुख हो, **अम्मापिऊहिं** - माता पिता की, **अणुण्णाओ** - आज्ञा मिलने पर, **उवहिं** - उपधि का, **जहाइ** - त्याग करता है।

भावार्थ - मृगापुत्र कहने लगा कि हे माता-पिताओ! मैं तो ऊपर बताई हुई मृगसरीखी चर्या का सेवन करूंगा। तब उसके माता-पिता कहने लगे कि हे पुत्र! जैसे तुम्हें सुख हो वैसे ही करो। इस प्रकार माता-पिता की आज्ञा मिलने के पश्चात् मृगापुत्र उपधि अर्थात् द्रव्य उपधि-वस्त्र-आभूषणादि और भाव उपधि-कषाय आदि को छोड़ने के लिए उद्यत हुआ।

मिगचारियं चरिस्सामि, सव्वदुक्ख-विमोक्खणिं।
तुब्भेहिं अब्भणुण्णाओ, गच्छ पुत्त! जहासुहं॥८६॥

कठिन शब्दार्थ - **सव्वदुक्खविमोक्खणिं** - सभी दुःखों से विमुक्त कराने वाली, **तुब्भेहिं**- आपकी, **गच्छ** - जाओ, **पुत्त** - हे पुत्र!

भावार्थ - मृगापुत्र फिर कहता है कि हे माता-पिताओ! आपकी आज्ञा मिलने पर मैं सभी दुःखों से मुक्त कराने वाली मृग सरीखी चर्या को अंगीकार करूँगा। तब उसके माता-पिता कहने लगे कि हे पुत्र! जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो अर्थात् प्रव्रज्या-मृगचर्या के लिए जाओ अर्थात् संयम अंगीकार करो।

मृगापुत्र का संयमी जीवन

एवं सो अम्मापियरो, अणुमाणित्ताण बहुविहं।
ममत्तं छिंदइ ताहे, महाणागो व्व कंचुयं॥८७॥

कठिन शब्दार्थ - **अणुमाणित्ताण** - समझाकर, **ममत्तं** - ममत्व को, **छिंदइ** - तोड़ देता है, **महाणागो व्व** - महानाग (सर्प) के समान, **कंचुयं** - कांचली को।

भावार्थ - इस प्रकार वह मृगापुत्र अनेक प्रकार से माता-पिता की आज्ञा लेकर उसी समय जिस प्रकार महानाग (सर्प) काँचली को छोड़ देता है उसी प्रकार ममत्व भाव को छोड़ने के लिए उद्यत हुआ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इड्ढिं वित्तं च मित्ते य, पुत्तदारं च णायओ।
रेणुयं व पडे लग्गं, णिद्धुणित्ताण णिग्गओ॥८८॥

कठिन शब्दार्थ - **इड्ढिं** - ऋद्धि, **वित्तं** - धन, **मित्ते** - मित्र, **पुत्तदारं** - पुत्र, स्त्री को, **णायओ** - ज्ञातिजनों को, **रेणुयं** - धूल, **पडे लग्गं** - कपड़े में लगी हुई, **णिद्धुणित्ताण** - झाड़-झटक कर, **णिग्गओ** - निकल पड़ा।

भावार्थ - कपड़े पर लगी हुई धूलवत् - धूल के समान राज्यऋद्धि, धन और मित्र तथा पुत्र-स्त्री और जाति तथा स्वजन सम्बन्धियों को छोड़ कर वह मृगापुत्र निकल गया, अर्थात् दीक्षित हो गया।

पंचमहव्वयजुत्तो पंचहिं समिओ तिगुत्तिगुत्तो य।
सब्भिंतर-बाहिरओ, तवोकम्मंसि उज्जुओ॥८९॥

कठिन शब्दार्थ - **पंचमहव्वयजुत्तो** - पांच महाव्रतों से युक्त, **पंचहिं समिओ** - पांच समिति, **तिगुत्तिगुत्तो** - तीन गुप्ति से गुप्त, **सब्भिंतरबाहिरओ** - आभ्यंतर और बाह्य, **तवोकम्मंसि** - तपः कर्म में, **उज्जुओ** - उद्यत।

भावार्थ - पाँच महाव्रतों से युक्त, पाँच समिति सहित और तीन गुप्तियों से गुप्त वह मृगापुत्र आभ्यन्तर और बाह्य तप संयम में उद्यत - सावधान हुआ।

विवेचन - मृगापुत्र के जीव ने पूर्वभव में संयम का पालन किया था और पांच महाव्रत अंगीकार किये थे। वहाँ से काल करके देवलोक में गये। वहाँ से च्यव कर मनुष्य भव में आये। यहाँ संयम लेकर फिर पाँच महाव्रतों का पालन किया। पांच महाव्रत पालन रूप इतना लम्बा शासन काल भगवान् ऋषभदेव का है। इसलिये यह स्पष्ट होता है कि - मृगापुत्र भगवान् ऋषभदेव के शासनकाल में हुए थे।

णिम्ममो णिरहंकारो, णिस्संगो चत्तगारवो।
समो य सव्वभूएसु, तसेसु थावरेसु य॥९०॥

कठिन शब्दार्थ - **णिम्ममो** - ममत्व रहित, **णिरहंकारो** - अहंकार रहित, **णिस्संगो**- संग (आसक्ति) रहित, **चत्तगारवो** - तीन गारवों (गर्वों) का त्यागी, **तसेसु** - त्रसों, **य** - और, **थावरेसु** - स्थावरों, **सव्वभूएसु** - सभी जीवों पर, **समो** - समभाव।

भावार्थ - ममत्व-रहित, अहंकार-रहित, सर्व-संग-रहित और तीन गर्वों (गारव) को छोड़ देने वाला वह मृगापुत्र त्रस और स्थावर सभी प्राणियों पर समभाव रखने लगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा।
समो णिंदापसंसासु, तहा माणावमाणओ॥९१॥

कठिन शब्दार्थ - लाभालाभे - लाभ और अलाभ में, **सुहे** - सुख, **दुक्खे** - दुःख में, **जीविए** - जीवन, **मरणे** - मरण, **णिंदापसंसासु** - निन्दा और प्रशंसा में, **माणावमाणओ**- मान और अपमान में।

भावार्थ - वह मृगापुत्र लाभ और अलाभ में, सुख और दुःख में, जीवन में तथा मरण में निन्दा और प्रशंसा में तथा मान और अपमान में समभाव रखने लगे।

गारवेसु कसाएसु, दंडसल्लभएसु य।
णियत्तो हाससोगाओ, अणियाणो अबंधणो॥९२॥

कठिन शब्दार्थ - गारवेसु - गारवों में, **कसाएसु** - कषायों में, **दंडसल्लभएसु** - दण्ड, शल्य और भयों में, **णियत्तो** - निवृत्त, **हाससोगाओ** - हास्य तथा शोक से, **अणियाणो**- अनिदान-निदान रहित, **अबंधणो** - बंधन रहित।

भावार्थ - निदान रहित बन्धन रहित, मृगापुत्र तीन गारवों (गर्वों) से चार कषायों से तीन दंड से, तीन शल्य से, सात भय से और हास्य तथा शोक से निवृत्त हो गए।

अणिस्सिओ इहं लोए, परलोए अणिस्सिओ।
वासी चंदणकप्पो य, असणे अणसणे तहा॥९३॥

कठिन शब्दार्थ - अणिस्सिओ - अनिश्रित - प्रतिबद्ध रहित, **इहं लोए** - इस लोक में, **परलोए** - परलोक में, **वासी चंदणकप्पो** - वासी चन्दन कल्प - वासी चंदन के समान, **असणे**- अशन, **अणसणे** - अनशन।

भावार्थ - वे मृगापुत्र इस लोक में अनिश्रित - किसी प्रकार की आकांक्षा रहित था और परलोक में भी आकांक्षा रहित था और अशन-आहारादि मिलने पर अथवा अनशन-आहारादि न मिलने पर हर्ष-शोक रहित था और वासी चन्दन के समान था अर्थात् वसूले से शरीर को काटने वाले पुरुष पर और शरीर पर चन्दन से पूजा (अर्चा) करने वाले दोनों पुरुषों पर समान भाव रखने वाले थे।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में मृगापुत्र को इहलोक-परलोक अनिश्रित कहा है। इहलोक से अनिश्रित का मतलब है, इहलोक संबंधी यश-प्रतिष्ठा, आकांक्षा, कामना आदि किसी प्रकार के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लगाव से रहित अर्थात् तपोऽनुष्ठान, संयम पालन आदि से इहलोक में प्राप्त होने वाली प्रतिष्ठा, पारस्परिक सहायता, पदवी, सत्ता, प्रभुता आदि की तथा ऐहलौकिक सुखों आदि की किसी प्रकार की अणुमात्र भी इच्छा न रखने वाला। परलोक से अनिश्रित का आशय है - पारलौकिक सुखों या स्वर्गादि में प्राप्त होने वाली भोग सामग्री, देवांगना आदि की कामना से रहित अर्थात् तप, संयम या चारित्र के अनुकूल सभी धर्मक्रियाएं इहलोक परलोक की इच्छा रहित एक मात्र कर्म क्षय के लिए ही थी।

अप्पसत्थेहिं दारेहिं, सव्वओ पिहियासवो।
अज्झप्पज्झाण-जोगेहिं, पसत्थ-दमसासणो॥९४॥

कठिन शब्दार्थ - **अप्पसत्थेहिं** - अप्रशस्त, **दारेहिं** - द्वारों से, **पिहियासवो** - पिहितास्रव- आसव्रों का निरोध, **अज्झप्पज्झाणजोगेहिं** - अध्यात्म ध्यान योगों से, **पसत्थदमसासणो** - प्रशस्त दम (संयम) और शासन में लीन।

भावार्थ - मृगापुत्र सभी अप्रशस्त द्वारों से निवृत्त हो गए और उसने सभी प्रकार से आस्रवों का निरोध कर दिया तथा आध्यात्मिक शुभ ध्यान के योग से प्रशस्त संयमी और शास्त्रों के ज्ञाता हुए।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में मृगापुत्र के आंतरिक विशुद्ध आचार का कथन किया गया है। मृगापुत्र ने एक ओर से अप्रशस्त योगों-मन, वचन, काया के व्यापारों द्वारा आने वाले कर्मों को रोक लिया था, दूसरी ओर से संवरयुक्त होकर अध्यात्म ध्यान में ही उन्होंने अपने मन, वचन, काया के योगों को लगा दिया जिससे उनका उपशम (दम) और शासन - जिनागमों की शिक्षा या तत्त्वज्ञान भी प्रशस्त हो गया।

महर्षि मृगापुत्र की सिद्धि

एवं णाणेण चरणेण, दंसणेण तवेण य।
भावणाहिं च सुद्धाहिं, सम्मं भावित्तु अप्पयं॥९५॥
बहुयाणि उ वासाणि, सामण्ण-मणुपालिया।
मासिएण उ भत्तेण, सिद्धिं पत्तो अणुत्तरं॥९६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **णाणेण** - ज्ञान से, **चरणेण** - चरित्र से, **दंसणेण** - दर्शन से, **तवेण** - तप से, **भावणाहिं** - भावनाओं से, **सुद्धाहिं** - शुद्ध, **सम्मं** - सम्यक्, **भावित्तु** - भावित करके, **अप्पयं** - अपनी आत्मा को, **बहुयाणि** - बहुत, **वासाणि** - वर्षों तक, **सामण्णं** - साधुता का, **अणुपालिया** - पालन करके, **मासिएण भत्तेण** - मासिक भक्त से, **सिद्धिं** - सिद्धि गति को, **पत्तो** - प्राप्त हुए, **अणुत्तरं** - अनुत्तर-प्रधान।

भावार्थ - इस प्रकार ज्ञान से, दर्शन से, चारित्र से और तप से तथा शुद्ध भावनाओं से सम्यक् प्रकार से अपनी आत्मा को भावित करके बहुत वर्षों तक श्रामन्य-श्रमणपर्याय का पालन करके और मासिक भक्त से अर्थात् एक मास का संथारा करके वे मृगापुत्र अनुत्तर-सर्वश्रेष्ठ सिद्धि गति को प्राप्त हुए।

विवेचन - मृगापुत्र को किन साधनों (उपायों) से कैसी गति प्राप्त हुई, इसका वर्णन प्रस्तुत दो गाथाओं में किया गया है। मृगापुत्र को अनुत्तर यानी सर्वोत्कृष्ट सिद्धि गति-मुक्ति निम्न साधनों से प्राप्त हुई - १. मतिश्रुत आदि सम्यग्ज्ञान २. सम्यग्दर्शन ३. द्वादशविध तप ४. पांच महाव्रत की २५ भावनाएं ५. शुद्ध अर्थात् निदान आदि दोषों से रहित अनित्य आदि बारह भावनाएं ६. बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन ७. मासिक भक्त प्रत्याख्यान से समाधि मरण।

उपसंहार - निर्ग्रंथ धर्म के आचरण का उपदेश

एवं करंति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा।
विणियट्टंति भोगेसु, मियापुत्ते जहामिसी॥९७॥

कठिन शब्दार्थ - **संबुद्धा** - संबुद्ध - जिनकी प्रज्ञा सम्यक् है वे ज्ञानादि संपन्न, **पंडिया**- पण्डित, **पवियक्खणा** - अति विचक्षण, **विणियट्टंति** - विनिवृत्त होते हैं, **भोगेसु** - भोगों से, **जहा** - जैसे, **मियापुत्ते इसी** - मृगापुत्र ऋषि।

भावार्थ - बोध को प्राप्त हुए विचक्षण पंडित पुरुष भोगों से निवृत्त हो जाते हैं और इसी प्रकार करते हैं जैसे मृगापुत्र ऋषीश्वर ने किया।

महापभावस्स महाजसस्स, मियाइपुत्तस्स णिसम्म भासियं।
तवप्पहाणं चरियं च उत्तमं, गइप्पहाणं च तिलोगविस्सुयं॥९८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **महापभावस्स** - महाप्रभावशाली, **महाजसस्स** - महायशस्वी, **मियाइपुत्तस्स** - मृगापुत्र के, **णिसम्म** - सुन कर, **भासियं** - कथन को, **तवप्पहाणं** - तपप्रधान, **चरियं** - चारित्र, **उत्तमं** - उत्तम, **गइप्पहाणं** - गति से प्रधान, **तिलोगविस्सुयं** - त्रिलोक विश्रुत (प्रसिद्ध)।

भावार्थ - महा प्रभावशाली और महायशस्वी मृगापुत्र के भाषित-संसार को दुःखरूप बताने वाले कथन को सुन कर तप प्रधान उत्तम चारित्र और तीन लोक में विख्यात, प्रधान गति (मोक्ष) प्राप्त करने के लिए धर्म में पुरुषार्थ करना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में मृगापुत्र के संभाषण को आगमविहित एवं स्वयं अनुभूत होने के कारण महाप्रभावशाली तथा तप संयम एवं चारित्र की बाह्य अंतरंग विशुद्धि के कारण महायशस्वी होनें से प्रामाणिक एवं सर्वथा उपादेय माना, इसी प्रकार चारित्र भी तपःप्रधान एवं उत्कृष्ट होने से मोक्षगतिदायक एवं त्रिलोकविश्रुत माना है।

वियाणिया दुक्खविवद्धणं धणं, ममत्तबंधं च महाभयावहं।
सुहावहं धम्मधुरं अणुत्तरं, धारेज्ज णिव्वाण गुणावहं महं॥ त्ति बेमि॥९९॥

कठिन शब्दार्थ - **वियाणिया** - जान कर, **दुक्खविवद्धणं** - दुःख बढ़ाने वाला, **धणं**- धन को, **ममत्तबंधं** - ममत्व बंधन को, **महाभयावहं** - महाभयंकर, **सुहावहं** - सुखावह, **धम्मधुरं** - धर्म धुरा को, **धारेज्ज** - धारण करो, **णिव्वाण गुणावहं** - निर्वाण के गुणों को प्राप्त कराने वाली, **महं** - महान्।

भावार्थ - हे भव्यपुरुषो! धन को दुःख बढ़ाने वाला, ममत्व रूप बन्धन का कारण तथा महाभय को प्राप्त कराने वाला जान कर सुखों को देने वाली, अनुत्तर-प्रधान एवं महान् ज्ञान-दर्शनादि गुणों को और मोक्ष को देने वाली धर्म रूपी धुरा को धारण करो अर्थात् धर्म में पुरुषार्थ करो॥ **त्तिबेमि** - ऐसा मैं कहता हूँ।

विवेचन - उपरोक्त गाथाओं में आगमकार ने अध्ययन का उपसंहार करते हुए मृगापुत्र के आदर्श चरित्र से प्रेरणा लेकर साधु साध्वियों के लिए कर्त्तव्य धर्म का निर्देश किया है।

॥ इति मृगापुत्रीय नामक उन्नीसवाँ अध्ययन समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महानियंठिज्जं वीसइमं अज्झयणं

महानिर्ग्रंथीय बीसवाँ अध्ययन

उत्थानिका - महानिर्ग्रंथीय नामक इस बीसवें अध्ययन में महानिर्ग्रंथ अनाथीमुनि द्वारा अनाथ से सनाथ - महानिर्ग्रंथ बनने की कथा राजा श्रेणिक को कही गयी है। इस कथा को सुन कर राजा श्रेणिक की अपने आपको सनाथ मानने की भ्रांत धारणा दूर हो गई और वह सनाथ-अनाथ के रहस्य को भलीभांति जान कर सम्यक्त्वी बन गया।

महानिर्ग्रन्थ की चर्या तथा मौलिक सिद्धान्तों और नियमों से संबंधित वर्णन होने के कारण इस अध्ययन का नाम 'महानिर्ग्रंथीय' रखा गया है। इस अध्ययन की प्रथम गाथा इस प्रकार है-

मंगलाचरण

सिद्धाणं णमो किच्चा, संजयाणं च भावओ।
अत्थधम्मगइं तच्चं, अणुसिट्ठिं सुणेह मे॥१॥

कठिन शब्दार्थ - **सिद्धाणं** - सिद्धों को, **णमो** - नमस्कार, **किच्चा** - करके, **संजयाणं**- संयतों को, **भावओ** - भावपूर्वक, **अत्थधम्मगइं** - अर्थ - मोक्ष और धर्म का गति-बोध कराने वाले, **तच्चं** - तथ्यपूर्ण, **अणुसिट्ठिं** - अनुशिष्टि - शिक्षा (अनुशासन) का, **सुणेह** - सुनो, **मे** - मुझसे।

भावार्थ - भावपूर्वक सिद्ध भगवान् को और संयत (महात्माओं को) अर्थात् अरहंत, आचार्य, उपाध्याय और सभी साधु रूप पंच परमेष्ठी को नमस्कार करके अर्थ और धर्म का ज्ञान कराने वाली सच्ची अनुशिष्टि-शिक्षा कहूँगा, अतः तुम मुझ से सुनो।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में सिद्धों और संयतों को किया गया नमस्कार मंगलाचरण के लिए है। सिद्धाणं में अरहंतों का तथा संजयाणं में आचार्य, उपाध्याय और सभी साधुओं का समावेश होने से यहां पंचपरमेष्ठी को नमस्कार करके मोक्ष एवं धर्म के अनुशासन-कथन की प्रतिज्ञा की गई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राजा का उद्यान गमन

पभूयरयणो राया, सेणिओ मगहाहिवो।
विहारजत्तं णिज्जाओ, मंडिकुच्छिंसि चेइए॥२॥

कठिन शब्दार्थ - पभूयरयणो - प्रचुर रत्नों (गज अश्व आदि तथा मणि माणिक्य आदि) से संपन्न, **मगहाहिवो** - मगधाधिप - मगध देश का अधिपति, **विहारजत्तं** - विहार यात्रा के लिए, **णिज्जाओ** - निकला, **मंडिकुच्छिंसि** - मण्डिकुक्षि नामक, **चेइए** - चैत्य (उद्यान)।

भावार्थ - प्रभूतरत्न-मरकत-मणि आदि बहुत से रत्नों वाला एवं श्रेष्ठ हाथी-घोड़े आदि ऋद्धि-सम्पन्न मगधाधिप - मगध देश का स्वामी श्रेणिक नाम का राजा मंडिकुक्षि नामक चैत्य (उद्यान) में विहार-यात्रा के लिए निकला।

णाणादुमलयाइण्णं, णाणापक्खि-णिसेवियं।
णाणाकुसुमसंछण्णं, उज्जाणं णंदणोवमं॥३॥

कठिन शब्दार्थ - णाणादुमलयाइण्णं - विविध प्रकार के वृक्षों और लताओं से व्याप्त, **णाणापक्खिणिसेवियं** - नाना प्रकार के पक्षियों से परिसेवित, **णाणाकुसुमसंछण्णं** - विभिन्न प्रकार के पुष्पों से आच्छादित, **उज्जाणं** - उद्यान, **णंदणोवमं** - नंदन वन के समान।

भावार्थ - अनेक प्रकार के वृक्षों और लताओं से युक्त, अनेक प्रकार के पक्षियों से सेवित अनेक प्रकार के फूलों से आच्छादित वह उद्यान नन्दन वन के समान सुशोभित था।

मुनि दर्शन

तत्थ सो पासइ साहुं, संजयं सुसमाहियं।
णिसण्णं रुक्खमूलम्मि, सुकुमालं सुहोइयं॥४॥

कठिन शब्दार्थ - पासइ - देखा, **साहुं** - साधु को, **संजयं** - संयत, **सुसमाहियं** - सुसमाधिवंत, **णिसण्णं** - बैठे हुए, **रुक्खमूलम्मि** - वृक्ष के नीचे, **सुकुमालं** - सुकुमार, **सुहोइयं** - सुखोचित - सुखोपभोग के योग्य।

भावार्थ - वहाँ एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए सुकुमार सुखोचित (सुखों के योग्य) सुसमाधिवंत संयत साधु को उस राजा ने देखा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - यद्यपि यहां साहुं - 'साधु' शब्द कहने से ही अर्थबोध हो जाता, फिर भी उसके दो अतिरिक्त विशेषण **'संजयं सुसमाहियं'** प्रयुक्त किये गए हैं वे सकारण हैं क्योंकि शिष्ट पुरुष को भी साधु कहा जाता है अतः भ्रांति का निराकरण करने के लिए **'संयत'** (संयमी) शब्द का प्रयोग किया, किंतु निह्नव आदि भी बाह्य दृष्टि से संयमी हो सकते हैं अतः **'सुसमाहित'** विशेषण और जोड़ा गया अर्थात् वह संयत होने के साथ-साथ सम्यक् मनःसमाधान सम्पन्न थे।

राजा की विस्मययुक्त जिज्ञासा

तस्स रूवं तु पासित्ता, राइणो तम्मि संजए।
अच्चंतपरमो आसी, अउलो रूवविम्हओ॥५॥

कठिन शब्दार्थ - रूवं - रूप को, पासित्ता - देखकर, **राइणो** - राजा, **अच्चंतपरमो** - अत्यंत परम, **आसी** - हुआ, **अउलो** - अतुल, **रूवविम्हओ** - रूप विस्मय।

भावार्थ - उस साधु का रूप देखकर राजा को उस संयत के रूप के विषय में अत्यंत, परम और अतुल-बहुत विस्मय-आश्चर्य हुआ।

अहो वण्णो अहो रूवं, अहो अज्जस्स सोमया।
अहो खंती अहो मुत्ती, अहो भोगे असंगया॥६॥

कठिन शब्दार्थ - अहो - अहा! **वण्णो** - वर्ण, **रूवं** - रूप, **अज्जस्स** - आर्य की, **सोमया** - सौम्यता, **खंती** - क्षमा, **मुत्ती** - मुक्ति-निर्लोभता, **भोगे** - भोगों में, **असंगया** - असंगता-निःस्पृहता-अनासक्ति।

भावार्थ - अहा! कैसा आश्चर्यकारी इस आर्य का वर्ण है? अहा! रूप, अहा! सौम्यता, अहा! क्षमा, अहा! मुक्ति-निर्लोभता और अहा! भोगों में असंगता-अनासक्ति है अर्थात् इस मुनि का वर्ण, रूप, सौम्यता, क्षमा, निर्लोभता और भोगों में अनासक्ति सभी आश्चर्यकारी है।

विवेचन - **शंका** - वर्ण और रूप में क्या अंतर है?

समाधान - वर्ण का अर्थ है सुस्निग्धता या गोरा, गेहुंआ आदि रंग और रूप कहते हैं - आकार (आकृति) एवं डीलडौल को। वर्ण और रूप से व्यक्तित्व जाना जाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राजा श्रेणिक को उक्त मुनि को देखकर अत्यधिक अतुल-असाधारण विस्मय तो इसलिए हुआ कि एक तो वे मुनि तरूण थे, तरूणावस्था भोगकाल के रूप में प्रसिद्ध है किंतु उस अवस्था में कदाचित् कोई रोगादि हो या संयम के प्रति अनुद्यत हो तो कोई आश्चर्य नहीं होता किंतु यह मुनि तरूण थे, स्वस्थ थे, समाधि सम्पन्न थे और श्रमण धर्म पालन में समुद्यत थे, यही विस्मय राजा की जिज्ञासा का कारण बना।

राजा की सविनय पृच्छा

तस्स पाए उ वंदित्ता, काऊण य पयाहिणं।

णाइदूर-मणासण्णे, पंजली पडिपुच्छइ॥७॥

कठिन शब्दार्थ - पाए - चरणों में, **वंदित्ता** - वंदना करके, **काऊण** - करके, **पयाहिणं** - प्रदक्षिणा, **ण अइदूरं** - न तो बहुत दूर, **अणासण्णे** - न ही अति निकट, **पंजली** - हाथ जोड़ कर, **पडिपुच्छइ** - पूछने लगा।

भावार्थ - उस मुनि के चरणों में वन्दना करके और प्रदक्षिणा करके न तो बहुत दूर और न बहुत निकट खड़ा हुआ श्रेणिक राजा दोनों हाथ जोड़ कर पूछने लगा।

तरुणो सि अज्जो! पव्वइओ, भोग-कालम्मि संजया।

उवट्ठिओसि सामण्णे, एयमट्ठं सुणेमि त्ता॥८॥

कठिन शब्दार्थ - **तरुणो सि** - तरुण हो, **अज्जो** - हे आर्य, **पव्वइओ** - प्रव्रजित हुए हो, **भोगकालम्मि** - भोगकाल में, **संजया** - हे संयत! **उवट्ठिओसि** - उपस्थित हुए हो, **सामण्णे** - श्रमण धर्म में, **एयमट्ठं** - इसका क्या कारण है, **सुणेमि त्ता** - मैं सुनना चाहता हूँ।

भावार्थ - हे आर्य! आप तरुण हैं। हे संयति! इस भोग भोगने की अवस्था में आपने दीक्षा ले ली है और साधु-धर्म में उपस्थित हुए हैं इसका क्या कारण है सो मैं आपसे सुनना चाहता हूँ।

विवेचन - प्रस्तुत दो गाथाओं में स्पष्ट किया गया है कि साधु महात्मा के पास किस विधि से वंदन, नमन आदि शिष्टाचार करना चाहिए? कैसे बैठना, बोलना और वार्तालाप करना चाहिए?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुनि का उत्तर

अणाहो मि महाराय! णाहो मज्झ ण विज्जइ।
अणुकंपगं सुहिं वा वि, कंचि णाभिसमेमहं॥९॥

कठिन शब्दार्थ - अणाहो मि - मैं अनाथ हूं, **महाराय** - हे राजन्! **णाहो** - कोई नाथ, **मज्झ** - मेरा, **ण विज्जइ** - नहीं है, **अणुकंपगं** - अनुकम्पा करने वाले, **कंचि** - कोई, **सुहिं** - सुहृद-मित्र, **ण अभिसमे** - नहीं मिला है, **अहं** - मैं।

भावार्थ - हे राजन्! मैं अनाथ हूँ, मेरा कोई नाथ नहीं है तथा मेरे पर अनुकम्पा कर के सुख देने वाला और कोई सुहृद-मित्र भी नहीं मिला है। अतः मैंने दीक्षा ले ली है।

विवेचन - अनाथी मुनि का गृहस्थ अवस्था का नाम 'गुणसुन्दर' था। किसी ग्रंथ में उनका नाम सुदर्शन था, ऐसा भी मिलता है। किन्तु रोग और पीड़ा से छुड़ाने में कोई समर्थ नहीं हुआ तब गुणसुन्दर ने अपने आपको 'अनाथ' बतलाया है। इसलिए इस सारे अध्ययन का नाम ही 'अनाथी मुनि का अध्ययन' हो गया। अन्यथा इस अध्ययन का नाम तो 'महानिर्ग्रन्थीय' है।

नाथ शब्द का अर्थ इस प्रकार है - **'योगक्षेमकृत नाथः'** अर्थात् योग क्षेम करने वाले को नाथ कहते हैं। नहीं मिली हुई वस्तु का मिलना योग कहलाता है और मिली हुई वस्तु की रक्षा करना क्षेम कहलाता है। जो ऐसा न हों उसे अनाथ कहते हैं।

अनाथी मुनि ने दीक्षा ग्रहण करने का मुख्य कारण अपनी अनाथता बतलाई, जो उनके वैराग्य और गृहत्याग का कारण बनी।

श्रेणिक के नाथ बनने की स्वीकृति

तओ सो पहसिओ राया, सेणिओ मगहाहिवो।
एवं ते इड्ढिमंतस्स, कहं णाहो ण विज्जइ॥१०॥

कठिन शब्दार्थ - **पहसिओ** - जोर से हंसा, **इड्ढिमंतस्स** - ऋद्धि सम्पन्न, **णाहो** - नाथ।

भावार्थ - मुनि के उपरोक्त वचन सुन कर वह मगधाधिप - मगध देश का स्वामी श्रेणिक राजा हँसा और कहने लगा कि इस प्रकार रूपादि की ऋद्धि से सम्पन्न आपका कोई नाथ नहीं है, यह कैसे हो सकता है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होमि णाहो भयंताणं, भोगे भुंजाहि संजया।
मित्तणाइ-परिवुडो, माणुस्सं खु सुदुल्लहं॥११॥

कठिन शब्दार्थ - **भयंताणं** - आप भगवंत का, **भुंजाहि** - भोगों, **मित्तणाइ परिवुडो**- मित्र और ज्ञातिजनों से परिवृत्त, **माणुस्सं** - मनुष्य जन्म, **सुदुल्लहं** - अत्यंत दुर्लभ।

भावार्थ - राजा श्रेणिक कहता है कि हे संयत! मैं आपका नाथ होने को तैयार हूँ। मित्र और ज्ञाति सम्बन्धी जनों से परिवृत्त होते हुए आप भोगों को भोगो, क्योंकि मनुष्य-जन्म निश्चय ही अत्यन्त दुर्लभ है।

विवेचन - मुनि के द्वारा स्वयं को अनाथ बतलाने पर राजा श्रेणिक को अत्यंत आश्चर्य हुआ किंतु मुनि की भव्य आकृति, शारीरिक संपदा आदि शुभ लक्षणों को देखकर मुनि के नाथ होने का ही अनुमान लगा। अतः मुनि से कहा - अगर आप अनाथ हैं तो मैं आपका नाथ बनता हूं। मनुष्य जन्म बार-बार नहीं मिलता अतः आप साधुत्व का त्याग कर सांसारिक सुखों को भोगो।

राजा की अनाथता

अप्पणा वि अणाहो सि, सेणिया मगहाहिवा!।
अप्पणा अणाहो संतो, कहं णाहो भविस्ससि॥१२॥

कठिन शब्दार्थ - **अप्पणा वि** - आप स्वयं भी, **अणाहो सि** - अनाथ हो, **मगहाहिवा**- मगधाधिप, **संतो** - होते हुए, **कहं** - कैसे, **णाहो** - नाथ, **भविस्ससि** - होओगे?

भावार्थ - मगधाधिप - हे मगध देश के अधिपति श्रेणिक! तुम स्वयं ही अनाथ हो, स्वयं अनाथ होते हुए तुम दूसरों के नाथ किस प्रकार होओगे?

विवेचन - मुनि ने राजा श्रेणिक को सत्य और स्पष्ट बात कह दी कि तुम स्वयं अनाथ हो तो दूसरे के नाथ कैसे बन सकते हो? जो स्वयं निर्धन एवं मूर्ख है वह दूसरों को धनवान एवं पंडित कैसे बना सकता है?

श्रेणिक विस्मित

एवं वुत्तो णरिंदो सो, सुसंभंतो सुविम्हिओ।
वयणं अस्सुयपुव्वं, साहुणा विम्हयण्णिओ॥१३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **णरिंदो** - नरेन्द्र, **सुसंभंतो** - सम्भ्रान्त - सशंयाकुल, **सुविम्हिओ** - अधिक विस्मित, **वयणं** - वचनों को, **अस्सुयपुव्वं** - अश्रुतपूर्व, **साहुणा** - मुनि के द्वारा, **विम्हयण्णिओ** - पहले से विस्मित।

भावार्थ - इस प्रकार विस्मित बना हुआ एवं पुनः साधु द्वारा कहे हुए अश्रुत-पूर्व (पहले कभी न सुने हुए) वचन सुन कर वह नरेन्द्र-राजा सुसम्भ्रान्त एवं व्याकुल और सुविस्मित-अत्यन्त विस्मित बन गया।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में राजा के विस्मित होने का उल्लेख इसलिए किया गया है कि राजा ने आज दिन तक किसी के मुख से यह नहीं सुना था कि 'तू अनाथ है' किंतु साधु के मुख से ऐसा वचन सुनकर उसे सहसा झटका लगा। इस प्रकार राजा पहले ही मुनि के रूप आदि को देख कर आश्चर्य में पड़ा हुआ था फिर मुनि द्वारा उसे अनाथ बताने के कथन ने तो उसे और भी आश्चर्य में डाल दिया। अतः राजा श्रेणिक आगे की गाथाओं में स्वयं के अनाथ नहीं होने का स्पष्टीकरण प्रस्तुत करते हैं -

मैं अनाथ कैसे?

अस्सा हत्थी मणुस्सा मे, पुरं अंतेउरं च मे।
भुंजामि माणुस्से भोगे, आणा इस्सरियं च मे॥१४॥

कठिन शब्दार्थ - **अस्सा** - अश्व, **हत्थी** - हाथी, **मणुस्सा** - मनुष्य, **पुरं** - नगर, **अंतेउरं** - अन्तःपुर, **भुंजामि** - भोगता हूं, **माणुस्से भोगे** - मनुष्य संबंधी भोगों को, **आणा**-आज्ञा, **इस्सरियं** - ऐश्वर्य।

भावार्थ - राजा श्रेणिक मुनि से कहने लगा कि हे मुने! मेरे पास हाथी, अश्व-घोड़े और मनुष्य हैं, नगर और अन्तःपुर भी मेरे पास हैं तथा मनुष्य सम्बन्धी भोगों को मैं भोगता हूँ। मेरी आज्ञा चलती है और ऐश्वर्य-मेरे पास द्रव्यादि समृद्धि है।

एरिसे संपयग्गम्मि, सव्वकाम-समप्पिए।
कहं अणाहो भवइ, मा हु भंते! मुसं वए॥१५॥

कठिन शब्दार्थ - **एरिसे** - इस प्रकार की, **संपयग्गम्मि** - श्रेष्ठ संपदा के होते, **सव्वकामसमप्पिए** - सभी कामभोग समर्पित - प्राप्त, **मा हु वए** - नहीं बोले, **मुसं** - मृषा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इस प्रकार की श्रेष्ठ ऋद्धि सम्पदा के होते हुए तथा सभी प्रकार के काम-भोग स्वाधीन होते हुए मैं कैसे अनाथ हूँ। इसलिए हे पूज्य! कहीं ऐसा न हो कि आपका वचन मृषा-असत्य हो जाय।

विवेचन - राजा ने कहा - 'मेरे पास नाना प्रकार की ऋद्धि, ऐश्वर्य एवं सम्पत्ति है, सब प्रकार के कामभोगों की विद्यमानता है तथा मेरे पास ऐश्वर्य, प्रभुत्व एवं शासन भी है, सेवकों पर मेरी आज्ञा चलती है, मगध जनपद पर मेरी राज्यसत्ता है फिर आपने मुझे अनाथ कैसे कह दिया?'

अनाथता-सनाथता का स्पष्टीकरण

ण तुमं जाणे अणाहस्स, अत्थं पोत्थं च पत्थिवा।
जहा अणाहो भवइ, सणाहो वा णराहिवा!॥१६॥

कठिन शब्दार्थ - तुमं - तुम, अणाहस्स - अनाथ शब्द के, ण जाणे - नहीं जानते हो, अत्थं - अर्थ को, पोत्थं - उसकी उत्पत्ति को-परमार्थ को, पत्थिवा - हे पृथ्वीपति! अणाहो - अनाथ, भवइ - होता है, सणाहो - सनाथ, णराहिवा - नराधिप।

भावार्थ - पार्थिव-पृथ्वीपति-हे राजन्! हे नराधिप! तुम अनाथ शब्द के अर्थ और उसकी मूल उत्पत्ति को नहीं जानते हो कि अनाथ कैसा होता है और सनाथ कैसा होता है?

सुणेह मे महाराय! अव्वक्खित्तेण चेयसा।
जहा अणाहो भवइ, जहा मेयं पवत्तियं॥१७॥

कठिन शब्दार्थ - सुणेह - सुनो, अव्वक्खित्तेण चेयसा - अव्याक्षिप्त चित्त-एकाग्र चित्त से, पवत्तियं - प्रयोग किया।

भावार्थ - हे महाराज! हे राजन्! एकाग्र चित्त से मुझ से सुनो। जिस प्रकार यह जीव अनाथ होता है और जिस प्रकार मैंने इस अनाथता की प्रवृत्ति-प्ररूपणा की है।

कोसंबी णाम णयरी, पुराणपुरभेयणी।
तत्थ आसी पिया मज्झ, पभूय-धणसंचओ॥१८॥

कठिन शब्दार्थ - पुराणपुरभेयणी - प्राचीन नगरों को मात करने वाली, आसी - रहते थे, पिया - पिता, मज्झ - मेरे, पभूयधणसंचओ - प्रभूतधनसंचय - उनके पास प्रचुर धन का संचय था।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

भावार्थ - अपनी विशेषताओं के कारण पुरानी नगरियों से अपने-आपको पृथक् करने वाली (अति प्राचीन) एवं प्रधान कोशाम्बी नामक नगरी है वहाँ पर बहुत धन का संचय करने वाले प्रभूतधनसंचय नाम के मेरे पिता रहते हैं।

पढमे वए महाराय! अउला मे अच्छिवेयणा।
अहोत्था विउलो दाहो, सव्वगत्तेसु पत्थिवा॥१९॥

कठिन शब्दार्थ - पढमे वए - प्रथम वय में, **अउला** - अतुल-असाधारण, **अच्छिवेयणा**- आंखों की वेदना, **अहोत्था** - होने लगी, **विउलो** - विपुल, **दाहो** - दाह (जलन), **सव्वगत्तेसु**- संपूर्ण शरीर में।

भावार्थ - हे महाराज! प्रथम वय (यौवनावस्था) में मेरे अतुल-अत्यन्त आँखों की वेदना हुई थी, उनमें अत्यन्त पीड़ा होने लगी और पार्थिव-हे राजन्! इसके साथ ही साथ मेरे सारे शरीर में विपुल-अत्यन्त दाह (जलन) होने लगी।

सत्थं जहा परमतिक्खं, सरीर-विवरंतरे।
आवीलिज्ज अरी कुद्धो, एवं मे अच्छिवेयणा॥२०॥

कठिन शब्दार्थ - सत्थं - शस्त्र, **जहा** - जैसे, **परमतिक्खं** - परम तीक्ष्ण, **सरीर विवरंतरे** - शरीर के छिद्रों-कोमल मर्म स्थानों में, **आवीलिज्ज** - भौंकदे (घुसेड़ दे), **अरी** - शत्रु, **कुद्धो** - क्रुद्ध।

भावार्थ - जिस प्रकार क्रोध में आया हुआ शत्रु शरीर के आँख, नाक, कान तथा मर्मस्थानों में अत्यन्त तीक्ष्ण शस्त्र घुसेड़ दे, उससे जिस प्रकार की वेदना होती है उसी प्रकार की मेरी आँखों में असह्य वेदना हो रही थी।

तियं मे अंतरिच्छं च, उत्तमंगं च पीडइ।
इंदासणिसमा घोरा, वेयणा परमदारुणा॥२१॥

कठिन शब्दार्थ - तियं - कटि, **अंतरिच्छं** - अन्तरेच्छ-हृदय, **उत्तमंगं** - मस्तक को, **पीडइ** - पीड़ित कर रही थी, **इंदासणिसमा** - इन्द्र का वज्र लगने के समान, **घोरा** - घोर, **वेयणा** - वेदना, **परमदारुणा** - अत्यंत दारुण।

भावार्थ - इन्द्र का अशनि-वज्र लगने से जैसी वेदना होती है वैसी घोर और अत्यन्त दुःखदायी वेदना मेरी कमर के मध्य भाग को और मस्तक को पीड़ित कर रही थी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उवट्ठिया मे आयरिया, विज्जामंत-तिगिच्छया।

अबीया सत्थ कुसला, मंतमूल-विसारया॥२२॥

कठिन शब्दार्थ - उवट्ठिया - उपस्थित हुए, **आयरिया** - आयुर्वेदाचार्य (प्राणाचार्य), **विज्जामंत तिगिच्छया** - विद्या और मंत्र के द्वारा चिकित्सा करने वाले, **अबीया** - अद्वितीय, **सत्थकुसला** - शास्त्र कुशल, **मंतमूलविसारया** - मंत्र तथा मूल (जड़ी बूटियों के प्रयोग) में विशारद।

भावार्थ - मेरी चिकित्सा करने के लिए ऐसे आचार्य (आयुर्वेदाचार्य) उपस्थित हुए थे जो विद्या और मंत्र द्वारा चिकित्सा करने में अद्वितीय एवं प्रवीण थे तथा शस्त्रकिया में कुशल अथवा शल्य चिकित्सा शास्त्र में कुशल एवं मंत्र और मूल औषधि आदि के प्रयोग करने में विशारद - अति निपुण थे।

ते मे तिगिच्छं कुव्वंति, चाउप्पायं जहाहियं।

ण य दुक्खा विमोयंति, एसा मज्झ अणाहया॥२३॥

कठिन शब्दार्थ - तिगिच्छं - चिकित्सा, **कुव्वंति** - करते हैं, **चाउप्पायं** - चतुष्पाद, **जहाहियं** - जिस प्रकार से हित हो वैसी, **दुक्खा** - दुःख से, **ण विमोयंति** - विमुक्त नहीं कर पाए, **एसा** - यह, **मज्झ** - मेरी, **अणाहया** - अनाथता।

भावार्थ - जिस उपचार से लाभ हो उसी से वे वैद्य मेरी चतुष्पाद - चारपाद वाली चिकित्सा करते थे किन्तु वे मुझे दुःख से नहीं छुड़ा सके, यह मेरी अनाथता है।

विवेचन - स्थानांग सूत्र स्थान ४ में चतुष्पाद चिकित्सा का उल्लेख करते हुए आगमकार फरमाते हैं -

"चउव्विहा तिगिच्छा पण्णत्ता, तंजहा - विज्जो, ओसहाइं, आउरे, परिचारए।"

अर्थात् - १. योग्य वैद्य हो २. उत्तम औषधि हो ३. रोगी श्रद्धा पूर्वक चिकित्सा कराने के लिए उत्सुक हो और ४. रोगी की सेवा करने वाले विद्यमान हों, इन चार बातों से युक्त चिकित्सा 'चतुष्पाद चिकित्सा' कहलाती है। इस प्रकार की गई चिकित्सा प्रायः सफल होती है।

पिया मे सव्वसारं पि, दिज्जाहि मम कारणा।

ण य दुक्खा विमोएइ, एसा मज्झ अणाहया॥२४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **पिया** - पिता, **सव्वसारं** - सर्वस्व धन या बहुमूल्य वस्तुएं, **दिज्जाहि** - दिया, **मम कारणा** - मेरे कारण, **दुक्खा** - दुःख से।

भावार्थ - मेरे पिता मेरे लिए सर्वश्रेष्ठ (बहुमूल्य) पदार्थ भी उन वैद्यों को देने के लिए तत्पर थे फिर भी वे मुझे दुःख से नहीं छुड़ा सके, यह मेरी अनाथता है।

माया वि मे महाराय! पुत्तसोग-दुहट्ठिया।

ण य दुक्खा विमोएइ, एसा मज्झ अणाहया॥२५॥

कठिन शब्दार्थ - **माया** - माता, **पुत्तसोगदुहट्ठिया** - पुत्र शोक के दुःख से आर्त्त-पीड़ित।

भावार्थ - हे महाराज! पुत्र के शोक से अत्यन्त दुःखी बनी हुई मेरी माता ने भी मेरी रोग निवृत्ति के लिए अनेक उपाय किये किन्तु वह भी मुझे दुःख से नहीं छुड़ा सकी, यह मेरी अनाथता है।

भायरा मे महाराय! सगा जेट्ठकणिट्ठगा।

ण य दुक्खा विमोयंति, एसा मज्झ अणाहया॥२६॥

कठिन शब्दार्थ - **भायरा** - भाइयों ने, **सगा** - सहोदर, **जेट्ठकणिट्ठगा** - ज्येष्ठ और कनिष्ठ।

भावार्थ - हे महाराज! मेरे सहोदर (सगे) ज्येष्ठ और कनिष्ठ अर्थात् बड़े और छोटे भाइयों ने भी अनेक प्रयत्न किये किन्तु वे भी मुझे दुःख से छुड़ाने में समर्थ नहीं हुए, यह मेरी अनाथता है।

भइणीओ मे महाराय! सगा जेट्ठकणिट्ठगा।

ण य दुक्खा विमोयंति, एसा मज्झ अणाहया॥२७॥

कठिन शब्दार्थ - **भइणीओ** - बहिनों ने।

भावार्थ - हे महाराज! मेरी सहोदर (सगी) ज्येष्ठ और कनिष्ठ-अर्थात् बड़ी और छोटी बहिनों ने भी अनेक उपाय किये किन्तु वे भी मुझे दुःख से न छुड़ा सकीं, यह मेरी अनाथता है।

भारिया मे महाराय! अणुरत्ता अणुव्वया।

अंसुपुण्णेहिं णयणेहिं, उरं मे परिसिंचइ॥२८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अण्णं पाणं च ण्हाणं च, गंधमल्ल-विलेवणं।
मए णायमणायं वा, सा बाला णेव भुंजइ॥२९॥
खणं पि मे महाराय! पासाओ वि ण फिट्टइ।
ण य दुक्खा विमोएइ, एसा मज्झ अणाहया॥३०॥

कठिन शब्दार्थ - **भारिया** - भार्या (पत्नी), **अणुरत्ता** - अनुरक्ता, **अणुव्वया** - अनुव्रता - पतिव्रता, **अंसुपुण्णेहिं णयणेहिं** - अश्रुपूर्ण नेत्रों से, **उरं** - वक्षस्थल (छाती) को, **परिसिंचइ** - भिगोती (सिंचती) रहती थी।

अण्णं - अन्न, **पाणं** - पान, **ण्हाणं** - स्नान, **च** - और, **गंधमल्ल-विलेवणं** - गन्ध, माल्य और विलेपन का, **णायमणायं** - जाने या अनजाने (प्रत्यक्ष या परोक्ष) में, **सा बाला**- वह बाला (नवयुवती), **णेव भुंजइ** - उपभोग नहीं करती थी।

खणंपि - क्षण भर भी, **पासाओ** - मेरे पास से, **ण फिट्टइ** - दूर नहीं होती।

भावार्थ - हे महाराज! मुझ पर अत्यन्त अनुराग रखने वाली, अनुव्रता-पतिव्रता मेरी भार्या-स्त्री आंसुओं से भरे हुए नेत्रों से मेरी छाती को सिंचती थी अर्थात् मुझे दुःखी देख कर वह मेरे पास बैठी हुई निरन्तर आंसू गिराती थी।

वह मेरी स्त्री मेरे जानते हुए अथवा न जानते हुए अन्न, पानी स्नान और सुगन्धित तैलादि तथा माला विलेपन आदि किसी भी पदार्थ का सेवन नहीं करती थी।

हे महाराज! और अधिक तो क्या, वह मेरी स्त्री एक क्षण भर के लिए भी मेरे पास से दूर नहीं होती थी इतना करते हुए भी वह मुझे दुःख से छुड़ाने में समर्थ न हो सकी, यह मेरी अनाथता है।

विवेचन - उपर्युक्त गाथाओं में अनाथी मुनि ने राजा श्रेणिक से अपनी अनाथता की आप बीती सुनाते हुए कहा कि - मेरी आंखों में एक बार भयंकर तीव्र वेदना उत्पन्न हुई। उस पीड़ा के शमन के लिए बड़े-बड़े नामी वैद्य, चिकित्सक, मंत्र-तंत्रवादी एवं अन्य सभी उपचार करने वालों को मेरे पिता ने बुला कर उनसे उपचार करवाया किंतु उन उपचारों से भी मेरी पीड़ा शान्त न हुई, यह मेरी अनाथता थी। मेरे पिता, माता, बड़े छोटे भाई बहन, मेरी धर्मपत्नी सब मेरी परिचर्या में जुटे रहते किंतु वे भी मुझे किसी प्रकार से दुःख मुक्त न कर सके, यह मेरी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनाथता थी। इतना सब कुछ होते हुए भी दुःखों मे मैं मुक्त नहीं हो सका, फिर मैं सनाथ कैसे? इसीलिये मैंने अपने आपको अनाथ कहा था।

गाथा २९ में आए हुए **'मए णायमणायं वा, सा बाला णेव भुंजइ'** पाठ से ऐसा ध्वनित होता है कि - अनाथी मुनि को कोई विशिष्ट ज्ञान (अवधिज्ञान आदि) था। क्योंकि अज्ञात बात को जानना विशिष्ट ज्ञान के बिना संभव नहीं है। ऐसा बहुश्रुत गुरुदेव फरमाया करते थे।

दीक्षा का संकल्प

तओऽहं एवमाहंसु, दुक्खमा हु पुणो पुणो।
वेयणा अणुभविउं जे, संसारम्मि अणंतए॥३१॥

कठिन शब्दार्थ - **एवमाहंसु** - इस प्रकार कहा, **दुक्खमा** - दुःसह, **अणुभविउं** - अनुभव करना होता है, **संसारम्मि अणंतए** - अनन्त संसार में।

भावार्थ - इसके बाद (अनेक उपचार करने पर भी जब मेरा रोग शान्त न हुआ तब) मैं इस प्रकार विचार करने लगा कि इस अनन्त संसार में ऐसी दुस्सह वेदना बार-बार जो इस आत्मा को सहन करनी पड़ती है।

सइं च जइ मुच्चेज्जा, वेयणा विउला इओ।
खंतो दंतो णिरारंभो, पव्वइए अणगारियं॥३२॥

कठिन शब्दार्थ - **सइं** - एक बार, **जइ** - यदि, **मुच्चेज्जा** - मुक्त हो जाऊँ, **खंतो** - क्षान्त, **दंतो** - दान्त, **णिरारंभो** - आरंभ रहित होकर, **पव्वइए** - प्रव्रजित, **अणगारियं** - अनगारवृत्ति में।

भावार्थ - यदि मैं एक बार इस विपुल असह्य वेदना से छूट जाऊँ तो क्षमावान् इन्द्रियों का दमन करने वाला और आरम्भ रहित होकर अनगार वृत्ति को धारण करलूं अर्थात् साधु बन कर वेदना के कारणभूत कर्मों का समूल नाश करने के लिए प्रयत्न करूँ, जिससे फिर कभी ऐसी वेदना का अनुभव ही नहीं करना पड़े।

विवेचन - मुनिश्री ने विचार किया कि दुःख का मूल कारण अशुभ कर्म है। जब तक इन अशुभकर्मों की निर्जरा नहीं होती तब तक लाख प्रयत्न करने पर भी जीव को सुख और शांति की प्राप्ति नहीं होती। अतः दुःख निवृत्ति के लिये एक ओर पुराने अशुभ कर्मों के क्षय के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लिए निर्जरा का मार्ग और दूसरी ओर हिंसादि आस्रवों को रोकने के लिए संवर का मार्ग अपनाना जरूरी है। इसी उत्कृष्ट शुद्ध चिंतन के संदर्भ में अनाथी मुनि ने इस पीड़ा से मुक्त होने पर क्षान्त, दान्त, निरारम्भ अनगार बनने का संकल्प लिया।

वेदना से मुक्ति और दीक्षा

एवं च चिंतइत्ताणं, पसुत्तो मि णराहिवा!।
परियत्तंतीए राईए, वेयणा मे खयं गया॥३३॥

कठिन शब्दार्थ - चिंतइत्ताणं - चिन्तन करके, **पसुत्तोमि** - मैं सो गया, **परियत्तंतीए**- परिवर्तित होने (बीतने) पर, **राईए** - रात्रि, **खयं गया** - क्षीण हो गई।

भावार्थ - नराधिप-हे राजन्! इस प्रकार विचार करके मैं सो गया। ज्यों-ज्यों रात्रि व्यतीत होती गई त्यों-त्यों मेरी वेदना भी क्षीण होती गई और मैं नीरोग हो गया।

तओ कल्ले पभायम्मि, आपुच्छित्ताण बंधवे।
खंतो दंतो णिरारंभो, पव्वइओ अणगारियं॥३४॥

कठिन शब्दार्थ - कल्ले - दूसरे दिन, **पभायम्मि** - प्रभातकाल में, **आपुच्छित्ताण** - पूछ कर, **बंधवे** - बंधुजनों को।

भावार्थ - इसके बाद दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही अपने माता-पिता आदि तथा बन्धुजनों को पूछ कर क्षमावान् इन्द्रियों का दमन करने वाला और आरम्भ-रहित हो कर मैंने अनगार-वृत्ति, प्रव्रज्या धारण कर ली।

तोऽहं णाहो जाओ, अप्पणो य परस्स य।
सव्वेसिं चेव भूयाणं, तसाणं थावराण य॥३५॥

कठिन शब्दार्थ - अप्पणो - अपना, **परस्स** - दूसरों का, **सव्वेसिं चेव भूयाणं** - सभी प्राणियों का, **तसाणं** - त्रसों, **थावराणं** - स्थावरों।

भावार्थ - दीक्षा अंगीकार करने पर मैं अपना और दूसरों का एवं त्रस और स्थावर सभी भूतों का अर्थात् जीवों का नाथ हो गया हूँ।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में बताया है कि अनाथी मुनि दीक्षा अंगीकार करते ही कहते हैं "तो हं णाहो जाओ" - मैं स्वयं नाथ बन गया। वास्तव में जो सांसारिक विषय भोगों का त्याग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कर संयम अंगीकार करता है वह सभी जीवों का रक्षक होने से तथा अपनी आत्मा को पाप कर्मों से निवृत्त करने से सभी जीवों का और अपने आप का नाथ-स्वामी हो जाता है। अतः अनाथी मुनि का यह कथन यथार्थ है कि मैं त्रस स्थावरों का एवं स्व-पर का नाथ बन गया।

सनाथता-अनाथता का मूल कारण, आत्मा

अप्पा णई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली।
अप्पा कामदुहा धेणू, अप्पा मे णंदणं वणं॥३६॥

कठिन शब्दार्थ - अप्पा - आत्मा, **णई** - नदी, **वेयरणी** - वैतरणी, **कूडसामली** - कूट शाल्मली वृक्ष, **कामदुहा धेणु** - कामदुघा धेनु, **णंदणं वणं** - नन्दन वन।

भावार्थ - मेरी आत्मा ही वैतरणी नदी है और आत्मा ही कूटशाल्मली वृक्ष है। मेरी आत्मा ही सभी इच्छाओं को पूर्ण करने वाली कामदुघा धेनु है और आत्मा ही नन्दन वन है।

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ॥३७॥

कठिन शब्दार्थ - **कत्ता** - कर्त्ता, **विकत्ता** - विकर्त्ता-भोक्ता, **दुहाण** - दुःखों, **सुहाण**-सुखों, **मित्तममित्तं** - मित्र और अमित्र - शत्रु, **दुप्पट्ठिय** - दुष्प्रवृत्ति में, **सुप्पट्ठिओ** - सत्प्रवृत्ति में।

भावार्थ - आत्मा ही सुखों का और दुःखों का करने वाला है और विकर्त्ता - सुख-दुःखों को काटने वाला भी आत्मा ही है। सुप्रतिष्ठित - श्रेष्ठ मार्ग में चलने वाला आत्मा मित्र है और दुःप्रतिष्ठित - दुराचार में प्रवृत्ति करने वाला आत्मा अमित्र-शत्रु है। तात्पर्य यह है कि यह आत्मा स्वयं ही सुख-दुःख का कर्त्ता और भोक्ता है, अन्य कोई नहीं है।

विवेचन - उपरोक्त दो गाथाओं में अनाथीमुनि ने राजा श्रेणिक को स्पष्ट कर दिया कि सनाथता और अनाथता का मूल कारण आत्मा ही है क्योंकि आत्मा ही कर्मों का कर्त्ता और भोक्ता है। अतः आत्मा को हिंसादि के कुपथ पर चलाने पर वही शत्रु बन कर अनाथ हो जाती है तथा उसी को रत्नत्रयी के सुपथ पर चलाने पर वही मित्र बन कर सनाथ हो जाती है। यही सनाथता और अनाथता का रहस्य है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सनाथता के पथ पर भी अनाथ कौन?

इमा हु अण्णावि अणाहया णिवा!, तमेग-चित्तो णिहुओ सुणेहि।
णियंठधम्मं लहियाण वि जहा, सीयंति एगे बहु कायरा णरा॥३८॥

कठिन शब्दार्थ - **इमा** - यह, **अण्णावि** - अन्य की भी, **एगचित्तो** - एकाग्रचित्त, **णिहुओ** - निभृत - स्थिरतापूर्वक, **सुणेहि** - सुनो, **णियंठधम्मं** - निर्ग्रंथ धर्म को, **लहियाण**- प्राप्त करके, **सीयंति** - शिथिल हो जाते हैं, **बहु कायरा** - बहुत से कायर, **णरा** - मनुष्य।

भावार्थ - हे नृप, हे राजन्! यह दूसरे प्रकार की और भी अनाथता है उसको तुम निभृत-स्थिरता पूर्वक एकाग्रचित्त होकर सुनो जैसे कि निर्ग्रंथ धर्म को प्राप्त करके भी कई एक बहुत-से कायर मनुष्य धर्म के विषय में शिथिल हो जाते हैं।

जो पव्वइत्ताण महव्वयाइं, समं च णो फासयइ पमाया।
अणिग्गहप्पा य रसेसु गिद्धे, ण मूलओ छिण्णइ बंधणं से॥३९॥

कठिन शब्दार्थ - **पव्वइत्ताण** - प्रव्रजित होकर, **महव्वयाइं** - महाव्रतों का, **समं** - सम्यक् प्रकार से, **णो फासयइ** - पालन नहीं करता, **पमाया** - प्रमादवश, **अणिग्गहप्पा** - आत्मा का निग्रह नहीं करता, **रसेसु** - रसों में, **गिद्धे** - आसक्त, **मूलओ** - मूल से, **बंधणं**- बंधन का, **ण छिण्णइ** - उच्छेद नहीं कर पाता।

भावार्थ - जो साधु दीक्षा लेकर प्रमादवश पांच महाव्रतों का सम्यक् प्रकार से पालन नहीं करता और इन्द्रियों के अधीन होकर रसों में गृद्धिभाव रखता है, वह साधु कर्मों के बन्धन को मूल से नहीं काट सकता है।

विवेचन - जो साधक पांच महाव्रतों को स्वीकार तो कर लेता है किंतु प्रमादवश उनका पालन नहीं करता, इन्द्रिय निग्रह भी नहीं करता और रस लोलुप है वह रागद्वेष जन्य कर्मबंधन का मूल से छेदन नहीं कर पाता। क्योंकि आस्रवों का निरोध होने पर ही जीव बंधनों से छूटेगा। प्रमादी जीव कदाचित् दीक्षित होकर थोड़े बहुत कर्मों का क्षय भी कर ले किंतु आस्रव द्वार खुले होने से तथा विषय कषायादि दूर न होने से कर्मबंधन का जड़मूल से सर्वथा उच्छेद वह नहीं कर सकता, अतः वह मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आउत्तया जस्स य णत्थि काइ, इरीयाए भासाए तहेसणाए।
आयाणणिक्खेव-दुगुंछणाए, ण वीरजायं अणुजाइ मग्गं॥४०॥

कठिन शब्दार्थ - **आउत्तया** - उपयोगयुक्तता-यतना, **जस्स** - जिसकी, **ण अत्थि** - नही है, **काइ** - कुछ भी, **इरीयाए** - ईर्यासमिति में, **भासाए** - भाषासमिति में, **तह** - तथा, **एसणाए** - एषणा समिति में, **आयाणणिक्खेव दुगुंछणाए** - आदान भण्डमात्र निक्षेपणा समिति, **वीरजायं** - वीरयात-जिस पर भगवान् महावीर अथवा वीर पुरुष चले हैं, **ण अणुजाइ**- अनुगमन नहीं कर सकता।

भावार्थ - ईर्यासमिति, भाषासमिति, एषणासमिति, आदान-भंडमात्र-निक्षेपणा समिति तथा उच्चार-प्रस्रवण खेल-सिंघाण-जल्ल-परिस्थापनिका समिति, इन पाँच समितियों में जिस साधु का कुछ भी उपयोग नहीं है वह वीर भगवान् तथा शूरवीर पुरुषों द्वारा सेवित मार्ग का अनुसरण नहीं कर सकता है अर्थात् संयम-मार्ग का यथावत् पालन नहीं कर सकता है।

विवेचन - जो शक्तिशाली धीर-वीर पुरुष हैं वे ही ईर्यादि पांचों समितियों का यथाविधि पालन करके वीर मार्ग का अनुगमन करते हैं इससे विपरीत जो कायर हैं ईर्यादि समितियों के पालन से कतराता है वह **'ण वीरजायं अणुजाइ मग्गं'** - वीरमार्ग का अनुयायी नहीं हो सकता।

चिरं पि से मुंडरुई भवित्ता, अथिरव्वए तव णियमेहिं भट्ठे।
चिरं पि अप्पाण किलेसइत्ता, ण पारए होइ हु संपराए॥४१॥

कठिन शब्दार्थ - **चिरं पि** - बहुत काल तक, **मुंडरुई** - मुण्ड रुचि, **भवित्ता** - होकर, **अथिरव्वए** - अस्थिरव्रती, **तव णियमेहिं** - तप और नियमों से, **भट्ठे** - भ्रष्ट, **अप्पाणं** - अपनी आत्मा को, **किलेसइत्ता** - क्लेशित करके, **ण पारए होइ** - पार नहीं हो सकता, **संपराए** - संसार से।

भावार्थ - जो साधु बहुत काल तक मुण्डरुचि होकर, अस्थिर व्रत वाला और तप और नियमों से भ्रष्ट है अर्थात् जो ग्रहण किये हुए पाँच महाव्रतों का सम्यक् पालन नहीं करता और जो केवल मुण्डरुचि है अर्थात् जिसने सिर मुंडा कर वेष तो साधु का पहन लिया है, किन्तु जो भाव से मुंडित नहीं हुआ है वह साधु बहुत काल तक अपनी आत्मा को क्लेशित करके भी निश्चय से संसार से पार नहीं हो सकता।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पोल्लेव मुट्ठी जह से असारे, अयंतिए कूडकहावणे वा।
राढामणी वेरुलियप्पगासे, अमहग्घए होइ हु जाणएसु॥४२॥

कठिन शब्दार्थ - **पोल्लेव** - पोली (खाली), **मुट्ठी** - मुष्टि, **असारे** - असार, **अयंतिए** - अयंत्रित-अनियमित, **कूडकहावणे** - कूटकार्षापण, **राढामणी** - कांच की मणि, **वेरुलियप्पगासे** - वैडूर्यमणि की तरह प्रकाशित, **अमहग्घए** - मूल्यहीन, **जाणएसु** - जानने वाले परीक्षकों की दृष्टि में।

भावार्थ - जिस प्रकार पोली (खाली) मुष्टि-मुट्ठी असार है और जिस प्रकार कूटकार्षापण-खोटा सिक्का असार है और जैसे कांच का टुकड़ा वैडूर्यमणि के समान प्रकाश करने वाला होने पर भी जानकार पुरुषों के सामने निश्चय ही वह अल्प मूल्य वाला हो जाता है। इसी प्रकार अनियमित अर्थात् द्रव्य लिंगी साधु भी विवेकी पुरुषों में प्रशंसनीय नहीं होता।

विवेचन - जो साधक व्रतों में अस्थिर है। तप, त्याग, नियम-प्रत्याख्यान से विचलित हो जाता है वह केवल द्रव्य मुण्डित है अंदर से खोखला है, ऐसा साधक संसार पारगामी नहीं हो सकता।

कुसीललिंगं इह धारइत्ता, इसिज्झयं जीविय बूहइत्ता।
असंजए संजय-लप्पमाणे, विणिग्घाय-मागच्छइ से चिरं पि॥४३॥

कठिन शब्दार्थ - **कुसीललिंगं** - कुशीलों - आचार-भ्रष्टों का वेष, **धारइत्ता** - धारण करके, **इसिज्झयं** - ऋषि ध्वज (रजोहरणादि मुनि चिह्न), **जीविय** - जीवन - आजीविका का, **बूहइत्ता** - पोषण करता हुआ, **असंजए** - असंयत, **संजय-लप्पमाणे** - संयत कहलाता है, **विणिग्घायं** - विनिघात - आत्मघात अथवा जन्म मरण रूप विनाश को, **आगच्छइ** - प्राप्त होता है।

भावार्थ - इस मनुष्य जन्म में कुशीलिये (पासत्थे) आदि का लिंग धारण करके तथा ऋषिध्वज - रजोहरण आदि मुनि के बाह्य-चिह्नों को धारण करके उनके द्वारा अपनी आजीविका का पोषण करता हुआ अर्थात् असंयमपूर्ण जीवन व्यतीत करता हुआ और असंयत होते हुए भी अपने आपको संयत बतलाने वाला वह द्रव्यलिंगी साधु बहुत काल तक विनिघात - विनाश को प्राप्त होता है अर्थात् नरक आदि दुर्गतियों में दुःख भोगता रहता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विसं तु पीयं जह कालकूडं, हणाइ सत्थं जह कुग्गहीयं।
एसो वि धम्मो विसओववण्णो, हणाइ वेयाल इवाविवण्णो॥४४॥

कठिन शब्दार्थ - **विसं** - विष, **पीयं** - पीया हुआ, **कालकूडं** - कालकूट, **हणाइ** - विनाश कर देता है, **कुग्गहीयं** - उलटा पकड़ा हुआ, **सत्थं** - शस्त्र, **धम्मो** - धर्म, **विसओववण्णो** - विषय विकारों से युक्त, **वेयाल** - वैताल-पिशाच, **इव** - जैसे, **अविवण्णो** - अनियंत्रित - वश में नहीं किया हुआ।

भावार्थ - जिस प्रकार पीया हुआ कालकूट नामक विष प्राणों का नाश कर देता है और जिस प्रकार उलटा पकड़ा हुआ शस्त्र अपना ही घात करता है जैसे अविपन्न - सम्यक् प्रकार मंत्र आदि से वश में न किया हुआ वैताल (पिशाच) अपने साधक को ही मार डालता है उसी प्रकार शब्दादि विषयों से युक्त हुआ यह धर्म भी द्रव्य-लिंगी साधु का विनाश कर देता है अर्थात् वह नरक आदि दुर्गतियों में दुःख भोगता रहता है।

जो लक्खणं सुविणं पउंजमाणे, णिमित्त-कोऊहल-संपगाढे।
कुहेडविज्जासवदारजीवी, ण गच्छइ सरणं तम्मि काले॥४५॥

कठिन शब्दार्थ - **लक्खणं** - लक्षण, **सुविणं** - स्वप्न शास्त्र का, **पउंजमाणे** - प्रयोग करता है, **णिमित्त कोऊहल संपगाढे** - निमित्त शास्त्र और कौतुक कार्य (इन्द्रजाल आदि प्रयोग) में अत्यंत आसक्त, **कुहेडविज्जासवदारजीवी** - कुहेट (असत्य एवं आश्चर्योत्पादिनी जादूगरी आदि) विद्याओं से एवं आस्रव द्वारों से - हिंसादि पाप कर्म के हेतु रूप कार्यों से जीविका चलाता है, **तम्मिकाले** - उस समय में।

भावार्थ - जो साधु लक्षण शास्त्र और स्वप्नशास्त्र का प्रयोग करता है अर्थात् स्त्री-पुरुषों के शारीरिक चिह्नों द्वारा शुभाशुभ फल बतलाता है और स्वप्नों का शुभाशुभ फल बतलाता है तथा जो भूकम्पादि निमित्त शास्त्र और कौतुकादि के प्रयोग करने में आसक्त रहता है और जो कुहेटक विद्या (आश्चर्य में डाल देने वाली मंत्र-तंत्रादि विद्या) जिससे हिंसा झूठ आदि आस्रवों का आगमन होता है उस विद्या से आजीविका करता है, वह साधु कर्मों का फल भोगने के समय किसी की शरण को प्राप्त नहीं होता अर्थात् अपने कर्मों का फल स्वयं को ही भोगना पड़ता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - स्वप्न, लक्षण, निमित्त, कौतुहल, कुहेट विद्या एवं आस्रवद्वारों से उपार्जित पापकर्म के फलभोग के समय वह साधु शरण नहीं प्राप्त कर पाता अर्थात् उस साधु की कोई भी नरक, तिर्यंच आदि गतियों के दुःख से रक्षा नहीं कर सकता।

तमं तमेणेव उ से असीले, सया दुही विप्परियासुवेइ *।
संधावइ णरगतिरिक्ख-जोणिं, मोणं विराहित्तु असाहुरूवे॥४६॥

कठिन शब्दार्थ - **तमं तमेणेव उ** - तमस्तम - घोर अज्ञानान्धकार के कारण, **असीले** - शील रहित, **सया** - सदा, **दुही** - दुःखी, **विप्परियासं** - विपरीत दृष्टि को, **उवेइ** - प्राप्त होता है, **संधावइ** - आवागमन करता रहता है, **णरगतिरिक्खजोणिं** - नरक और तिर्यंच योनियों में, **मोणं** - मुनिधर्म को, **विराहित्तु** - विराधना करके, **असाहुरूवे** - असाधु रूप-द्रव्यलिंगी साधु।

भावार्थ - साधु का वेष धारण करने वाला किन्तु भाव से असाधु रूप वह कुशीलिया साधु अत्यन्त अज्ञानान्धकार से चारित्र की विराधना करके सदैव दुःखी होता हुआ विपरीत भाव को प्राप्त होता है और नरक-तिर्यंच आदि दुर्गतियों में जाता है अर्थात् उत्पन्न होता है।

उद्देसियं कीयगडं णियागं, ण मुंचइ किंचि अणेसणिज्जं।
अग्गी विवा सव्वभक्खी भवित्ता, इत्तो चुए गच्छइ कट्टु पावं॥४७॥

कठिन शब्दार्थ - **उद्देसियं** - औद्देशिक, **कीयगडं** - क्रीतकृत, **णियागं** - नियाग-नित्यपिण्ड, **ण मुंचइ** - नहीं छोड़ता है, **अणेसणिज्जं** - अनैषणीय आहार, **अग्गी विवा** - अग्नि की तरह, **सव्वभक्खी** - सर्व भक्षी, **इत्तो चुए** - यहां से च्यव कर - मर कर, **कट्टु** - करके, **पावं** - पाप।

भावार्थ - जो साधु औद्देशिक, क्रीतकृत-खरीदा हुआ, नियागपिण्ड (नित्यपिण्ड) और अनेषणीय आहार आदि कुछ भी नहीं छोड़ता, अपितु सब को ग्रहण कर लेता है, वह अग्नि के समान सर्वभक्षी होकर यहाँ का आयुष्य पूरा करके तथा पापकर्मों को उपार्जन करके दुर्गति में चला जाता है।

---

* पाठान्तर - विप्परियामुवेइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - औद्देशिक - किसी खास साधु के लिए बनाया गया आहारादि यदि वही साधु ले तो **'आधाकर्म'** और यदि दूसरा साधु ले तो **'औद्देशिक'** कहलाता है।

कीयगडं-क्रीतकृत-साधु के लिए खरीदा हुआ आहारादि 'क्रीतकृत' कहलाता है।

इसी गाथा की टीका में टीकाकार श्री शान्त्याचार्य जी ने **'णियागं'** शब्द का अर्थ - **'नियागं-नित्याग्रं नित्यपिण्डमित्यर्थः'** अर्थात् नित्यपिण्ड अर्थ किया है। अतः नियाग शब्द का लम्बे काल से टीकाकारों ने **'नित्यपिण्ड'** अर्थ भी किया है। इसलिए नियाग शब्द का अर्थ - नित्यपिण्ड तथा निमंत्रणपिण्ड दोनों ही समझना चाहिए। मात्र **'निमंत्रणपिण्ड'** अर्थ का ही आग्रह करना प्राचीन अर्थों से विहित नहीं है।

दशवैकालिक सूत्र के तीसरे अध्ययन में बावन अनाचारों का वर्णन है। उसकी दूसरी गाथा में **'णियाग'** शब्द आया है। उसका अर्थ रायबहादुर धनपतिसिंहजी मुर्शिदाबाद (मक्सूदाबाद) वालों की तरफ से प्रकाशित सटीक दशवैकालिक सूत्र की टीका में इस प्रकार किया है -

'णियाग' - णियागमित्यामंत्रितस्य पिण्डस्य ग्रहणं, नित्यं तत् तु अनानमंन्त्रितस्य।

अर्थ - किसी का आमंत्रण स्वीकार कर उसके घर से लिया हुआ आहार-पानी तथा प्रतिदिन एक ही घर से लिया हुआ आहार-पानी आदि **'णियाग पिण्ड'** (नित्य-पिण्ड) कहलाता है।

ण तं अरी कंठछित्ता करेइ, जं से करे अप्पणिया दुरप्पा।
से णाहइ मच्चुमुहं तु पत्ते, पच्छाणुतावेण दयाविहूणो॥४८॥

कठिन शब्दार्थ - अरी - शत्रु, **कंठछित्ता** - गला काटने वाला, **अप्पणिया** - अपनी, **दुरप्पा** - दुष्प्रवृत्तिशील दुरात्मा, **णाहइ** - जान पाता है, **मच्चुमुहं** - मृत्यु के मुख में, **पच्छाणुतावेण** - पश्चात्ताप से युक्त हो कर, **दयाविहूणो** - दया से विहीन।

भावार्थ - दुराचार में प्रवृत्त हुई अपनी आत्मा जितना अनर्थ करती है उतना अनर्थ तो कंठ को छेदन करने वाला शत्रु भी नहीं कर सकता। दया-रहित अर्थात् संयम-रहित यह आत्मा मृत्यु के मुख में पहुँचा हुआ पश्चात्ताप करता हुआ इस बात को जानेगा अर्थात् अपनी दुष्ट प्रवृत्तियों का स्मरण करके पश्चात्ताप करेगा।

णिरट्ठिया णग्गरुई उ तस्स, जे उत्तमट्ठं विवज्जासमेइ।
इमे वि से णत्थि परे वि लोए, दुहओ वि से झिज्झइ तत्थ लोए॥४९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - णिरट्ठिया - निरर्थक, **णग्गरुई** - नग्नरुचि - साधुत्व में अभिरुचि, **उत्तमट्ठं** - उत्तमार्थ, **विवज्जासमेइ** - विपरीत दृष्टि रखता है, **दुहओ वि** - दोनों ओर से, **झिज्झइ** - भ्रष्ट (नष्ट) हो जाता है।

भावार्थ - ऐसे द्रव्यलिंगी मुनि की नग्नरुचि - नग्न अर्थात् संयम में रुचि रखना निरर्थक है जो उत्तम अर्थ में भी विपरीत भाव रखता है अर्थात् सादाचार को दुराचार और दुराचार को सदाचार मानता है उस आत्मा के लिए यह लोक और परलोक दोनों भी नहीं है अर्थात् दोनों बिगड़ जाते हैं इस प्रकार उभय-लोक के अभाव में वह लोक में दोनों प्रकार से चिन्तित होकर क्षीण होता है अर्थात् इस लोक में तो केशलुंचन आदि क्रियाओं से क्लेशित होता है और परलोक में नरक-तिर्यंच आदि गतियों में दुःख भोगता है।

एमेवऽहाछंद कुसील-रूवे, मग्गं विराहित्तु जिणुत्तमाणं।
कुररी विवा भोगरसाणुगिद्धा, णिरट्ठसोया परियावमेइ॥५०॥

कठिन शब्दार्थ - अहाछंद - स्वच्छन्द, **कुसीलरूवे** - कुशील वेश में (भ्रष्ट साधु), **मग्गं** - मार्ग की, **विराहित्तु** - विराधना करके, **जिणुत्तमाणं** - जिनोत्तम-जिनेन्द्र भगवान् के, **कुररी विवा** - कुररी (गीध) पक्षिणी की तरह, **भोगरसाणुगिद्धा** - भोग रसों में आसक्त होकर, **णिरट्ठसोया** - निरर्थक शोक करने वाली, **परियावमेइ** - परिताप को प्राप्त होता है।

भावार्थ - इस प्रकार स्वच्छन्दाचारी और कुशीलिया साधु जिनेन्द्र भगवान् के उत्तम मार्ग की विराधना करके भोगरस में अर्थात् मांस के टुकड़े में आसक्त बनी हुई निरर्थक शोक करने वाली कुररी-पक्षिणी के समान भोगों में आसक्त बन कर परिताप को प्राप्त होता है-पश्चात्ताप करता है।

विवेचन - उपर्युक्त १३ गाथाओं (गाथा ३८ से ५० तक) में अनाथीमुनि ने उन साधकों का वर्णन किया है जो सनाथता के पथ को अंगीकार करके भी अपनी दुष्प्रवृत्ति के कारण अनाथ बन जाते हैं। अनाथता के १३ प्रकार इस प्रकार है -

१. निर्ग्रंथ धर्म अंगीकार करके शिथिल एवं परीषह सहन करने में कायर।
२. दीक्षा अंगीकार कर महाव्रतों के पालन में प्रमादी, अजितेन्द्रिय और रसों में आसक्त।
३. पांच समितियों के पालन में उपयोग रहित।
४. व्रतों में अस्थिर, तप नियमों से भ्रष्ट, केवल मुण्डरुचि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५. आचारहीन, वेषधारी और जानकारों की दृष्टि में मूल्यहीन।

६. कुशीलवेषी, मुनि चिह्नों से आजीविका चलाने वाला, संयम अभिमानी।

७. विषयभोगों से मिश्रित धर्म का पालक सुख-सुविधावादी।

८. लक्षण, स्वप्न, निमित्त, कौतुक, मंत्र तंत्रादि से जीवन जीने वाला।

९. शीलरहित, अज्ञान अंधकार से ग्रस्त, विपरीत दृष्टि वाला।

१०. अनेषणीय आहार ग्रहण करने वाला।

११. दुष्ट आचार प्रवृत्त, संयमहीन, दुरात्मा।

१२. उत्तमार्थ में विपरीत दृष्टि वाला, उभयलोक भ्रष्ट साधक।

१३. स्वच्छंद, कुशील एवं जिनमार्ग विराधक।

अनाथ भी सनाथ बन सकते हैं

सोच्चाण मेहावी सुभासियं इमं, अणुसासणं णाणगुणोववेयं।
मग्गं कुसीलाण जहाय सव्वं, महाणियंठाण वए पहेणं॥५१॥

कठिन शब्दार्थ - **सोच्चाण** - सुन कर, **मेहावी** - मेधावी, **सुभासियं** - सुभाषित, **अणुसासणं** - अनुशासन को, **णाणगुणोववेयं** - ज्ञानगुण से युक्त, **मग्गं** - मार्ग को, **कुसीलाण** - कुशीलों - आचार-भ्रष्टों के, **जहाय** - छोड़ कर, **महाणियंठाण** - महानिर्ग्रंथों के, **वए** - चले, **पहेणं** - मार्ग से।

भावार्थ - अनाथी मुनि राजा श्रेणिक को एवं समस्त भव्य पुरुषों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि सुभाषित - भली प्रकार कही हुई, ज्ञानगुण से युक्त इस अनुशासन-शिक्षा को सुन कर बुद्धिमान् साधु कुशीलियों के कुत्सित मार्ग को सर्वथा प्रकार से छोड़ कर महा निर्ग्रन्थों के मार्ग से चले अर्थात् अनुसरण करे।

चरित्तमायारगुणण्णिए तओ, अणुत्तरं संजम पालियाणं।
णिरासवे संखवियाण कम्मं, उवेइ ठाणं विउलुत्तमं धुवं॥५२॥

कठिन शब्दार्थ - **चरित्तमायारगुणण्णिए** - चारित्राचार और ज्ञानादि गुणों से सम्पन्न, **अणुत्तरं** - उत्कृष्ट, **संजम** - संयम का, **पालियाणं** - पालन कर, **णिरासवे** - निरास्रव, **संखवियाण कम्मं** - कर्मों का क्षय करके, **विउलुत्तमं** - विशाल एवं सर्वोत्तम, **धुवं** - ध्रुव-शाश्वत।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - महा निर्ग्रंथों के मार्ग का अनुसरण करने से जिस फल की प्राप्ति होती है उसका वर्णन करते हैं कि चारित्र और ज्ञानादि गुणों से युक्त होकर अनुत्तर-प्रधान संयम का पालन करने के पश्चात् आस्रवों से रहित होकर तथा कर्मों का सर्वथा क्षय कर के विशाल एवं सर्वोत्तम ध्रुव-शाश्वत स्थान को अर्थात् जहाँ जाकर पुनः संसार में लौटना न पड़े ऐसे मोक्ष स्थान को प्राप्त हो जाता है।

विवेचन - प्रस्तुत दो गाथाओं में अनाथीमुनि ने श्रेणिक राजा से कहा कि यदि बुद्धिमान् साधक पूर्वोक्त सुभाषित और ज्ञान गुणयुक्त अनुशासन - हितोपदेश को सुन कर तथाकथित अनाथों - आचारभ्रष्ट साधकों के समस्त मार्गों को हेय समझ कर त्याग दे और महानिर्ग्रंथों-तीर्थंकरों द्वारा उपदिष्ट मार्ग पर चले तो वे पुनः सनाथ हो सकते हैं।

जो साधक सनाथ (ज्ञान दर्शन चारित्र से सम्पन्न) होता है वह सर्व कर्मों को क्षय कर शाश्वत मोक्ष स्थान को प्राप्त कर लेता है। यह सनाथ होने का सर्वोत्तम फल है।

एवुग्गदंते वि महातवोधणे, महामुणी महापइण्णे महायसे।
महाणियंठिज्जमिणं महासुयं, से काहए महया वित्थरेणं ॥५३॥

कठिन शब्दार्थ - **उग्गदंते** - उग्र-कर्म शत्रुओं को जीतने में उदग्र एवं शांत, **महातवोधणे**-महातपोधन, **महामुणी** - महामुनि, **महापइण्णे** - महा प्रतिज्ञ, **महायसे** - महायशस्वी, **महाणियंठिज्जं** - महानिर्ग्रंथीय, **महासुयं** - महाश्रुत का, **काहए** - कथन किया, **महया** - बहुत (बड़े), **वित्थरेणं** - विस्तार से।

भावार्थ - कर्म शत्रुओं का उग्र रूप से दमन करने वाले महान् तपस्वी, महा प्रतिज्ञा - दृढ़ प्रतिज्ञा वाले, महा यशस्वी उन महामुनि ने इस महा-निर्ग्रंथों के लिए हितकारी महानिर्ग्रन्थीय नामक महाश्रुत अध्ययन का बहुत विस्तार के साथ महाराज श्रेणिक के सामने इस प्रकार कथन किया।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में **महानिर्ग्रंथीय अध्ययन** के प्रतिपादक अनाथीमुनि के छह विशेषण दिये गये हैं - १. उग्र २. दान्त ३. महातपोधन ४. महामुनि ५. महाप्रतिज्ञ और ६. महायशस्वी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुनि के प्रति कृतज्ञता प्रकाशन

तुट्ठो य सेणिओ राया, इणमुदाहु कयंजली।
अणाहत्तं जहाभूयं, सुट्ठु मे उवदंसियं॥५४॥

कठिन शब्दार्थ - तुट्ठो - संतुष्ट, इणं उदाहु - इस प्रकार बोला, **कयंजली** - कृताञ्जली-दोनों हाथ जोड़कर, **अणाहत्तं** - अनाथता का, **जहाभूयं** - यथाभूत - यथार्थ स्वरूप, **सुट्ठु** - भलीभांति, **उवदंसियं** - समझाया है।

भावार्थ - मुनि के उपदेश से संतुष्ट एवं प्रसन्न हुआ श्रेणिक राजा कृताञ्जलि-दोनों हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहने लगा कि हे भगवन्! आपने अनाथता का यथार्थ स्वरूप मुझे भली प्रकार से समझाया है।

तुज्झं सुलद्धं खु मणुस्स-जम्मं, लाभा सुलद्धा य तुमे महेसी!
तुब्भे सणाहा य सबंधवा य, जं भे ठिया मग्गे जिणुत्तमाणं॥५५॥

कठिन शब्दार्थ - तुज्झं - तुम्हारा, **सुलद्धं** - सुलब्ध-सफल, **मणुस्स जम्मं** - मनुष्य जन्म, **लाभा** - लाभ-उपलब्धियां, **महेसी** - हे महर्षि, **तुब्भे** - तुम, **सणाहा** - सनाथ, **सबंधवा** - सबान्धव, **जं** - क्योंकि, **भे** - तुम, **ठिया** - स्थित हो, **मग्गे** - मार्ग में, **जिणुत्तमाणं** - जिनेश्वरों के।

भावार्थ - राजा श्रेणिक अनाथी मुनि का हार्दिक अभिनन्दन करता हुआ कहता है कि हे महर्षि! आपका मनुष्य-जन्म पाना वास्तव में सुलब्ध (सफल) है और आपने ही वास्तविक लाभ प्राप्त किया है तथा आप ही सनाथ और सबान्धव हैं क्योंकि आप सर्वोत्तम जिनेन्द्र भगवान् के मार्ग में स्थित हुए हैं।

तंसि णाहो अणाहाणं, सव्वभूयाण संजया!
खामेमि ते महाभाग! इच्छामि अणुसासिउं॥५६॥

कठिन शब्दार्थ - तं - आप, **सि** - है, **णाहो** - नाथ, **अणाहाणं** - अनाथों के, **सव्वभूयाण** - सब जीवों के, **महाभाग** - हे महाभाग!, **इच्छामि** - चाहता हूं, **अणुसासिउं**- अनुशासित होना-शिक्षा पाना।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - हे महाभाग! आप अनाथों के नाथ हैं। हे संयति! आप समस्त प्राणियों के नाथ हैं। हे पूज्य! यदि कोई मेरा अपराध हुआ हो तो उसके लिए मैं आप से क्षमा मांगता हूँ और मैं आपके द्वारा शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा करता हूँ।

पुच्छिऊण मए तुब्भं, झाणविग्घो य जो कओ।
णिमंतिया य भोगेहिं, तं सव्वं मरिसेहि मे॥५७॥

कठिन शब्दार्थ - **पुच्छिऊण** - पूछ कर, **झाणविग्घो** - ध्यान में विघ्न, **णिमंतिया** - निमंत्रित करके, **भोगेहिं** - भोगों के लिए, **मरिसेहि** - क्षमा करे (सहन करें), **मे** - मुझे।

भावार्थ - मैंने आप से प्रव्रज्या का कारण पूछ कर जो आपके ध्यान में विघ्न किया है और भोगों के लिए निमंत्रित करके आपका जो अपराध किया है उन सभी अपराधों के लिए आप मुझे क्षमा प्रदान करें।

एवं थुणित्ताण स रायसीहो, अणगारसीहं परमाइ भत्तिए।
सओरोहो सपरियणो सबंधवो, धम्माणुरत्तो विमलेण चेयसा॥५८॥

कठिन शब्दार्थ - **थुणित्ताण** - स्तुति करके, **रायसीहो** - राजसिंह, **अणगारसीहं** - अनगारसिंह, **परमाइ भत्तिए** - परम भक्ति से, **सओरोहो** - अन्तःपुर सहित, **सपरियणो** - सपरिजन-परिजन सहित, **सबंधवो** - बंधुजनों सहित, **धम्माणुरत्तो** - धर्म में अनुरक्त, **विमलेण चेयसा** - निर्मल चित्त से।

भावार्थ - इस प्रकार राजाओं में सिंह के समान पराक्रमी वह राजा श्रेणिक कर्म रूपी शत्रुओं का नाश करने में सिंह के समान उस अनाथी मुनि की उत्कृष्ट भक्तिपूर्वक स्तुति करके अपने अन्तःपुर सहित, परिवार सहित और बन्धुओं सहित मिथ्यात्व-रहित निर्मल चित्त से धर्म में अनुरक्त बन गया अर्थात् सम्यक्त्व प्राप्त कर ली।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में पराक्रम और शूरवीरता की दृष्टि से राजा श्रेणिक को 'राजसिंह' कहा गया है तथा अनाथीमुनि को तप, संयम आदि उत्कृष्ट क्रियाओं में पराक्रम करने तथा कर्मरूपी मृगों अथवा रागद्वेषादि शत्रुओं का संहार करने से 'मुनिसिंह' कहा गया है।

'**सओरोहो सपरियणो सबंधवो**' से यह भी सिद्ध होता है कि राजा श्रेणिक अपने समस्त अन्तःपुर, बंधुजन एवं राजपरिवार सहित मण्डिकुक्षि नामक उद्यान में आया था और राजा सहित सभी धर्मानुरागी बन गये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस गाथा में आये हुए "**धम्माणुरत्तो विमलेण चेयसा**" शब्दों से यह स्पष्ट होता है कि श्रेणिक राजा मिथ्यात्व से रहित निर्मल चित्त से धर्म में अनुरक्त बन गये। अर्थात् अनाथी मुनि के उपदेश से राजा श्रेणिक दृढ़ सम्यक्त्वी बन गये। ग्रन्थों में राजा श्रेणिक के लिए क्षायिक सम्यक्त्वी होना लिखा है। यदि ग्रन्थों के अनुसार राजा श्रेणिक क्षायिक सम्यक्त्वी भी हुए हों तो भी आगम से कोई बाधा नहीं आती है। आगम से तो मात्र सम्यक्त्वी होना ही स्पष्ट होता है।

ऊससियरोमकूवो, काऊण य पयाहिणं।
अभिवंदिऊण सिरसा, अइयाओ णराहिवो॥५६॥

कठिन शब्दार्थ - **ऊससियरोमकूवो** - उच्छ्वसित-उल्लसित रोमकूप, **काऊण** - करके, **पयाहिणं** - प्रदक्षिणा, **अभिवंदिऊण** - वन्दना करके, **सिरसा** - मस्तक से, **अइयाओ** - लौट गया, **णराहिवो** - नराधिप (राजा)।

भावार्थ - हर्ष से रोमांचित हुआ वह नराधिप-राजा श्रेणिक प्रदक्षिणा करके और मस्तक झुका कर वन्दना कर के अपने स्थान पर चला गया।

विवेचन - जब किसी भावुक आत्मा को अपूर्व उपदेशामृत अथवा अपूर्व सद्ज्ञान की प्राप्ति होती है तब उसके समस्त शरीर में रोमाञ्च हो उठता है उसका तन मन पुलकित हो जाता है, रोम रोम विकसित हो जाता है। राजा श्रेणिक ने भी जब अनाथी मुनि से सनाथ-अनाथ का ज्ञान प्राप्त किया, अपूर्व उपदेशामृत उसे उपलब्ध हुआ, शुद्ध धर्म की प्राप्ति हुई तो उसका शरीर प्रसन्नतावश रोमाञ्चित हो उठा। इसीलिये यहां राजा श्रेणिक के लिये '**ऊससियरोमकूवो**' शब्द प्रयुक्त किया गया है।

राजा श्रेणिक ने अनाथीमुनि के गुणों के प्रति आकर्षित होकर और उनके अन्तरंग व्यक्तित्व से प्रभावित होकर जो यथार्थ शिष्टाचार किया है, वह उपर्युक्त छह गाथाओं (क्रं. ५४ से ५६ तक) में प्रतिपादित है।

प्रत्येक शिष्ट पुरुष का यह कर्त्तव्य होता है कि जिससे वह कुछ ज्ञान, मार्गदर्शन एवं अनुशासन प्राप्त करे या प्राप्त करना चाहे तथा जिसके गुणों से प्रभावित हो उसके प्रति शिष्ट शब्दों में कृतज्ञता प्रकट करे, उसके गुणों की प्रशंसा करे, उसका अभिनंदन करे, उसका समय व्यय किया जिसके लिए क्षमायाचना करे, उस महान् आत्मा के प्रति परमभक्ति, स्तुति, धर्मानुरक्ति, प्रदक्षिणा और वन्दना करे। यह राजा श्रेणिक के वर्तन-व्यवहार से स्पष्ट है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उपसंहार

इयरो वि गुणसमिद्धो, तिगुत्तिगुत्तो तिदंडविरओ य।
विहग इव विप्पमुक्को, विहरइ वसुहं विगयमोहो॥६०॥ त्ति बेमि॥

कठिन शब्दार्थ - इयरो वि - अन्य भी (श्रेणिक की अपेक्षा से अनाथी मुनि भी), **गुणसमिद्धो** - गुणों से समृद्ध, **तिगुत्तिगुत्तो** - तीन गुप्तियों से गुप्त, **तिदंडविरओ** - तीन दण्डों से विरत, **विहग इव** - पक्षी की तरह, **विप्पमुक्को** - प्रतिबन्ध मुक्त, **विहरइ** - विचरण करने लगे, **वसुहं** - वसुधा-पृथ्वी पर, **विगयमोहो** - मोह रहित-मोह मुक्त (वीतराग या केवली होकर)।

भावार्थ - गुणों से समृद्ध, तीन गुप्तियों से गुप्त और तीन दण्ड से निवृत्त बने हुए अनाथी मुनि मोह (ममत्व) से रहित होकर तथा पक्षी के समान प्रतिबन्ध रहित होकर वसुधा-पृथ्वी पर विचरने लगे और शुद्ध संयम का पालन कर सब कर्मों का क्षय कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो गये। ऐसा मैं कहता हूँ।

विवेचन - इस अध्ययन का उपसंहार करते हुए आगमकार ने अनाथीमुनि के लिए निम्न पांच विशेषण दिये हैं - १. गुणों से समृद्ध - साधु के २७ गुणों से अथवा क्षमादि गुणों से युक्त २. तीन गुप्तियों (मन गुप्ति, वचन गुप्ति, काय गुप्ति) से गुप्त ३. तीन दण्डों (मन दण्ड, वचन दण्ड, काय दण्ड) से विरत ४. पक्षी के समान सभी प्रकार के प्रतिबन्धों से रहित, द्रव्य भाव परिग्रह से रहित ५. मोहमुक्त - केवली या वीतराग।

॥ इति महानिर्ग्रंथीय नामक बीसवाँ अध्ययन समाप्त॥

उत्तराध्ययन सूत्र
भाग १
॥सम्पूर्ण॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org